

प्रेमचंद रचनावली

(6)

प्रेमचंद रचनावली

6

उपन्यास : 1936- 948

गोदान, मंगलसूत्र

प्रेमचंद रचनावली

खण्ड : छः

भूमिका एवं मार्गदर्शन

डॉ॰ रामविलास शर्मा





प्रकाशकीय

'प्रेमचंद रचनावली' का प्रकाशन **जनवाणी** के लिए गौरव की बात है। कॉपीराइट समाप्त होने के बाद प्रेमचंद साहित्य विपुल मात्रा में प्रकाशित-प्रचारित हुआ। पर उनका सम्पूर्ण साहित्य अब तक कहीं भी एक जगह उपलब्ध नहीं था। लगातार यह जरूरत महसूस की जा रही थी कि उनके सम्पूर्ण साहित्य का प्रामाणिक प्रकाशन हो।

श्रेष्ठ और कालजयी साहित्यकारों के समग्र कृतित्व का एकत्र प्रकाशन कई दृष्टियो से उपयोगी होता है। इसी आलोक में **'प्रेमचंद रचनावली'** की कुछ विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख बहुत आवश्यक है। इस रचनावली में पहली बार सम्पूर्ण प्रेमचंद साहित्य सर्वाधिक शुद्ध और प्रामाणिक मूल पाठ के साथ सामने आया है। सम्पूर्ण रचनाओं का विभाजन पहले विधावार तत्पश्चात् कालक्रमानुसार किया गया है। रचनाओं के प्रथम प्रकाशन एवं उनके कालक्रम संबंधी प्रामाणिक जानकारी प्रत्येक रचना के अन्त में दी गई है जिससे प्रेमचंद के कृतित्व के अध्ययन और मूल्यांकन में विशेष सुविधा होगी। इसकी अधिकांश सामग्री प्रथम संस्करणों या काफी पुराने संस्करणों से ली गई है। प्रेमचंद साहित्य के अध्ययन, अध्यापन तथा शोध के लिए इस रचनावली का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि इसमें प्रेमचद की अब तक उपलब्ध सम्पूर्ण तथा अद्यतन सामग्री का समावेश कर लिया गया है। रचनावली के बीस खण्डों का क्रमबद्ध प्रारूप इस प्रकार है –

> **खण्ड 1-6 :** मौलिक उपन्यास, **खण्ड 7-9 :** लेख, भाषण, सस्मरण, सपादकीय, भूमिकाएं, समीक्षाए, **खण्ड 10 :** मौलिक नाटक **खण्ड 11-15 :** सम्पूर्ण कहानियां (302), **खण्ड 16-17 :** अनुवाद (उपन्यास, नाटक, कहानी), **खण्ड 18 :** जीवनी एव बाल साहित्य, **खण्ड 19 :** पत्र (चिट्ठी-पत्री), **खण्ड 20 :** विविध।

रचनावली की विस्तृत भूमिका मूर्धन्य आलोचक डॉ॰ रामविलास शर्मा ने लिखी है, जो इस रचनावली की सबसे बड़ी उपलब्धि है। डॉ॰ शर्मा ने अपनी साहित्य-साधना के व्यस्त क्षणों में भी हर कदम पर हमारा मार्गदर्शन किया। रचनावली का जो यह उत्कृष्ट रूप सामने आया है यह सब उन्हीं के आशीर्वाद का प्रतिफल है। इस कृपा और सहयोग के लिए मैं उनके प्रति नतमस्तक हूं।

बिहार विधान परिषद् के माननीय सभापति, हिन्दी और उर्दू के वरिष्ठ साहित्यकार प्रो॰ जाबिर हुसेन ने प्रेमचंद रचनावली के संपादक-मण्डल का अध्यक्ष होना स्वीकार किया और रचनावली के संपादन कार्य में हमारा उचित मार्गदर्शन किया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूं। साथ ही संपादक-मण्डल के विद्वान सदस्यों के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करता हूं।

श्री केशवदेव शर्मा ने अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद सम्पादन कार्य में जिस गहरी लगन, समझदारी और आत्मीयता से सहयोग किया है उसके लिए उनके प्रति अनेकश: धन्यवाद। उनका अहर्निश सानिध्य मुझे स्फूर्ति प्रदान करता रहा। डॉ॰ गीता शर्मा एवं डॉ॰ अशोक कुमार शर्मा, वेद प्रकाश सोनी तथा डॉ॰ विनय के प्रति भी उनके हार्दिक सहयोग के लिए आभारी हूं।

भाई राम आनंद साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करते ही प्रेमचंद द्वारा स्थापित प्रकाशन संस्थान **'सरस्वती प्रेस'** से जुड़ गए थे। लगभग बीस वर्षों तक उन्होंने स्व॰ श्रीपत राय (प्रेमचंद के ज्येष्ठ पुत्र) के मार्गदर्शन में अप्राप्य प्रेमचंद साहित्य पर शोध कार्य किया। वे स्व॰ श्रीपत राय के संपादन में प्रकाशित होने वाली विख्यात कथा-पत्रिका **'कहानी'** के सहायक संपादक रहे। श्रीपत राय के देहांत के बाद उन्होंने **'कहानी'** का स्वतंत्र रूप से संपादन किया और उसे नया रूप तथा गरिमा प्रदान की। उन्होंने जिस गहरी सूझ-बूझ, लगन, धैर्य और निष्ठा से इस रचनावली के संपादन कार्य को इतने सुरुचिपूर्ण और वैज्ञानिक ढंग से संपन्न किया, इसके लिए वे हम सबों के साधुवाद के पात्र हैं।

श्री हरीशचन्द्र वार्ष्णेय, श्री प्रेमशंकर शर्मा, श्री उदयकान्त पाठक ने प्रूफ-संशोधन और सम्पूर्ण मुद्रण कार्य में विशेष जागरूकता और मनस्विता का परिचय दिया; इनके साथ विमलसिंह, आर॰ के॰ यादव, सुनील जैन, शिवानंदसिंह तथा संस्था के अन्य सभी सहकर्मियों के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूं क्योंकि इन सबके सहयोग और सद्भाव के बिना यह काम पूरा होना लगभग असंभव था।

मेरी भ्रातृजा रीमा और भ्रातृज संदीप, संजीव, मनीष, विक्रांत, चेतन की लगन और सूझबूझ ने भी मुझे सदैव प्रेरित और उत्साहित किया वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

रचनावली के मुद्रण का कार्य श्री कान्तीप्रसाद शर्मा की देखरेख में हुआ है। उनकी सूझबूझ और श्रमनिष्ठा के लिए वे हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

सर्वश्री विजयदान देथा, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', रामकुमार कृषक, स्वामी प्रेम जहीर, डॉ॰ कुसुम वियोगी, रामकुमार शर्मा आदि सभी मित्रों के सुझावों के लिए भी आभारी हूं।

इस कार्य में पूज्य माताजी श्रीमती जसवन्ती देवी का आशीर्वाद और पिताश्री प्रेमनाथ शर्मा का दीर्घकालीन प्रकाशन-व्यवसाय का अनुभव और आशीर्वाद मेरे विशेष प्रेरणा स्रोत रहे। इनके साथ मातृतुल्या भाभी श्रीमती ललिता शर्मा, अग्रज राजकुमार शर्मा, चमनलाल शर्मा, धर्मपाल शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी इन्दु शर्मा के साथ भाई हरीशकुमार शर्मा एवं सुभाषचन्द्र शर्मा के साथ ही चाचा श्री दीनानाथ शर्मा का भी आभारी हूं जिन्होंने पग-पग पर मेरा मार्ग-दर्शन किया। और सबसे अंत में सहधर्मिणी श्रीमती गीता शर्मा ने जो सहयोग और संबल प्रदान किया उसके लिए आभार अथवा धन्यवाद जैसा शब्द बहुत कम होगा। सारा श्रेय उन्हीं का है।

नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के सहयोग से दुर्लभ पुस्तक 'महात्मा शेखसादी' लगभग सत्तर वर्ष बाद एक बार फिर इस रचनावली के मार्फत पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है। मैं नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं। उन समस्त संस्थानों, पुस्तकालयों, विभागों, संस्थाओं, लेखकों, संपादकों, अधिकारियों और व्यक्तियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने इस रचनावली के आयोजन में सहयोग किया।

अन्त में विद्वान पाठकों से हमारा निवेदन है कि वे इस रचनावली की त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करें ताकि आगामी संस्करणों में उन्हें दूर किया जा सके।

हम आशा करते हैं कि हिन्दी जगत् इस बहु-प्रतीक्षित रचनावली का हार्दिक स्वागत करेगा।

अरुण कुमार
(प्रबंध निदेशक)



अंतिम बीमारी

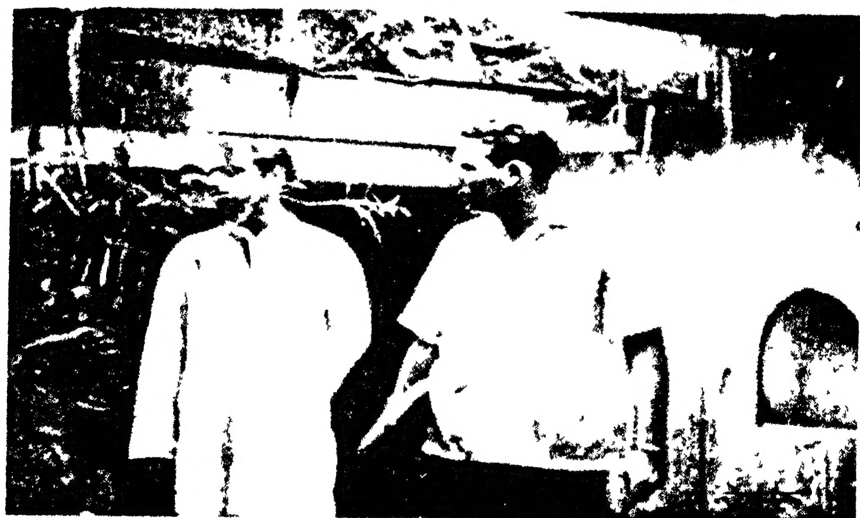
'बड़े शौक से सुन रहा था जमाना
तुम्हीं सो गए दास्तां कहते कहते।



गोरखपुर मे प्रेमचद का निवास स्थान जहा उन्होने अनेक
साहित्यिक कृतियो का सृजन किया।



अतिम यात्रा



लमही की कोठरी जिसमे जन्म हुआ,
हिन्दी कवि त्रिलोचन और चेक विद्वान् स्मेकल खडे हैं।



गोदान

रचनाकाल : 1932 – 1936

प्रकाशनकाल : 10 जून, 1936

गो-दान

लेखक

प्रेमचन्द

सरस्वती-प्रेस,
बनारस।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
बम्बई।

(प्रथम संस्करण का मुख पृष्ठ)

एक

होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी देकर अपनी स्त्री धनिया से कहा—गोबर को ऊख गोड़ने भेज देना । मैं न जाने कब लौटूं। जरा मेरी लाठी दे दे।

धनिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे। उपले पाथकर आई थी। बोली—अरे, कुछ रस-पानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है?

होरी ने अपने झुर्रियों से भरे हुए माथे को सिकोड़कर कहा—तुझे रस-पानी की पड़ी है, मुझे यह चिंता है कि अबेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी। असनान-पूजा करने लगेंगे, तो घंटों बैठे बीत जायगा।

'इसी से तो कहती हूं, कुछ जलपान कर लो और आज न जाओगे तो कौन हरज होगा! अभी तो परसों गए थे।'

'तू जो बात नहीं समझती, उसमें टांग क्यों अड़ाती है भाई ! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख। यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है, नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गए। गांव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई। जब दूसरे के पांवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पांवों को सहलाने में ही कुसल है।'

धनिया इतनी व्यवहार-कुशल न थी। उसका विचार था कि हमने ज़मींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएं। यद्यपि अपने विवाहित जीवन के इन बीस बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर-ब्योंत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दांत से पकड़ो, मगर लगान का बेबाक होना मुश्किल है। फिर भी वह हार न मानती थी, और इस विषय पर स्त्री-पुरुष में आए दिन संग्राम छिड़ा रहता था। उसकी छः संतानों में अब केवल तीन जिंदा हैं, एक लड़का गोबर कोई सोलह साल का, और दो लड़कियां सोना और रूपा, बारह और आठ साल की। तीन लड़के बचपन ही में मर गए। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवा-दारू होती तो वे बच जाते, पर वह एक धेले की दवा भी न मंगवा सकी थी। उसकी ही उम्र अभी क्या थी। छत्तीसवां ही साल तो था; पर सारे बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई थीं। सारी देह ढल गई थी, वह सुंदर गेहुआं रंग संवला गया था, और आंखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिंता ही के कारण तो। कभी तो जीवन का सुख न मिला। इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्मसम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था। जिस गृहस्थी में पेट की रोटियां भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों? इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था, और दो-चार घुड़कियां खा लेने पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।

उसने परास्त होकर होरी की लाठी, मिरजई, जूते, पगड़ी और तमाखू का बटुआ लाकर सामने पटक दिए।

होरी ने उसकी ओर आंखें तरेरकर कहा—क्या ससुराल जाना है, जो पांचों पोसाक लाई है? ससुराल में भी तो कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी है, जिसे जाकर दिखाऊं।

होरी के गहरे सांवले, पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक पड़ी। धनिया ने लजाते हुए कहा—ऐसे ही बड़े सजीले जवान हो कि साली-सलहजें तुम्हें देखकर रीझ जायंगी।

होरी ने फटी हुई मिरजई को बड़ी सावधानी से तह करके खाट पर रखते हुए कहा—तो क्या तू समझती है, मैं बूढ़ा हो गया? अभी तो चालीस भी नहीं हुए । मर्द साठे पर पाठे होते हैं।

'जाकर सोसे में मुंह देखो। तुम-जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-घी अंजन लगाने तक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे। तुम्हारी दसा देख-देखकर तो मैं और भी सूखी जाती हूं कि भगवान् यह बुढ़ापा कैसे कटेगा? किसके द्वार पर भीख मांगेंगे?'

होरी की वह क्षणिक मृदुता यथार्थ की इस आंच में झुलस गई। लकड़ी संभालता हुआ बोला—साठे तक पहुंचने की नौबत न आने पाएगी धनिया । इसके पहले ही चल देंगे।

धनिया ने तिरस्कार किया—अच्छा रहने दो, मत असुभ मुंह से निकालो। तुमसे कोई अच्छी बात भी कहे, तो लगते हो कोसने।

होरी कंधे पर लाठी रखकर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाए हुए हृदय में आतंकमय कंपन-सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के संपूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभय-दान दे रही थी। उसके अंत:करण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकलकर होरी को अपने अंदर छिपाए लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी, मानो झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा। बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना-शक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दु:ख होता है, वह क्या दो आंखों वाले आदमी को हो सकता है?

होरी कदम बढ़ाए चला जाता था। पगडंडी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देखकर उसने मन में कहा—भगवान् कहीं गौं से बरखा कर दें और डांडी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा। देसी गाएं तो न दूध दें, न उनके बछवे ही किसी काम के हों। बहुत हुआ तो तेली के कोल्हू में चले। नहीं, वह पछाईं गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार-पांच सेर दूध होगा? गोबर दूध के लिए तरस-तरसकर रह जाता है। इस उमिर में न खाया-पिया, तो फिर कब खाएगा? साल-भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक हो जाय। बछवे भी अच्छे बैल निकलेंगे। दो सौ से कम की गोंई न होगी। फिर, गऊ से ही तो द्वार की सोभा है। सबेरे-सबेरे गऊ के दर्सन हो जायं तो क्या कहना । न जाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह सुभ दिन आयगा ।

हर एक गृहस्थ की भांति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक के सूद से चैन

करने या जमीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएं उसके नन्हें- से हृदय में कैसे समातीं।

जेठ का सूर्य आमों के झुरमुट से निकलकर आकाश पर छाई हुई लालिमा को अपने रजत- प्रताप से तेज प्रदान करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था और हवा में गर्मी आने लगी थी। दोनों ओर खेतों में काम करने वाले किसान उसे देखकर राम-राम करते और सम्मान-भाव से चिलम पीने का निमंत्रण देते थे, पर होरी को इतना अवकाश कहां था? उसके अंदर बैठी हुई सम्मान-लालसा ऐसा आदर पाकर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर रही थी। मालिकों से मिलते जुलते रहने ही का तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं, नहीं उसे कौन पूछता? पांच बीघे के किसान की बिसात ही क्या? यह कम आदर नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हल वाले महतो भी उसके सामने सिर झुकाते हैं।

अब वह खेतों के बीच की पगडंडी छोड़कर एक खलेटी में आ गया था, जहां बरसात में पानी भर जाने के कारण तरी रहती थी और जेठ में कुछ हरियाली नजर आती थी। आस-पास के गांवों की गउएं यहां चरने आया करती थीं। उस उमस में भी यहां की हवा में कुछ ताजगी और ठंडक थी। होरी ने दो- तीन सांसें जोर से लीं। उसके जी में आया, कुछ देर यहीं बैठ जाय। दिन -भर तो लू- लपट में मरना है ही। कई किसान इस गड्ढे का पट्टा लिखाने को तैयार थे। अच्छी रकम देते थे पर ईश्वर भला करे रायसाहब का कि उन्होंने साफ कह दिया, यह जमीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गई है और किसी दाम पर भी न उठाई जायगी। कोई स्वार्थी जमींदार होता, तो कहता गाएं जायं भाड़ में, हमें रुपये मिलते हैं, क्यों छोड़ें पर रायसाहब अभी तक पुरनी मर्यादा निभाते आते हैं। जो मालिक प्रजा को न पाले, वह भी कोई आदमी है?

सहसा उसने देखा, भोला अपनी गाएं लिए इसी तरफ चला आ रहा है। भोला इसी गांव से मिले हुए पुरवे का ग्वाला था और दूध-मक्खन का व्यवसाय करता था। अच्छा दाम मिल जाने पर कभी-कभी किसानों के हाथ गाएं बेच भी देता था। होरी का मन उन गायों को देखकर ललचा गया। अगर भोला वह आगे वाली गाय उसे दे तो क्या कहना! रुपये आगे-पीछे देता रहेगा। वह जानता था, घर में रुपये नहीं हैं। अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका, बिसेसर साह का देना भी बाकी है, जिस पर आने रुपये का सूद चढ़ रहा है, लेकिन दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निर्लज्जता जो तकाजे, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती, उसने उसे प्रोत्साहित किया। बरसों से जो साध मन को आंदोलित कर रही थी, उसने उसे विचलित कर दिया। भोला के समीप जाकर बोला–राम-राम भोला भाई, कहो क्या रंग-ढंग हैं? सुना अबकी मेले से नई गाएं लाए हो?

भोला ने रुखाई से जवाब दिया। होरी के मन की बात उसने ताड़ ली थी–हां, दो बछिएं और दो गाएं लाया। पहलेवाली गाएं सब सूख गई थी। बंधी पर दूध न पहुंचे तो गुजर कैसे हो?

होरी ने आगे वाली गाय के पुट्ठे पर हाथ रखकर कहा- दुधार तो मालूम होती है। कितने में ली?

भोला ने शान जमाई–अब की बाजार तेज रहा महतो, इसके अस्सी रुपये देने पड़े। आंखें निकल गईं। तीस- तीस रुपये तो दोनों कलोरों के दिए। तिस पर गाहक रुपये का आठ सेर दूध मांगता है।

'बड़ा भारी कलेजा है तुम लोगों का भाई, लेकिन फिर लाए भी तो वह माल कि यहां दस-पांच गांवों में तो किसी के पास निकलेगी नहीं।'

भोला पर नशा चढ़ने लगा। बोला—रायसाहब इसके सौ रुपये देते थे। दोनों कलोरों के पचास-पचास रुपये, लेकिन हमने न दिए। भगवान् ने चाहा तो सौ रुपये इसी ब्यान में पीट लूंगा।

'इसमें क्या संदेह है भाई। मालिक क्या खा के लेंगे? नजराने में मिल जाय, तो भले ले लें। यह तुम्हीं लोगों का गुर्दा है कि अंजुली-भर रुपये तकदीर के भरोसे गिन देते हो। यही जी चाहता है कि इसके दरसन करता रहूं। धन्य है तुम्हारा जीवन कि गऊओं की इतनी सेवा करते हो। हमें तो गाय का गोबर भी मयस्सर नहीं। गिरस्त के घर में एक गाय भी न हो, तो कितनी लज्जा की बात है। साल-के-साल बीत जाते हैं, गोरस के दरसन नहीं होते। घरवाली बार-बार कहती है, भोला भैया से क्यों नहीं कहते? मैं कह देता हूं, कभी मिलेंगे तो कहूंगा। तुम्हारे सुभाव से बड़ी परसन रहती है। कहती है, ऐसा मर्द ही नहीं देखा कि जब बातें करेंगे, नीची आंखें करके, कभी सिर नहीं उठाते।'

भोला पर जो नशा चढ़ रहा था, उसे इस भरपूर प्याले ने और गहरा कर दिया। बोला—आदमी वही है, जो दूसरों की बहू-बेटी को अपनी बहू-बेटी समझे। जो दुष्ट किसी मेहरिया की ओर ताके, उसे गोली मार देना चाहिए।

'यह तुमने लाख रुपये की बात कह दी भाई। बस सज्जन वही, जो दूसरों की आबरू समझे।'

'जिस तरह मर्द के मर जाने से औरत अनाथ हो जाती है, उसी तरह औरत के मर जाने से मर्द के हाथ-पांव टूट जाते हैं। मेरा तो घर उजड़ गया महतो, कोई एक लोटा पानी देने वाला भी नहीं।'

गत वर्ष भोला की स्त्री लू लग जाने से मर गई थी। यह होरी जानता था, लेकिन पचास बरस का खंखड़ भोला भीतर से इतना स्निग्ध है, वह न जानता था। स्त्री की लालसा उसकी आंखों में सजल हो गई थी। होरी को आसन मिल गया। उसकी व्यावहारिक कृषक-बुद्धि सजग हो गई।

'पुरानी मसल झूठी थोड़े है—बिन घरनी घर भूत का डेरा। कहीं सगाई क्यों नहीं ठीक कर लेते?'

'ताक में हूं महतो, पर कोई जल्दी फंसता नहीं। सौ-पचास खरच करने को भी तैयार हूं। जैसी भगवान् की इच्छा।'

'अब मैं भी फिराक में रहूंगा। भगवान् चाहेंगे, तो जल्दी घर बस जायगा।'

'बस, यही समझ लो कि उबर जाऊंगा भैया। घर में खाने को भगवान् का दिया बहुत है। चार पसेरी रोज दूध हो जाता है, लेकिन किस काम का?'

'मेरे ससुराल में एक मेहरिया है। तीन-चार साल हुए, उसका आदमी उसे छोड़कर कलकत्ते चला गया। बेचारी पिसाई करके गुजारा कर रही है। बाल-बच्चा भी कोई नहीं। देखने-सुनने में अच्छी है। बस, लच्छमी समझ लो।'

भोला का सिकुड़ा हुआ चेहरा जैसे चिकना गया। आशा में कितनी सुधा है। बोला—अब तो तुम्हारा ही आसरा है महतो। छुट्टी हो, तो चलो एक दिन देख आएं।

'मैं ठीक-ठाक करके तब तुमसे कहूंगा। बहुत उतावली करने से भी काम बिगड़ जाता है।'

'जब तुम्हारी इच्छा हो तब चलो। उतावली काहे की? इस कबरी पर मन ललचाया हो, तो ले लो।'

'यह गाय मेरे मान की नहीं है दादा। मैं तुम्हें नुकसान नहीं पहुंचाना चाहता। अपना धरम यह नहीं है कि मित्रों का गला दबाएं। जैसे इतने दिन बीते हैं, वैसे और भी बीत जायंगे।'

'तुम तो ऐसी बातें करते हो होरी, जैसे हम-तुम दो हैं। तुम गाय ले जाओ, दाम जो चाहे देना। जैसे मेरे घर रही, वैसे तुम्हारे घर रही। अस्सी रुपये में ली थी, तुम अस्सी रुपये ही देना देना। जाओ।'

'लेकिन मेरे पास नगद नहीं है दादा, समझ लो।'

'तो तुमसे नगद मांगता कौन है भाई?'

होरी की छाती गज-भर की हो गई। अस्सी रुपये में गाय महंगी न थी। ऐसा अच्छा डील-डौल, दोनों जून में छः-सात सेर दूध, सीधी ऐसी कि बच्चा भी दुह ले। इसका तो एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा। द्वार पर बंधेगी तो द्वार की सोभा बढ़ जायगी। उसे अभी कोई चार सौ रुपये देने थे, लेकिन उधार को वह एक तरह से मुफ्त समझता था। कहीं भोला की सगाई ठीक हो गई, तो साल-दो साल तो वह बोलेगा भी नहीं। सगाई न भी हुई, तो होरी का क्या बिगड़ता है। यही तो होगा, भोला बार-बार तगादा करने आएगा, बिगड़ेगा, गालियां देगा, लेकिन होरी को इसकी ज्यादा शर्म न थी। इस व्यवहार का वह आदी था। कृषक के जीवन का तो यह प्रसाद है। भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यापार उसकी मर्यादा के अनुकूल न था। अब भी लेन-देन में उसके लिए लिखा-पढ़ी होने और न होने में कोई अंतर न था। सूखे-बूड़े की विपदाएं उसके मन को भीरु बनाए रहती थीं। ईश्वर का रूद्र रूप सदैव उसके सामने रहता था, पर यह छल उसकी नीति में छल न था। यह केवल स्वार्थ-सिद्धि थी और यह कोई बुरी बात न थी। इस तरह का छल तो वह दिन रात करता रहता था। घर में दो-चार रुपये पड़े रहने पर भी महाजन के सामने कसमें खा जाता था कि एक पाई भी नहीं है। सन को कुछ गीला कर देना और रुई में कुछ बिनौले भर देना उसकी नीति में जायज था और यहां तो केवल स्वार्थ न था, थोड़ा-सा मनोरंजन भी था। बुड्ढों का बुढ़भस हास्यास्पद वस्तु है और ऐसे बुड्ढों से अगर कुछ ऐंठ भी लिया जाय, तो कोई दोष-पाप नहीं।

भोला ने गाय की पगहिया होरी के हाथ में देते हुए कहा—ले जाओ महतो, तुम भी क्या याद करोगे। ब्याते ही छः सेर दूध लेना। चलो, मैं तुम्हारे घर तक पहुंचा दूं। साइत तुम्हें अनजान समझकर रास्ते में कुछ दिक करे। अब तुमसे सच कहता हूं, मालिक नब्बे रुपये देते थे, पर उनके यहां गऊओं की क्या कदर। मुझसे लेकर किसी हाकिम-हुक्काम को दे देते। हाकिमों को गऊ की सेवा से मतलब? वह तो खून चूसना-भर जानते हैं। जब तक दूध देती, रखते, फिर किसी के हाथ बेच देते। किसके पल्ले पड़ती, कौन जाने। रुपया ही सब कुछ नहीं है भैया, कुछ अपना धरम भी तो है। तुम्हारे घर आराम से रहेगी तो। यह न होगा कि तुम आप खाकर सो रहो और गऊ भूखी खड़ी रहे। उसकी सेवा करोगे, प्यार करोगे, चुमकारोगे। गऊ हमें आसिरवाद देगी। तुमसे क्या कहूं भैया, घर में चंगुल-भर भी भूसा नहीं रहा। रुपये सब बाजार में निकल

गए। सोचा था, महाजन से कुछ लेकर भूसा ले लेंगे, लेकिन महाजन का पहला ही नहीं चुका। उसने इनकार कर दिया। इतने जानवरों को क्या खिलाएं, यही चिंता मारे डालती है। चुटकी-चुटकी भर खिलाऊं, तो मन-भर रोज का खरच है। भगवान् ही पार लगाएं तो लगे।

होरी ने सहानुभूति के स्वर में कहा- तुमने हमसे पहले क्यों नहीं कहा? हमने एक गाड़ी भूसा बेच दिया।

भोला ने माथा ठोककर कहा--इसीलिए नहीं कहा भैया कि सबसे अपना दु:ख क्यों रोऊं। बांटता कोई नहीं, हंसते सब हैं। जो गाएं सूख गई हैं, उनका गम नहीं, पत्ती--सत्ती खिलाकर जिला लूंगा, लेकिन अब यह तो रातिब बिना नहीं रह सकती। हो सके, तो दस--बीस रुपये भूसे के लिए दे दो।

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक--एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घंटों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाय, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका संपूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहां स्थान? होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

भोला की संकट-कथा सुनते ही उसकी मनोवृत्ति बदल गई। पगहिया को भोला के हाथ में लौटाता हुआ बोला–रुपये तो दादा मेरे पास नहीं हैं। हां, थोड़ा-सा भूसा बचा है, वह तुम्हें दूगा। चलकर उठवा लो। भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे, और मैं लूंगा ! मेरे हाथ न कट जायंगे?

भोला ने आर्द्र कंठ से कहा–तुम्हारे बैल भूखों न मरेंगे। तुम्हारे पास भी ऐसा कौन सा बहुत-सा भूसा रखा है।

'नहीं दादा, अबकी भूसा अच्छा हो गया था।'

'मैंने तुमसे नाहक भूसे की चर्चा की।'

'तुम न कहते और पीछे से मुझे मालूम होता, तो मुझे बड़ा रंज होता कि तुमने मुझे इतना गैर समझ लिया। अवसर पड़ने पर भाई की मदद भाई न करे, तो काम कैसे चले।'

'मुदा यह गाय तो लेते जाओ।'

'अभी नहीं दादा, फिर ले लूंगा।'

'तो भूसे के दाम दूध में कटवा लेना।'

होरी ने दु:खित स्वर में कहा–दाम-कौड़ी की इसमें कौन बात है दादा, मैं एक दो जून तुम्हारे घर खा लूं तो तुम मुझसे दाम मांगोगे?

'लेकिन तुम्हारे बैल भूखों मरेंगे कि नहीं?

'भगवान् कोई-न-कोई सबील निकालेंगे ही। आसाढ़ सिर पर है। कड़वी बो लूंगा।'

'मगर यह गाय तुम्हारी हो गई। जिस दिन इच्छा हो, आकर ले जाना।'

'किसी भाई का लिलाम पर चढ़ा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वह इस समय तुम्हारी गाय लेने में है।'

होरी में बाल की खाल निकालने की शक्ति होती, तो वह खुशी से गाय लेकर घर की राह लेता। भोला जब नकद रुपये नहीं मांगता, तो स्पष्ट था कि वह भूसे के लिए गाय नहीं बेच रहा है, बल्कि इसका कुछ और आशय है, लेकिन जैसे पत्तों के खड़कने पर घोड़ा अकारण ही ठिठक जाता है और मारने पर भी आगे कदम नहीं उठाता, वही दशा होरी की थी। संकट की चीज लेना पाप है, यह बात जन्म-जन्मान्तरों से उसकी आत्मा का अंश बन गई थी।

भोला ने गद्‌गद कंठ से कहा - तो किसी को भेज दूं भूसे के लिए?

होरी ने जवाब दिया-- अभी मैं रायसाहब की ड्योढ़ी पर जा रहा हूं। वहां से घड़ी - भर में लौटूंगा, तभी किसी को भेजना।

भोला की आंखों में आंसू भर आए। बोला--तुमने आज मुझे उबार लिया होरी भाई! मुझे अब मालूम हुआ कि मैं संसार में अकेला नहीं हूं। मेरा भी कोई हितू है। एक क्षण के बाद उसने फिर कहा—उस बात को भूल न जाना।

होरी आगे बढ़ा, तो उसका चित्त प्रसन्न था। मन में एक विचित्र स्फूर्ति हो रही थी। क्या हुआ, दस- पांच मन भूसा चला जायगा, बेचारे को संकट में पड़कर अपनी गाय तो न बेचनी पड़ेगी। जब मेरे पास चारा हो जायगा, तब गाय खोल लाऊंगा। भगवान् करें, मुझे कोई मेहरिया मिल जाय। फिर तो कोई बात ही नहीं।

उसने पीछे फिरकर देखा। कबरी गाय पूंछ से मक्खियां उड़ाती, सिर हिलाती, मस्तानी, मंद गति से झूमती चली जाती थी, जैसे बांदियों के बीच में कोई रानी हो। कैसा शुभ होगा वह दिन, जब यह कामधेनु उसके द्वार पर बंधेगी।

दो

सेमरी और बेलारी दोनों अवध प्रांत के गांव हैं। जिले का नाम बताने की कोई जरूरत नहीं। होरी बेलारी में रहता है, रायसाहब उमरपालसिंह सेमरी में। दोनों गांवों में केवल पांच मील का अंतर है। पिछले सत्याग्रह-संग्राम में रायसाहब ने बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेंबरी छोड़कर जेल चले गए थे। तब से उनके इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गई थी। यह नहीं कि उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो, या डांड़ और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। रायसाहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। वह बेचारे भी तो उसी व्यवस्था के गुलाम थे। जाब्ते का काम तो जैसे होता चला आया है, वैसा ही होगा। रायसाहब की सज्जनता उस पर कोई असर न डाल सकती थी, इसलिए आमदनी और अधिकार में जौ-भर की भी कमी न होने पर भी उनका यश मानो बढ़ गया था। असामियों से वह हंसकर बोल लेते थे। यही क्या कम है? सिंह का काम तो शिकार करना है, अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता, तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता। शिकार की खोज में जंगल में न भटकना पड़ता।

रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाए रखते थे। उनकी नजरें और डालियां और कर्मचारियों की दस्तूरियां जैसी की तैसी चली आती थीं। साहित्य और संगीत के प्रेमी थे, ड्रामा के शौकीन, अच्छे वक्ता थे, अच्छे लेखक, अच्छे निशानेबाज। उनकी पत्नी को मरे आज दस साल हो चुके थे, मगर दूसरी शादी न की थी। हंस-बोलकर अपने विधुर जीवन को बहलाते रहते थे।

होरी ड्योढ़ी पर पहुंचा तो देखा, जेठ के दशहरे के अवसर पर होने वाले धनुष-यज्ञ की बड़ी जोरों से तैयारियां हो रही हैं—कहीं रंग-मंच बन रहा था, कहीं मंडप, कहीं मेहमानों का आतिथ्य-गृह, कहीं दूकानदारों के लिए दूकानें। धूप तेज हो गई थी, पर रायसाहब खुद काम में लगे हुए थे। अपने पिता से संपत्ति के साथ-साथ उन्होंने राम की भक्ति भी पाई थी और धनुष-यज्ञ को नाटक का रूप देकर उसे शिष्ट मनोरंजन का साधन बना दिया था। इस अवसर पर उनके यार-दोस्त, हाकिम-हुक्काम सभी निमंत्रित होते थे और दो-तीन दिन इलाके में बड़ी चहल-पहल रहती थी। रायसाहब का परिवार बहुत विशाल था। कोई डेढ़ सौ सरदार एक साथ भोजन करते थे। कई चचा थे। दरजनों चचेरे भाई, कई सगे भाई, बीसियों नाते के भाई। एक चचा साहब राधा के अनन्य अपासक थे और बराबर वृन्दावन में रहते थे। भक्ति रस के कितने ही कवित्त रच डाले थे और समय-समय पर उन्हें छपवाकर दोस्तों की भेंट कर देते थे। एक दूसरे चचा थे, जो राम के परम भक्त थे और फारसी-भाषा में रामायण का अनुवाद कर रहे थे। रियासत से सबके वसीके बंधे हुए थे। किसी को कोई काम करने की जरूरत न थी।

होरी मंडप में खड़ा सोच रहा था कि अपने आने की सूचना कैसे दे कि सहसा रायसाहब उधर ही आ निकले और उसे देखते ही बोले—अरे ! तू आ गया होरी, मैं तो तुझे बुलवाने वाला था। देख, अबकी तुझे राजा जनक का माली बनना पड़ेगा। समझ गया न, जिस वक्त श्री जानकीजी मन्दिर में पूजा करने जाती हैं, उसी वक्त तू एक गुलदस्ता लिए खड़ा रहेगा और जानकीजी की भेंट करेगा, गलती न करना और देख, असामियों से ताकीद करके यह कह देना कि सब-के-सब शगुन करने आएं। मेरे साथ कोठी में आ, तुझसे कुछ बातें करनी हैं।

वह आगे-आगे कोठी की ओर चले, होरी पीछे-पीछे चला। वहीं एक घने वृक्ष की छाया में एक कुर्सी पर बैठ गए और होरी को जमीन पर बैठने का इशारा करके बोले—समझ गया, मैंने क्या कहा। कारकुन को तो जो कुछ करना है, वह करेगा ही, लेकिन असामी जितने मन से असामी की बात सुनता है, कारकुन की नहीं सुनता। हमें इन्हीं पांच-सात दिनों में बीस हजार का प्रबंध करना है। कैसे होगा, समझ में नहीं आता। तुम सोचते होगे, मुझ टके के आदमी से मालिक क्यों अपना दुखड़ा ले बैठे। किससे अपने मन की कहूं? न जाने क्यों तुम्हारे ऊपर विश्वास होता है। इतना जानता हूं कि तुम मन में मुझ पर हंसोगे नहीं। और हंसो भी, तो तुम्हारी हंसी मैं बर्दाश्त कर सकूंगा। नहीं सह सकता उनकी हंसी, जो अपने बराबर के हैं, क्योंकि उनकी हंसी में ईर्ष्या, व्यंग और जलन है। और वे क्यों न हंसेंगे? मैं भी तो उनकी दुर्दशा और विपत्ति और पतन पर हंसता हूं, दिल खोलकर, तालियां बजाकर। संपत्ति और सहृदयता में वैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं। लेकिन जानते हो, क्यों? केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, विशुद्ध अहंकार।

हममें से किसी पर डिगरी हो जाय, कुर्की आ जाय, बकाया मालगुजारी की इल्लत में हवालात हो जाय, किसी का जवान बेटा मर जाय, किसी की विधवा बहू निकल जाय, किसी के घर में आग लग जाय, कोई किसी वेश्या के हाथों उल्लू बन जाय, या अपने असामियों के हाथों पिट जाय, तो उसके और सभी भाई उस पर हंसेंगे, बगलें बजायंगे, मानों सारे संसार की संपदा मिल गई है और मिलेंगे तो इतने प्रेम से, जैसे हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार हैं। अरे, और तो और, हमारे चचेरे, फुफेरे, ममेरे, मौसेरे भाई जो इसी रियासत की बदौलत मौज उड़ा रहे हैं, कविता कर रहे हैं, और जुए खेल रहे हैं, शराबें पी रहे हैं और ऐयाशी कर रहे हैं, वह भी मुझसे जलते हैं, आज मर जाऊं तो घी के चिराग जलाएं। मेरे दुःख को दुःख समझने वाला कोई नहीं। उनकी नजरों में मुझे दुःखी होने का कोई अधिकार ही नहीं है। मैं अगर रोता हूं, तो दुःख की हंसी उड़ाता हूं। मैं अगर बीमार होता हूं, तो मुझे सुख होता है। मैं अगर अपना ब्याह करके घर में कलह नहीं बढ़ाता, तो यह मेरी नीच स्वार्थपरता है, अगर ब्याह कर लूं, तो वह विलासांधता होगी। अगर शराब नहीं पीता तो मेरी कंजूसी है। शराब पीने लगूं, तो वह प्रजा का रक्त होगा। अगर ऐयाशी नहीं करता, तो अरसिक हूं, ऐयाशी करने लगूं, तो फिर कहना ही क्या! इन लोगों ने मुझे भोग-विलास में फंसाने के लिए कम चालें नहीं चलीं और अब तक चलते जाते हैं। उनकी यही इच्छा है कि मैं अंधा हो जाऊं और ये लोग मुझे लूट लें, और मेरा धर्म यह है कि सब कुछ देखकर भी कुछ न देखूं। सब कुछ जानकर भी गधा बना रहूं।

रायसाहब ने गाड़ी को आगे बढ़ाने के लिए दो बीड़े पान खाए और होरी के मुंह की ओर ताकने लगे, जैसे उसके मनोभावों को पढ़ना चाहते हों।

होरी ने साहस बटोरकर कहा—हम समझते थे कि ऐसी बातें हमीं लोगों में होती हैं, पर जान पड़ता है, बड़े आदमियों में भी उनकी कमी नहीं है।

रायसाहब ने मुंह पान से भरकर कहा—तुम हमें बड़ा आदमी समझते हो? हमारे नाम बड़े है, पर दर्शन थोड़े। गरीबों में अगर ईर्ष्या या वैर है, तो स्वार्थ के लिए या पेट के लिए। ऐसी ईर्ष्या और वैर को मैं क्षम्य समझता हूं। हमारे मुंह की रोटी कोई छीन ले, तो उसके गले में उंगली डालकर निकालना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हम छोड़ दें, तो देवता हैं। बड़े आदमियों की ईर्ष्या और बैर केवल आनंद के लिए है। हम इतने बड़े आदमी हो गए हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में ही निःस्वार्थ और परम आनंद मिलता है। हम देवतापन के उस दर्जे पर पहुंच गए हैं, जब हमें दूसरों के रोने पर हंसी आती है। इसे तुम छोटी साधना मत समझो। जब इतना बड़ा कुटुंब है, तो कोई-न-कोई तो हमेशा बीमार रहेगा ही। और बड़े आदमियों के रोग भी बड़े होते हैं। वह बड़ा आदमी ही क्या, जिसे कोई छोटा रोग हो। मामूली ज्वर भी आ जाय, तो हमें सरसाम की दवा दी जाती है, मामूली फुंसी भी निकल आए, तो वह जहरबाद बन जाती है। अब छोटे सर्जन और मझोले सर्जन और बड़े सर्जन तार से बुलाए जा रहे हैं, मसीहुलमुल्क को लाने के लिए दिल्ली आदमी भेजा जा रहा है, भिषगाचार्य को लाने के लिए कलकत्ता। उधर देवालय में दुर्गापाठ हो रहा है और ज्योतिषाचार्य-कुंडली का विचार कर रहे हैं और तंत्र के आचार्य अपने अनुष्ठान में लगे हुए हैं। राजा साहब को यमराज के मुंह से निकालने के लिए दौड़ लगी हुई है। वैद्य और डॉक्टर इस ताक में रहते हैं कि कब इनके सिर में दर्द हो और कब उनके घर में सोने की वर्षा हो। और ये रुपये तुमसे और तुम्हारे भाइयों से वसूल किए जाते हैं, भाले की नोंक पर। मुझे तो यही आश्चर्य होता है कि क्यों तुम्हारी आहों का दावानल हमें भस्म नहीं कर डालता,

मगर नहीं आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। भस्म होने में तो बहुत देर नहीं लगती, वेदना भी थोड़ी ही देर की होती है। हम जौ-जौ और अंगुल-अंगुल और पोर-पोर भस्म हो रहे हैं। उस हाहाकार से बचने के लिए हम पुलिस की, हुक्काम की, अदालत की, वकीलों की शरण लेते हैं और रूपवती स्त्री की भांति सभी के हाथों का खिलौना बनते हैं। दुनिया समझती है, हम बड़े सुखी हैं। हमारे पास इलाके, महल, सवारियां, नौकर-चाकर, कर्ज, वेश्याएं, क्या नहीं हैं, लेकिन जिसकी आत्मा में बल नहीं, अभिमान नहीं, वह और चाहे कुछ हो, आदमी नहीं है। जिसे दुश्मन के भय के मारे रात को नींद न आती हो, जिसके दुःख पर सब हंसें और रोने वाला कोई न हो, जिसकी चोटी दूसरों के पैरों के नीचे दबी हो, जो भोग-विलास के नशे में अपने को बिल्कुल भूल गया हो, जो हुक्काम के तलवे चाटता हो और अपने अधीनों का खून चूसता हो, मैं उसे सुखी नहीं कहता। वह तो संसार का सबसे अभागा प्राणी है। साहब शिकार खेलने आएं या दौरे पर, मेरा कर्त्तव्य है कि उनकी दुम के पीछे लगा रहूं। उनकी भौंहों पर शिकन पड़ी और हमारे प्राण सूखे। उन्हें प्रसन्न करने के लिए हम क्या नहीं करते, मगर वह पचड़ा सुनाने लगूं तो शायद तुम्हें विश्वास न आए। डालियों और रिश्वतों तक तो खैर गनीमत है, हम सिजदे करने को भी तैयार रहते हैं। मुफ्तखोरी ने हमें अपंग बना दिया है, हमें अपने पुरुषार्थ पर लेश मात्र भी विश्वास नहीं, केवल अफसरों के सामने दुम हिला-हिलाकर किसी तरह उनके कृपापात्र बने रहना और उनकी सहायता से अपनी प्रजा पर आतंक जमाना ही हमारा उद्यम है। पिछलगुओं की खुशामदों ने हमें इतना अभिमानी और तुनकमिजाज बना दिया है कि हममें शील, विनय और सेवा का लोप हो गया है। मैं तो कभी-कभी सोचता हूं कि अगर सरकार हमारे इलाके छीनकर हमें अपनी रोजी के लिए मेहनत करना सिखा दे, तो हमारे साथ महान् उपकार करे, और यह तो निश्चय है कि अब सरकार भी हमारी रक्षा न करेगी। हमसे अब उसका कोई स्वार्थ नहीं निकलता। लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है। मैं उस दिन का स्वागत करने को तैयार बैठा हूं। ईश्वर वह दिन जल्द लाए। वह हमारे उद्धार का दिन होगा। हम परिस्थितियों के शिकार बने हुए हैं। यह परिस्थिति ही हमारा सर्वनाश कर रही है और जब तक संपत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, जब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मंडराता रहेगा, हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे, जिस पर पहुंचना ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है।

रायसाहब ने फिर गिलौरी-दान निकाला और कई गिलौरियां निकालकर मुंह में भर लीं। कुछ और कहने वाले थे कि एक चपरासी ने आकर कहा सरकार, बेगारों ने काम करने से इंकार कर दिया है। कहते हैं, जब तक हमें खाने को न मिलेगा, हम काम न करेंगे। हमने समझाया, तो सब काम छोड़कर अलग हो गए।

रायसाहब के माथे पर बल पड़ गए। आंखें निकालकर बोले - चलो, मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूं। जब कभी खाने को नहीं दिया, तो आज यह नई बात क्यों? एक आने रोज के हिसाब से मजूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है, और इस मजूरी पर काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े।

फिर होरी की ओर देखकर बोले – तुम अब जाओ होरी, अपनी तैयारी करो। जो बात मैंने कही है, उसका खयाल रखना। तुम्हारे गांव से मुझे कम से-कम पांच सौ की आशा है।

रायसाहब झल्लाते हुए चले गए। होरी ने मन में सोचा, अभी यह कैसी-कैसी नीति और

धरम की बातें कर रहे थे और एकाएक इतने गरम हो गए।

सूर्य सिर पर आ गया था। उसके तेज से अभिभूत होकर वृक्षों ने अपना पसार समेट लिया था। आकाश पर मटियाली गर्द छाई हुई थी और सामने की पृथ्वी कांपती हुई जान पड़ती थी।

होरी ने अपना डंडा उठाया और घर चला। शगुन के रुपये क ं से आएंगे, यही चिन्ता उसके सिर पर सवार थी।

तीन

होरी अपने गांव के समीप पहुंचा, तो देखा, अभी तक गोबर खेत में ऊख गोड़ रहा है और दोनों लड़कियां भी उसके साथ काम कर रही हैं। लू चल रही थी, बगूले उठ रहे थे, भूतल धधक रहा था। जैसे प्रकृति ने वायु में आग घोल दी हो। यह सब अभी तक खेत में क्यों हैं? क्या काम के पीछे सब जान देने पर तुले हुए हैं? वह खेत की ओर चला और दूर ही से चिल्लाकर बोला आता क्यों नहीं गोबर, क्या काम ही करता रहेगा? दोपहर ढल गई, कुछ सूझता है कि नहीं?

उसे देखते ही तीनों ने कुदालें उठा लीं और उसके साथ हो लिए। गोबर सांवला, लंबा, इकहरा युवक था, जिसे इस काम में रुचि न मालूम होती थी। प्रसन्नता की जगह मुख पर असंतोष और विद्रोह था। वह इसलिए काम में लगा हुआ था कि वह दिखाना चाहता था, उसे खाने-पीने की कोई फिक्र नहीं है। बड़ी लड़की सोना लज्जाशील कुमारी थी, सांवली, सुडौल, प्रसन्न और चपल। गाढ़े की लाल साड़ी, जिसे वह घुटनों से मोड़कर कमर में बांधे हुए थी, उसके हल्के शरीर पर कुछ लदी हुई-सी थी, और उसे प्रौढ़ता की गरिमा दे रही थी। छोटी रूपा पांच छः साल की छोकरी थी, मैली, सिर पर बालों का एक घोंसला सा बना हुआ, एक लंगोटी कमर में बांधे, बहुत ही ढीठ और रोनी।

रूपा ने होरी की टांगों में लिपटकर कहा--काका ! देखो मैंने एक ढेला भी नहीं छोड़ा। बहन कहती है, जा पेड़ तले बैठ। ढेले न तोड़े जायगे काका, तो मिट्टी कैसे बराबर होगी?

होरी ने उसे गोद में उठाकर प्यार करते हुए कहा -तूने बहुत अच्छा किया बेटी, चल घर चलें। कुछ देर अपने विद्रोह को दबाए रहने के बाद गोबर बोला–यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियां सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नजर-नजराना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो।

इस समय यही भाव होरी के मन में भी आ रहे थे, लेकिन लड़के के इस विद्रोह-भाव को दबाना जरूरी था। बोला–सलामी करने न जायं, तो रहें कहां? भगवान् ने जब गुलाम बना दिया है, तो अपना क्या बस है? यह इसी सलामी की बरकत है, कि द्वार पर मड़ैया डाल ली और किसी ने कुछ नहीं कहा। घूरे ने द्वार पर खूंटा गाड़ा था, जिस पर कारिंदों ने दो रुपये डांड़ ले लिए थे। तलैया से कितनी मिट्टी हमने खोदी, कारिंदा ने कुछ नहीं कहा। दूसरा खोदे तो नजर

देनी पड़े। अपने मतलब के लिए सलामी करने जाता हूं, पांव में सनीचर नहीं है और न सलामी करने में कोई बड़ा सुख मिलता है। घंटों खड़े रहो, तब जाके मालिक को खबर होती है। कभी बाहर निकलते हैं, कभी कहला देते हैं कि फुरसत नहीं हैं।

गोबर ने कटाक्ष किया—बड़े आदमियों की हां-में-हां मिलाने में कुछ-न-कुछ आनंद तो मिलता ही है, नहीं लोग मेंबरी के लिए क्यों खड़े हों?

'जब सिर पर पड़ेगी तब मालूम होगा बेटा, अभी जो चाहे कह लो। पहले मैं भी यही सब बातें सोचा करता था, पर अब मालूम हुआ कि हमारी गर्दन दूसरों के पैरों के नीचे दबी हुई है, अकड़कर निबाह नहीं हो सकता।'

पिता पर अपना क्रोध उतारकर गोबर कुछ शांत हो गया और चुपचाप चलने लगा। सोना ने देखा, रूपा बाप की गोद में चढ़ी बैठी है तो ईर्ष्या हुई। उसे डांटकर बोली—अब गोद से उतरकर पांव-पांव क्यों नहीं चलती, क्या पांव टूट गए हैं?

रूपा ने बाप की गर्दन में हाथ डालकर ढिठाई से कहा—न उतरेंगे जाओ। काका, बहन हमको रोज चिढ़ाती है कि तू रूपा है, मैं सोना हूं। मेरा नाम कुछ और रख दो।

होरी ने सोना को बनावटी रोष से देखकर कहा—तू इसे क्यों चिढ़ाती है सोनिया? सोना तो देखने को है। निबाह तो रूपा से होता है। रूपा न हो, तो रुपये कहां से बनें, बता?

सोना ने अपने पक्ष का समर्थन किया—सोना न हो तो मोहर कैसे बने, नथुनिया कहां से आएं, कंठा कैसे बने?

गोबर भी इस विनोदमय विवाद में शरीक हो गया। रूपा से बोला—तू कह दे कि सोना तो सूखी पत्ती की तरह पीला होता है, रूपा तो उजला होता है, जैसे सूरज।

सोना बोली—शादी-ब्याह में पीली साड़ी पहनी जाती है, उजली साड़ी कोई नहीं पहनता।

रूपा इस दलील से परास्त हो गई। गोबर और होरी की कोई दलील इसके सामने न ठहर सकी। उसने क्षुब्ध आंखों से होरी को देखा।

होरी को एक नई युक्ति सूझ गइ। बोला—सोना बड़े आदमियों के लिए है। हम गरीबों के लिए तो रूपा ही है। जैसे जौ को राजा कहते हैं, गेहूं को चमार, इसलिए न कि गहूं बड़े आदमी खाते हैं, जौ हम लोग खाते हैं।

सोना के पास इस सबल युक्ति का कोई जवाब न था। परास्त होकर बोली—तुम सब जने एक ओर हो गए, नहीं रुपिया को रुलाकर छोड़ती।

रूपा ने उंगली मटकारकर कहा—ए राम, सोना चमार—ए राम, सोना चमार।

इस विजय का उसे इतना आनंद हुआ कि बाप की गोद में रह न सकी। जमीन पर कूद पड़ी और उछल-उछलकर यही रट लगाने लगी—रूपा राजा, सोना चमार—रूपा राजा, सोना चमार।

ये लोग घर पहुंचे तो धनिया द्वार पर खड़ी इनकी बाट जोह रही थी। रुष्ट होकर बोली—आज इतनी देर क्यों की गोबर? काम के पीछे कोई परान थोड़े ही दे देता है।

फिर पति से गर्म होकर कहा—तुम भी वहां से कमाई करके लौटे तो खेत में पहुंच गए। खेत कहीं भागा जाता था।

द्वार पर कुआं था। होरी और गोबर ने एक-एक कलसा पानी सिर पर उंड़ेला, रूपा को नहलाया और भोजन करने गए। जौ की रोटियां थीं, पर गेहूं-जैसी सफेद और चिकनी। अरहर

की दाल थी, जिसमें कच्चे आम पड़े हुए थे। रूपा बाप की थाली में खाने बैठी। सोना ने उसे ईर्ष्या-भरी आंखों से देखा, मानो कह रही थी, वाह रे दुलार।

धनिया ने पूछा -मालिक से क्या बातचीत हुई?

होरी ने लोटा-भर पानी चढ़ाते हुए कहा--यही तहसील-वसूल की बात थी और क्या। हम लोग समझते हैं, बड़े आदमी बहुत सुखी होंगे, लेकिन सच पूछो तो वह हमसे भी ज्यादा दु:खी हैं। हमें पेट ही की चिंता है, उन्हें हजारों चिंताएं घेरे रहती हैं।

रायसाहब ने और क्या-क्या कहा था, वह कुछ होरी को याद न था। उस सारे कथन का खुलासा-मात्र उसके स्मरण में चिपका हुआ रह गया था।

गोबर ने व्यंग्य किया-तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते। हम अपने खेत, बैल, हल, कुदाल सब उन्हें देने को तैयार हैं। करेंगे बदला? यह सब धूर्तता है, निरी मोटमरदी। जिसे दु:ख होता है, वह दरजनों मोटरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा-पूरी नहीं खाता और न नाच-रंग में लिप्त रहता है। मजे से राज का सुख भोग रहे हैं, उस पर दु:खी हैं।

होरी ने झुंझलाकर कहा--अब तुमसे बहस कौन करे भाई। जैजात किसी से छोड़ी जाती है कि वही छोड़ देंगे? हमीं को खेती से क्या मिलता है? एक आने नफरी की मजूरी भी तो नहीं पड़ती। जो दस रुपये महीने का भी नौकर है, वह भी हमसे अच्छा खाता-पहनता है, लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता। खेती छोड़ दें, तो और करें क्या? नौकरी कहीं मिलती है? फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है। इसी तरह जमींदारों का हाल भी समझ लो। उनकी जान को भी तो सैकड़ों रोग लगे हुए हैं, हाकिमों को रसद पहुंचाओ, उनकी सलामी करो, अमलों को खुस करो। तारीख पर मालगुजारी न चुका दें, तो हवालात हो जाय, कुड़की आ जाय। हमें तो कोई हवालात नहीं ले जाता। दो-चार गालियां-घुड़कियां ही तो मिलकर रह जाती हैं।

गोबर ने प्रतिवाद किया--यह सब कहने की बातें हैं। हम लोग दाने-दाने को मुहताज हैं, देह पर साबित कपड़े नहीं हैं, चोटी का पसीना एड़ी तक आता है, तब भी गुजर नहीं होता। उन्हें क्या, मजे से गद्दी-मसनद लगाए बैठे हैं, सैकड़ों नौकर-चाकर हैं, हजारों आदमियों पर हुकूमत है। रुपये न जमा होते हों, पर सुख तो सभी तरह का भोगते हैं। धन लेकर आदमी और क्या करता है?

'तुम्हारी समझ में हम और वह बराबर हैं?'

'भगवान् ने तो सबको बराबर ही बनाया है।'

'यह बात नहीं है बेटा, छोटे-बड़े भगवान् के घर से बनकर आते हैं। संपत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्वजन्म में जैसे कर्म किए हैं, उनका आनंद भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा, तो भोगें क्या?'

'यह सब मन को समझाने की बातें हैं। भगवान् सबको बराबर बनाते हैं। यहां जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है।'

'यह तुम्हारा भरम है। मालिक आज भी चार घंटे रोज भगवान् का भजन करते हैं।'

'किसके बल पर यह भजन-भाव और दान-धरम होता है?'

'अपने बल पर।'

'नहीं, किसानों के बल पर और मजदूरों के बल पर। यह पाप का धन पचे कैसे? इसीलिए दान-धरम करना पड़ता है, भगवान् का भजन भी इसीलिए होता है। भूखे-नंगे रहकर भगवान् का भजन करें, तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दे, तो हम आठों पहर भगवान् का जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाय।'

होरी ने हारकर कहा –अब तुम्हारे मुंह कौन लगे भाई, तुम तो भगवान् की लीला में भी टांग अड़ाते हो।

तीसरे पहर गोबर कुदाल लेकर चला, तो होरी ने कहा– जरा ठहर जाओ बेटा, हम भी चलते हैं। तब तक थोड़ा-सा भूसा निकालकर रख दो। मैंने भोला को देने को कहा है। बेचारा आजकल बहुत तंग है।

गोबर ने अवज्ञा-भरी आंखों से देखकर कहा--हमारे पास बेचने को भूसा नहीं है।

'बेचता नहीं हूं भाई, यों ही दे रहा हूं। वह संकट में है, उसकी मदद तो करनी ही पड़ेगी।'

'हमें तो उन्होंने कभी एक गाय नहीं दे दी।'

'दे तो रहा था, पर हमने ली ही नहीं।'

धनिया मटककर बोली- गाय नहीं वह दे रहा था। इन्हें गाय दे देगा! आंख में अंजन लगाने को कभी चिल्लू भर दूध तो भेजा नहीं, गाय दे देगा!

होरी ने कसम खाई– नहीं, जवानी कसम, अपनी पछाईं गाय दे रहे थे। हाथ तंग है, भूसा चारा नहीं रख सके। अब एक गाय बेचकर भूसा लेना चाहते हैं। मैंने सोचा, संकट में पड़े आदमी की गाय क्या लूं। थोड़ा-सा भूसा दिए देता हूं, कुछ रुपये हाथ आ जायंगे तो गाय ले लूंगा। थोड़ा-थोड़ा करके चुका दूंगा। अस्सी रुपये की है, मगर ऐसी कि आदमी देखता रहे।

गोबर ने आड़े हाथों लिया–तुम्हारा यही धरमात्मापन तो तुम्हारी दुरगत कर रहा है। साफ साफ तो बात है। अस्सी रुपये की गाय है, हमसे बीस रुपये का भूसा ले लें और गाय हमें दे दें। साठ रुपये रह जायंगे, वह हम धीरे-धीरे दे देंगे।

होरी रहस्यमय ढंग से मुस्कराया –मैंने ऐसी चाल सोची है कि गाय सेंत मेंत में हाथ आ जाय। कहीं भोला की सगाई ठीक करनी है, बस! दो-चार मन भूसा तो खाली अपना रंग जमाने को देता हूं।

गोबर ने तिरस्कार किया तो तुम अब सबकी सगाई ठीक करते फिरोगे?

धनिया ने तीखी आंखों से देखा - अब यही एक उद्यम तो रह गया है। नहीं देना है हमें भूसा किसी को। यहां भोला- भोली किसी का करज नहीं खाया है।

होरी ने अपनी सफाई दी– अगर मेरे जतन से किसी का घर बस जाय तो इसमें कौन सी बुराई है?

गोबर ने चिलम उठाई और आग लेने चला गया। उसे यह झमेला बिल्कुल नहीं भाता था।

धनिया ने सिर हिलाकर कहा--जो उनका घर बसाएगा, वह अस्सी रुपये की गाय लेकर चुप न होगा। एक थैली गिनवाएगा।

होरी ने पुचारा दिया - यह मैं जानता हूं, लेकिन उनकी भलमनसी को भी तो देखो। मुझसे जब मिलता है, तेरा बखान ही करता है--ऐसी लक्ष्मी है, ऐसी सलीकेदार है।

धनिया के मुख पर स्निग्धता झलक पड़ी। 'मन भाए मुड़िया हिलाए' वाले भाव से बोली—मैं उनके बखान की भूखी नहीं हूं, अपना बखान धरे रहें।

होरी ने स्नेह-भरी मुस्कान के साथ कहा—मैंने तो कह दिया, भैया, वह नाक पर मक्खी भी नहीं बैठने देती, गालियों से बात करती है, लेकिन वह यही कहे जाय कि वह औरत नहीं, लक्ष्मी है। बात यह है कि उसकी घरवाली जबान की बड़ी तेज थी। बेचारा उसके डर के मारे भागा-भागा फिरता था। कहता था, जिस दिन तुम्हारी घरवाली का मुंह सबेरे देख लेता हूं, उस दिन कुछ-न-कुछ जरूर हाथ लगता है। मैंने कहा—तुम्हारे हाथ लगता होगा, यहां तो रोज देखते हैं, कभी पैसे से भेंट नही होती।

'तुम्हारे भाग ही खोटे हैं, तो मैं क्या करूं।'

'लगा अपनी घरवाली की बुराई करने—भिखारी को भीख तक नहीं देती थी, झाड़ू लेकर मारने दौड़ती थी, लालचिन ऐसी थी कि नमक तक दूसरों के घर से मांग लाती थी।'

'मरने पर किसी की क्या बुराई करूं। मुझे देखकर जल उठती थी।'

'भोला बड़ा गमखोर था कि उसके साथ निबाह कर दिया। दूसरा होता तो जहर खाके मर जाता। मुझसे दस साल बडे होंगे भोला, पर राम-राम पहले ही करते हैं।'

'तो क्या कहते थे कि जिस दिन तुम्हारी घरवाली का मुंह देख लेता हूं तो क्या होता है?'

'उस दिन भगवान् कही-न-कहीं से कुछ भेज देते हैं।'

'बहुएं भी तो वैसी ही चटोरिन आई हैं। अबकी सबों ने दो रुपये के खरबूजे उधार खा डाले। उधार मिल जाय, फिर उन्हें चिंता नहीं होती कि देना पड़ेगा या नहीं।'

'अरे भोला रोते काहे को हैं?'

गोबर आकर बोला—भोला दादा आ पहुंचे। मन-दो-मन भूसा है, वह उन्हें दे दो, फिर उनकी सगाई ढूंढ़ने निकलो।

धनिया ने समझाया—आदमी द्वार पर बैठा है, उसके लिए खाट-वाट तो डाल नहीं दी, ऊपर से लगे भुनभुनाने। कुछ तो भलमनसी सीखो। कलसा ले जाओ, पानी भरकर रख दो, हाथ-मुंह धोएं, कुछ रस-पानी पिला दो। मुसीबत में ही आदमी दूसरों के सामने हाथ फैलाता है।

होरी बोला—रस-वस का काम नहीं है, कौन कोई पाहुने हैं।

धनिया बिगड़ी—पाहुने और कैसे होते है। रोज-रोज तो तुम्हारे द्वार पर नही आते है? इतनी दूर से धूप-घाम में आए हैं, प्यास लगी ही होगी। रुपिया, देख डब्बे मे तमाखू है कि नही, गोबर के मारे काहे को बची होगी। दौड़कर एक पैसे की तमाखू सहुआइन की दूकान से ले ले।

भोला की आज जितनी खातिर हुई, और कभी न हुई होगी। गोबर ने खाट डाल दी, सोना रस घोल लाई, रूपा तमाखू भर लाई। धनिया द्वार पर किवाड़ की आड़ में खड़ी अपने कानों से अपना बखान सुनने के लिए अधीर हो रही थी।

भोला ने चिलम हाथ में लेकर कहा—अच्छी घरनी घर में आ जाय, तो समझ लो लक्ष्मी आ गई। वही जानती है, छोटे-बड़े का आदर-सत्कार कैसे करना चाहिए।

धनिया के हृदय में उल्लास का कंपन हो रहा था। चिंता और निराशा और अभाव से आहत आत्मा इन शब्दों में एक कोमल, शीतल स्पर्श का अनुभव कर रही थी।

होरी जब भोला का खांचा उठाकर भूसा लाने अंदर चला, तो धनिया भी पीछे-पीछे चली। होरी ने कहा—जाने कहां से इतना बड़ा खांचा मिल गया। किसी भूड़भूंजे से मांग लिया होगा। मन-भर से कम में न भरेगा। दो खांचे भी दिए, तो दो मन निकल जायंगे।

धनिया फूली हुई थी। मलामत की आंखों से देखती हुई बोली—या तो किसी को नेवता न दो, और दो तो भरपेट खिलाओ। तुम्हारे पास फूल-पत्र लेने थोड़े ही आए हैं कि चंगेरी लेकर चलते। देते ही हो, तो तीन खांचे दे दो। भला आदमी लड़कों को क्यों नहीं लाया? अकेले कहां तक ढोएगा? जान निकल जायगी।

'तीन खांचे तो मेरे दिए न दिए जायंगे।'

'तब क्या एक खांचा देकर टालोगे? गोबर से कह दो, अपना खांचा भरकर उनके साथ चला जाय।'

'गोबर ऊख गोड़ने जा रहा है।'

'एक दिन न गोड़ने से ऊख सूख न जायगी।'

'यह तो उनका काम था कि किसी को अपने साथ ले लेते। भगवान् के दिए दो-दो बेटे हैं।'

'न होंगे घर पर। दूध लेकर बाजार गए होंगे।'

'यह तो अच्छी दिल्लगी है कि अपना माल भी दो और उसे घर तक पहुंचा भी दो। लाद दे, लदा दे, लादने वाला साथ कर दे।'

'अच्छा भाई, कोई मत जाय। मैं पहुंचा दूंगी। बड़ों की सेवा करने में लाज नहीं है।'

'और तीन खांचे उन्हें दे दूं, तो अपने बैल क्या खाएंगे?'

'यह सब तो नेवता देने के पहले ही सोच लेना था। न हो, तुम और गोबर दोनों जने चले जाओ।'

'मुरौवत मुरौवत की तरह की जाती है, अपना घर उठाकर नहीं दे दिया जाता।'

'अभी जमींदार का प्यादा आ जाय, तो अपने सिर पर भूसा लादकर पहुंचाओगे तुम, तुम्हारा लड़का, लड़की सब। और वहां साइत मन-दो-मन लकड़ी भी फाड़नी पड़े।'

'जमींदार की बात और है।'

'हां, वह डंडे के जोर से काम लेता है न।'

'उसके खेत नहीं जोतते?'

'खेत जोतते हैं, तो लगान नहीं देते?'

'अच्छा भाई, जान न खा, हम दोनों चले जायंगे। कहां-से-कहां मैंने इन्हें भूसा देने को कह दिया। या तो चलेगी नहीं, या चलेगी तो दौड़ने लगेगी।'

तीनों खांचे भूसे से भर दिए गए। गोबर कुढ़ रहा था। उसे अपने बाप के व्यवहारों में जरा भी विश्वास न था। वह समझता था, यह जहां जाते हैं, वहीं कुछ-न-कुछ घर से खो आते हैं। धनिया प्रसन्न थी। रहा होरी, वह धर्म और स्वार्थ के बीच में डूब-उतरा रहा था।

होरी और गोबर मिलकर एक खांचा बाहर लाए। भोला ने तुरंत अपने-अंगौछे का बींड़ बनाकर सिर पर रखते हुए कहा—मैं इसे रखकर अभी भागा आता हूं। एक खांचा और लूंगा।

होरी बोला– एक नहीं, अभी दो और भरे धरे हैं। और तुम्हें न आना पड़ेगा। मैं और गोबर एक-एक खांचा लेकर तुम्हारे साथ ही चलते हैं।

भोला स्तंभित हो गया। होरी उसे अपना भाई, बल्कि उससे भी निकट जान पड़ा। उसे अपने भीतर एक ऐसी तृप्ति का अनुभव हुआ, जिसने मानों उसके संपूर्ण जीवन को हरा कर दिया।

तीनों भूसा लेकर चले, तो राह में बातें होने लगीं।

भोला ने पूछा–दसहरा आ रहा है, मालिकों के द्वार पर तो बड़ी धूमधाम होगी?

'हां, तंबू-सामियाना गड़ गया है। अबकी लीला में मैं भी काम करूंगा। रायसाहब ने कहा है, तुम्हें राजा जनक का माली बनना पड़ेगा।'

'मालिक तुमसे बहुत खुश है।'

'उनकी दया है।'

एक क्षण के बाद भोला ने फिर पूछा–सगुन करने के लिए रुपये का कुछ जुगाड़ कर लिया है? माली बन जाने से तो गला न छूटेगा।

होरी ने मुंह का पसीना पोंछकर कहा–उसी की चिंता तो मारे डालती है दादा–अनाज तो सब-का-सब खलिहान में ही तुल गया। जमींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पांच सेर अनाज बच रहा। यह भूसा तो मैंने रातों-रात ढोकर छिपा दिया था, नहीं तिनका भी न बचता। जमींदार तो एक ही है, मगर महाजन तीन-तीन हैं, सहुआइन अलग और मंगरू अलग और दातादीन पंडित अलग। किसी का ब्याज भी पूरा न चुका। जमींदार के भी आधे रुपये बाकी पड़ गए। साहुआइन से फिर रुपये उधार लिए तो काम चला। सब तरह किफायत करके देख लिया भैया, कुछ नहीं होता। हमारा जनम इसीलिए हुआ है कि अपना रक्त बहाएं और बड़ों का घर भरें। मूल का दुगुना सूद भर चुका, पर मूल ज्यों-का-त्यों सिर पर सवार है। लोग कहते हैं, सादी-गमी में, तीरथ-बरत में हाथ बांधकर खरच करो। मुदा रास्ता कोई नहीं दिखाता। रायसाहब ने बेटे के ब्याह मे बीस हजार लुटा दिए। उनसे कोई कुछ नहीं कहता। मंगरू ने अपने बाप के करिया-करम मे पांच हजार लगाए। उनसे कोई कुछ नहीं पूछता। वैसे ही मरजाद तो सबकी है।

भोला ने करुण भाव से कहा–बड़े आदमियों की बराबरी तुम कैसे कर सकते हो भाई?

'आदमी तो हम भी हैं।'

'कौन कहता है कि हम-तुम आदमी हैं। हममें आदमियत है कहीं? आदमी वह है, जिनके पास धन है, अख्तियार है, इलम है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं। उस पर एक दूसरे को देख नहीं सकता। एका का नाम नहीं। एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो कोई जाफा कैसे करे, प्रेम तो संसार से उठ गया।'

बूढ़ों के लिए अतीत के सुखों और वर्तमान के दुःखों और भविष्य के सर्वनाश से ज्यादा मनोरंजक और कोई प्रसग नहीं होता। दोनों मि॰ अपने-अपने दुखड़े रोते रहे। भोला ने अपने बेटों के करतूत सुनाए, होरी ने अपने भाइयों का रोना रोया और तब एक कुएं पर बोझ रखकर पानी पीने के लिए बैठ गए। गोबर ने बनिये से लोटा और गगरा मांगा और पानी खींचने लगा।

भोला ने सहृदयता से पूछा–अलगौझे (बंटवारा) के समय तो तुम्हें बड़ा रंज हुआ होगा।

भाइयों को तो तुमने बेटों की तरह पाला था।

होरी आर्द्र कंठ से बोला—कुछ न पूछो दादा, यही जी चाहता था कि कहीं जाके डूब मरूं। मेरे जीते-जी सब कुछ हो गया। जिनके पीछे अपनी जवानी धूल में मिला दी, वही मेरे मुद्दई हो गए और झगड़े की जड़ क्या थी? यही कि मेरी घरवाली हार में काम करने क्यों नहीं जाती। पूछो, घर देखने वाला भी कोई चाहिए कि नहीं? लेना-देना, धरना-उठाना, संभालना-सहेजना, यह कौन करे? फिर वह घर बैठी तो नहीं रहती थी, झाड़ू-बुहारू, रसोई, चौका-बरतन, लड़कों की देखभाल यह कोई थोड़ा काम है। सोभा की औरत घर संभाल लेती कि हीरा की औरत में यह सलीका था? जब से अलगौझा हुआ है, दोनों घरों में एक जून रोटी पकती है, नहीं सबको दिन में चार बार भूख लगती थी। अब खाएं चार दफे, तो देखूं। इस मालिकपन में गोबर की मां की जो दुरगत हुई है, वह मैं ही जानता हूं। बेचारी अपनी देवरानियों के फटे-पुराने कपड़े पहनकर दिन काटती थी। खुद भूखी सो रही होगी, लेकिन बहुओं के जलपान तक का ध्यान रखती थी। अपनी देह गहने के नाम कच्चा धागा भी न था, देवरानियों के लिए दो-दो चार-चार गहने बनवा दिए। सोने के न सही, चांदी के तो हैं। जलन यही थी कि यह मालिक क्यों है। बहुत अच्छा हुआ कि अलग हो गए। मेरे सिर से बला टली।

भोला ने एक लोटा पानी चढ़ाकर कहा—यही हाल घर-घर है भैया। भाइयों की बात ही क्या, यहां तो लड़कों से भी नहीं पटती और पटती इसलिए नहीं कि मैं किसी की कुचाल देखकर मुंह नहीं बंद कर सकता। तुम जुआ खेलोगे, चरस पीओगे, गांजे के दम लगाओगे, मगर आए किसके घर से? खरच करना चाहते हो तो कमाओ, मगर कमाई तो किसी से न होगी। खरच दिल खोलकर करेंगे। जेठा कामता सौदा लेकर बाजार जायगा, तो आधे पैसे गायब। पूछो तो कोई जवाब नहीं। छोटा जंगी है, वह संगत के पीछे मतवाला रहता है। सांझ हुई और ढोल-मजीरा लेकर बैठ गए। संगत को मैं बुरा नहीं कहता। गाना-बजाना ऐब नहीं, लेकिन यह सब काम फुरसत के हैं। यह नहीं कि घर का तो कोई काम न करो, आठों पहर उसी धुन में पड़े रहो। जाती है मेरे सिर, सानी-पानी मैं करूं, गाय-भैंस मैं दुहूं, दूध लेकर बाजार मैं जाऊं। यह गृहस्थी जी का जंजाल है, सोने की हंसिया, जिसे न उगलते बनता है, न निगलते। लड़की है झुनिया, वह भी नसीब की खोटी। तुम तो उसकी सगाई में आए थे। कितना अच्छा घर-बार था। उसका आदमी बंबई में दूध की दूकान करता था। उन दिनों वहां हिन्दू-मुसलमानों में दंगा हुआ, तो किसी ने उसके पेट में छुरा भोंक दिया। घर ही चौपट हो गया। वहां अब उसका निबाह नहीं, जाकर लिवा लाया कि दूसरी सगाई कर दूंगा, मगर वह राजी ही नहीं होती। और दोनों भावजें हैं कि रात-दिन उसे जलाती रहती हैं। घर में महाभारत मचा रहता है। बिपत की मारी यहां आई, यहां भी चैन नहीं।

इन्हीं दुखड़ों में रास्ता कट गया। भोला का पुरवा था तो छोटा, मगर बहुत गुलजार। अधिकतर अहीर ही बसते थे। और किसानों के देखते इनकी दशा बहुत बुरी न थी। भोला गांव का मुखिया था। द्वार पर बड़ी-सी चरनी थी, जिस पर दस-बारह गायें-भैंसे खड़ी सानी खा रही थीं। ओसारे में एक बड़ा-सा तख्त पड़ा था, जो शायद दस आदमियों से भी न उठता। किसी खूंटी पर ढोलक लटक रही थी, किसी पर मजीरा। एक ताख पर कोई पुस्तक बस्ते में बंधी रखी हुई थी, जो शायद रामायण हो। दोनों बहुएं सामने बैठी गोबर पाथ रही थीं और झुनिया चौखट पर खड़ी थी। उसकी आंखें लाल थीं और नाक के सिरे पर भी सुर्खी थी।

मालूम होता था, अभी रोकर उठी है। उसके मांसल, स्वस्थ, सुगठित अंगों में मानो यौवन लहरें मार रहा था। मुंह बड़ा और गोल था, कपोल फूले हुए, आंखें छोटी और भीतर धंसी हुई, माथा पतला पर वक्ष का उभार और गात का वह गुदगुदापन आंखों को खींचता था। उस पर छपी हुई गुलाबी साड़ी उसे और भी शोभा प्रदान कर रही थी।

भोला को देखते ही उसने लपककर उनके सिर से खांचा उतरवाया। भोला ने गोबर और होरी के खांचे उतरवाए और झुनिया से बोले—पहले एक चिलम भर ला, फिर थोड़ा-सा रस बना ले। पानी न हो तो गगरा ला, मैं खींच दूं। होरी महतो को पहचानती है न?

फिर होरी से बोला—घरनी के बिना घर नहीं रहता भैया। पुरानी कहावत है—नाटन खेती बहुरियन घर। नाटे बैल क्या खेती करेंगे और बहुएं क्या घर संभालेंगी। जब से इनकी मां मरी है, जैसे घर की बरक्कत ही उठ गई। बहुए आटा पाथ लेती हैं, पर गृहस्थी चलाना क्या जानें। हां, मुह चलाना खूब जानती हैं। लौंडे कहीं फड़ पर जमे होंगे। सब-के-सब आलसी हैं, कामचोर। जब तक जीता हूं, इनके पीछे मरता हूं। मर जाऊंगा, तो आप सिर पर हाथ धरकर रोएगे। लड़की भी वैसी ही। छोटा-सा अढ़ौना भी करेगी, तो भुन-भुनाकर। मैं तो सह लेता हूं, खसम थोड़े ही सहेगा।

झुनिया एक हाथ में भरी हुई चिलम, दूसरे में रस का लोटा लिए बड़ी फुर्ती से आ पहुंची। फिर रस्सी और कलसा लेकर पानी भरने चली। गोबर ने उसके हाथ से कलसा लेने के लिए हाथ बढ़ाकर झेंपते हुए कहा—तुम रहने दो, मैं भरे लाता हूं।

झुनिया ने कलसा न दिया। कुएं के जगत पर जाकर मुस्कराती हुई बोली—तुम हमारे मेहमान हो। कहोगे, एक लोटा पानी भी किसी ने न दिया।

'मेहमान काहे से हो गया। तुम्हारा पड़ौसी ही तो हूं।'

'पड़ौसी साल-भर में एक बार भी सूरत न दिखाए, तो मेहमान ही है।'

'रोज-रोज आने से मरजाद भी तो नहीं रहती।'

झुनिया हंसकर तिरछी नजरों से देखती हुई बोली—वही मरजाद तो दे रही हूं। महीने में एक बेर आओगे, ठंडा पानी दूंगी। पंद्रहवें दिन आओगे, चिलम पाओगे। सातवें दिन आओगे, खाली बैठने को माची दूंगी। रोज-रोज आओगे, कुछ न पाओगे।

'दरसन तो दोगी?'

'दरसन के लिए पूजा करनी पड़ेगी।'

यह कहते-कहते जैसे उसे कोई भूली हुई बात याद आ गई। उसका मुंह उदास हो गया। वह विधवा है। उसके नारीत्व के द्वार पर पहले उसका पति रक्षक बना बैठा रहता था। वह निश्चिंत थी। अब उस द्वार पर कोई रक्षक न था, इसलिए वह उस द्वार को सदैव बंद रखती है। कभी-कभी घर के सूनेपन से उकताकर वह द्वार खोलती है, पर किसी को आते देखकर भयभीत होकर दोनों पट भेड़ लेती है।

गोबर ने कलसा भरकर निकाला। सबों ने रस पिया और एक चिलम तमाखू और पीकर लौटे। भोला ने कहा—कल तुम आकर गाय ले जाना गोबर, इस बखत तो सानी खा रही है।

गोबर की आंखें उसी गाय पर लगी हुई थीं और मन-ही-मन वह मुग्ध हुआ जाता था। गाय इतनी सुंदर और सुडौल है, इसकी उसने कल्पना भी न की थी।

होरी ने लोभ को रोककर कहा—मंगवा लूंगा, जल्दी क्या है?

'तुम्हें जल्दी न हो, हमें तो जल्दी है। उसे द्वार पर देखकर तुम्हें वह बात याद रहेगी।'

'उसकी मुझे बड़ी फिकर है दादा।'

'तो कल गोबर को भेज देना।'

दोनों ने अपने-अपने खांचे सिर पर रखे और आगे बढ़े। दोनों इतने प्रसन्न थे, मानो ब्याह करके लौटे हों। होरी को तो अपनी चिरसंचित अभिलाषा के पूरे होने का हर्ष था, और बिना पैसे के। गोबर को इससे भी बहुमूल्य वस्तु मिल गई थी। उसके मन में अभिलाषा जाग उठी थी।

अवसर पाकर उसने पीछे की ओर देखा। झुनिया द्वार पर खड़ी थी, मत्त आशा की भांति अधीर, चंचल।

चार

होरी को रात-भर नींद नहीं आई। नीम के पेड़-तले अपनी बांस की खाट पर पड़ा बार-बार तारों की ओर देखता था। गाय के लिए नांद गाड़नी है। बैलों से अलग उसकी नांद रहे तो अच्छा। अभी तो रात को बाहर ही रहेगी, लेकिन चौमासे में उसके लिए कोई दूसरी जगह ठीक करनी होगी। बाहर लोग नजर लगा देते हैं। कभी-कभी तो ऐसा टोना-टोटका कर देते हैं कि गाय का दूध ही सूख जाता है। थन में हाथ ही नहीं लगाने देती? लात मारती है। नही, बाहर बांधना ठीक नहीं। और बाहर नांद भी कौन गाड़ने देगा? कारिंदा साहब नजर के लिए मुंह फैलाएंगे। छोटी-छोटी बात के लिए रायसाहब के पास फरियाद ले जाना भी उचित नहीं। और कारिंदे के सामने मेरी सुनता कौन है? उनसे कुछ कहूं, तो कारिंदा दुसमन हो जाय। जल में रहकर मगर से बैर करना बुड़बकपन है। भीतर ही बांधूगा। आंगन है तो छोटा-सा, लेकिन एक मड़ैया डाल देने से काम चल जायगा। अभी पहला ही ब्यान है। पांच सेर से कम क्या दूध देगी। सेर-भर तो गोबर ही को चाहिए। रुपिया दूध देखकर कैसी ललचाती रहती है। अब पिए जितना चाहे। कभी-कभी दो-चार सेर मालिकों को दे आया करूंगा। कारिंदा साहब की पूजा भी करनी ही होगी। और भोला के रुपये भी दे देना चाहिए। सगाई के ढकोसले में उसे क्यों डालूं। जो आदमी अपने ऊपर इतना विश्वास करे, उससे दगा करना नीचता है। अस्सी रुपये की गाय मेरे विश्वास पर दे दी, नहीं यहां तो कोई एक पैसे को नहीं पतियाता। सन में क्या कुछ न मिलेगा? अगर पच्चीस रुपये भी दे दूं, तो भोला को ढाढ़स हो जाय। धनिया से नाहक बता दिया। चुपके से गाय लाकर बांध देता तो चकरा जाती। लगती पूछने, किसकी गाय है? कहां से लाए हो? खूब दिक करके तब बताता, लेकिन जब पेट में बात पचे भी। कभी दो-चार पैसे ऊपर से आ जाते है, उनको भी तो नहीं छिपा सकता। और यह अच्छा भी है। उसे घर की चिंता रहती है, अगर उसे मालूम हो जाय कि इनके पास भी पैसे रहते हैं, तो फिर नखड़े बघारने लगे। गोबर जरा आलसी है, नहीं मैं गऊ की ऐसी सेवा करता कि जैसी चाहिए। आलसी-वालसी कुछ नहीं है। इस उमिर में कौन आलसी नहीं होता?

मैं भी दादा के सामने मटरगस्ती ही किया करता था। बेचारे पहर रात से कुट्टी काटने लगते। कभी द्वार पर झाड़ू लगाते, कभी खेत में खाद फेंकते। मैं पड़ा सोता रहता। कभी जगा देते, तो मैं बिगड़ जाता और घर छोड़कर भाग जाने की धमकी देता था। लड़के जब अपने मां-बाप के सामने भी जिंदगी का थोड़ा-सा सुख न भोगेंगे, तो फिर जब अपने सिर पड़ गई तो क्या भोगेंगे? दादा के मरते ही क्या मैंने घर नहीं संभाल लिया? सारा गांव यही कहता था कि होरी घर बर्बाद कर देगा, लेकिन सिर पर बोझ पड़ते ही मैंने ऐसा चोला बदला कि लोग देखते रह गए। सोभा और हीरा अलग ही हो गए, नहीं आज इस घर की और ही बात होती। तीन हल एक साथ चलते। अब तीनों अलग-अलग चलते हैं। सब, समय का फेर है। धनिया का क्या दोष था? बेचारी जब से घर में आई, कभी तो आराम से न बैठी। डोली से उतरते ही सारा काम सिर पर उठा लिया। अम्मां को पान की तरह फेरती रहती थी। जिसने घर के पीछे अपने को मिटा दिया, देवरानियों से काम करने को कहती थी, तो क्या बुरा करती थी? आखिर उसे भी तो कुछ आराम मिलना चाहिए। लेकिन भाग्य में आराम लिखा होता तब तो मिलता। तब देवरों के लिए मरती थी, अब अपने बच्चों के लिए मरती है। वह इतनी सीधी, गमखोर, निर्छल न होती, तो आज सोभा और हीरा जो मूंछों पर ताव देते फिरते हैं, कहीं भीख मांगते होते। आदमी कितना स्वार्थी हो जाता है। जिसके लिए मरो, वही जान का दुसमन हो जाता है।

होरी ने फिर पूर्व की ओर देखा। साइत भिनसार हो रहा है। गोबर काहे को जागने लगा। नहीं, कहके तो यही सोया था कि मैं अंधेरे ही चला जाऊंगा। जाकर नांद तो गाड़ दूं, लेकिन नहीं, जब तक गाय द्वार पर न आ जाय, नांद गाड़ना ठीक नहीं। कहीं भोला बदल गए या और किसी कारण से गाय न दी, तो सारा गांव तालियां पीटने लगेगा, चले थे गाय लेने। पट्ठे ने इतनी फुर्ती से नांद गाड़ दी, मानो इसी की कसर थी। भोला है तो अपने घर का मालिक, लेकिन जब लड़के सयाने हो गए, तो बाप की कौन चलती है? कामता और जंगी अकड़ जायं तो क्या भोला अपने मन से गाय मुझे दे देंगे? कभी नहीं।

सहसा गोबर चौंककर उठ बैठा और आंखें मलता हुआ बोला—अरे! यह तो भोर हो गया। तुमने नांद गाड़ दी दादा?

होरी गोबर के सुगठित शरीर और चौड़ी छाती की ओर गर्व से देखकर और मन में यह सोचते हुए कि कहीं इसे गोरस मिलता, तो कैसा पट्ठा हो जाता, बोला—नहीं, अभी नहीं गाड़ी। सोचा, कहीं न मिले, तो नाहक भद्द हो।

गोबर ने त्योरी चढ़ाकर कहा—मिलेगी क्यों नहीं?

'उनके मन में कोई चोर पैठ जाय?'

'चोर पैठे या डाकू, गाय तो उन्हें देनी ही पड़ेगी।'

गोबर ने और कुछ न कहा। लाठी कंधे पर रखी और चल दिया। होरी उसे जाते देखता हुआ अपना कलेजा ठंडा करता रहा। अब लड़के की सगाई में देर न करनी चाहिए। सत्रहवां लग गया, मगर करे कैसे? कहीं पैसे के भी दरसन हों। जब से तीनों भाइयों में अलगौझा हो गया, घर की साख जाती रही। महतो लड़का देखने आते हैं, पर घर की दसा देखकर मुंह फीका करके चले जाते हैं। दो-एक राजी भी हुए, तो रुपये मांगते हैं। दो-तीन सौ लड़की का दाम चुकाए और इतना ही ऊपर से खरच करे, तब जाकर ब्याह हो। कहां से आवें इतने रुपये? रास खलिहान

में तुल जाती है। खाने-भर को भी नहीं बचता। ब्याह कहां से हो? और अब तो सोना ब्याहने योग्य हो गई। लड़के का ब्याह न हुआ न सही। लड़की का ब्याह न हुआ, तो सारी बिरादरी में हंसी होगी। पहले तो उसी की सगाई करनी है, पीछे देखी जायगी ।

एक आदमी ने आकर राम-राम किया और पूछा–तुम्हारी कोठी में कुछ बांस होंगे महतो?

होरी ने देखा, दमड़ी बंसोर सामने खड़ा है, नाटा, काला, खूब मोटा, चौड़ा मुंह, बड़ी-बड़ी मूंछें, लाल आंखें, कमर में बांस काटने की कटार खोंसे हुए। साल में एक-दो बार आकर चिकें, कुर्सियां, मोढे, टोकरियां आदि बनाने के लिए कुछ बांस काट ले जाता था।

होरी प्रसन्न हो गया। मुट्ठी गर्म होने की कुछ आशा बंधी। चौधरी को ले जाकर अपनी तीनों कोठियां दिखाईं, मोल-भाव किया और पच्चीस रुपये सैकड़े में पचास बांसों का बयाना ले लिया। फिर दोनों लौटे। होरी ने उसे चिलम पिलाई, जलपान कराया और तब रहस्यमय भाव से बोला–मेरे बांस कभी तीस रुपये से कम में नहीं जाते, लेकिन तुम घर के आदमी हो, तुमसे क्या मोल-भाव करता। तुम्हारा वह लड़का, जिसकी सगाई हुई थी, अभी परदेस से लौटा कि नहीं?

चौधरी ने चिलम का दम लगाकर खांसते हुए कहा–उस लौंडे के पीछे तो मर मिटा महतो। जवान बहू घर में बैठी थी और वह बिरादरी की एक दूसरी औरत के साथ परदेस में मौज करने चल दिया। बहू भी दूसरे के साथ निकल गई। बड़ी नाकिस जात है महतो, किसी की नहीं होती। कितना समझाया कि तू जो चाहे खा, जो चाहे पहन, मेरी नाक न कटवा, मुदा कौन सुनता है? औरत को भगवान् सब कुछ दे, रूप न दे, नहीं तो वह काबू में नहीं रहती। कोठियां तो बंट गई होंगी?

होरी ने आकाश की ओर देखा और मानो उसकी महानता में उड़ता हुआ बोला–सब कुछ बंट गया चौधरी। जिनको लड़कों की तरह पाला-पोसा, वह अब बराबर के हिस्सेदार हैं, लेकिन भाई का हिस्सा खाने की अपनी नीयत नहीं है। इधर तुमसे रुपये मिलेंगे, उधर दोनों भाइयों को बांट दूंगा। चार दिन की जिंदगी में क्यों किसी से छल-कपट करूं? नहीं कह दूं कि बीस रुपये सैकड़े में बेचे हैं तो उन्हें क्या पता लगेगा। तुम उनसे कहने थोड़े ही जाओगे। तुम्हें तो मैंने बराबर अपना भाई समझा है।

व्यवहार में हम 'भाई' के अर्थ का कितना ही दुरुपयोग करें, लेकिन उसकी भावना में जो पवित्रता है, वह हमारी कालिमा से कभी मलिन नहीं होती।

होरी ने अप्रत्यक्ष रूप से यह प्रस्ताव करके चौधरी के मुंह की ओर देखा कि वह स्वीकार करता है या नहीं। उसके मुख पर कुछ ऐसा मिथ्या विनीत भाव प्रकट हुआ, जो भिक्षा मांगते समय मोटे भिक्षुकों पर आ जाता है।

चौधरी ने होरी का आसन पाकर चाबुक जमाया–हमारा तुम्हारा पुराना भाई-चारा है, महतो, ऐसी बात है भला, लेकिन बात यह है कि ईमान आदमी बेचता है, तो किसी लालच से। बीस रुपये नहीं, मैं पंद्रह रुपये कहूंगा, लेकिन जो बीस रुपये के दाम लो।

होरी ने खिसियाकर कहा–तुम तो चौधरी अंधेर करते हो, बीस रुपये में कहीं ऐसे बांस जाते हैं?

'ऐसे क्या, इससे अच्छे बांस जाते हैं दस रुपये पर, हां, दस कोस और पच्छिम चले जाओ। मोल बांस का नहीं है, सहर के नगीच होने का है। आदमी सोचता है, जितनी देर वहां जाने में

लगेगी, उतनी देर में तो दो-चार रुपये का काम हो जायगा।'

सौदा पट गया। चौधरी ने मिर्जई उतार कर छान पर रख दी और बांस कांटने लगा।

ऊख की सिंचाई हो रही थी। हीरा-बहू कलेवा लेकर कुएं पर जा रही थी। चौधरी को बांस काटते देखकर घूंघट के अंदर से बोली—कौन बांस काटता है? यहां बांस न कटेंगे।

चौधरी ने हाथ रोककर कहा—बांस मोल लिए हैं, पंद्रह रुपये सैकड़े का बयाना हुआ है। सेंत में नहीं काट रहे हैं।

हीरा-बहू अपने घर की मालकिन थी। उसी के विद्रोह से भाइयों में अलगौझा हुआ था। धनिया को परास्त करके शेर हो गई थी। हीरा कभी-कभी उसे पीटता था। अभी हाल में इतना मारा था कि वह कई दिन तक खाट से न उठ सकी, लेकिन अपना पदाधिकार वह किसी तरह न छोड़ती थी। हीरा क्रोध में उसे मारता था, लेकिन चलता था उसी के इशारों पर, उस घोड़े की भांति, जो कभी-कभी स्वामी को लात मारकर भी उसी के आसन के नीचे चलता है।

कलेवे की टोकरी सिर से उतारकर बोली—पंद्रह रुपये में हमारे बांस न जायंगे।

चौधरी औरत जात से इस विषय में बातचीत करना नीति-विरुद्ध समझते थे। बोले—जाकर अपने आदमी को भेज दो। जो कुछ कहना हो, आकर कहें।

हीरा-बहू का नाम था पुन्नी। बच्चे दो ही हुए थे। लेकिन ढल गई थी। बनाव-सिंगार से समय के आघात का शमन करना चाहती थी, लेकिन गृहस्थी में भोजन ही का ठिकाना न था, सिंगार के लिए पैसे कहां से आते? इस अभाव और विवशता ने उसकी प्रकृति का जल सुखाकर कठोर और शुष्क बना दिया था, जिस पर एक बार फावड़ा भी उचट जाता था।

समीप आकर चौधरी का हाथ पकड़ने की चेष्टा करती हुई बोली—आदमी को क्यों भेज दूं? जो कुछ कहना हो, मुझसे कहो न? मैंने कह दिया, मेरे बांस न कटेंगे।

चौधरी हाथ छुड़ाता था और पुन्नी बार-बार पकड़ लेती थी। एक मिनट तक यही हाथा-पाई होती रही। अंत में चौधरी ने उसे जोर से पीछे ढकेल दिया। पुन्नी धक्का खाकर गिर पड़ी, मगर फिर संभली और पांव से तल्ली निकालकर चौधरी के सिर, मुंह, पीठ पर अंधाधुंध जमाने लगी। बंसोर होकर उसे ढकेल दे? उसका यह अपमान! मारती जाती थी और रोती भी जाती थी। चौधरी उसे धक्का देकर—नारी जाति पर बल का प्रयोग करके—गच्चा खा चुका था। खड़े-खड़े मार खाने के सिवा इस संकट से बचने की उसके पास और कोई दवा न थी।

पुन्नी का रोना सुनकर होरी भी दौड़ा हुआ आया। पुन्नी ने उसे देखकर और जोर से चिल्लाना शुरू किया। होरी ने समझा, चौधरी ने पुनिया को मारा है। खून ने जोश मारा और अलगौझे की ऊंची बांध को तोड़ता हुआ, सब कुछ अपने अंदर समेटने के लिए बाहर निकल पड़ा। चौधरी को जोर से एक लात जमाकर बोला—अब अपना भला चाहते हो चौधरी, तो यहां से चले जाओ, नहीं तुम्हारी लहास उठेगी। तुमने अपने को समझा क्या है? तुम्हारी इतनी मजाल कि मेरी बहू पर हाथ उठाओ।

चौधरी कसमें खा-खाकर अपनी सफाई देने लगा। तल्लियों की चोट में उसकी अपराधी आत्मा मौन थी। यह लात उसे निरपराध मिली और उसके फूले हुए गाल आंसुओं से भीग गए।

उसने तो बहू को छुआ भी नहीं। क्या वह इतना गंवार है कि महतो के घर की औरतों पर हाथ उठाएगा?

होरी ने अविश्वास करके कहा—आंखों में धूल मत झोंको चौधरी, तुमने कुछ कहा नहीं, तो बहू झूठ-मूठ रोती है? रुपये की गर्मी है, तो वह निकाल दी जायगी, अलग हैं तो क्या हुआ, है तो एक खून। कोई तिरछी आंख से देखे तो आंख निकाल लें।

पुन्नी चंडी बनी हुई थी। गला फाड़कर बोली—तूने मुझे धक्का देकर गिरा नहीं दिया? खा जा अपने बेटे की कसम।

हीरा को खबर मिली कि चौधरी और पुनिया में लड़ाई हो रही है। चौधरी ने पुनिया को धक्का दिया। पुनिया ने तल्लियों से पीटा। उसने पुर वहीं छोड़ा और औंगी लिए घटनास्थल की ओर चला। गांव में अपने क्रोध के लिए प्रसिद्ध था। छोटा डील, गठा हुआ शरीर, आंखें कौड़ी की तरह निकल आई थीं और गर्दन की नसें तन गई थीं, मगर उसे चौधरी पर क्रोध न था, क्रोध था पुनिया पर। वह क्यों चौधरी से लड़ी? क्यों उसकी इज्जत मिट्टी मे मिला दी। बंसोर से लड़ने-झगड़ने का उसे क्या प्रयोजन था? उसे जाकर हीरा से समाचार कह देना चाहिए था। हीरा जैसा उचित समझता, करता। वह उससे लड़ने क्यों गई? उसका बस होता, तो वह पुनिया को पर्दे में रखता। पुनिया किसी बड़े से मुंह खोलकर बातें करे, यह उसे असह्य था। वह खुद जितना उद्दंड था, पुनिया को उतना ही शांत रखना चाहता था। जब भैया ने पंद्रह रुपये में सौदा कर लिया, तो यह बीच में कूदने वाली कौन।

आते ही उसने पुन्नी का हाथ पकड़ लिया और घसीटता हुआ अलग ले जाकर लगा लातें जमाने—हरामजादी, तू हमारी नाक कटाने पर लगी हुई है। तू छोटे-छोटे आदमियों से लड़ती फिरती है, किसकी पगड़ी नीची होती है बता। (एक लात और जमाकर) हम तो वहां कलेऊ की बाट देख रहे हैं, तू यहां लड़ाई ठाने बैठी है। इतनी बेसर्मी। आंख का पानी ऐसा गिर गया। खोदकर गाड़ दूंगा।

पुन्नी हाय-हाय करती जाती थी और कोसती जाती थी—तेरी मिट्टी उठे, तुझे हैजा हो जाय, तुझे मरी आवें, देवी मैया तुझे लील जायं, तुझे इन्फ्लुएंजा हो जाय। भगवान् करे, तू कोढ़ी हो जाय। हाथ-पांव कट-कट गिरें।

और गालिया तो हीरा खड़ा-खड़ा सुनता रहा, लेकिन यह पिछली गाली उसे लग गई। हैजा, मरी आदि में कोई विशेष कष्ट न था। इधर बीमार पड़े, उधर विदा हो गए, लेकिन कोढ़! यह घिनौनी मौत, और उससे भी घिनौना जीवन। वह तिलमिला उठा, दांत पीसता हुआ पुनिया पर झपटा और झोंटे पकड़कर फिर उसका सिर जमीन पर रगड़ता हुआ बोला—हाथ-पांव कटकर गिर जायंगे तो मैं तुझे लेकर चाटूंगा। तू ही मेरे बाल-बच्चों को पालेगी? ऐं। तू ही इतनी बड़ी गिरस्ती चलाएगी? तू तो दूसरा भतार करके किनारे खड़ी हो जायगी।

चौधरी को पुनिया की इस दुर्गति पर दया आ गई। हीरा को उदारतापूर्वक समझाने लगा—हीरा महतो, अब जाने दो, बहुत हुआ। क्या हुआ, बहू ने मुझे मारा। मैं तो छोटा नहीं हो गया। धन्य भाग कि भगवान् ने यह दिन तो दिखाया।

हीरा ने चौधरी को डांटा—तुम चुप रहो चौधरी, नहीं मेरे क्रोध में पड़ जाओगे तो बुरा होगा। औरत जात इसी तरह बहकती है। आज को तुमसे लड़ गई, कल को दूसरों से लड़ जायगी।

तुम भले मानुस हो, हंसकर टाल गए, दूसरा तो बरदास न करेगा। कहीं उसने भी हाथ छोड़ दिया, तो कितनी आबरू रह जायगी, बताओ।

इस खयाल ने उसके क्रोध को फिर भड़काया। लपका था कि होरी ने दौड़कर पकड़ लिया और उसे पीछे हटाते हुए बोला—अरे, हो तो गया। देख तो लिया दुनिया ने कि बड़े बहादुर हो। अब क्या उसे पीसकर पी जाओगे?

हीरा अब भी बड़े भाई का अदब करता था। सीधे-सीधे न लड़ता था। चाहता तो एक झटके में अपना हाथ छुड़ा लेता, लेकिन इतनी बेअदबी न कर सका। चौधरी की ओर देखकर बोला—अब खड़े क्या ताकते हो? जाकर अपने बांस काटो। मैंने सही कर दिया। पंद्रह रुपये सैकड़े में तय है।

कहां तो पुन्नी रो रही थी। कहां झमककर उठी और अपना सिर पीटकर बोली—लगा दे घर में आग, मुझे क्या करना है। भाग फूट गया कि तुझ-जैसे कसाई के पाले पड़ी। लगा दे घर में आग।

उसने कलेऊ की टोकरी वहीं छोड़ दी और घर की ओर चली। हीरा गरजा—वहां कहां जाती है, चल कुएं पर, नहीं खून पी जाऊंगा।

पुनिया के पांव रुक गए। इस नाटक का दूसरा अंक न खेलना चाहती थी। चुपके से टोकरी उठाकर ा ती हुई कुएं की ओर चली। हीरा भी पीछे-पीछे चला।

होरी ने कहा—अब फिर मार-धाड़ न करना। इससे औरत बेसरम हो जाती है।

धनिया ने द्वार पर आकर हाक लगाई-तुम वहा खड़े-खड़े क्या तमासा देख रहे हो? कोई तुम्हारी मुनता भी है कि यो ही छिच्छा दे रहे हो। उम दिन इसी बहू ने तुम्हे घूघट की आड में डाढ़ीजार कहा था, भूल गए। बहुरिया होकर पराए मरदो स लड़ेगी, तो डांटी न जायगी।

होरी द्वार पर आकर नटखटपन के साथ बोला- और जो मैं इसी तरह तुझे मारूं?

'क्या कभी मारा नहीं है, जो मारने की साध बनी हुई है।'

'इतनी बेदरदी से मारता, तो तू घर छोड़कर भाग जाती। पुनिया बड़ी गमखोर है।'

'ओहो। ऐसे ही तो बड़े दरदवाले हो। अभी तक मार का दाग बना हुआ है। हीरा मारता है तो दुलारता भी है। तुमने खाली मारना सीखा, दुलार करना सीखा ही नहीं। मैं ही ऐसी हूं कि तुम्हारे साथ निबाह हुआ।

'अच्छा रहने दे, बहुत अपना बखान न कर। तू ही रूठ-रूठकर नैहर भागती थी। जब महीनों खुसामद करता था, तब जाकर आती थी।'

'जब अपनी गरज सताती थी, तब मनाने जाते थे लाला। मेरे दुलार से नहीं जाते थे।'

'इसी से तो मैं सबसे तेरा बखान करता हूं।'

वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है, क्षण-क्षण पर बगूले उठते हैं और पृथ्वी कांपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय संध्या आती है, शीतल और शांत, जब हम थके हुए पथिकों की भांति दिन-भर की यात्रा का वृत्तांत करते और सुनते हैं तटस्थ भाव से, मानो हम किसी

ऊंचे शिखर पर जा बैठे हैं, जहां नीचे का जन-रव हम तक नहीं पहुंचता।

धनिया ने आंखों में रस भरकर कहा—चलो-चलो, बड़े बखान करने वाले! जरा-सा कोई काम बिगड़ जाय, तो गरदन पर सवार हो जाते हो।

होरी ने मीठे उलाहने के साथ कहा—ले, अब यही तेरी बेइंसाफी मुझे अच्छी नहीं लगती धनिया! भोला से पूछ, मैंने उनसे तेरे बारे में क्या कहा था?

धनिया ने बात बदलकर कहा—देखो, गोबर गाय लेकर आता है कि खाली हाथ।

चौधरी ने पसीने में लथपथ आकर कहा—महतो, चलकर बांस गिन लो। कल ठेला लाकर उठा ले जाऊंगा।

होरी ने बांस गिनने की जरूरत न समझी। चौधरी ऐसा आदमी नहीं है। फिर एकाध बांस बेसी काट ही लेगा, तो क्या। रोज ही तो मंगनी बांस कटते रहते हैं। सहालगों में तो मंडप बनाने के लिए लोग दर्जनों बांस काट ले जाते हैं।

चौधरी ने साढ़े सात रुपये निकालकर उसके हाथ में रख दिए। होरी ने गिनकर कहा—और निकालो। हिसाब से ढाई और होते हैं।

चौधरी ने बेमुरौवती से कहा—पंद्रह रुपये में तय हुए हैं कि नहीं?

'पंद्रह रुपये में नहीं, बीस रुपये में।'

'हीरा महतो ने तुम्हारे सामने पंद्रह रुपये कहे थे। कहो तो बुला लाऊं?'

'तय तो बीस रुपये में ही हुए थे चौधरी! अब तुम्हारी जीत है, जो चाहो कहो। ढाई रुपये निकलते हैं, तुम दो ही दे दो।'

मगर चौधरी कच्ची गोलियां न खेला था। अब उसे किसका डर? होरी के मुंह में तो ताला पड़ा हुआ था। क्या कहे, माथा ठोंककर रह गया। बस इतना बोला—यह अच्छी बात नहीं है, चौधरी, दो रुपये दबाकर राजा न हो जाओगे।

चौधरी तीक्ष्ण स्वर में बोला—और तुम क्या भाइयों के थोड़े-से पैसे दबाकर राजा हो जाओगे? ढाई रुपये पर अपना ईमान बिगाड़ रहे थे, उस पर मुझे उपदेस देते हो। अभी परदा खोल दूं, तो सिर नीचा हो जाय।

होरी पर जैसे सैकड़ों जूते पड़ गए। चौधरी तो रुपये सामने जमीन पर रखकर चला गया, पर वह नीम के नीचे बैठा बड़ी देर तक पछताता रहा। वह कितना लोभी और स्वार्थी है, इसका उसे आज पता चला। चौधरी ने ढाई रुपये दे दिए होते, तो वह खुशी से कितना फूल उठता। अपनी चालाकी को सराहता कि बैठे-बैठाए ढाई रुपये मिल गए। ठोकर खाकर ही तो हम सावधानी के साथ पग उठाते हैं।

धनिया अंदर चली गई थी। बाहर आई तो रुपये जमीन पर पड़े देखे, गिनकर बोली—और रुपये क्या हुए, दस न चाहिए?

होरी ने लंबा मुंह बनाकर कहा—हीरा ने पंद्रह रुपये में दे दिए, तो मैं क्या करता।

'हीरा पांच रुपये में दे दे। हम नहीं देते इन दामों।'

'वहां मार-पीट हो रही थी। मैं बीच में क्या बोलता?'

होरी ने अपनी पराजय अपने मन में ही डाल ली, जैसे कोई चोरी से आम तोड़ने के लिए पेड़ पर चढ़े और गिर पड़ने पर धूल झाड़ता हुआ उठ खड़ा हो कि कोई देख न ले। जीतकर आप अपनी धोखेबाजियों की डींग मार सकते हैं, जीत में सब-कुछ माफ है। हार की लज्जा

तो पी जाने की ही वस्तु है।

धनिया पति को फटकारने लगी। ऐसे अवसर उसे बहुत कम मिलते थे। होरी उससे चतुर था, पर आज बाजी उसके हाथ थी। हाथ मटकाकर बोली–क्यों न हो, भाई ने पंद्रह रुपये कह दिए, तो तुम कैसे टोकते? अरे, राम-राम। लाड़ले भाई का दिल छोटा हो जाता कि नहीं। फिर जब इतना बड़ा अनर्थ हो रहा था कि लाड़ली बहू के गले पर छुरी चल रही थी, तो भला तुम कैसे बोलते। उस बखत कोई तुम्हारा सरबस लूट लेता, तो भी तुम्हें सुध न होती।

होरी चुपचाप सुनता रहा। मिनका तक नहीं। झुंझलाहट हुई, क्रोध आया, खून खौला, आंख जली, दांत पिसे, लेकिन बोला नहीं। चुपके-से कुदाल उठाई और ऊख गोड़ने चला।

धनिया ने कुदाल छीनकर कहा–क्या अभी सबेरा है जो ऊख गोड़ने चले? सूरज देवता माथे पर आ गए। नहाने-धोने जाव। रोटी तैयार है।

होरी ने घुन्नाकर कहा–मुझे भूख नहीं है।

धनिया ने जले पर नोन छिड़का–हां, काहे को भूख लगेगी। भाई ने बड़े-बड़े लड्डू खिला दिए हैं न। भगवान् ऐसे सपूत भाई सबको दें।

होरी बिगडा। और क्रोध अब रस्सियां तुड़ा रहा था–तू आज मार खाने पर लगी हुई है।

धनिया ने नकली विनय का नाटक करके कहा–क्या करूं, तुम दुलार ही इतना करते हो कि मेरा सिर फिर गया है।

'तू घर में रहने देगी कि नहीं?'

'घर तुम्हारा, मालिक तुम, मैं भला कौन होती हूं तुम्हें घर से निकालने वाली?'

होरी आज धनिया से किसी तरह पेश नहीं पा सकता। उसकी अक्ल जैसे कुंद हो गई है। इन व्यंग्य-बाणों के रोकने के लिए उसके पास कोई ढाल नहीं है। धीरे से कुदाल रख दी और गमछा लेकर नहाने चला गया। लौटा कोई आध घंटे में, मगर गोबर अभी तक न आया था। अकेले कैसे भोजन करे। लौंडा वहां जाकर सो रहा। भोला की वह मदमाती छोकरी है न झुनिया। उसके साथ हंसी-दिल्लगी कर रहा होगा। कल भी तो उसके पीछे लगा हुआ था। नहीं गाय दी, तो लौट क्यों नहीं आया। क्या वहां ढई देगा।

धनिया ने कहा–अब खड़े क्या हो? गोबर सांझ को आएगा।

होरी ने और कुछ न कहा। कहीं धनिया फिर न कुछ कह बैठे।

भोजन करके नीम की छांह में लेट रहा।

रूपा रोती हुई आई। नंगे बदन एक लंगोटी लगाए, झबरे बाल इधर-उधर बिखरे हुए। होरी की छाती पर लोट गई। उसकी बड़ी बहिन सोना कहती है–गाय आएगी, तो उसका गोबर मैं पाथूंगी। रूपा यह नहीं बर्दाश्त कर सकती है। सोना ऐसी कहां की बड़ी रानी है कि सारा गोबर आप पाथ डाले। रूपा उससे किस बात में कम है? सोना रोटी पकाती है, तो क्या रूपा बर्तन नहीं मांजती? सोना पानी लाती है, तो क्या रूपा कुएं पर रस्सी नहीं ले जाती? सोना तो कलसा भरकर इठलाती चली आती है। रस्सी समेटकर रूपा ही लाती है। गोबर दोनों साथ पाथती हैं। सोना खेत गोड़ने जाती है, तो क्या रूपा बकरी चराने नहीं जाती? फिर सोना क्यों अकेली गोबर पाथेगी? यह अन्याय रूपा कैसे सहे?

होरी ने उसके भोलेपन पर मुग्ध होकर कहा–नहीं, गाय का गोबर तू पाथना। सोना गाय के पास आय तो भगा देना।

रूपा ने पिता के गले में हाथ डालकर कहा–दूध भी मैं ही दुहूंगी।

'हां-हां, तू न दुहेगी तो और कौन दुहेगा?'

'वह मेरी गाय होगी।'

'हां, सोलहों आने तेरी।'

रूपा प्रसन्न होकर अपनी विजय का शुभ समाचार पराजित सोना को सुनाने चली गई। गाय मेरी होगी, उसका दूध मैं दुहूंगी, उसका गोबर मैं पाथूंगी, तुझे कुछ न मिलेगा।

सोना उम्र से किशोरी, देह के गठन में युवती और बुद्धि से बालिका थी, जैसे उसका यौवन उसे आगे खींचता था, बालपन पीछे। कुछ बातों में इतनी चतुर कि ग्रेजुएट युवतियों को पढ़ाए, कुछ बातों में इतनी अल्हड़ कि शिशुओं से भी पीछे। लंबा, रूखा, किंतु प्रसन्न मुख, ठोड़ी नीचे को खिंची हुई, आंखों में एक प्रकार की तृप्ति, न केशों में तेल, न आंखों में काजल, न देह पर कोई आभूषण, जैसे गृहस्थी के भार ने यौवन को दबा कर बौना कर दिया हो।

सिर को एक झटका देकर बोली–जा, तू गोबर पाथ। जब तू दूध दुहकर रखेगी तो मैं पी जाऊंगी।

'मैं दूध की हांड़ी ताले में बंद करके रखूंगी।'

'मैं ताला तोड़कर दूध निकाल लाऊंगी।'

यह कहती हुई वह बाग की तरफ चल दी। आम गदरा गए थे। हवा के झोंको से एकाध जमीन पर गिर पड़ते थे, लू के मारे चुचके, पीले, लेकिन बाल-वृंद उन्हें टपके समझकर बाग को घेरे रहते थे। रूपा भी बहन के पीछे हो ली। जो काम सोना करे, वह रूपा जरूर करेगी। सोना के विवाह की बातचीत हो रही थी, रूपा के विवाह की काई चर्चा नहीं करता, इसलिए वह स्वयं अपने विवाह के लिए आग्रह करती है। उसका दूल्हा कैसा होगा, क्या-क्या लाएगा, उसे कैसे रखेगा, उसे क्या खिलाएगा, क्या पहनाएगा, इसका वह बड़ा विशद वर्णन करती, जिसे सुनकर कदाचित् कोई बालक उससे विवाह करने पर राजी न होता।

सांझ हो रही थी। होरी ऐसा अलसाया कि ऊख गोड़ने न जा सका। बैलों को नांद में लगाया, मानी-खली दी और एक चिलम भरकर पीने लगा। इस फसल में सब कुछ खलिहान में तौल देने पर भी कोई तीन सौ कर्ज था, जिस पर कोई सौ रुपये सूद के बढ़ते जाते थे। मंगरू साह से आज पांच साल हुए, बैल के लिए साठ रुपये लिए थे, उसमें साठ दे चुका था, पर वह साठ रुपये ज्यों-के-त्यों बने हुए थे। दातादीन पंडित से तीस रुपये लेकर आलू बोए थे। आलू तो चोर खोद ले गए, और उस तीस के इन तीन बरसो में सौ हो गए थे। दुलारी विधवा सहुआइन थी, जो गांव में नोन, तेल, तंबाकू की दूकान रखे हुए थी। बंटवारे के समय उससे चालीस रुपये लेकर भाइयों को देना पड़ा था। उसके भी लगभग सौ रुपये हो गए थे, क्योंकि आने रुपये का ब्याज था। लगान के भी अभी पच्चीस रुपये बाकी पड़े हुए थे और दशहरे के दिन शगुन के रुपयों का भी कोई प्रबंध करना था। बांसों के रुपये बड़े अच्छे समय पर मिल गए। शगुन की समस्या हल हो जायगी, लेकिन कौन जाने। यहां तो एक

धेला भी हाथ में आ जाय, तो गांव में शोर मच जाता है, और लेनदार चारों तरफ से नोचने लगते हैं। ये पांच रुपये तो वह शगुन में देगा, चाहे कुछ हो जाय, मगर अभी जिंदगी के दो बड़े-बड़े काम सिर पर सवार थे। गोबर और सोना का विवाह। बहुत हाथ बांधने पर भी तीन सौ से कम खर्च न होंगे। ये तीन सौ किसके घर से आएंगे? कितना चाहता है कि किसी से एक पैसा कर्ज न ले, जिसका आता हो, उसका पाई-पाई चुका दे, लेकिन हर तरह का कष्ट उठाने पर भी गला नहीं छूटता। इसी तरह सूद बढ़ता जायगा और एक दिन उसका घर-द्वार सब नीलाम हो जायगा, उसके बाल-बच्चे निराश्रय होकर भीख मांगते फिरेंगे। होरी जब काम-धंधे से छुट्टी पाकर चिलम पीने लगता था, तो यह चिंता एक काली दीवार की भांति चारों ओर से घेर लेती थी, जिसमें से निकलने की उसे कोई गली न सूझती थी। अगर संतोष था तो यही कि यह विपत्ति अकेले उसी के सिर न थी। प्राय: सभी किसानों का यही हाल था। अधिकांश की दशा तो इससे भी बदतर थी। सोभा और हीरा को उससे अलग हुए अभी कुल तीन साल हुए थे, मगर दोनों पर चार-चार सौ का बोझ लद गया था। झींगुर दो हल की खेती करता है। उस पर एक हजार से कुछ बेसी ही देना है। जियावन महतो के घर, भिखारी भीख भी नहीं पाता, लेकिन करजे का कोई ठिकाना नहीं। यहां कौन बचा है?

सहसा सोना और रूपा दोनों दौड़ी हुई आईं और एक साथ बोलीं—भैया गाय ला रहे हैं। आगे-आगे गाय, पीछे-पीछे भैया हैं।

रूपा ने पहले गोबर को आते देखा था। यह खबर सुनाने की सुर्खरूई उसे मिलनी चाहिए थी। सोना बराबर की हिस्सेदार हुई जाती है, यह उससे कैसे सहा जाता?

उसने आगे बढ़कर कहा—पहले मैंने देखा था। तभी दौड़ी। बहन ने तो पीछे से देखा।

सोना इस दावे को स्वीकार न कर सकी। बोली—तूने भैया को कहां पहचाना? तू तो कहती थी, कोई गाय भागी आ रही है। मैंने ही कहा, भैया हैं।

दोनों फिर बाग की तरफ दौड़ीं, गाय का स्वागत करने के लिए।

धनिया और होरी दोनों गाय बांधने का प्रबंध करने लगे। होरी बोला—चलो, जल्दी से नांद गाड़ दें।

धनिया के मुख पर जवानी चमक उठी थी—नहीं, पहले थाली में थोड़ा-सा आटा और गुड़ घोलकर रख दें। बेचारी धूप में चली होगी। प्यासी होगी। तुम जाकर नांद गाड़ो, मैं घोलती हूं।

'कहीं एक घंटी पड़ी थी। उसे ढूंढ़ ले। उसके गले में बांधेंगे।'

'सोना कहां गई? सहुआइन की दुकान से थोड़ा-सा काला डोरा मंगवा लो, गाय को नजर बहुत लगती है।'

'आज मेरे मन की बड़ी भारी लालसा पूरी हो गई।'

धनिया अपने हार्दिक उल्लास को दबाए रखना चाहती थी। इतनी बड़ी संपदा अपने साथ कोई नई बाधा न लाए, यह शंका उसके निराश हृदय में कंपन डाल रही थी। आकाश की ओर देखकर बोली—गाय के आने का आनंद तो तब है कि उसका पौरा भी अच्छा हो। भगवान् के मन की बात है।

मानो वह भगवान् को भी धोखा देना चाहती थी। भगवान् को भी दिखाना चाहती थी

कि इस गाय के आने से उसे इतना आनंद नहीं हुआ कि ईर्ष्यालु भगवान् सुख का पलड़ा ऊंचा करने के लिए कोई नई विपत्ति भेज दें।

वह अभी आटा घोल ही रही थी कि गोबर गाय को लिए बालकों के एक जुलूस के साथ द्वार पर आ पहुंचा। होरी दौड़कर गाय के गले से लिपट गया। धनिया ने आटा छोड़ दिया और जल्दी से एक पुरानी साड़ी का काला किनारा फाड़कर गाय के गले में बांध दिया।

होरी श्रद्धा-विह्वल नेत्रों से गाय को देख रहा था, मानो साक्षात् देवीजी ने घर में पदार्पण किया हो। आज भगवान् ने यह दिन दिखाया कि उसका घर गऊ के चरणों से पवित्र हो गया। यह सौभाग्य ! न जाने किसके पुण्य-प्रताप से।

धनिया ने भयातुर होकर कहा—खड़े क्या हो, आंगन में नांद गाड़ दो।

'आंगन में जगह कहां है?'

'बहुत जगह है।'

'मैं तो बाहर ही गाड़ता हूं।'

'पागल न बनो। गांव का हाल जानकर भी अनजान बनते हो।'

'अरे, बित्ते-भर के आंगन में गाय कहां बंधेगी भाई?'

'जो बात नहीं जानते, उसमें टांग मत अड़ाया करो। संसार-भर की विद्दा तुम्हीं नहीं पढ़े हो।'

होरी सचमुच आपे में न था। गऊ उसके लिए केवल भक्ति और श्रद्धा की वस्तु नहीं, सजीव संपत्ति थी। वह उससे अपने द्वार की शोभा और अपने घर का गौरव बढ़ाना चाहता था। वह चाहता था, लोग गाय को द्वार पर बंधे देखकर पूछें—यह किसका घर है? लोग कहें—होरी महतो का। तभी लडकी वाले भी उसकी विभूति से प्रभावित होंगे। आंगन मे बंधी, तो कौन देखेगा? धनिया इसके विपरीत सशंक थी। वह गाय को सात परदों के अंदर छिपाकर रखना चाहती थी। अगर गाय आठों पहर कोठरी में रह सकती, तो शायद वह उसे बाहर न निकलने देती। यों हर बात में होरी की जीत होती थी। वह अपने पक्ष पर अड़ जाता था और धनिया को दबना पड़ता था, लेकिन आज धनिया के सामने होरी की एक न चली। धनिया लड़ने को तैयार हो गई। गोबर, सोना और रूपा, सारा घर होरी के पक्ष में था, पर धनिया ने अकेले सबको परास्त कर दिया। आज उसमें एक विचित्र आत्मविश्वास और होरी में एक विचित्र विनय का उदय हो गया था।

मगर तमाशा कैसे रुक सकता था? गाय डोली में बैठकर तो आई न थी। कैसे संभव था कि गांव में इतनी बड़ी बात हो जाय और तमाशा न लगे। जिसने सुना, सब काम छोड़कर देखने दौड़ा। यह मामूली देशी गऊ नहीं है। भोला के घर से अस्सी रुपये में आई है। होरी अस्सी रुपये क्या देंगे, पचास-साठ रुपये में लाये होंगे। गांव के इतिहास में पचास-साठ रुपये की गाय का आना भी अभूतपूर्व बात थी। बैल तो पचास रुपये के भी आये, सौ के भी आये, लेकिन गाय के लिए इतनी बड़ी रकम किसान क्या खा के खर्च करेगा? यह तो ग्वालों ही का कलेजा है कि अंजुलियों रुपये गिन आते हैं। गाय क्या है, साक्षात् देवी का रूप है। दर्शकों और आलोचकों का तांता लगा हुआ था, और होरी दौड़-दौड़कर सबका सत्कार कर रहा था। इतना विनम्र, इतना प्रसन्न-चित्त वह कभी न था।

सत्तर साल के बूढ़े पंडित दातादीन लठिया टेकते हुए आए और पोपले मुंह से बोले—कहां हो होरी, तनिक हम भी तुम्हारी गाय देख लें! सुना, बड़ी सुंदर है।

होरी ने दौड़कर पालागन किया और मन में अभिमानमय उल्लास का आनंद उठाता हुआ, बड़े सम्मान से पंडितजी को आंगन में ले गया। महाराज ने गऊ को अपनी पुरानी अनुभवी आंखों से देखा, सींगें देखीं, थन देखा, पुट्ठा देखा और घनी सफेद भौंहों के नीचे छिपी हुई आंखों में जवानी की उमंग भरकर बोले—कोई दोष नहीं है बेटा, बाल-भौंरी, सब ठीक। भगवान् चाहेंगे, तो तुम्हारे भाग खुल जायंगे, ऐसे अच्छे लच्छन हैं कि वाह! बस रातिब न कम होने पाए। एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा।

होरी ने आनन्द के सागर में डुबकियां खाते हुए कहा—सब आपका असीरबाद है, दादा!

दातादीन ने सुरती की पीक थूकते हुए कहा—मेरा असीरबाद नहीं है बेटा, भगवान् की दया है। यह सब प्रभु की दया है। रुपये नगद दिए?

होरी ने बे-पर की उड़ाई। अपने महाजन के सामने भी अपनी समृद्धि-प्रदर्शन का ऐसा अवसर पाकर वह कैसे छोड़े। टके की नई टोपी सिर पर रखकर जब हम अकड़ने लगते हैं, जरा देर के लिए किसी सवारी पर बैठकर जब हम आकाश में उड़ने लगते हैं, तो इतनी बड़ी विभूति पाकर क्यों न उसका दिमाग आसमान पर चढ़े? बोला—भोला ऐसा भलामानस नहीं है महाराज! नगद गिनाए, पूरे चौकस।

अपने महाजन के सामने यह डींग मारकर होरी ने नादानी तो की थी, पर दातादीन के मुख पर असंतोष का कोई चिन्ह न दिखाई दिया। इस कथन में कितना सत्य है, यह उनकी उन बुझी आंखों से छिपा न रह सका, जिनमें ज्योति की जगह अनुभव छिपा बैठा था।

प्रसन्न होकर बोले—कोई हरज नही बेटा, कोई हरज नहीं। भगवान् सब कल्याण करेंगे। पांच सेर दूध है इसमे, बच्चे के लिए छोडकर।

धनिया ने तुरंत टोका—अरे नहीं महाराज, इतना दूध कहां। बुढ़िया तो हो गई है। फिर यहां रातिब कहां धरा है।

दातादीन ने मर्म-भरी आंखों से देखकर उसकी सतर्कता को स्वीकार किया, मानो कह रहे हों, 'गृहिणी का यही धर्म है, सीटना मरदों का काम है, उन्हें सीटने दो।' फिर रहस्य-भरे स्वर में बोले—बाहर न बांधना, इतना कहे देते हैं।

धनिया ने पति की ओर विजयी आंखों से देखा, मानो कह रही हो। लो, अब तो मानोगे।

दातादीन से बोली—नहीं महाराज, बाहर क्या बांधेंगे, भगवान् दें तो इसी आंगन में तीन गायें और बंध सकती हैं।

सारा गांव गाय देखने आया। नहीं आए तो सोभा और हीरा, जो अपने सगे भाई थे। होरी के हृदय में भाइयों के लिए अब भी कोमल स्थान था। वह दोनों आकर देख लेते और प्रसन्न हो जाते तो उसकी मनोकामना पूरी हो जाती। सांझ हो गई। दोनों पुर लेकर लौट आए। इसी द्वार से निकले, पर पूछा कुछ नहीं।

होरी ने डरते-डरते धनिया से कहा—न सोभा आया, न हीरा। सुना न होगा?

धनिया बोली—तो यहां कौन उन्हें बुलाने जाता है।

'तू बात तो समझती नहीं। लड़ने के लिए तैयार रहती है। भगवान् ने जब यह दिन दिखाया है, तो हमें सिर झुकाकर चलना चाहिए। आदमी को अपने सगों के मुंह से अपनी भलाई-बुराई

सुनने की जितनी लालसा होती है, बाहर वालों के मुंह से नहीं। फिर अपने भाई लाख बुरे हों, हैं तो अपने भाई ही। अपने हिस्से-बखरे के लिए सभी लड़ते हैं, पर इससे खून थोड़े ही बंट जाता है। दोनों को बुलाकर दिखा देना चाहिए, नहीं कहेंगे गाय लाए, हमसे कहा तक नहीं।'

धनिया ने नाक सिकोड़कर कहा—मैंने तुमसे सौ बार, हजार बार कह दिया, मेरे मुंह पर भाइयों का बखान न किया करो, उनका नाम सुनकर मेरी देह में आग लग जाती है। सारे गांव ने सुना, क्या उन्होंने न सुना होगा? कुछ इतनी दूर भी तो नहीं रहते। सारा गांव देखने आया, उन्हीं के पांवों में मेंहदी लगी हुई थी, मगर आएं कैसे? जलन हो रही होगी कि इसके घर गाय आ गई। छाती फटी जाती होगी।

दिया-बत्ती का समय आ गया था। धनिया ने जाकर देखा, तो बोतल में मिट्टी का तेल न था। बोतल उठाकर तेल लाने चली गई। पैसे होते तो रूपा को भेजती, उधार लाना था, कुछ मुंह देखी कहेगी, कुछ लल्लो-चप्पो करेगी, तभी तो तेल उधार मिलेगा।

होरी ने रूपा को बुलाकर प्यार से गोद में बैठाया और कहा—जरा जाकर देख, हीरा काका आ गए कि नहीं। सोभा काका को भी देखती आना। कहना, दादा ने तुम्हें बुलाया है। न आएं, हाथ पकड़कर खींच लाना।

रूपा ठुनककर बोली—छोटी काकी मुझे डांटती है।

'काकी के पास क्या करने जायगी। फिर सोभा-बहू तो तुझे प्यार करती है?'

'सोभा काका मुझे चिढ़ाते हैं.... मैं न कहूंगी।'

'क्या कहते हैं, बता?'

'चिढ़ाते हैं।'

'क्या कहकर चिढ़ाते हैं?'

'कहते हैं, तेरे लिए मूस पकड़ रखा है। ले जा, भूनकर खा ले।'

होरी के अंतस्तल में गुदगुदी हुई।

'तू कहती नहीं, पहले तुम खा लो, तो मैं खाऊंगी।'

'अम्मां मने करती हैं। कहती हैं, उन लोगों के घर न जाया करो।'

'तू अम्मां की बेटी है कि दादा की?'

रूपा ने उसके गले में हाथ डालकर कहा—'अम्मां की' और हंसने लगी।

'तो फिर मेरी गोद से उतर जा। आज मैं तुझे अपनी थाली में न खिलाऊंगा।'

घर में एक ही फूल की थाली थी। होरी उसी थाली में खाता था। थाली में खाने का गौरव पाने के लिए रूपा होरी के साथ खाती थी। इस गौरव का परित्याग कैसे करे? हुमककर बोली—अच्छा, तुम्हारी।

'तो फिर मेरा कहना मानेगी कि अम्मां का?

'तुम्हारा।'

'तो जाकर हीरा और सोभा को खींच ला।'

'और जो अम्मां बिगड़ें?'

'अम्मां से कहने कौन जायगा।'

रूपा कूदती हुई हीरा के घर चली। द्वेष का मायाजाल बड़ी-बड़ी मछलियों को ही फंसाता

है। छोटी मछलियां या तो उसमें फंसती ही नहीं या तुरंत निकल जाती हैं। उनके लिए वह घातक जाल क्रीड़ा की वस्तु है, भय की नहीं। भाइयों से होरी की बोलचाल बंद थी, पर रूपा दोनों घरों में आती-जाती थी। बच्चों से क्या बैर।

लेकिन रूपा घर से निकली ही थी कि धनिया तेल लिए मिल गई। उसने पूछा—सांझ की बेला कहां जाती है, चल घर।

रूपा मां को प्रसन्न करने के प्रलोभन को न रोक सकी।

धनिया ने डांटा—चल घर, किसी को बुलाने नहीं जाना है।

रूपा का हाथ पकड़े हुए वह घर आई और होरी से बोली—मैंने तुमसे हजार बार कह दिया, मेरे लड़कों को किसी के घर न भेजा करो। किसी ने कुछ कर-करा दिया, तो मैं तुम्हें लेकर चाटूंगी? ऐसा ही बड़ा परेम है, तो आप क्यों नहीं जाते? अभी पेट नहीं भरा जान पड़ता है।

होरी नांद जमा रहा था। हाथों में मिट्टी लपेटे हुए अज्ञान का अभिनय करके बोला—किस बात पर बिगड़ती है भाई? यह तो अच्छा नहीं लगता कि अंधे कूकुर की तरह हवा को भूंका करे।

धनिया को कुप्पी में तेल डालना था। इस समय झगड़ा न बढ़ाना चाहती थी। रूपा भी लड़कों में जा मिली।

पहर रात से ज्यादा जा चुकी थी। नांद गड़ चुकी थी। सानी और खली डाल दी गई थी। गाय मन मारे उदास बैठी थी, जैसे कोई वधू ससुराल आई हो। नांद में मुंह तक न डालती थी। होरी और गोबर खाकर आधी-आधी रोटियां उसके लिए लाए, पर उसने सूंघा तक नहीं। मगर यह कोई नई बात न थी। जानवरों को भी बहुधा घर छूट जाने का दु:ख होता है।

होरी बाहर खाट पर बैठकर चिलम पीने लगा, तो फिर भाइयों की याद आई। नहीं, आज इस शुभ अवसर पर वह भाइयों की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसका हृदय यह विभूति पाकर विशाल हो गया था। भाइयों से अलग हो गया है, तो क्या हुआ। उनका दुश्मन तो नहीं है। यही गाय तीन साल पहले आई होती, तो सभी का उस पर बराबर अधिकार होता। और कल को यही गाय दूध देने लगेगी, तो क्या वह भाइयों के घर दूध न भेजेगा या दही न भेजेगा? ऐसा तो उसका धरम नहीं है। भाई उसका बुरा चेतें, वह क्यों उनका बुरा चेते? अपनी-अपनी करनी तो अपने-अपने साथ है।

उसने नारियल खाट के पाए से लगाकर रख दिया और हीरा के घर की ओर चला। सोभा का घर भी उधर ही था। दोनों अपने-अपने द्वार पर लेटे हुए थे। काफी अंधेरा था। होरी पर उनमें से किसी की निगाह नहीं पड़ी। दोनों में कुछ बातें हो रही थीं। होरी ठिठक गया और उनकी बातें सुनने लगा। ऐसा आदमी कहां है, जो अपनी चर्चा सुनकर टाल जाय?

हीरा ने कहा—जब तक एक में थे, एक बकरी भी नहीं ली। अब पछाईं गाय ली जाती है। भाई का हक मारकर किसी को फलते-फूलते नहीं देखा।

सोभा बोला—यह तुम अन्याय कर रहे हो हीरा। भैया ने एक-एक पैसे का हिसाब दे दिया था। यह मैं कभी न मानूंगा कि उन्होंने पहले की कमाई छिपा रखी थी।

'तुम मानो चाहे न मानो, है यह पहले की कमाई।'

'किसी पर झूठा इल्जाम न लगाना चाहिए।'

'अच्छा, तो यह रुपये कहां से आ गए? कहां से हुन (सोना) बरस पड़ा? उतने ही खेत तो हमारे पास भी हैं। उतनी ही उपज हमारी भी है। फिर क्यों हमारे पास कफन को कौड़ी नहीं और उनके घर नई गाय आती है?'

'उधार लाए होंगे।'

'भोला उधार देने वाला आदमी नहीं है।'

'कुछ भी हो, गाय है बड़ी सुंदर। गोबर लिए जाता था, तो मैंने रास्ते में देखा।'

'बेईमानी का धन जैसे आता है, वैसे ही जाता है। भगवान् चाहेंगे, तो बहुत दिन गाय घर में न रहेगी।'

होरी से और न सुना गया। वह बीती बातों को बिसारकर अपने हृदय में स्नेह और सौहार्द-भरे, भाइयों के पास आया था। इस आघात ने जैसे उसके हृदय में छेद कर दिया और वह रस-भाव उसमें किसी तरह नहीं टिक रहा था। लत्ते और चिथड़े ठूंसकर अब उस प्रवाह को नहीं रोक सकता। जी में एक उबाल आया कि उसी क्षण इस आक्षेप का जवाब दे, लेकिन बात बढ़ जाने के भय से चुप रह गया। अगर उसकी नीयत साफ है, तो कोई कुछ नहीं कर सकता। भगवान् के सामने वह निर्दोष है। दूसरों की उसे परवाह नहीं। उलटे पांव लौट आया। और वह जला हुआ तंबाकू पीने लगा। लेकिन जैसे वह विष प्रतिक्षण उसकी धमनियों में फैलता जाता था। उसने सो जाने का प्रयास किया, पर नींद न आई। बैलों के पास जाकर उन्हें सहलाने लगा, विष शांत न हुआ। दूसरी चिलम भरी, लेकिन उसमें भी कुछ रस न था। विष ने जैसे चेतना को आक्रांत कर दिया हो। जैसे नशे में चेतना एकांगी हो जाती है, जैसे फैला हुआ पानी एक दिशा में बहकर वेगवान हो जाता है, वही मनोवृत्ति उसकी हो रही थी। उसी उन्माद की दशा में वह अंदर गया। अभी द्वार खुला हुआ था। आंगन में एक किनारे चटाई पर लेटी हुई धनिया सोना से देह दबवा रही थी और रूपा जो रोज सांझ होते ही सो जाती थी, आज खड़ी गाय का मुंह सहला रही थी। होरी ने जाकर गाय को खूंटे से खोल लिया और द्वार की ओर ले चला। वह इसी वक्त गाय को भोला के घर पहुंचाने का दृढ़ निश्चय कर चुका था। इतना बड़ा कलंक सिर पर लेकर वह अब गाय को घर में नहीं रख सकता। किसी तरह नहीं।

धनिया ने पूछा—कहां लिए जाते हो रात को?

होरी ने एक पग बढ़ाकर कहा—ले जाता हूं भोला के घर। लौटा दूंगा।

धनिया को विस्मय हुआ, उठकर सामने आ गई और बोली—लौटा क्यों दोगे? लौटाने के लिए ही लाए थे?

'हां, इसके लौटा देने में ही कुसल है।'

'क्यों बात क्या है? इतने अरमान से लाए और अब लौटाने जा रहे हो? क्या भोला रुपये मांगते हैं?

'नहीं, भोला यहां कब आया।'

'तो फिर क्या बात हुई?'

'क्या करोगी पूछकर?'

धनिया ने लपककर पगहिया उसके हाथ से छीन ली। उसकी चपल बुद्धि ने जैसे उड़ती

हुई चिड़िया पकड़ ली। बोली–तुम्हें भाइयों का डर हो, तो जाकर उनके पैरों पर गिरो। मैं किसी से नहीं डरती। अगर हमारी बढ़ती देखकर किसी की छाती फटती है, तो फट जाय, मुझे परवाह नहीं है।

होरी ने विनीत स्वर में कहा–धीरे-धीरे बोल महरानी ! कोई सुने, तो कहे, ये सब इतनी रात गए लड़ रहे हैं ! मैं अपने कानों से क्या सुन आया हूं, तू क्या जाने ! यहां चरचा हो रही है कि मैंने अलग होते समय रुपये दबा लिए थे और भाइयों को धोखा दिया था, यही रुपये अब निकल रहे हैं।'

'हीरा कहता होगा?'

'सारा गांव कह रहा है। हीरा को क्यों बदनाम करूं।'

'सारा गांव नहीं कह रहा है, अकेला हीरा कह रहा है। मैं अभी जाकर पूछती हूं न कि तुम्हारे बाप कितने रुपये छोड़कर मरे थे? डाढ़ीजारों के पीछे हम बरबाद हो गए। सारी जिंदगी मिट्टी में मिला दी, पाल-पोसकर संडा किया, और अब हम बेईमान हैं। मैं कह देती हूं, अगर गाय घर के बाहर निकली, तो अनर्थ हो जायगा। रख लिए हमने रुपये, दबा लिए, बीच खेत दबा लिए। डंके की चोट कहती हूं, मैंने हंडे भर असर्फियां छिपा लीं। हीरा और सोभा और संसार को जो करना हो, कर ले। क्यों न रुपये रख लें? दो-दो संडों का ब्याह नहीं किया, गौना नहीं किया?'

होरी सिटपिटा गया। धनिया ने उसके हाथ से पगहिया छीन ली, और गाय को खूंटे से बांधकर द्वार की ओर चली। होरी ने उसे पकड़ना चाहा, पर वह बाहर जा चुकी थी। वहीं सिर थामकर बैठ गया। बाहर उसे पकड़ने की चेष्टा करके वह कोई नाटक नहीं दिखाना चाहता था। धनिया के क्रोध को खूब जानता था। बिगड़ती है, तो चंडी बन जाती है। मारो, काटो, सुनेगी नहीं, लेकिन हीरा भी तो एक ही गुस्सेवर है, कहीं हाथ चला दे तो परलै ही हो जाय। नहीं, हीरा इतना मूरख नहीं है। मैंने कहां-से-कहां यह आग लगा दी ! उसे अपने आप पर क्रोध आने लगा। बात मन में रख लेता, तो क्यों यह टंटा खड़ा होता। सहसा धनिया का कर्कश स्वर कान में आया। हीरा की गरज भी सुन पड़ी। फिर पुन्नी की पैनी पीक भी कानों में चुभी। सहसा उसे गोबर की याद आई। बाहर लपककर उसकी खाट देखी। गोबर वहां न था। गजब हो गया। गोबर भी वहां पहुंच गया। अब कुशल नहीं। उसका नया खून है, न जाने क्या कर बैठे, लेकिन होरी वहां कैसे जाय? हीरा कहेगा, आप तो बोलते नहीं, जाकर इस डाइन को लड़ने के लिए भेज दिया। कोलाहल प्रतिक्षण प्रचंड होता जाता था। सारे गांव में जाग पड़ गई। मालूम होता था, कहीं आग लग गई है, और लोग खाट से उठ-उठ बुझाने दौड़े जा रहे हैं।

इतनी देर तक तो वह जब्त किए बैठा रहा। फिर न रहा गया। धनिया पर क्रोध आया। वह क्यों चढ़कर लड़ने गई? अपने घर में आदमी न जाने किसको क्या कहता है। जब तक कोई मुंह पर बात न कहे, यही समझना चाहिए कि उसने कुछ नहीं कहा। होरी की कृषक प्रकृति झगड़े से भागती थी। चार बातें सुनकर गम खा जाना इससे कहीं अच्छा है कि आपस में तनाजा हो। कहीं मार-पीट हो जाय तो थाना-पुलिस हो, बंधे-बंधे फिरो, सबकी चिरौरी करो, अदालत की धूल फांको, खेती-बारी जहन्नुम में मिल जाय। उसका हीरा पर तो कोई बस न था, मगर धनिया को तो वह जबरदस्ती खींच ला सकता है। बहुत होगा, गालियां दे लेगी, एक-दो दिन

रूठी रहेगी, थाना-पुलिस की नौबत तो न आएगी। जाकर हीरा के द्वार पर सबसे दूर दीवार की आड़ में खड़ा हो गया। एक सेनापति की भांति मैदान में आने के पहले परिस्थिति को अच्छी तरह समझ लेना चाहता था। अगर अपनी जीत हो रही है, तो बोलने की कोई जरूरत नहीं, हार हो रही है, तो तुरंत कूद पड़ेगा। देखा तो वहां पचासों आदमी जमा हो गए हैं। पंडित दातादीन, लाला पटेश्वरी, दोनों ठाकुर, जो गांव के करता-धरता थे, सभी पहुंचे हुए हैं। धनिया का पल्ला हल्का हो रहा था। उसकी उग्रता जनमत को उसके विरुद्ध किए देती थी। वह रणनीति में कुशल न थी। क्रोध में ऐसी जली-कटी सुना रही थी कि लोगों की सहानुभूति उससे दूर होती जाती थी।

वह गरज रही थी—तू हमें देखकर क्यों जलता है? हमें देखकर क्यों तेरी छाती फटती है? पाल-पोसकर जवान कर दिया, यह उसका इनाम है? हमने न पाला होता तो आज कहीं भीख मांगते होते। रूख की छांह भी न मिलती।

होरी को ये शब्द जरूरत से ज्यादा कठोर जान पड़े। भाइयों का पालना-पोसना तो उसका धर्म था। उनके हिस्से की जायदाद तो उसके हाथ में थी। कैसे न पालता-पोसता? दुनिया में कहीं मुंह देखाने लायक रहता?

हीरा ने जवाब दिया—हम किसी का कुछ नहीं जानते। तेरे घर में कुत्तों की तरह एक टुकड़ा खाते थे और दिन-दिन भर काम करते थे। जाना ही नहीं कि लड़कपन और जवानी कैसी होती है। दिन-दिन भर सूखा गोबर बीना करते थे। उस पर भी तू बिना दस गाली दिए रोटी न देती थी। तेरी-जैसी राच्छसिन के हाथ में पड़कर जिंदगी तलख हो गई।

धनिया और भी तेज हुई—जबान संभाल, नहीं जीभ खींच लूंगी। राच्छसिन तेरी औरत होगी। तू है किस फेर में मूंड़ी-काटे, टुकड़े-खोर, नमक-हराम।

दातादीन ने टोका—इतना कटु वचन क्यों कहती है धनिया? नारी का धरम है कि गम खाय। वह तो उजड्ड है, क्यों उसके मुंह लगती है?

लाला पटेश्वरी पटवारी ने उसका समर्थन किया—बात का जवाब बात है, गाली नहीं। तूने लड़कपन में उसे पाला-पोसा, लेकिन यह क्यों भूल जाती है कि उसकी जायदाद तेरे हाथ में थी?

धनिया ने समझा, सब-के-सब मिलकर मुझे नीचा दिखाना चाहते हैं। चौमुख लड़ाई लड़नेके लिए तैयार हो गई—अच्छा, रहने दो लाला? मैं सबको पहचानती हूं। इस गांव में रहते बीस साल हो गए। एक-एक की नस-नस पहचानती हूं। मैं गाली दे रही हूं, वह फूल बरसा रहा है, क्यों?

दुलारी सहुआइन ने आग पर घी डाला—बाकी बड़ी गाल-दराज औरत है भाई! मरद के मुंह लगती है। होरी ही जैसा मरद है कि इसका निबाह होता है। दूसरा मरद होता तो एक दिन न पटती।

अगर हीरा इस समय जरा नर्म हो जाता तो उसकी जीत हो जाती, लेकिन ये गालियां सुनकर आपे से बाहर हो गया। औरों को अपने पक्ष में देखकर वह कुछ शेर हो रहा था। गला फाड़कर बोला—चली जा मेरे द्वार से, नहीं जूतों से बात करूंगा। झोंटा पकड़कर उखाड़ लूंगा। गाली देती है डाइन! बेटे का घमंड हो गया है। खून....

पांसा पलट गया। होरी का खून खौल उठा। बारूद में जैसे चिंगारी पड़ गई हो। आगे

आकर बोला—अच्छा बस, अब चुप हो जाओ हीरा, अब नहीं सुना जाता। मैं इस औरत को क्या कहूं। जब मेरी पीठ में धूल लगती है, तो इसी के कारन। न जाने क्यों इससे चुप नहीं रहा जाता।

चारों ओर से हीरा पर बौछार पड़ने लगी। दातादीन ने निर्लज्ज कहा, पटेश्वरी ने गुडा बनाया, झिंगुरीसिंह ने शैतान की उपाधि दी। दुलारी सहुआइन ने कपूत कहा। एक उद्दंड शब्द ने धनिया का पल्ला हल्का कर दिया था। दूसरे उग्र शब्द ने हीरा को गच्चे में डाल दिया। उस पर होरी के संयत वाक्य ने रही-सही कसर भी पूरी कर दी।

हीरा संभल गया। सारा गांव उसके विरुद्ध हो गया। अब चुप रहने में ही उसकी कुशल है। क्रोध के नशे में भी इतना होश उसे बाकी था।

धनिया का कलेजा दूना हो गया। होरी से बोली—सुन लो कान खोल के। भाइयों के लिए मरते हो। यह भाई हैं, ऐसे भाई को मुंह न देखे। यह मुझे जूतों से मारेगा। खिला-पिला....

होरी ने डांटा—फिर क्यों बक-बक करने लगी तू। घर क्यों नहीं जाती?

धनिया जमीन पर बैठ गई और आर्त स्वर में बोली—अब तो इसके जूते खा के जाऊंगी। जरा इसकी मरदुमी देख लूं, कहां है गोबर? अब किस दिन काम आएगा? तू देख रहा है बेटा, तेरी मां को जूते मारे जा रहे हैं।

यों विलाप करके उसने अपने क्रोध के साथ होरी के क्रोध को भी क्रियाशील बना डाला। आग को फूंक-फूंककर उसमे ज्वाला पैदा कर दी। हीरा पराजित-सा पीछे हट गया। पुन्नी उसका हाथ पकड़कर घर की ओर खींच रही थी। सहसा धनिया ने सिंहनी की भांति झपटकर हीरा को इतने जोर से धक्का दिया कि वह धम से गिर पड़ा और बोली—कहां जाता है, जूते मार, मार जूते, देखू तेरी मरदुमी।

होरी ने दौडकर उसका हाथ पकड़ लिया और घसीटता हुआ घर ले चला।

पांच

उधर गोबर खाना खाकर अहिराने मे जा पहुंचा। आज झुनिया से उसकी बहुत-सी बातें हुई थीं। जब वह गाय लेकर चला था, तो झुनिया आधे रास्ते तक उसके साथ आई थी। गोबर अकेला गाय को कैसे ले जाता। अपरिचित व्यक्ति के साथ जाने में उसे आपत्ति होना स्वाभाविक था। कुछ दूर चलने के बाद झुनिया ने गोबर को मर्म-भरी आंखों से देखकर कहा—अब तुम काहे को यहां कभी आओगे?

एक दिन पहले तक गोबर कुमार था। गांव में जितनी युवतियां थीं, वह या तो उसकी बहनें थीं या भाभियां। बहनों से तो कोई छेड़छाड़ हो ही क्या सकती थी, भाभियां अलबत्ता कभी-कभी उससे ठिठोली किया करती थीं, लेकिन वह केवल सरल विनोद होता था। उनकी दृष्टि में अभी उसके यौवन में केवल फूल लगे थे। जब तक फल न लग जाय, उस पर ढेले फेंकना व्यर्थ की बात थी। और किसी ओर से प्रोत्साहन न पाकर उसका कौमार्य उसके गले से चिपटा हुआ था। झुनिया का वंचित मन, जिसे भाभियों के व्यंग और हास-विलास ने और

भी लोलुप बना दिया था, उसके कौमार्य ही पर ललचा उठा। और उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोए हुए शिकारी जानवर की तरह यौवन जाग उठा।

गोबर ने आवरणहीन रसिकता के साथ कहा—अगर भिक्षुक को भीख मिलने की आसा हो, तो वह दिन-भर और रात-भर दाता के द्वार पर खड़ा रहे।

झुनिया ने कटाक्ष करके कहा—तो यह कहो, तुम भी मतलब के यार हो।

गोबर की धमनियों का रक्त प्रबल हो उठा। बोला—भूखा आदमी अगर हाथ फैलाए तो उसे क्षमा कर देना चाहिए।

झुनिया और गहरे पानी में उतरी—भिक्षुक जब तक दस द्वारे न जाय, उसका पेट कैसे भरेगा? मैं ऐसे भिक्षुकों को मुंह नहीं लगाती। ऐसे तो गली-गली मिलते हैं। फिर भिक्षुक देता क्या है, असीस। असीसों से तो किसी का पेट नहीं भरता।

मंद-बुद्धि गोबर झुनिया का आशय न समझ सका। झुनिया छोटी-सी थी, तभी से ग्राहकों के घर दूध लेकर जाया करती थी। ससुराल में उसे ग्राहकों के घर दूध पहुंचाना पड़ता था। आजकल भी दही बेचने का भार उसी पर था। उसे तरह-तरह के मनुष्यों से साबिका पड़ चुका था। दो-चार रुपये उसके हाथ लग जाते थे, घड़ी-भर के लिए मनोरंजन भी हो जाता था, मगर यह आनंद जैसे मगनी की चीज हो। उसमें टिकाव न था, समर्पण न था, अधिकार न था। वह ऐसा प्रेम चाहती थी, जिसके लिए वह जिये और मरे, जिस पर वह अपने को समर्पित कर दे। वह केवल जुगनू की चमक नहीं, दीपक का स्थायी प्रकाश चाहती थी। वह एक गृहस्थ की बालिका थी, जिसके गृहिणीत्व को रसिकों की लगावटबाजियों ने कुचल नहीं पाया था।

गोबर ने कामना से उद्दीप्त मुख से कहा—भिक्षुक को एक ही द्वार पर भरपेट मिल जाय, तो क्यों द्वार-द्वार घूमे?

झुनिया ने सदय भाव से उसकी ओर ताका। कितना भोला है, कुछ समझता ही नही।

'भिक्षुक को एक द्वार पर भरपेट कहां मिलता है। उसे तो चुटकी ही मिलेगी। सर्बस तो तभी पाओगे, जब अपना सर्बस दोगे।'

'मेरे पास क्या है झुनिया?'

'तुम्हारे पास कुछ नहीं है? मैं तो समझती हूं, मेरे लिए तुम्हारे पास जो कुछ है, वह बड़े-बड़े लखपतियों के पास नहीं है। तुम मुझसे भीख न मांगकर मुझे मोल ले सकते हो।'

गोबर उसे चकित नेत्रों से देखने लगा।

झुनिया ने फिर कहा—और जानते हो, दाम क्या देना होगा? मेरा होकर रहना पड़ेगा। फिर किसी के सामने हाथ फैलाए देखूंगी, तो घर से निकाल दूंगी।

गोबर को जैसे अंधेरे में टटोलते हुए इच्छित वस्तु मिल गई। एक विचित्र भय-मिश्रित आनंद से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। लेकिन यह कैसे होगा? झुनिया को रख ले, तो रखेली को लेकर घर में रहेगा कैसे। बिरादरी का झंझट जो है। सारा गांव कांव-कांव करने लगेगा। सभी दुसमन हो जायंगे। अम्मां तो इसे घर में घुसने भी न देगी। लेकिन जब स्त्री होकर यह नहीं डरती, तो पुरुष होकर वह क्यों डरे? बहुत होगा, लोग उसे अलग कर देंगे। वह अलग ही रहेगा। झुनिया जैसी औरत गांव में दूसरी कौन है? कितनी समझदारी की बातें करती है। क्या जानती नहीं कि मैं उसके जोग नहीं हूं, फिर भी मुझसे प्रेम करती है। मेरी होने को राजी है। गांव वाले

निकाल देंगे, तो क्या संसार में दूसरा गांव ही नहीं है? और गांव क्यों छोड़े? मातादीन ने चमारिन बैठी ली, तो किसी ने क्या कर लिया? दातादीन दांत कटकटाकर रह गए। मातादीन ने इतना जरूर किया कि अपना धरम बचा लिया। अब भी बिना असनान-पूजा किए मुंह में पानी नहीं डालते। दोनों जून अपना भोजन आप पकाते हैं और अब तो अलग भोजन भी नहीं पकाते। दातादीन और वह साथ बैठकर खाते हैं। झिंगुरीसिंह ने बाम्हनी रख ली, उनका किसी ने क्या कर लिया? उनका जितना आदर-मान तब था, उतना ही आज भी है, बल्कि और बढ़ गया। पहले नौकरी खोजते फिरते थे। अब उसके रुपये से महाजन बन बैठे। ठकुराई का रोब तो था ही, महाजनी का रोब भी जम गया। मगर फिर खयाल आया, कहीं झुनिया दिल्लगी न कर रही हो। पहले इसकी ओर से निश्चिंत हो जाना आवश्यक था।

उसने पूछा—मन से कहती हो! झूना कि खाली लालच दे रही हो? मैं तो तुम्हारा हो चुका, लेकिन तुम भी मेरी हो जाओगी?

'तुम मेरे हो चुके, कैसे जानूं?'

'तुम जान भी चाहो, तो दे दूं।'

'जान देने का अरथ भी समझते हो'

'तुम समझा दो न।'

'जान देने का अरथ है, साथ रहकर निबाह करना। एक बार हाथ पकड़कर उमिर-भर निबाह करते रहना, चाहे दुनिया कुछ कहे, चाहे मां-बाप, भाई-बंद, घर-द्वार सब कुछ छोड़ना पड़े। मुंह से जान देने वाले बहुतों को देख चुकी। भौरों की भांति फूल का रस लेकर उड़ जाते हैं। तुम भी वैसे ही न उड़ जाओगे?'

गोबर के एक हाथ में गाय की पगहिया थी। दूसरे हाथ से उसने झुनिया का हाथ पकड़ लिया। जैसे बिजली के तार पर हाथ पड़ गया हो। सारी देह यौवन के पहले स्पर्श से कांप उठी। कितनी मुलायम, गुदगुदी, कोमल कलाई।

झुनिया ने उसका हाथ हटाया नहीं, मानो इस स्पर्श का उसके लिए कोई महत्त्व ही न हो। फिर एक क्षण के बाद गंभीर भाव से बोली—आज तुमने मेरा हाथ पकड़ा है, याद रखना।

'खूब याद रखूंगा झूना और मरते दम तक निबाहूंगा।'

झुनिया अविश्वास-भरी मुस्कान से बोली—इसी तरह तो सब कहते हैं गोबर! बल्कि इससे भी मीठे, चिकने शब्दों में। अगर मन में कपट हो, मुझे बता दो। सचेत हो जाऊं। ऐसों को मन नही देती। उनसे तो खाली हंस-बोल लेने का नाता रखती हूं। बरसो से दूध लेकर बाजार जाती हू। एक-से-एक बाबू, महाजन, ठाकुर, वकील, अमले, अफसर अपना रसियापन दिखाकर मुझे फंसा लेना चाहते हैं। कोई छाती पर हाथ रखकर कहता है, झुनिया, तरसा मत, कोई मुझे रसीली, नसीली चितवन से घूरता है, मानो मारे प्रेम के बेहोस हो गया है, कोई रुपया दिखाता है, कोई गहने। सब मेरी गुलामी करने को तैयार रहते हैं, उमिर-भर, बल्कि उस जनम में भी, लेकिन मैं उन सबों की नस पहचानती हूं। सब-के-सब भौंरे रस लेकर उड़ जाने वाले। मैं भी उन्हें ललचाती हूं, तिरछी नजरों से देखती हूं, मुस्कराती हूं। वह मुझे गधी बनाते हैं, मैं उन्हें उल्लू बनाती हूं। मैं मर जाऊं, तो उनकी आंखों में आंसू न आएगा। वह मर जायं, तो मैं कहूंगी, अच्छा हुआ, निगोड़ा मर गया। मैं तो जिसकी हो जाऊंगी, उसकी जनम-भर के लिए हो जाऊंगी, सुख में, दु:ख में, सम्पत में, विपत

में, उसके साथ रहूंगी। हरजाई नहीं हूं कि सबसे हंसती-बोलती फिरूं। न रुपये की भूखी हूं, न गहने-कपड़े की। बस भले आदमी का संग चाहती हूं, जो मुझे अपना समझे और जिसे मैं भी अपना समझूं। एक पंडितजी बहुत तिलक-मुद्रा लगाते हैं। आध सेर दूध लेते हैं। एक दिन उनकी घरवाली कहीं नेवते में गई थी। मुझे क्या मालूम और दिनों की तरह दूध लिए भीतर चली गई। वहां पुकारती हूं, बहूजी, बहूजी ! कोई बोलता ही नहीं। इतने में देखती हूं तो पंडितजी बाहर के किवाड़ बंद किए चले आ रहे हैं। मैं समझ गई इसकी नीयत खराब है। मैंने डांटकर पूछा–तुमने किवाड़ क्यों बंद कर लिए? क्या बहूजी कहीं गई हैं? घर में सन्नाटा क्यों है?

उसने कहा–वह एक नेवते में गई हैं, और मेरी ओर दो पग और बढ़ आया।

मैंने कहा–तुम्हें दूध लेना हो तो लो, नहीं मैं जाती हूं। बोला–आज तो तुम यहां से न जाने पाओगी झूनी रानी ! रोज-रोज कलेजे पर छुरी चलाकर भाग जाती हो, आज मेरे हाथ से न बचोगी। तुमसे सच कहती हूं, गोबर, मेरे रोएं खड़े हो गए।

गोबर आवेश में आकर बोला–मैं बचा को देख पाऊं, तो खोदकर जमीन में गाड़ दूं। खून चूस लूं। तुम मुझे दिखा तो देना।

'सुनो तो, ऐसों का मुंह तोड़ने के लिए मैं ही काफी हूं। मेरी छाती धक्-धक् करने लगी। यह कुछ बदमासी कर बैठे, तो क्या करूंगी? कोई चिल्लाना भी तो न सुनेगा, लेकिन मन में यह निश्चय कर लिया था कि मेरी देह छुई, तो दूध की भरी हांड़ी उसके मुंह पर पटक दूंगी। बला से चार-पांच सेर दूध जायगा, बचा को याद तो हो जायगा। कलेजा मजबूत करके बोली–इस फेर में न रहना पंडितजी ! मैं अहीर के लड़की हूं। मूंछ का एक-एक बाल नुचवा लूंगी। यही लिखा है तुम्हारे पोथी-पत्रे में कि दूसरों की बहू-बेटी को अपने घर में बंद करके बेइज्जत करो। इसीलिए तिलक-मुद्रा का जाल बिछाए बैठे हो? लगा हाथ जोड़ने, पैरों पड़ने–एक प्रेमी का मन रख दोगी, तो तुम्हारा क्या बिगड़ जायगा, झूना रानी ! कभी-कभी गरीबों पर दया किया करो, नहीं भगवान् पूछेंगे, मैंने तुम्हें इतना रूप-धन दिया था, तुमने उससे एक ब्रह्मण का उपकार भी नहीं किया, तो क्या जवाब दोगी? बोले, मैं विप्र हूं, रुपये-पैसे का दान तो रोज ही पाता हूं, आज रूप का दान दे दो।

'मैंने यों ही उसका मन परखने को कह दिया, मैं पचास रुपये लूंगी। सच कहती हूं गोबर, तुरंत कोठरी में गया और दस-दस के पांच नोट निकाल कर मेरे हाथों में देने लगा और जब मैंने नोट जमीन पर गिरा दिए और द्वार की ओर चली, तो उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं तो पहले ही से तैयार थी। हांड़ी उसके मुंह पर दे मारी। सिर से पांव तक सराबोर हो गया। चोट भी खूब लगी। सिर पकड़कर बैठ गया और लगा हाय-हाय करने। मैंने देखा, अब यह कुछ नहीं कर सकता, तो पीठ में दो लातें जमा दीं और किवाड़ खोलकर भागी।'

गोबर ठट्ठा मारकर बोला–बहुत अच्छा किया तुमने। दूध मे नहा गया होगा। तिलक-मुद्रा भी धुल गई होगी। मूंछें भी क्यों न उखाड़ लीं?

'दूसरे दिन मैं फिर उसके घर गई। उसकी घरवाली आ गई थी। अपने बैठक में सिर में पट्टी बांधे पड़ा था। मैंने कहा- कहो तो कल की तुम्हारी करतूत खोल दूं पंडित ! लगा हाथ जोड़ने। मैंने कहा–अच्छा थूककर चाटो, तो छोड़ दूं। सिर जमीन पर रगड़कर कहने लगा–अब मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ है झूना, यही समझ लो कि पंडिताइन मुझे जीता न छोड़ेंगी। मुझे भी

उस पर दया आ गई। गोबर को उसकी दया बुरी लगी—यह तुमने क्या किया? उसकी औरत से जाकर कह क्यों नहीं दिया? जूती से पीटती। ऐसे पाखंडियों पर दया न करनी चाहिए। तुम मुझे कल उसकी सूरत दिखा दो, फिर देखना, कैसी मरम्मत करता हूं।

झुनिया ने उसके अर्द्ध-विकसित यौवन को देखकर कहा—तुम उसे न पाओगे। खास देव है। मुफ्त का माल उड़ाता है कि नहीं।

गोबर अपने यौवन का यह तिरस्कार कैसे सहता? डींग मारकर बोला—मोटे होने से क्या होता है। यहां फौलाद की हड्डियां हैं। तीन सौ डंड रोज मारता हूं। दूध-घी नहीं मिलता, नहीं अब तक सीना यों निकल आया होता।

यह कहकर उसने छाती फैलाकर दिखाई।

झुनिया ने आश्वस्त आंखों से देखा—अच्छा, कभी दिखा दूंगी लेकिन वहां तो सभी एक-से हैं, तुम किस-किसकी मरम्मत करोगे? न जाने मरदों की क्या आदत है कि जहां कोई जवान, सुंदर औरत देखी और बस लगे घूरने, छाती पीटने। और यह जो बड़े आदमी कहलाते हैं, ये तो निरे लंपट होते हैं। फिर मैं तो कोई सुंदरी नहीं हूं....

गोबर ने आपत्ति की—तुम ! तुम्हें देखकर तो यही जी चाहता है कि कलेजे में बिठा लें।

झुनिया ने उसकी पीठ में हलका-सा घूंसा जमाया—लगे औरों की तरह तुम भी चापलूसी करने। मैं जैसी कुछ हूं, वह मैं जानती हूं। मगर लोगों को तो जवान मिल जाय। घड़ी-भर मन बहलाने को और क्या चाहिए। गुन तो आदमी उसमें देखता है, जिसके साथ जनम-भर निबाह करना हो। सुनती भी हूं और देखती भी हूं, आजकल बड़े घरों की विचित्र लीला है। जिस मुहल्ले में मेरी ससुराल है, उसी में गपडू नाम के कासमीरी रहते थे। बड़े भारी आदमी थे। उनके यहां पांच-सेर दूध लगता था। उनकी तीन लड़कियां थीं। कोई बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस की होगी। एक-से-एक सुंदर। तीनों बड़े कॉलिज में पढ़ने जाती थी। एक साइत कॉलिज में पढ़ाती भी थी। तीन सौ का महीना पाती थी। सितार वह सब बजावें, हरमुनियां वह सब बजावें, नाचें वह, गावें वह, लेकिन ब्याह कोई न करती थी। राम जाने, वह किसी मरद को पसंद नहीं करती थीं कि मरद उन्हीं को पसद नहीं करता था। एक बार मैंने बड़ी बीबी से पूछा, तो हंसकर बोली—हम लोग यह रोग नहीं पालते, मगर भीतर-ही-भीतर खूब गुलछर्रे उड़ाती थीं। जब देखूं, दो-चार लौंडे उनको घेरे हुए हैं। जो सबसे बड़ी थी, वह तो कोट-पतलून पहन कर घोड़े पर सवार होकर मरदों के साथ सैर करने जाती थी। सारे सहर में उनकी लीला मशहूर थी। गपडू बाबू सिर नीचा किए, जैसे मुंह में कालिख-सी लगाए रहते थे। लड़कियों को डांटते थे, समझाते थे, पर सब-की-सब खुल्लमखुल्ला कहती थीं- तुमको हमारे बीच में बोलने का कुछ मजाल नहीं है। हम अपने मन की रानी हैं, जो हमारी इच्छा होगी, वह हम करेंगे। बेचारा बाप जवान-जवान लड़कियों से क्या बोले? मारने-बांधने से रहा, डांटने डपटने से रहा, लेकिन भाई, बड़े आदमियों की बातें कौन चलावे। वह जो कुछ करें, सब ठीक है। उन्हें तो बिरादरी और पंचायत का भी डर नहीं। मेरी समझ में तो यही नहीं आता कि किसी का रोज-रोज मन कैसे बदल जाता है। क्या आदमी गाय-बकरी से भी गया-बीता हो गया? लेकिन किसी को बुरा नहीं कहती भाई, मन को जैसा बनाओ, वैसा बनता है। ऐसों को भी देखती हूं, जिन्हें रोज-रोज की दाल-रोटी

के बाद कभी-कभी मुंह का सवाद बदलने के लिए हलवा-पूरी भी चाहिए। और ऐसों को भी देखती हूं, जिन्हें घर की रोटी-दाल देखकर ज्वर आता है। कुछ बेचारियां ऐसी भी हैं, जो अपनी रोटी-दाल में ही मगन रहती हैं। हलवा-पूरी से उन्हें कोई मतलब नहीं। मेरी दोनों भावजों ही को देखो। हमारे भाई काने-कुबड़े नहीं हैं, दस जवानों में एक जवान हैं, लेकिन भावजों को नहीं भाते। उन्हें तो वह चाहिए, जो सोने की बालियां बनवाए, महीन साड़ियां लाए, रोज चाट खिलाए। बालियां और साड़ियां और मिठाइयां मुझे भी कम अच्छी नहीं लगतीं, लेकिन जो कहो कि इसके लिए अपनी लाज बेचती फिरूं तो भगवान् इससे बचाएं। एक के साथ मोटा-झोटा खा-पहनकर उमिर काट देना, बस अपना तो यही राग है। बहुत करके तो मरद ही औरतों को बिगाड़ते हैं। जब मरद इधर-उधर ताक-झांक करेगा तो औरत भी आंख लड़ाएगी। मरद दूसरी औरतों के पीछे दौड़ेगा, तो औरत भी जरूर मरदों के पीछे दौड़ेगी। मरद का हरजाईपन औरत को भी उतना ही बुरा लगता है, जितना औरत का मरद को। यही समझ लो। मैंने तो अपने आदमी से साफ-साफ कह दिया था, अगर तुम इधर-उधर लपके, तो मेरी जो भी इच्छा होगी, वह करूंगी। यह चाहो कि तुम तो अपने मन की करो और औरत को मार के डर से अपने काबू में रखो, तो यह न होगा, तुम खुले-खजाने करते हो, वह छिपकर करेगी, तुम उसे जलाकर सुखी नहीं रह सकते।

गोबर के लिए यह एक नई दुनिया की बातें थीं। तन्मय होकर सुन रहा था। कभी-कभी तो आप-ही-आप उसके पांव रुक जाते, फिर सचेत होकर चलने लगता। झुनिया ने पहले अपने रूप से मोहित किया था। आज उसने अपने ज्ञान और अनुभव से भरी बातें और अपने सतीत्व के बखान से मुग्ध कर लिया। ऐसी रूप, गुण, ज्ञान की आगरी उसे मिल जाय, तो धन्य भाग। फिर वह क्यों पंचायत और बिरादरी से डरे?

झुनिया ने जब देख लिया कि उसका गहरा रंग जम गया, तो छाती पर हाथ रख कर जीभ दांत से काटती हुई बोली—अरे, यह तो तुम्हारा गांव आ गया। तुम भी बड़े मुरहे हो, मुझसे कहा भी नहीं कि लौट जाओ।

यह कहकर वह लौट पड़ी।

गोबर ने आग्रह करके कहा—एक छन के लिए मेरे घर क्यों नहीं चली चलती? अम्मा भी तो देख लें।

झुनिया ने लज्जा से आंखें चुराकर कहा—तुम्हारे घर यों न जाऊंगी। मुझे तो यही अचरज होता है कि मैं इतनी दूर कैसे आ गई। अच्छा बताओ, अब कब आओगे? रात को मेरे द्वार पर अच्छी संगत होगी। चले आना, मैं अपने पिछवाड़े मिलूंगी।

'और जो न मिली?'

'तो लौट जाना।'

'तो फिर मैं न आऊंगा।'

'आना पड़ेगा, नहीं कहे देती हूं।'

'तुम भी बचन दो कि मिलोगी?'

'मैं बचन नहीं देती।'

'तो मैं भी नहीं आता।'

'मेरी बला से।'

झुनिया अंगूठा दिखाकर चल दी। प्रथम-मिलन में ही दोनों एक-दूसरे पर अपना-अपना अधिकार जमा चुके थे। झुनिया जानती थी, वह आएगा, कैसे न आएगा? गोबर जानता था, वह मिलेगी, कैसे न मिलेगी?

जब वह अकेला गाय को हांकता हुआ चला, तो ऐसा लगता था, मानो स्वर्ग से गिर पड़ा है।

छह

जेठ की उदास और गर्म संध्या सेमरी की सड़कों और गलियों में, पानी के छिड़काव से शीतल और प्रसन्न हो रही थी। मंडप के चारों तरफ फूलों और पौधों के गमले सजा दिए गए थे और बिजली के पंखे चल रहे थे। रायसाहब अपने कारखाने में बिजली बनवा लेते थे। उनके सिपाही पीली वर्दियां डाटे, नीले साफे बांधे, जनता पर रोब जमाते फिरते थे। नौकर उजले कुरते पहने और केसरिया पा. . बांधे, मेहमानों और मुखियों का आदर-सत्कार कर रहे थे। उसी वक्त एक मोटर सिंह-द्वार के सामने आकर रुकी और उसमें से तीन महानुभाव उतरे। वह जो खद्दर का कुरता और चप्पल पहने हुए हैं, उनका नाम पंडित ओंकारनाथ है। आप दैनिक-पत्र 'बिजली' के यशस्वी संपादक हैं, जिन्हें देश-चिंता ने घुला डाला है। दूसरे महाशय जो कोट-पैंट में हैं, वह हैं तो वकील, पर वकालत न चलने के कारण एक बीमा-कंपनी की दलाली करते हैं और ताल्लुकेदारों को महाजनों और बैंकों से कर्ज दिलाने में वकालत से कहीं ज्यादा कमाई करते हैं। इनका नाम है श्यामबिहारी तंखा और तीसरे सज्जन जो रेशमी अचकन और तंग पाजामा पहने हुए हैं, मिस्टर बी॰ मेहता, युनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के अध्यापक हैं। ये तीनों सज्जन रायसाहब के सहपाठियों में हैं और शगुन के उत्सव पर निमंत्रित हुए हैं। आज सारे इलाके के असामी आएंगे और शगुन के रुपये भेंट करेंगे। रात को धनुष-यज्ञ होगा और मेहमानों की दावत होगी। होरी ने पांच रुपये शगुन के दे दिए हैं और एक गुलाबी मिर्जई पहने, गुलाबी पगड़ी बांधे, घुटने तक काछनी काछे, हाथ में एक खुरपी लिए और मुख पर पाउडर लगवाए राजा जनक का माली बन गया है और गरूर से इतना फूल उठा है, मानो यह सारा उत्सव उसी के पुरुषार्थ से हो रहा है।

रायसाहब ने मेहमानों का स्वागत किया। दोहरे बदन के ऊंचे आदमी थे, गठा हुआ शरीर, तेजस्वी चेहरा, ऊंचा माथा, गोरा रंग, जिस पर शर्बती रेशमी चादर खूब खिल रही थी।

पंडित ओंकारनाथ ने पूछा—अबकी कौन-सा नाटक खेलने का विचार है? मेरे रस की तो यहां वही एक वस्तु है।

रायसाहब ने तीनों सज्जनों को अपनी रावटी के सामने कुर्सियों पर बैठाते हुए कहा—पहले तो धनुष-यज्ञ होगा, उसके बाद एक प्रहसन। नाटक कोई अच्छा न मिला। कोई तो इतना लंबा कि शायद पांच घंटों में भी खत्म न हो और कोई इतना क्लिष्ट कि शायद यहां एक व्यक्ति भी उसका अर्थ न समझे। आखिर मैंने स्वयं एक प्रहसन लिख डाला, जो दो घंटों में पूरा हो जायगा।

ओंकारनाथ को रायसाहब की रचना-शक्ति में बहुत संदेह था। उनका ख्याल था कि प्रतिभा तो गरीबों ही में चमकती है दीपक की भांति, जो अंधेरे ही में अपना प्रकाश दिखाता है। उपेक्षा के साथ, जिसे छिपाने की भी उन्होंने चेष्टा नहीं की, पंडित ओंकारनाथ ने मुंह फेर लिया।

मिस्टर तंखा इन बेमतलब की बातों में न पड़ना चाहते थे, फिर भी रायसाहब को दिखा देना चाहते थे कि इस विषय में उन्हें कुछ बोलने का अधिकार है। बोले—नाटक कोई भी अच्छा हो सकता है, अगर उसके अभिनेता अच्छे हों। अच्छा-से-अच्छा नाटक बुरे अभिनेताओं के हाथ में पड़कर बुरा हो सकता है। जब तक स्टेज पर शिक्षित अभिनेत्रियां नहीं आतीं, हमारी नाट्यकला का उद्धार नहीं हो सकता। अबकी तो आपने कौंसिल में प्रश्नों की धूम मचा दी। मैं तो दावे के साथ कह सकता हूं कि किसी मेंबर का रिकार्ड इतना शानदार नहीं है।

दर्शन के अध्यापक मिस्टर मेहता इस प्रशंसा को सहन न कर सकते थे। विरोध तो करना चाहते थे, पर सिद्धांत की आड़ में। उन्होंने हाल ही में एक पुस्तक कई साल के परिश्रम से लिखी थी। उसकी जितनी धूम होनी चाहिए थी, उसकी शतांश भी नहीं हुई थी। इससे बहुत दुखी थे। बोले—भई, मैं प्रश्नों का कायल नहीं। मैं चाहता हूं, हमारा जीवन हमारे सिद्धांतों के अनुकूल हो। आप कृषकों के शुभेच्छु हैं, उन्हें तरह-तरह की रियायत देना चाहते हैं, जमींदारों के अधिकार छीन लेना चाहते हैं, बल्कि उन्हें आप समाज का श्राप कहते हैं, फिर भी आप जमींदार हैं, वैसे ही जमींदार जैसे हजारों और जमींदार हैं। अगर आपकी धारणा है कि कृषकों के साथ रियायत होनी चाहिए, तो पहले आप खुद शुरू करें—काश्तकारों को बगैर नजराने लिए पट्टे लिख दें, बेगार बंद कर दें, इजाफा लगान को तिलांजलि दे दें, चरावर जमीन छोड़ दें। मुझे उन लोगों से जरा भी हमदर्दी नहीं है, जो बातें तो करते हैं कम्युनिस्टों की-सी, मगर जीवन है रईसों का-सा, उतना ही विलासमय, उतना ही स्वार्थ से भरा हुआ।

रायसाहब को आघात पहुंचा। वकील साहब के माथे पर बल पड़ गए और संपादकजी के मुंह में जैसे कालिख लग गई। वह खुद समष्टिवाद के पुजारी थे, पर सीधे घर में आग न लगाना चाहते थे।

तंखा ने रायसाहब की वकालत की—मैं समझता हूं, रायसाहब का अपने असामियों के साथ जितना अच्छा व्यवहार है, अगर सभी जमींदार वैसे ही हो जायं, तो यह प्रश्न ही न रहे।

मेहता ने हथौड़े की दूसरी चोट जमाई—मानता हूं, आपका अपने असामियों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव है, मगर प्रश्न यह है कि उसमें स्वार्थ है या नहीं। इसका एक कारण क्या यह नहीं हो सकता कि मद्धिम आंच में भोजन स्वादिष्ट पकता है? गुड़ से मारने वाला जहर से मारने वाले की अपेक्षा कहीं सफल हो सकता है। मैं तो केवल इतना जानता हूं, हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। हैं तो उसका व्यवहार करें, नहीं हैं, तो बकना छोड़ दें। मैं नकली जिंदगी का विरोधी हूं। अगर मांस खाना अच्छा समझते हो तो खुलकर खाओ। बुरा समझते हो, तो मत खाओ, यह तो मेरी समझ में आता है, लेकिन अच्छा समझना और छिपकर खाना, यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं तो इसे कायरता भी कहता हूं और धूर्तता भी, जो वास्तव में एक हैं।

रायसाहब सभा-चतुर आदमी थे। अपमान और आघात को धैर्य और उदारता से सहने

का उन्हें अभ्यास था। कुछ असमंजस में पड़े हुए बोले–आपका विचार बिल्कुल ठीक है मेहता जी। आप जानते हैं, मैं आपकी साफगोई का कितना आदर करता हूं, लेकिन आप यह भूल जाते हैं कि अन्य यात्राओं की भांति विचारों की यात्रा में भी पड़ाव होते हैं, और आप एक पड़ाव को छोड़कर दूसरे पड़ाव तक नहीं जा सकते। मानव-जीवन का इतिहास इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। मैं उस वातावरण में पला हूं, जहां राजा ईश्वर है और जमींदार ईश्वर का मंत्री। मेरे स्वर्गवासी पिता असामियों पर इतनी दया करते थे कि पाले या सूखे में कभी आधा और कभी पूरा लगान माफ कर देते थे। अपने बखार से अनाज निकालकर असामियों को खिला देते थे। घर के गहने बेचकर कन्याओं के विवाह में मदद देते थे, मगर उसी वक्त तक, जब तक प्रजा उनको सरकार और धर्मावतार कहती रहे, उन्हें अपना देवता समझकर उनकी पूजा करती रहे। प्रजा को पालना उनका सनातन धर्म था, लेकिन अधिकार के नाम पर वह कौड़ी का एक दांत भी फोड़कर देना न चाहते थे। मैं उसी वातावरण में पला हूं, और मुझे गर्व है कि मैं व्यवहार में चाहे जो कुछ करूं, विचारों में उनसे आगे बढ़ गया हूं और यह मानने लग गया हूं कि जब तक किसानों को यह रियायतें अधिकार के रूप में न मिलेंगी, केवल सद्‌भावना के आधार पर उनकी दशा सुधार नहीं सकती। स्वेच्छा अगर अपना स्वार्थ छोड़ दे, तो अपवाद है। मैं खुद सद्‌भावना करते हुए भी स्वार्थ नहीं छोड़ सकता और चाहता हूं कि हमारे वर्ग को शासन और नीति के बल से अपना स्वार्थ छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया जाय। इसे आप कायरता कहेंगे, मैं इसे विवशता कहता हूं। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि किसी को भी दूसरों के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं है। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। कर्म करना प्राणिमात्र का धर्म है। समाज की ऐसी व्यवस्था, जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें और खपें कभी सुखद नहीं हो सकती। पूंजी और शिक्षा, जिसे मैं पूंजी ही का एक रूप समझता हूं, इनका किला जितनी जल्द टूट जाय, उतना ही अच्छा है। जिन्हें पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उनके अफसर और नियोजक दस दस, पांच-पांच हजार फटकारें, यह हास्यास्पद है और लज्जास्पद भी। इस व्यवस्था ने हम जमींदारों में कितनी विलासिता, कितना दुराचार, कितनी पराधीनता और कितनी निर्लज्जता भर दी है, यह मैं खूब जानता हूं, लेकिन मैं इन कारणों से इस व्यवस्था का विरोध नहीं करता। मेरा तो यह कहना है कि अपने स्वार्थ की दृष्टि से भी इसका अनुमोदन नहीं किया जा सकता। इस शान को निभाने के लिए हमें अपनी आत्मा की इतनी हत्या करनी पड़ती है कि हममें आत्माभिमान का नाम भी नहीं रहा। हम अपने असामियों को लूटने के लिए मजबूर हैं। अगर अफसरों को कीमती-कीमती डालियां न दें, तो बागी समझे जायं, शान से न रहें, तो कंजूस कहलाएं। प्रगति की जरा-सी आहट पाते ही हम कांप उठते हैं, और अफसरों के पास फरियाद लेकर दौड़ते हैं कि हमारी रक्षा कीजिए। हमें अपने ऊपर विश्वास नहीं रहा, न पुरुषार्थ ही रह गया। बस, हमारी दशा उन बच्चों की-सी है, जिन्हें चम्मच से दूध पिलाकर पाला जाता है, बाहर से मोटे, अंदर से दुर्बल, सत्वहीन और मोहताज।

मेहता ने ताली बजाकर कहा–हियर, हियर। आपकी जबान में जितनी बुद्धि है, काश उसकी आधी भी मस्तिष्क में होती। खेद यही है कि सब कुछ समझते हुए भी आप अपने विचारों को व्यवहार में नहीं लाते।

ओंकारनाथ बोले–अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता, मिस्टर मेहता। हमें समय के साथ चलना भी है और उसे अपने साथ चलाना भी। बुरे कामों में ही सहयोग की जरूरत नहीं

होती। अच्छे कामों के लिए भी सहयोग उतना ही जरूरी है। आप ही क्यों आठ सौ रुपये महीने हड़पते हैं, जब आपके करोड़ों भाई केवल आठ रुपये में अपना निर्वाह कर रहे हैं?

रायसाहब ने ऊपरी खेद, लेकिन भीतरी संतोष से संपादकजी को देखा और बोले—व्यक्तिगत बातों पर आलोचना न कीजिए संपादकजी। हम यहां समाज की व्यवस्था पर विचार कर रहे हैं।

मिस्टर मेहता उसी ठंडे मन से बोले—नहीं-नहीं, मैं इसे बुरा नहीं समझता। समाज व्यक्ति से ही बनता है। और व्यक्ति को भूलकर हम किसी व्यवस्था पर विचार नहीं कर सकते। मैं इसलिए इतना वेतन लेता हूं कि मेरा इस व्यवस्था पर विश्वास नहीं है।

संपादकजी को अचंभा हुआ—अच्छा, तो आप वर्तमान व्यवस्था के समर्थक हैं?

'मैं इस सिद्धांत का समर्थक हूं कि संसार में छोटे-बड़े हमेशा रहेंगे, और उन्हें हमेशा रहना चाहिए। इसे मिटाने की चेष्टा करना मानव-जाति के सर्वनाश का कारण होगा।'

कुश्ती का जोड़ बदल गया। रायसाहब किनारे खड़े हो गए। संपादकजी मैदान में उतरे—आप बीसवीं शताब्दी में भी ऊंच-नीच का भेद मानते हैं।

'जी हां, मानता हूं और बड़े जोरों से मानता हूं। जिस मत के आप समर्थक हैं, वह भी तो कोई नई चीज नहीं। कब से मनुष्य में ममत्व का विकास हुआ, तभी उस मत का जन्म हुआ। बुद्ध और प्लेटो और ईसा सभी समाज में समता प्रवर्तक थे। यूनान और रोम और सीरियाई, सभी सभ्यताओं ने उसकी परीक्षा की, पर अप्राकृतिक होने के कारण कभी वह स्थायी न बन सकी।'

'आपकी बातें सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है।'

'आश्चर्य अज्ञान का दूसरा नाम है।'

'मैं आपका कृतज्ञ हूं। अगर आप इस विषय पर कोई लेखमाला शुरू कर दें।'

'जी, मैं इतना अहमक नहीं हूं, अच्छी रकम दिलवाइए, तो अलबत्ता।'

'आपने सिद्धांत ही ऐसा लिया है कि खुले खजाने पब्लिक को लूट सकते हैं।'

'मुझमें और आपमें अंतर इतना ही है कि मैं जो कुछ मानता हूं, उस पर चलता हूं। आप लोग मानते कुछ हैं, करते कुछ हैं। धन को आप किसी अन्याय से बराबर फैला सकते हैं। लेकिन बुद्धि को, चरित्र को, रूप को, प्रतिभा को और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर है। छोटे-बड़े का भेद केवल धन से ही तो नहीं होता। मैंने बड़े-बड़े धन कुबेरों को भिक्षुकों के सामने घुटने टेकते देखा है, और आपने भी देखा होगा। रूप के चौखट पर बड़े-बड़े महीप नाक रगड़ते हैं। क्या यह सामाजिक विषमता नहीं है? आप रूस की मिसाल देंगे। वहां इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राजकर्मचारी का रूप ले लिया है। बुद्धि तब भी राज करती थी, अब भी करती है और हमेशा करेगी।'

तश्तरी में पान आ गए थे। रायसाहब ने मेहमानों को पान और इलायची देते हुए कहा—बुद्धि अगर स्वार्थ से मुक्त हो, तो हमें उसकी प्रभुता मानने में कोई आपत्ति नहीं। समाजवाद का यही आदर्श है। हम साधु-महात्माओं के सामने इसीलिए सिर झुकाते हैं कि उनमें त्याग का बल है। इसी तरह हम बुद्धि के हाथ में अधिकार भी देना चाहते हैं, सम्मान भी, नेतृत्व भी, लेकिन संपत्ति किसी तरह नहीं। बुद्धि का अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ चला जाता है, लेकिन उसकी संपत्ति विष बोने के लिए उसके बाद और भी प्रबल हो जाती है। बुद्धि के बगैर किसी समाज का संचालन नहीं हो सकता। हम केवल इस बिच्छू का डंक

तोड़ देना चाहते हैं।

दूसरी मोटर आ पहुंची और मिस्टर खन्ना उतरे, जो एक बैंक के मैनेजर और शक्कर मिल के मैनजिंग डाइरेक्टर हैं। दो देवियां भी उनके साथ थीं। रायसाहब ने दोनों देवियां को उतारा। वह जो खद्दर की साड़ी पहने बहुत गंभीर और विचारशील-सी हैं, मिस्टर खन्ना की पत्नी, कामिनी खन्ना हैं। दूसरी महिला जो ऊंची एड़ी का जूता पहने हुए हैं और जिनकी मुख-छवि पर हंसी फूटी पड़ती है, मिस मालती हैं। आप इंग्लैंड से डाक्टरी पढ़ आई हैं और अब प्रैक्टिस करती हैं। ताल्लुकेदारों के महलों में उनका बहुत प्रवेश है। आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं। गात कोमल, पर चपलता कूट-कूटकर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेक-अप में प्रवीण, बला की हाजिर-जवाब, पुरुष-मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्त्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण। जहां आत्मा का स्थान है, वहां प्रदर्शन, जहां हृदय का स्थान है, वहां हाव-भाव, मनोद्गारों पर कठोर निग्रह, जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया हो।

आपने मिस्टर मेहता से हाथ मिलाते हुए कहा—सच कहती हूं, आप सूरत से ही फिलासफर मालूम होते हैं। इस नई रचना में तो आपने आत्मवादियों को उधेड़कर रख दिया। पढ़ते-पढ़ते कई बार मेरे जी में ऐसा आया कि आपसे लड़ जाऊं। फिलासफरों में सहृदयता क्यों गायब हो जाती है?

मेहता झेंप गए। बिनाब्याहे थे और नवयुग की रमणियों से पनाह मांगते थे। पुरुषों की मंडली में खूब चहकते थे, मगर ज्योंही कोई महिला आई और आपकी जबान बंद हुई, जैसे बुद्धि पर ताला लग जाता था। स्त्रियों से शिष्ट व्यवहार तक करने की सुधि न रहती थी।

मिस्टर खन्ना ने पूछा—फिलासफरों की सूरत में क्या खास बात होती है देवीजी?

मालती ने मेहता की ओर दया-भाव से देखकर कहा—मिस्टर मेहता, बुरा न मानें तो बतला दूं?

खन्ना मिस मालती के उपासकों में थे। जहां मिस मालती जायं, वहां खन्ना का पहुंचना लाजिम था। उनके आस-पास भौंरे की तरह मंडराते रहते थे। हर समय उनकी यही इच्छा रहती थी कि मालती से अधिक से अधिक वही बोलें, उनकी निगाह अधिक से अधिक उन्हीं पर रहे।

खन्ना ने आंख मारकर कहा—फिलासफर किसी की बात का बुरा नहीं मानते। उनकी यही सिफत है।

'तो सुनिए, फिलासफर हमेशा मुर्दा-दिल होते हैं, जब देखिए, अपने विचारों में मगन बैठे हैं। आपकी तरफ ताकेंगे, मगर आपको देखेंगे नहीं, आप उनसे बातें किए जायं, कुछ सुनेंगे नहीं, जैसे शून्य में उड़ रहे हों।'

सब लोगों ने कहकहा मारा। मिस्टर मेहता जैसे जमीन में गड़ गए।

'आक्सफोर्ड में मेरे फिलासफी के प्रोफेसर हसबेंट थे....

खन्ना ने टोका—नाम तो निराला है।

'जी हां, और थे क्वारे....'

'मिस्टर मेहता भी तो क्वारे हैं....

'यह रोग सभी फिलासफरों को होता है।'

अब मेहता को अवसर मिला। बोले—आप भी तो इसी मरज में गिरफ्तार हैं?

'मैंने प्रतिज्ञा की है कि किसी फिलासफर से शादी करूंगी और यह वर्ग शादी के नाम से घबराता है। हसबेंड साहब तो स्त्री को देखकर घर में छिप जाते थे। उनके शिष्यों में कई लड़कियां थीं। अगर उनमें से कोई कभी कुछ पूछने के लिए उनके ऑफिस में चली जाती थी, तो आप ऐसे घबड़ा जाते, जैसे कोई शेर आ गया हो। हम लोग उन्हें खूब छेड़ा करते थे, बेचारे बड़े सरल-हृदय। कई हजार की आमदनी थी, पर मैंने उन्हें हमेशा एक ही सूट पहने देखा। उनकी एक विधवा बहन थी। वही उनके घर का सारा प्रबंध करती थी। मिस्टर हसबेंड को तो खाने की फिक्र ही न रहती थी। मिलने वालों के डर से अपने कमरे का द्वार बंद करके लिखा-पढ़ी करते थे। भोजन का समय आ जाता, तो उनकी बहन आहिस्ता से भीतर के द्वार से उनके पास जाकर किताब बंद कर देती थी, तब उन्हें मालूम होता कि खाने का समय हो गया। रात को भी भोजन का समय बंधा हुआ था। उनकी बहन कमरे की बत्ती बुझा दिया करती थी। एक दिन बहन ने किताब बंद करनी चाही, तो आपने पुस्तक को दोनों हाथों से दबा लिया और बहन-भाई में जोर-आजमाई होने लगी। आखिर बहन उनकी पहिएदार कुर्सी को खींचकर भोजन के कमरे में लाई।'

रायसाहब बोले—मगर मेहता साहब तो बड़े खुशमिजाज और मिलनसार हैं, नहीं इस हंगामे में क्यों आते।

'तो आप फिलासफर न होंगे। जब अपनी चिंताओं से हमारे सिर मे दर्द होने लगता है, तो विश्व की चिंता सिर पर लादकर कोई कैसे प्रसन्न रह सकता है।'

उधर संपादकजी श्रीमती खन्ना से अपनी आर्थिक कठिनाइयों की कथा कह रहे थे—बस यों समझिए श्रीमतीजी, कि संपादक का जीवन एक दीर्घ विलाप है, जिसे सुनकर लोग दया करने के बदले कानों पर हाथ रख लेते हैं। बेचारा न अपना उपकार कर सके, न औरों का। पब्लिक उससे आशा तो यह रखती है कि हरएक आंदोलन में वह सबसे आगे रहे, जेल जाय, मार खाए, घर के माल-असबाब की कुर्की कराए, यह उसका धर्म समझा जाता है, लेकिन उसकी कठिनाइयों की ओर किसी का ध्यान नहीं। हो तो वह सब कुछ। उसे हरएक विद्या, हरएक कला में पारंगत होना चाहिए, लेकिन उसे जीवित रहने का अधिकार नहीं। आप तो आजकल कुछ लिखती ही नहीं। आपकी सेवा करने का जो थोड़ा-सा सौभाग्य मुझे मिल सकता है, उससे मुझे क्यों वंचित रखती हैं?

मिसेज खन्ना को कविता लिखने का शौक था। इस नाते से संपादकजी कभी-कभी उनसे मिल आया करते थे, लेकिन घर के काम-धंधों में व्यस्त रहने के कारण इधर बहुत दिनों से कुछ लिख नहीं सकी थीं। सच बात तो यह है कि संपादकजी ने ही उन्हें प्रोत्साहित करके कवि बनाया था। सच्ची प्रतिभा उनमें बहुत कम थी।

'क्या लिखूं कुछ सूझता ही नहीं। आपने कभी मिस मालती से कुछ लिखने को नहीं कहा?'

संपादकजी उपेक्षा भाव से बोले—उनका समय मूल्यवान है कामिनीदेवी। लिखते तो वह लोग हैं, जिनके अंदर कुछ दर्द है, अनुराग है, लगन है, विचार है। जिन्होंने धन और भोग-विलास को जीवन का लक्ष्य बना लिया, वह क्या लिखेंगे?

कामिनी ने ईर्ष्या-मिश्रित विनोद से कहा—अगर आप उनसे कुछ लिखा सकें, तो आपका प्रचार दुगुना हो जाय। लखनऊ में तो ऐसा कोई रसिक नहीं है, जो आपका ग्राहक न बन जाय।

'अगर धन मेरे जीवन का आदर्श होता, तो आज मैं इस दशा में न होता। मुझे भी धन कमाने की कला आती है। आज चाहूं, तो लाखों कमा सकता हूं, लेकिन यहां तो धन को कभी कुछ समझा ही नहीं। साहित्य की सेवा अपने जीवन का ध्येय है और रहेगा।'

'कम-से-कम मेरा नाम तो ग्राहकों में लिखवा दीजिए।'

'आपका नाम ग्राहकों में नहीं, संरक्षकों में लिखूंगा।'

'संरक्षकों में रानियों-महारानियों को रखिए, जिनकी थोड़ी-सी खुशामद करके आप अपने पत्र को लाभ की चीज बना सकते हैं।'

'मेरी रानी-महारानी आप हैं। मैं तो आपके सामने किसी रानी-महारानी की हकीकत नहीं समझता। जिसमें दया और विवेक है, वही मेरी रानी है। खुशामद से मुझे घृणा है।'

कामिनी ने चुटकी ली—लेकिन मेरी खुशामद तो आप कर रहे हैं संपादकजी।

संपादकजी ने गंभीर होकर श्रद्धापूर्ण स्वर में कहा—यह खुशामद नहीं है देवीजी, हृदय के सच्चे उद्‌गार हैं।

रायसाहब ने पुकारा—संपादकजी, जरा इधर आइएगा। मिस मालती आपसे कुछ कहना चाहती हैं।

संपादकजी की वह सारी अकड़ गायब हो गई। नम्रता और विनय की मूर्ति बने हुए आकर खड़े हो गए' मालती ने उन्हें सदय नेत्रों से देखकर कहा—मैं अभी कह रही थी कि दुनिया में मुझे सबसे ज्यादा डर संपादकों से लगता है। आप लोग जिसे चाहें, एक क्षण में बिगाड़ दें। मुझी से चीफ सेक्रेटरी साहब ने एक बार कहा—अगर मैं इस ब्लडी ओंकारनाथ को जेल में बंद कर सकूं, तो अपने को भाग्यवान समझूं।

ओंकारनाथ की बड़ी-बड़ी मूंछें खड़ी हो गईं। आंखों में गर्व की ज्योति चमक उठी। यों वह बहुत ही शांत प्रकृति के आदमी थे, लेकिन ललकार सुनकर उनका पुरुषत्व उत्तेजित हो जाता था। दृढ़ता-भरे स्वर में बोले—इस कृपा के लिए आपका कृतज्ञ हूं। उस बज़्म (सभा) में अपना जिक्र तो आता है, चाहे किसी तरह आए। आप सेक्रेटरी महोदय से कह दीजिएगा कि ओंकारनाथ उन आदमियों में नहीं है, जो इन धमकियों से डर जाय। उसकी कलम उसी वक्त विश्राम लेगी, जब उसकी जीवन-यात्रा समाप्त हो जायगी। उसने अनीति और स्वेच्छाचार को जड़ से खोदकर फेंक देने का जिम्मा लिया है।

मिस मालती ने और उकसाया—मगर मेरी समझ में आपकी यह नीति नहीं आती कि जब आप मामूली शिष्टाचार से अधिकारियों का सहयोग प्राप्त कर सकते हैं, तो क्यों उनसे कन्नी काटते हैं। अगर आप अपनी आलोचनाओं में आग और विष जरा कम दें, तो मैं वादा करती हूं कि आपको गवर्नमेंट से काफी मदद दिला सकती हूं। जनता को तो आपने देख लिया। उससे अपील की, उसकी खुशामद की, अपनी कठिनाइयों की कथा कही, मगर कोई नतीजा न निकला। अब जरा अधिकारियों को भी आजमा देखिए। तीसरे महीने आप मोटर पर न निकलने लगें, और सरकारी दावतों में निमंत्रित न होने लगें तो मुझे जितना चाहें कोसिएगा। तब यही रईस और नेशनलिस्ट जो आपकी परवा नहीं करते, आपके द्वार के चक्कर लगाएंगे।

ओंकारनाथ अभिमान के साथ बोले—यही तो मैं नहीं कर सकता देवीजी। मैंने अपने सिद्धांतों को सदैव ऊंचा और पवित्र रखा है और जीते-जी उनकी रक्षा करूंगा। दौलत के पुजारी

तो गली-गली मिलेंगे, मैं सिद्धांत के पुजारियों में हूं।

'मैं इसे दंभ कहती हूं।'

'आपकी इच्छा।'

'धन की आपको परवा नहीं है?'

'सिद्धांतों का खून करके नहीं।'

'तो आपके पत्र में विदेशी वस्तुओं के विज्ञापन क्यों होते हैं? मैंने किसी भी दूसरे पत्र में इतने विदेशी विज्ञापन नहीं देखे। आप बनते तो हैं आदर्शवादी और सिद्धांतवादी, पर अपने फायदे के लिए देश का धन विदेश भेजते हुए आपको जरा भी खेद नहीं होता? आप किसी तर्क से इस नीति का समर्थन नहीं कर सकते।'

ओंकारनाथ के पास सचमुच कोई जवाब न था। उन्हें बगलें झांकते देखकर रायसाहब ने उनकी हिमायत की—तो आखिर आप क्या चाहती हैं? इधर से भी मारे जायं, उधर से भी मारे जायं, तो पत्र कैसे चले?

मिस मालती ने दया करना न सीखा था।

'पत्र नहीं चलता तो बंद कीजिए। अपना पत्र चलाने के लिए आपको विदेशी वस्तुओं के प्रचार का कोई अधिकार नहीं। अगर आप मजबूर हैं, तो सिद्धांत का ढोंग छोड़िए। मैं तो सिद्धांतवादी पत्रों को देखकर जल उठती हूं। जी चाहता है, दियासलाई दिखा दूं। जो व्यक्ति कर्म और वचन में सामंजस्य नहीं रख सकता, वह और चाहे जो कुछ हो, सिद्धांतवादी नहीं है।'

मेहता खिल उठा। थोड़ी देर पहले उन्होंने खुद इसी विचार का प्रतिपादन किया था। उन्हें मालूम हुआ कि इस रमणी में विचार की शक्ति भी है, केवल तितली नहीं। संकोच जाता रहा।

'यही बात अभी मैं कह रहा था। विचार और व्यवहार में सामंजस्य का न होना ही धूर्त्तता है, मक्कारी है।'

मिस मालती प्रसन्नमुख से बोली—तो इस विषय में आप और मैं एक हैं, और मैं भी फिलासफर होने का दावा कर सकती हूं।

खन्ना की जीभ में खुजली हो रही थी। बोले—आपका एक-एक अंग फिलासफी में डूबा हुआ है।

मालती ने उनकी लगाम खींची—अच्छा, आपको भी फिलासफी में दखल है। मैं तो समझती थी, आप बहुत पहले अपनी फिलासफी को गंगा में डुबो बैठे। नहीं, आप इतने बैंकों और कंपनियों के डाइरेक्टर न होते।

रायसाहब ने खन्ना को संभाला—तो क्या आप समझती हैं कि फिलासफरों को हमेशा फाकेमस्त रहना चाहिए?

'जी हां। फिलासफर अगर मोह पर विजय न पा सके, तो फिलासफर कैसा?'

'इस लिहाज से तो शायद मिस्टर मेहता भी फिलासफर न ठहरें।'

मेहता ने जैसे आस्तीन चढ़ाकर कहा—मैंने तो कभी यह दावा नहीं किया राय साहब ! मैं तो इतना ही जानता हूं कि जिन औजारों से लोहार काम करता है, उन्हीं औजारों से सोनार नहीं करता। क्या आप चाहते हैं, आम भी उसी दशा में फलें-फूलें जिससे बबूल या ताड़? मेरे

लिए धन केवल उन सुविधाओं का नाम है, जिनसे मैं अपना जीवन सार्थक कर सकूं। धन मेरे लिए फलने-फूलने वाली चीज नहीं, केवल साधन है। मुझे धन की बिल्कुल इच्छा नहीं, आप वह साधन जुटा दें, जिसमें मैं अपनी जीवन को उपयोग कर सकूं।

ओंकारनाथ समष्टिवादी थे। व्यक्ति की इस प्रधानता को कैसे स्वीकार करते?

'इसी तरह हर एक मजदूर कह सकता है कि उसे काम करने की सुविधाओं के लिए एक हजार महीने की जरूरत है।'

'अगर आप समझते हैं कि उस मजदूर के बगैर आपका काम नहीं चल सकता, तो आपको वह सुविधाएं देनी पड़ेंगी। अगर वही काम दूसरा मजदूर थोड़ी-सी मजदूरी में कर दे, तो कोई वजह नहीं कि आप पहले मजदूर की खुशामद करें।'

'अगर मजदूरों के हाथ में अधिकार होता, तो मजदूरों के लिए स्त्री और शराब भी उतनी ही जरूरी सुविधा हो जाती, जितनी फिलासफरों के लिए।'

'तो आप विश्वास मानिए, मैं उनसे ईर्ष्या न करता।'

'जब आपका जीवन सार्थक करने के लिए स्त्री इतनी आवश्यक है, तो आप शादी क्यों नहीं कर लेते?'

मेहता ने नि:संकोच भाव से कहा-इसीलिए कि मैं समझता हूं, मुक्त भोग आत्मा के विकास में बाधक नहीं होता। विवाह तो आत्मा को और जीवन को पिंजरे में बंद कर देता है।

खन्ना ने इसका समर्थन किया-बंधन और निग्रह पुरानी थ्योरियां हैं। नई थ्योरी है मुक्त भोग।

मालती ने चोटी पकड़ी-तो अब मिसेज खन्ना को तलाक के लिए तैयार रहना चाहिए।

'तलाक का बिल तो हो।'

'शायद उसका पहला उपयोग आप ही करेंगे?'

कामिनी ने मालती की ओर विष-भरी आंखों से देखा और मुंह सिकोड़ लिया, मानो कह रही है-खन्ना तुम्हें मुबारक रहें, मुझे परवाह नहीं।

मालती ने मेहता की तरफ देखकर कहा-इस विषय में आपके क्या विचार हैं मिस्टर मेहता?

मेहता गंभीर हो गए। वह किसी प्रश्न पर अपना मत प्रकट करते थे, तो जैसे अपनी सारी आत्मा उसमें डाल देते थे।

'विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूं और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है, न स्त्री को। समझौता करने के पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।'

'तो आप तलाक के विरोधी हैं, क्यों?'

'पक्का।'

'और मुक्त भोग वाला सिद्धांत?'

'वह उनके लिए है, जो विवाह नहीं करना चाहते।'

'अपनी आत्मा का संपूर्ण विकास सभी चाहते हैं, फिर विवाह कौन करे और क्यों करे?'

'इसीलिए कि मुक्ति सभी चाहते हैं, पर ऐसे बहुत कम हैं, जो लोभ से अपना गला छुड़ा

सकें।'

'आप श्रेष्ठ किसे समझते हैं, विवाहित जीवन को या अविवाहित जीवन को?'

'समाज की दृष्टि से विवाहित जीवन को, व्यक्ति की दृष्टि से अविवाहित जीवन को।'

धनुष-यज्ञ का अभिनय निकट था। दस से एक तक धनुष-यज्ञ, एक से तीन तक प्रहसन, यह प्रोगाम था। भोजन की तैयारी शुरू हो गई। मेहमानों के लिए बंगले में रहने का अलग-अलग प्रबंध था। खन्ना-परिवार के लिए दो कमरे रखे गए थे। और भी कितने ही मेहमान आ गए थे। सभी अपने-अपने कमरे में गए और कपड़े बदल-बदलकर भोजनालय में जमा हो गए। यहां छूत-छात का कोई भेद न था। सभी जातियों और वर्णों के लोग साथ भोजन करने बैठे। केवल संपादक ओंकारनाथ सबसे अलग अपने कमरे में फलाहार करने गए। और कामिनी खन्ना को सिरदर्द हो रहा था, उन्होंने भोजन करने से इंकार किया। भोजनालय में मेहमानों की संख्या पच्चीस से कम न थी। शराब भी थी और मांस भी। इस उत्सव के लिए रायसाहब अच्छी किस्म की शराब खासतौर पर खिंचवाते थे? खींची जाती थी दवा के नाम से, पर होती थी खालिस शराब। मांस भी कई तरह के पकते थे, कोफ्ते, कबाब और पुलाव। मुर्ग, मुर्गियां, बकरा, हिरन, तीतर, मोर जिसे जो पसंद हो, वह खाए।

भोजन शुरू हो गया तो मिस मालती ने पूछा—संपादकजी कहां रह गए? किसी को भेजो रायसाहब, उन्हें पकड़ लाएं।

रायसाहब ने कहा—वह वैष्णव हैं, उन्हें यहां बुलाकर क्यों बेचारे का धर्म नष्ट करोगी? बड़ा ही आचारनिष्ठ आदमी है।

'अजी और कुछ न सही, तमाशा तो रहेगा।'

सहसा एक सज्जन को देखकर उसने पुकारा—आप भी तशरीफ रखते हैं मिर्जा खुर्शेद यह काम आपके सुपुर्द। आपकी लियाकत की परीक्षा हो जायगी।

मिर्जा खुर्शेद गोरे-चिट्टे आदमी थे, भूरी-भूरी मूंछें, नीली आंखें, दोहरी देह, चांद के बाल सफाचट। छकलिया अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहने थे। ऊपर से हैट लगा लेते थे। कौंसिल के मेंबर थे, पर अधिकांश समय खर्राटे लेते रहते थे। वोटिंग के समय चौंक पड़ते थे और नेशनलिस्टों की तरफ से वोट देते थे। सूफी मुसलमान थे। दो बार हज कर आए थे, मगर शराब खूब पीते थे। कहते थे, जब हम खुदा का एक हुक्म भी कभी नहीं मानते, तो दीन के लिए क्यों जान दें। बड़े दिल्लगीबाज, बेफिक्रे जीव थे। पहले बसरे में ठीके का कारोबार करते थे। लाखों कमाए, मगर शामत आई कि एक मेम से आशनाई कर बैठे। मुकदमेबाजी हुई। जेल जाते-जाते बचे। चौबीस घंटे के अंदर मुल्क से निकल जाने का हुक्म हुआ। जो कुछ जहां था, वहीं छोड़ा, और सिर्फ पचास हजार लेकर भाग खड़े हुए। बंबई में उनके एजेंट थे। सोचा था, उनसे हिसाब-किताब कर लें और जो कुछ निकलेगा, उसी में जिंदगी काट देंगे, मगर एजेंटों ने जाल करके उनसे वह पचास हजार भी ऐंठ लिए। निराश होकर वहां से लखनऊ चले। गाड़ी में एक महात्मा से साक्षात् हुआ। महात्माजी ने उन्हें सब्जबाग दिखाकर उनकी घड़ी, अंगूठियां, रुपये सब उड़ा लिए। बेचारे लखनऊ पहुंचे तो देह के कपड़ों के सिवा कुछ न था। राय साहब से पुरानी मुलाकात थी। कुछ उनकी मदद से और कुछ अन्य मित्रों की मदद से एक जूते की दूकान खोल ली। वह अब लखनऊ की सबसे चलती हुई जूते की दूकान थी, चार-पांच सौ रोज की बिक्री थी। जनता को उन पर थोड़े ही

दिनों में इतना विश्वास हो गया कि एक बड़े भारी मुस्लिम ताल्लुकेदार को नीचा दिखाकर कौंसिल में पहुंच गए।

अपनी जगह पर बैठे-बैठे बोले—जी नहीं, मैं किसी का दीन नहीं बिगाड़ता। यह काम आपको खुद करना चाहिए। मजा तो जब है कि आप उन्हें शराब पिलाकर छोड़ें। यह आपके हुस्न के जादू की आजमाइश है।

चारों तरफ से आवाजें आईं—हां-हां, मिस मालती, आज अपना कमाल दिखाइए। मालती ने मिर्जा को ललकारा—कुछ इनाम दोगे?

'सौ रुपये की एक थैली।'

'हुश! सौ रुपये! लाख रुपये का धर्म बिगाड़ूं सौ के लिए।'

'अच्छा, आप खुद अपनी फीस बताइए।'

'एक हजार, कौड़ी कम नहीं।'

'अच्छा, मंजूर।'

'जी नहीं, लाकर मेहताजी के हाथ में रख दीजिए।'

मिर्जाजी ने तुरंत सौ रुपये का नोट जेब से निकाला और उसे दिखाते हुए खड़े होकर बोले—भाइयो! यह हम सब मरदों की इज्जत का मामला है। अगर मिस मालती की फरमाइश न पूरी हुई, तो हमारे लिए कहीं मुंह दिखाने की जगह न रहेगी। अगर मेरे पास रुपये होते, तो मैं मिस मालती की एक एक अदा पर एक-एक लाख कुरबान कर देता। एक पुराने शायर ने अपने माशूक के एक काले तिल पर समरकन्द और बोखारा के सूबे कुरबान कर दिए थे। आज आप सभी साहबों की जवांमरदी और हुस्नपरस्ती का इम्तहान है। जिसके पास जो कुछ हो, सच्चे सूरमा की तरह निकालकर रख दे। आपको इल्म की कसम, माशूक की अदाओं की कसम, अपनी इज्जत की कसम, पीछे कदम न हटाइए। मरदो! रुपये खर्च हो जायंगे, नाम हमेशा के लिए रह जायगा। ऐसा तमाशा लाखों में भी सस्ता है। देखिए, लखनऊ के हसीनों की रानी एक ज़ाहिद पर अपने हुस्न का मंत्र कैसे चलाती है?

भाषण समाप्त करते ही मिर्जाजी ने हर एक की जेब की तलाशी शुरू कर दी। पहले मिस्टर खन्ना की तलाशी हुई। उनकी जेब से पांच रुपये निकले।

मिर्जा ने मुंह फीका करके कहा—वाह खन्ना साहब, वाह! नाम बड़े दर्शन थोड़े, इतनी कंपनियों के डाइरेक्टर, लाखों की आमदनी और आपके जेब में पांच रुपये। लाहौल विला कूबत! कहां हैं मेहता? आप जरा जाकर मिसेज खन्ना से कम-से कम सौ रुपये वसूल कर लाएं।

खन्ना खिसियाकर बोले—अजी, उनके पास एक पैसा भी न होगा। कौन जानता था कि यहां आप तलाशी लेना शुरू करेंगे?

'खैर, आप खामोश रहिए। हम अपनी तकदीर तो आजमा लें।'

'अच्छा, तो मैं जाकर उनसे पूछता हूं।'

'जी नहीं, आप यहां से हिल नहीं सकते। मिस्टर मेहता, आप फिलासफर हैं, मनोविज्ञान के पंडित। देखिए, अपनी भद न कराइएगा।'

मेहता शराब पीकर मस्त हो जाते थे। उस मस्ती में उनका दर्शन उड़ जाता था और विनोद सजीव हो जाता था। लपककर मिसेज खन्ना के पास गए और पांच मिनट ही में मुंह लटकाए

लौट आए।

मिर्जा ने पूछा—अरे, क्या खाली हाथ?

रायसाहब हंसे—काजी के घर चूहे भी सयाने।

मिर्जा ने कहा—हो बड़े खुशनसीब खन्ना, खुदा की कसम।

मेहता ने कहकहा मारा और जेब से सौ-सौ रुपये के पांच नोट निकाले।

मिर्जा ने लपककर उन्हें गले लगा लिया।

चारों तरफ से आवाजें आने लगीं—कमाल है, मानता हूं उस्ताद, क्यों न हो, फिलासफर ही जो ठहरे।

मिर्जा ने नोटों को आंखों से लगाकर कहा—भई मेहता, आज से मैं तुम्हारा शागिर्द हो गया। बताओ, क्या जादू मारा?

मेहता अकड़कर, लाल-लाल आंखों से ताकते हुए बोले—अजी, कुछ नहीं। ऐसा कौन-सा बड़ा काम था। जाकर पूछा, अंदर आऊं? बोलीं—आप हैं मेहताजी, आइए। मैंने अंदर जाकर कहा, वहां लोग ब्रिज खेल रहे हैं। मिस मालती पांच सौ रुपये हार गई हैं और अपनी अंगूठी बेच रही हैं। अंगूठी एक हजार से कम की नहीं है। आपने तो देखा है। बस वही। आपके पास रुपये हों, तो पांच सौ रुपये देकर एक हजार की चीज ले लीजिए। ऐसा मौका फिर न मिलेगा। मिस मालती ने इस वक्त रुपये न दिए, तो बेदाग निकल जायंगी। पीछे से कौन देता है, शायद इसीलिए उन्होंने अंगूठी निकाली है कि पांच सौ रुपये किसके पास धरे होंगे। मुस्कराई और चट अपने बटुवे से पांच नोट निकालकर दे दिए, और बोलीं—मैं बिना कुछ लिए घर से नहीं निकलती। न जाने कब क्या जरूरत पड़े।

खन्ना खिसियाकर बोले—जब हमारे प्रोफेसरों का यह हाल है, तो यूनिवर्सिटी का ईश्वर ही मालिक है।

खुर्शेद ने घाव पर नमक छिड़का—अरे, तो ऐसी कौन-सी बड़ी रकम है, जिसके लिए आपका दिल बैठा जाता है। खुदा झूठ न बुलवाए तो यह आपकी एक दिन की आमदनी है। समझ लीजिएगा, एक दिन बीमार पड़ गए, और जायगा भी तो मिस मालती ही के हाथ में। आपके दर्दे जिगर की दवा मिस मालती ही के पास तो है।

मालती ने ठोकर मारी—देखिए मिर्जाजी, तबेले में लतिआहुज अच्छी नहीं।

मिर्जा ने दुम हिलाई—कान पकड़ता हूं देवीजी।

मिस्टर तंखा की तलाशी हुई। मुश्किल से दस रुपये निकले, मेहता की जेब से केवल अठन्नी निकली। कई सज्जनों ने एक-एक, दो-दो रुपये खुद दिए। हिसाब जोड़ा गया, तो तीन सौ की कमी थी। यह कमी रायसाहब ने उदारता के साथ पूरी कर दी।

संपादकजी ने मेवे और फल खाए थे और जरा कमर सीधी कर रहे थे कि रायसाहब ने जाकर कहा—आपको मिस मालती याद कर रही हैं।

खुश होकर बोले—मिस मालती मुझे याद कर रही हैं, धन्य-भाग! रायसाहब के साथ ही हाल में आ विराजे।

उधर नौकरों ने मेजें साफ कर दी थीं। मालती ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया।

संपादकजी ने नम्रता दिखाई—बैठिए, तकल्लुफ न कीजिए। मैं इतना बड़ा आदमी नहीं हूं।

मालती ने श्रद्धा-भरे स्वर में कहा—आप तकल्लुफ समझते होंगे, मैं समझती हूं, मैं अपना सम्मान बढ़ा रही हूं, यों आप अपने को कुछ न समझें और आपको शोभा भी यही देता है, लेकिन यहां जितने सज्जन जमा हैं, सभी आपकी राष्ट्र और साहित्य-सेवा से भली-भांति परिचित हैं। आपने इस क्षेत्र में जो महत्त्वपूर्ण काम किया है, अभी चाहे लोग उसका मूल्य न समझें, लेकिन वह समय बहुत दूर नहीं है—मैं तो कहती हूं वह समय आ गया है—जब हर एक नगर में आपके नाम की सड़कें बनेंगी, क्लब बनेंगे, टाऊनहालों में आपके चित्र लटकाए जाएंगे। इस वक्त जो थोड़ी बहुत जागृति है, वह आप ही के महान् उद्योगों का प्रसाद है। आपको यह जानकर आनंद होगा कि देश में अब आपके ऐसे अनुयायी पैदा हो गए हैं, जो आपके देहात-सुधार आंदोलन में आपका हाथ बंटाने को उत्सुक हैं, और उन सज्जनों की बड़ी इच्छा है कि यह काम संगठित रूप से किया जाय और एक देहात सुधार-संघ स्थापित किया जाय, जिसके आप सभापति हों।

ओंकारनाथ के जीवन में यह पहला अवसर था कि उन्हें चोटी के आदमियों में इतना सम्मान मिले। यों वह कभी-कभी आम जलसों में बोलते थे और कई सभाओं के मंत्री और उपमंत्री भी थे, लेकिन शिक्षित-समाज ने अब तक उनकी उपेक्षा ही की थी। उन लोगों में वह किसी तरह मिल न पाते थे, इसलिए आम जलसों में उनकी निष्क्रियता और स्वार्थांधता की शिकायत किया करते थे, और अपने पत्र में एक-एक को रगेदते थे। कलम तेज थी, वाणी कठोर, साफगोई की जगह उच्छृंखलता कर बैठते थे, इसीलिए लोग उन्हें खाली ढोल समझते थे। उसी समाज में आज उनका इतना सम्मान! कहां हैं आज 'स्वराज' और 'स्वाधीन भारत' और 'हंटर' के संपादक, आकर देखें और अपना कलेजा ठंडा करें। आज अवश्य ही देवताओं की उन पर कृपादृष्टि है। सदुद्योग कभी निष्फल नहीं जाता, यह ऋषियों का वाक्य है। वह स्वयं अपनी नजरों में उठ गए। कृतज्ञता से पुलकित होकर बोले—देवीजी, आप तो मुझे कांटों में घसीट रही हैं। मैंने तो जनता की जो कुछ भी सेवा की, अपना कर्त्तव्य समझकर की। मैं इस सम्मान को व्यक्ति का सम्मान नहीं, उस उद्देश्य का सम्मान समझ रहा हूं, जिसके लिए मैंने अपना जीवन अर्पित कर दिया है, लेकिन मेरा नम्र-निवेदन है कि प्रधान का पद किसी प्रभावशाली पुरुष को दिया जाय, मैं पदों में विश्वास नहीं रखता। मैं तो सेवक हूं और सेवा करना चाहता हूं।

मिस मालती इसे किसी तरह स्वीकार नहीं कर सकतीं। सभापति पंडितजी को बनना पड़ेगा। नगर में उसे ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति दूसरा नहीं दिखाई देता। जिसकी कलम में जादू है, जिसकी जबान में जादू है, जिसके व्यक्तित्व में जादू है, वह कैसे कहता है कि वह प्रभावशाली नहीं है। वह जमाना गया, जब धन और प्रभाव में मेल था। अब प्रतिभा और प्रभाव के मेल का युग है। संपादकजी को यह पद अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। मंत्री मिस मालती होंगी। इस सभा के लिए एक हजार का चंदा भी हो गया है और अभी तो सारा शहर और प्रान्त पड़ा हुआ है। चार-पांच लाख मिल जाना मामूली बात है।

ओंकारनाथ पर कुछ नशा-सा चढ़ने लगा। उनके मन में जो एक प्रकार की फुरहरी-सी उठ रही थी, उसने गंभीर उत्तरदायित्व का रूप धारण कर लिया। बोले—मगर यह आप समझ लें, मिस मालती, कि यह बड़ी जिम्मेदारी का काम है और आपको अपना बहुत समय देना पड़ेगा। मैं अपनी तरफ से आपको विश्वास दिलाता हूं कि आप सभा-भवन में मुझे सबसे पहले

मौजूद पाएंगी।

मिर्जाजी ने पुचारा दिया—आपका बड़े-से-बड़ा दुश्मन भी यह नहीं कह सकता कि आप अपना फर्ज अदा करने में कभी किसी से पीछे रहे।

मिस मालती ने देखा, शराब कुछ-कुछ असर करने लगी है, तो और भी गंभीर बनकर बोलीं—अगर हम लोग इस काम की महानता न समझते, तो न यह सभा स्थापित होती और न आप इसके सभापति होते। हम किसी रईस या ताल्लुकेदार को सभापति बनाकर धन खूब बटोर सकते हैं, और सेवा की आड़ में स्वार्थ सिद्ध कर सकते हैं, लेकिन यह हमारा उद्देश्य नहीं। हमारा एकमात्र उद्देश्य जनता की सेवा करना है। और उसका सबसे बड़ा साधन आपका पत्र है। हमने निश्चय किया है कि हर एक नगर और गांव में उसका प्रचार किया जाय और जल्द-से-जल्द उसकी ग्राहक-संख्या को बीस हजार तक पहुंचा दिया जाय। प्रान्त की सभी म्युनिसिपैलिटियों और जिला बोर्डों के चेयरमैन हमारे मित्र हैं। कई चेयरमैन तो यहीं विराजमान हैं। अगर हर एक ने पांच-पांच सौ प्रतियां भी ले लीं, तो पचीस हजार प्रतियां तो आप यकीनी समझें। फिर रायसाहब और मिर्जा साहब की यह सलाह है कि कौंसिल में इस विषय का एक प्रस्ताव रखा जाय कि प्रत्येक गांव के लिए 'बिजली' की एक प्रति सरकारी तौर पर मगाई जाय, या कुछ वार्षिक सहायता स्वीकार की जाय और हमें पूरा विश्वास है कि यह प्रस्ताव पास हो जायगा।

ओंकारनाथ ने जैसे नशे में झूमते हुए कहा—हमें गवर्नर के पास डेपुटेशन ले जाना होगा।

मिर्जा खुर्शेद बोले—जरूर-जरूर।

'उनसे कहना होगा कि किसी सभ्य शासन के लिए यह कितनी लज्जा और कलंक की बात है कि ग्रामोत्थान का अकेला पत्र होने पर भी 'बिजली' का अस्तित्व तक नहीं स्वीकार किया जाता।'

मिर्जा खुर्शेद ने कहा—अवश्य-अवश्य।

'मैं गर्व नहीं करता। अभी गर्व करने का समय नहीं आया, लेकिन मुझे इसका दावा है कि ग्राम्य-संगठन के लिए 'बिजली' ने जितना उद्योग किया है....'

मिस्टर मेहता ने सुधारा—नहीं महाशय, तपस्या कहिए।

'मैं मिस्टर मेहता को धन्यवाद देता हूं। हां, इसे तपस्या ही कहना चाहिए, बड़ी कठोर तपस्या। 'बिजली' ने जो तपस्या की है, वह इस प्रांत के ही नहीं, इस राष्ट्र के इतिहास में अभूतपूर्व है।'

मिर्जा खुर्शेद बोले—जरूर-जरूर।

मिस मालती ने एक पेग और दिया—हमारे संघ ने यह निश्चय भी किया है कि कौंसिल में अब की जो जगह खाली हो, उसके लिए आपका उम्मेदवार खड़ा किया जाय। आपको केवल अपनी स्वीकृति देनी होगी। शेष सारा काम लोग कर लेंगे। आपको न खर्च से मतलब, न प्रोपेगेंडा, न दौड़-धूप से।

ओंकारनाथ की आंखों की ज्योति दुगुनी हो गई। गर्वपूर्ण नम्रता से बोले—मैं आप लोगों का सेवक हूं, मुझसे जो काम चाहे ले लीजिए।

'हम लोगों को आपसे ऐसी ही आशा है। हम अब तक झूठे देवताओं के सामने नाक रगड़ते-रगड़ते हार गए और कुछ हाथ न लगा। अब हमने आपमें सच्चा पथ-प्रदर्शक, सच्चा

गुरु पाया है। और इस शुभ दिन के आनंद में आज हमें एकमन, एकप्राण होकर अपने अहंकार को, अपने दंभ को तिलांजलि दे देनी चाहिए। हममें आज से कोई ब्रह्मण नहीं है, कोई शूद्र नहीं है, कोई हिन्दू नहीं है, कोई मुसलमान नहीं है, कोई ऊंच नहीं है, कोई नीच नहीं है। हम सब एक ही माता के बालक, एक ही गोद के खेलने वाले, एक ही थाली के खाने वाले भाई हैं। जो लोग भेद-भाव में विश्वास रखते हैं, जो लोग पृथकता और कट्टरता के उपासक हैं, उनके लिए हमारी सभा में स्थान नहीं है। जिस सभा के सभापति पूज्य ओंकारनाथ जैसे विशाल-हृदय व्यक्ति हों, उस सभा में ऊंच-नीच का, खान-पान का और जाति-पांति का भेद नहीं हो सकता। जो महानुभाव एकता में और राष्ट्रीयता में विश्वास न रखते हों, वे कृपा करके यहां से उठ जायं।

रायसाहब ने शंका की—मेरे विचार में एकता का यह आशय नहीं है कि सब लोग खान-पान का विचार छोड़ दें। मैं शराब नहीं पीता, तो क्या मुझे इस सभा से अलग हो जाना पड़ेगा?

मालती ने निर्मम स्वर में कहा—बेशक अलग हो जाना पड़ेगा। आप इस संघ में रहकर किसी तरह का भेद नहीं रख सकते।

मेहताजी ने घड़े को ठोंका—मुझे संदेह है कि हमारे सभापतिजी स्वयं खान-पान की एकता में विश्वास नहीं रखते हैं।

ओंकारनाथ का चेहरा जर्द पड़ गया। इस बदमाश ने यह क्या बेवक्त की शहनाई बजा दी। दुष्ट कहीं गड़े मुर्दे न उखाड़ने लगे, नहीं यह सारा सौभाग्य स्वप्न की भांति शून्य में विलीन हो जायगा।

मिस मालती ने उनके मुंह की ओर जिज्ञासा की दृष्टि से देखकर दृढ़ता से कहा—आपका संदेह निराधार है मेहता महोदय। क्या आप समझते हैं कि राष्ट्र की एकता का ऐसा अनन्य उपासक, ऐसा उदारचेता पुरुष, ऐसा रसिक कवि इस निरर्थक और लज्जाजनक भेद को मान्य समझेगा? ऐसी शंका करना उसकी राष्ट्रीयता का अपमान करना है।

ओंकारनाथ का मुख-मंडल प्रदीप्त हो गया। प्रसन्नता और संतोष की आभा झलक पड़ी।

मालती ने उसी स्वर में कहा—और इससे भी अधिक उनकी पुरुष-भावना का। एक रमणी के हाथों से शराब का प्याला पाकर वह कौन भद्र पुरुष होगा, जो इंकार कर दे? यह तो नारी-जाति का अपमान होगा, उस नारी-जाति का, जिसके नयन-बाणों से अपने हृदय को बिंधवाने की लालसा पुरुष-मात्र में होती है, जिसकी अदाओं पर मर-मिटने के लिए बड़े-बड़े महीप लालायित रहते हैं। लाइए, बोतल और प्याले, और दौर चलने दीजिए। इस महान् अवसर पर, किसी तरह की शंका, किसी तरह की आपत्ति राष्ट्र-द्रोह से कम नहीं। पहले हम अपने सभापति की सेहत का जाम पीएंगे।

बर्फ, शराब और सोडा पहले ही से तैयार था। मालती ने ओंकारनाथ को अपने हाथों से लाल विष से भरा हुआ ग्लास दिया, और उन्हें कुछ ऐसी जादू-भरी चितवन से देखा कि उनकी सारी निष्ठा, सारी वर्ण-श्रेष्ठता काफूर हो गई। मन ने कहा—सारा आचार-विचार परिस्थितियों के अधीन है। आज तुम दरिद्र हो, किसी मोटरकार को धूल उड़ाते देखते हो, तो ऐसा बिगड़ते हो कि उसे पत्थरों से चूर-चूर कर दो, लेकिन क्या तुम्हारे मन में कार की लालसा नहीं है? परिस्थिति ही विधि है और कुछ नहीं। बाप-दादों ने नहीं पी थी, न पी हो। उन्हें ऐसा

अवसर ही कब मिला था? उनकी जीविका पोथी-पत्रों पर थी। शराब लाते कहां से, और पीते भी तो जाते कहां? फिर वह तो रेलगाड़ी पर न चढ़ते थे, कल का पानी न पीते थे, अंग्रेजी पढ़ना पाप समझते थे। समय कितना बदल गया है। समय के साथ अगर नहीं चल सकते, तो वह तुम्हें पीछे छोड़कर चला जायगा। ऐसी महिला के कोमल हाथों से विष भी मिले, तो शिरोधार्य करना चाहिए। जिस सौभाग्य के लिए बड़े-बड़े राजे तरसते हैं, वह आज उनके सामने खड़ा है। क्या वह उसे ठुकरा सकते हैं?

उन्होंने ग्लास ले लिया और सिर झुकाकर अपनी कृतज्ञता दिखाते हुए एक ही सांस में पी गए और तब लोगों को गर्व भरी आंखों से देखा, मानो कह रहे हों, अब तो आपको मुझ पर विश्वास आया। क्या समझते हैं, मैं निरा पोंगा पंडित हूं। अब तो मुझे दंभी और पाखंडी कहने का साहस नहीं कर सकते?

हाल में ऐसा शोरगुल मचा कि कुछ न पूछो, जैसे पिटारे में बंद कहकहे निकल पड़े हों। वाह देवीजी! क्या कहना है! कमाल है मिस मालती, कमाल है। तोड़ दिया, नमक का कानून तोड़ दिया, धर्म का किला तोड़ दिया, नेम का घड़ा फोड़ दिया!

ओंकारनाथ के कंठ के नीचे शराब का पहुंचना था कि उनकी रसिकता वाचाल हो गई। मुस्कराकर बोले—मैंने अपने धर्म की थाती मिस मालती के कोमल हाथों में सौंप दी और मुझे विश्वास है, वह उसकी यथोचित रक्षा करेंगी। उनके चरण-कमलों के इस प्रसाद पर मैं ऐसे एक हजार धर्मों को न्योछावर कर सकता हूं।

कहकहों से हाल गूंज उठा।

संपादकजी का चेहरा फूल उठा था, आंखें झुकी पड़ती थीं। दूसरा ग्लास भरकर बोले—यह मिल मालती की सेहत का जाम है। आप लोग पिएं और उन्हें आशीर्वाद दें।

लोगों ने फिर अपने-अपने ग्लास खाली कर दिए।

उसी वक्त मिर्जा खुर्शेद ने एक माला लाकर संपादकजी के गले में डाल दी और बोले—सज्जनो, फिदवी ने अभी अपने पूज्य सदर साहब की शान में एक कसीदा कहा है। आप लोगों की इजाजत हो तो सुनाऊं।

चारों तरफ से आवाजें आईं—हां-हां, जरूर सुनाइए।

ओंकारनाथ भंग तो आए दिन पिया करते थे और उनका मस्तिष्क उसका अभ्यस्त हो गया था, मगर शराब पीने का उन्हें यह पहला अवसर था। भंग का नशा मंथर गति से एक स्वप्न की भांति आता था और मस्तिष्क पर मेघ के समान छा जाता था। उनकी चेतना बनी रहती थी। उन्हें खुद मालूम होता था कि इस समय उनकी वाणी बड़ी लच्छेदार है, और उनकी कल्पना बहुत प्रबल। शराब का नशा उनके ऊपर सिंह की भांति झपटा और दबोच बैठा। वह कहते कुछ हैं, मुंह से निकलता कुछ है। फिर यह ज्ञान भी जाता रहा। वह क्या कहते हैं और क्या करते हैं, इसकी सुधि ही न रही। यह स्वप्न का रोमानी वैचित्र्य न था, जागृति का वह चक्कर था, जिसमें साकार निराकार हो जाता है।

न जाने कैसे उनके मस्तिष्क में यह कल्पना जाग उठी कि कसीदा पढ़ना कोई बड़ा अनुचित काम है। मेज पर हाथ पटककर बोले—नहीं, कदापि नहीं। यहां कोई कसीदा नईं ओगा, नईं ओगा। हम सभापति हैं। हमारा हुक्म है। हम अबी इस सबा को तोड़ सकते हैं। अबी तोड़ सकते हैं। सभी को निकाल सकते हैं। कोई हमारा कुछ नईं कर सकता। हम सभापति हैं। कोई

दूसरा सभापति नईं है।

मिर्जा ने हाथ जोड़कर कहा—हुजूर, इस कसीदे में तो आपकी तारीफ की गई है।

संपादकजी ने लाल, पर ज्योतिहीन नेत्रों से देखा—तुम हमारी तारीप क्यों की? क्यों की? बोलो, क्यों हमारी तारीप की? हम किसी का नौकर नईं है। किसी के बाप का नौकर नईं है, किसी साले का दिया नहीं खाते। हम खुद संपादक है। हम 'बिजली' का संपादक है। हम उसमें सबका तारीप करेगा। देवीजी, हम तुम्हारा तारीप नईं करेगा। हम कोई बड़ा आदमी नईं है। हम सबका गुलाम है। हम आपका चरण-रज है। मालती देवी हमारी लक्ष्मी, हमारी सरस्वती, हमारी राधा....

यह कहते हुए वे मालती के चरणों की तरफ झुके और मुंह के बल फर्श पर गिर पड़े। मिर्जा खुर्शेद ने दौड़कर उन्हें संभाला और कुर्सियां हटाकर वहीं जमीन पर लिटा दिया। फिर उनके कानों के पास मुंह ले जाकर बोले—राम-राम सत्त है! कहिए तो आपका जनाजा निकालें?

रायसाहब ने कहा—कल देखना कितना बिगड़ता है। एक-एक को अपने पत्र में रगेदेगा। और ऐसा रगेदेगा कि आप भी याद करेंगे! एक ही दुष्ट है, किसी पर दया नहीं करता। लिखने में तो अपना जोड़ नहीं रखता। ऐसा गधा आदमी कैसे इतना अच्छा लिखता है, यह रहस्य है।

कई आदमियों ने संपादकजी को उठाया और ले जाकर उनके कमरे में लिटा दिया। उधर पंडाल में धनुष-यज्ञ हो रहा था। कई बार इन लोगों को बुलाने के लिए आदमी आ चुके थे। कई हुक्काम भी पंडाल में आ पहुंचे थे। लोग उधर जाने को तैयार हो रहे थे कि सहसा एक अफगान आकर खड़ा हो गया। गोरा रंग, बड़ी-बड़ी मूंछें, ऊंचा कद, चौड़ा सीना, आंखों में निर्भयता का उन्माद भरा हुआ, ढीला नीचा कुरता, पैरों में शलवार, जरी के काम की सदरी, सिर पर पगड़ी और कुलाह, कंधे में चमड़े का बेग लटकाए, कंधे पर बंदूक रखे और कमर में तलवार बांधे न जाने किधर से आ खड़ा हो गया और गरजकर बोला—खबरदार! कोई यहां से मत जाओ। अमारा साथ का आदमी पर डाका पड़ा है। यहां का जो सरदार है, वह अमारा आदमी को लूट लिया है, उसका माल तुमको देना होगा। एक-एक कौड़ी देना होगा। कहां है सरदार, उसको बुलाओ!

रायसाहब ने सामने आकर क्रोध-भरे स्वर में कहा—कैसी लूट! कैसा डाका? यह तुम लोगों का काम है। यहां कोई किसी को नहीं लूटता। साफ-साफ कहो, क्या मामला है?

अफगान ने आंखें निकालीं और बंदूक का कुंदा जमीन पर पटककर बोला—अमसे पूछता है कैसा लूट, कैसा डाका? तुम लूटता है, तुम्हारा आदमी लूटता है। अम यहां की कोठी का मालिक है। अमारी कोठी में पचीस जवान हैं। अमारा आदमी रुपये तहसील कर लाता था। एक हजार। वह तुम लूट लिया, और कहता है, कैसा डाका? अम बताएगा, कैसा डाका होता है। अमारा पचीसों जवान अबी आता है। अम तुम्हारा गांव लूट लेगा। कोई साला कुछ नईं कर सकता, कुछ नईं कर सकता।

खन्ना ने अफगान के तेवर देखे तो चुपके से उठे कि निकल जायं। सरदार ने जोर से डांटा—कां जाता तुम? कोई कईं नईं जा सकता, नईं अम सबको कतल कर देगा। अबी फैर कर देगा। अमारा तुम कुछ नईं कर सकता। अम तुम्हारा पुलिस से नईं डरता। पुलिस का आदमी

अमारा सकल देखकर भागता है। अमारा अपना कांसल है, अम उसको खत लिखकर लाट साहब के पास जा सकता है। अम यां से किसी को नई जाने देगा। तुम अमारा एक हजार रुपया लूट लिया। अमारा रुपया नईं देगा, तो अम किसी को जिन्दा नईं छोड़ेगा। तुम सब आदमी दूसरों के माल को लूट करता है और यां माशूक के साथ शराब पीता है।

मिस मालती उसकी आंख बचाकर कमरे से निकलने लगीं कि वह बाज की तरह टूटकर उनके सामने आ खड़ा हुआ और बोला—तुम इन बदमाशों से अमारा माल दिलवाए, नईं अम तुमको उठा ले जायगा, अपनी कोठी में जशन मनाएगा। तुम्हारा हुस्न पर अम आशिक हो गया। या तो अमको एक हजार अबी-अबी दे दे या तुमको अमारे साथ चलना पड़ेगा। तुमको अम नईं छोड़ेगा। अम तुम्हारा आशिक हो गया है। अमारा दिल और जिगर फटा जाता है। अमारा इस जगह पचीस जवान है। इस जिला में हमारा पांच सौ जवान काम करता है। अम अपने कबीले का खान है। अमारे कबीला में दस हजार सिपाही हैं। अम काबुल के अमीर से लड़ सकता है। अंग्रेज सरकार अमको बीस हजार सालाना खिराज देता है। अगर तुम हमारा रुपया नई देगा, तो अम गांव लूट लेगा और तुम्हारा माशूक को उठा ले जायगा। खून करने में अमको लुतफ आता है। अम खून का दरिया बहा देगा।

मजलिस पर आतंक छा गया। मिस मालती अपना चहकना भूल गईं। खन्ना की पिंडलिया कांप रही थीं। बेचारे चोट-चपेट के भय से एक-मंजिले बंगले में रहते थे। जीने पर चढ़ना उनके लिए सूली पर चढ़ने से कम न था। गरमी में भी डर के मारे कमरे में सोते थे। रायसाहब को ठकुराई का अभिमान था। वह अपने ही गाव मे एक पठान से डर जाना हास्याम्पद समझते थे, लेकिन उसकी बंदूक को क्या करते? उन्होंने जरा भी चीं-चपड़ किया और इसने बदूक चलाई। हूश तो होते ही हैं यह सब, और निशाना भी इस सबों का कितना अचूक होता है, अगर उसके हाथ में बंदूक न होती, तो रायसाहब उससे सीग मिलाने को भी तैयार हो जाते। मुश्किल यही थी कि दुष्ट किसी को बाहर नहीं जाने देता। नहीं, दम-के-दम में सारा गांव जमा हो जाता और इसके पूरे जत्थे को पीट-पाटकर रख देता।

आखिर उन्होंने दिल मजबूत किया और जान पर खेलकर बोले—हमने आपसे कह दिया कि हम चोर-डाकू नहीं हैं। मैं यहां की कौंसिल का मेंबर हूं और यह देवीजी लखनऊ की सुप्रसिद्ध डाक्टर हैं। यहां सभी शरीफ और इज्जतदार लोग जमा हैं। हमें बिल्कुल खबर नहीं आपके आदमियों को किसने लूटा? आप जाकर थाने में रपट कीजिए।

खान ने जमीन पर पैर पटके, पैंतरे बदले और बंदूक को कंधे से उतारकर हाथ मे लेता हुआ दहाड़ा—मत बक-बक करो। काउंसिल का मेंबर को अम इस तरह पैरों से कुचल देता है (जमीन पर पांव रगड़ता है)। अमारा हाथ मजबूत है, अमारा दिल मजबूत है, अम खुदाताला के सिवा और किसी से नईं डरता। तुम अमारा रुपया नहीं देगा, तो अम (रायसाहब की तरफ इशारा कर) अभी तुमको कतल कर देगा।

अपनी तरफ बंदूक की दोनाली देखकर रायसाहब झुककर मेज के बराबर आ गए। अजीब मुसीबत में जान फंसी थी। शैतान बरबस कहे जाता है, तुमने हमारे रुपये लूट लिए। न कुछ सुनता है, न कुछ समझता है, न किसी को बाहर आने-जाने देता है। नौकर-चाकर सिपाही-प्यादे, सब धनुष-यज्ञ देखने में मग्न थे। जमींदारों के नौकर यों भी आलसी और काम चोर होते हैं, जब तक दस दफे न पुकारा जाता, बोलते ही नहीं, और इस वक्त तो वे एक शुभ

काम में लग हुए थे। धनुष-यज्ञ उनके लिए केवल तमाशा नहीं, भगवान् की लीला थी, अगर एक आदमी भी इधर आ जाता, तो सिपाहियों को खबर हो जाती और दम भर में खान का सारा खानपन निकल जाता, दाढ़ी के एक-एक बाल नुच जाते। कितना गुस्सेवर है। होते भी तो जल्लाद हैं। न मरने का गम, न जीने की खुशी।

मिर्जा साहब से अंग्रेजी में बोले—अब क्या करना चाहिए?

मिर्जा साहब ने चकित नेत्रों से देखा—क्या बताऊं, कुछ अक्ल काम नहीं करती। मैं आज अपना पिस्तौल घर ही छोड़ आया, नहीं मजा चखा देता।

खन्ना रोना मुंह बनाकर बोले—कुछ रुपये देकर किसी तरह इस बला को टालिए।

रायसाहब ने मालती की ओर देखा—देवीजी, अब आपकी क्या सलाह है?

मालती का मुखमंडल तमतमा रहा था। बोलीं—होगा क्या, मेरी इतनी बेइज्जती हो रही है और आप लोग बैठे देख रहे हैं। बीस मर्दों के होते एक उजड्ड पठान मेरी इतनी दुर्गति कर रहा है और आप लोगों के खून में जरा भी गर्मी नहीं आती। आपको जान इतनी प्यारी है? क्यों एक आदमी बाहर जाकर शोर नहीं मचाता? क्यों आप लोग उस पर झपटकर उसके हाथ से बंदूक नहीं छीन लेते? बंदूक ही तो चलाएगा? चलाने दो। एक या दो की जान ही तो जायगी? जाने दो।

मगर देवीजी मर जाने को जितना आसान समझती थीं, और लोग न समझते थे। कोई आदमी बाहर निकलने की फिर हिम्मत करे और पठान गुस्से में आकर दस-पांच फैर कर दे, तो यहां सफाया हो जायगा। बहुत होगा, पुलिस उसे फांसी की सजा दे देगी। वह भी क्या ठीक। एक बड़े कबीले का सरदार है। उसे फांसी देते हुए सरकार भी सोच-विचार करेगी। ऊपर से दबाव पड़ेगा। राजनीति के सामने न्याय को कौन पूछता है? हमारे ऊपर उलटे मुकदमे दायर हो जायं और दंडकारी पुलिस बिठा दी जाय, तो आश्चर्य नहीं, कितने मजे से हंसी-मजाक हो रहा था। अब तक ड्रामा का आनंद उठाते होते। इस शैतान ने आकर एक नई विपत्ति खड़ी कर दी, और ऐसा जान पड़ता है, बिना दो-एक खून किए, मानेगा भी नहीं।

खन्ना ने मालती को फटकारा—देवीजी, आप तो हमें ऐसा लताड़ रही हैं, मानो अपनी प्राणरक्षा करना कोई पाप है। प्राण का मोह प्राणि-मात्र में होता है और हम लोगों में भी हो, तो कोई लज्जा की बात नहीं। आप हमारी जान इतनी सस्ती समझती हैं, यह देखकर मुझे खेद होता है। एक हजार का ही तो मुआमला है। आपके पास मुफ्त के एक हजार हैं, उसे देकर क्यों नहीं बिदा कर देतीं। आप खुद अपनी बेइज्जती करा रही हैं, इसमें हमारा क्या दोष?

रायसाहब ने गर्म होकर कहा—अगर इसने देवीजी को हाथ लगाया, तो चाहे मेरी लाश यहीं तड़पने लगे, मैं उससे भिड़ जाऊंगा। आखिर वह भी आदमी ही तो है।

मिर्जा साहब ने संदेह से सिर हिलाकर कहा—रायसाहब, आप अभी तो इन सबों के मिजाज से वाकिफ नहीं हैं। यह फैर करना शुरू करेगा, तो फिर किसी को जिंदा न छोड़ेगा। इनका निशाना बेखता होता है।

मि० तंखा बेचारे आने वाले चुनाव की समस्या सुलझाने आए थे। दस-पांच हजार का वारा-न्यारा करके घर जाने का स्वप्न देख रहे थे। यहां जीवन ही संकट में पड़ गया। बोले—सबसे सरल उपाय वही है, जो अभी खन्नाजी ने बतलाया। एक हजार की ही बात और रुपये मौजूद

हैं, तो आप लोग क्यों इतना सोच-विचार कर रहे हैं।

मिस मालती ने तंखा को तिरस्कार-भरी आंखों से देखा।

'आप लोग इतने कायर हैं, यह मैं न समझती थी।'

'मैं भी यह न समझता था कि आपको रुपये इतने प्यारे हैं और वह भी मुफ्त के?'

'जब आप लोग मेरा अपमान देख सकते हैं, तो अपने घर की स्त्रियों का अपमान भी देख सकते होंगे?'

'तो आप भी पैसे के लिए अपने घर के पुरुषों को होम करने में संकोच न करेंगी।'

खान इतनी देर तक झल्लाया हुआ-सा इन लोगों की गिटपिट सुन रहा था। एकाएक गरजकर बोला—अम अब नईंमानेगा। अम इतनी देर यहां खड़ा है, तुम लोग कोई जवाब नईं देता। (जेब से सीटी निकालकर) अम तुमको एक लमहा और देता है, अगर तुम रुपया नईं देता तो अम सीटी बजायगा और अमारा पचीस जवान यहां आ जायगा। बस।

फिर आंखों में प्रेम की ज्वाला भरकर उसने मिस मालती को देखा।

'तुम अमारे साथ चलेगा दिलदार। अम तुम्हारे ऊपर फिदा हो जायगा। अपना जान तुम्हारे कदमों पर रख देगा। इतना आदमी तुम्हारा आशिक है, मगर कोई सच्चा आशिक नई है। सच्चा इश्क क्या है, अम दिखा देगा। तुम्हारा इशारा पाते ही अम अपने सीने में खंजर चुभा सकता है।'

मिर्जा ने घिघियाकर कहा—देवीजी, खुदा के लिए इस मूजी को रुपये दे दीजिए।

खन्ना ने हाथ जोड़कर याचना की—हमारे ऊपर दया करो मिस मालती।

रायसाहब तनकर बोले—हरगिज नहीं। आज जो कुछ होना है, हो जाने दीजिए। या तो हम खुद मर जायंगे, या इन जालिमों को हमेशा के लिए सबक दे देंगे।

तंखा ने रायसाहब को डांट बताई—शेर की मांद में घुसना कोई बहादुरी नहीं है। मैं इसे मूर्खता समझता हूं।

मगर मिस मालती के मनोभाव कुछ और ही थे। खान के लालसा-प्रदीप्त नेत्रों ने उन्हें आश्वस्त कर दिया था और अब इस कांड में उन्हें मनचलेपन का आनंद आ रहा था। उनका हृदय कुछ देर इन नरपुंगवों के बीच में रहकर उसके बर्बर प्रेम का आनंद उठाने के लिए ललचा रहा था। शिष्ट प्रेम की दुर्बलता और निर्जीवता का उन्हें अनुभव हो चुका था। आज अक्खड़, अनघड़ पठानों के उन्मत्त प्रेम के लिए उनका मन दौड़ रहा था, जैसे संगीत का आनंद उठाने के बाद कोई मस्त हाथियों की लड़ाई देखने के लिए दौड़े।

उन्होंने खान साहब के सामने जाकर निश्शंक भाव से कहा—तुम्हें रुपये नहीं मिलेंगे।

खान ने हाथ बढ़ाकर कहा—तो अम तुमको लूट ले जायगा।

'तुम इतने आदमियों के बीच से हमें नहीं ले जा सकते।'

'अम तुमको एक हजार आदमियों के बीच से ले जा सकता है।'

'तुमको जान से हाथ धोना पड़ेगा।'

'अम अपने माशूक के लिए अपने जिस्म का एक-एक बोटी नुचवा सकता है।'

उसने मालती का हाथ पकड़कर खींचा। उसी वक्त होरी ने कमरे में कदम रखा। वह राजा जनक का माली बना हुआ था और उसके अभिनय ने देहातियों को हंसाते-हंसाते लोटा दिया था। उसने सोचा, मालिक अभी तक क्यों नहीं आए? वह भी तो आकर देखें कि देहाती इस काम में कितने कुशल होते हैं। उनके यार-दोस्त भी देखें। कैसे मालिक को बुलाए? वह

अवसर खोज रहा था, और ज्योंही मुहलत मिली, दौड़ा हुआ यहां आया, मगर यहां का दृश्य देखकर भौंचक्का-सा खड़ा रह गया। सब लोग चुप्पी साधे, थर-थर कांपते, कातर नेत्रों से खान को देख रहे थे और खान मालती को अपनी तरफ खींच रहा था। उसकी सहज बुद्धि ने परिस्थिति का अनुमान कर लिया। उसी वक्त रायसाहब ने पुकारा—होरी, दौड़कर जा और सिपाहियों को बुला ला, जल्द दौड़।

होरी पीछे मुड़ा था कि खान ने उसके सामने बंदूक तानकर डांटा—कहां जाता है सुअर, अम गोली मार देगा।

होरी गंवार था। लाल पगड़ी देखकर उसके प्राण निकल जाते थे, लेकिन मस्त सांड़ पर लाठी लेकर पिल पड़ता था। वह कायर न था, मारना और मरना दोनों ही जानता था, मगर पुलिस के हथकंडों के सामने उसकी एक न चलती थी। बंधे-बंधे कौन फिरे, रिश्वत के रुपये कहां से लाए, बाल-बच्चों को किस पर छोड़े, मगर जब मालिक ललकारते हों, तो फिर किसका डर? तब तो वह मौत के मुंह में भी कूद सकता है।

उसने झपटकर खान की कमर पकड़ी और ऐसा अड़ंगा मारा कि खान चारों खाने चित्त जमीन पर आ रहा और लगा पश्तो में गालियां देने। होरी उसकी छाती पर चढ़ बैठा और जोर से दाढ़ी पकड़कर खींची। दाढ़ी उसके हाथ में आ गई। खान ने तुरंत अपनी कुलाह उतार फेंकी और जोर मारकर खड़ा हो गया। अरे! यह तो मिस्टर मेहता हैं। वाह!

लोगों ने चारों तरफ से मेहता को घेर लिया। कोई उनके गले लगता, कोई उनकी पीठ पर थपकियां देता था और मिस्टर मेहता के चेहरे पर न हंसी थी, न गर्व, चुपचाप खड़े थे, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

मालती ने नकली रोष से कहा—आपने यह बहुरूपपन कहां सीखा? मेरा दिल अभी तक धड़-धड़ कर रहा है।

मेहता ने मुस्कराते हुए कहा—जरा इन भले आदमियों की जवांमर्दी की परीक्षा ले रहा था। जो गुस्ताखी हुई हो, उसे क्षमा कीजिएगा।

सात

यह अभिनय जब समाप्त हुआ, तो उधर रंगशाला में धनुष-यज्ञ समाप्त हो चुका था और सामाजिक प्रहसन की तैयारी हो रही थी, मगर इन सज्जनों को उससे विशेष दिलचस्पी न थी। केवल मिस्टर मेहता देखने गए और आदि से अंत तक जमे रहे। उन्हें बड़ा मजा आ रहा था। बीच-बीच में तालियां बजाते थे और 'फिर कहो, फिर कहो' का आग्रह करके अभिनेताओं को प्रोत्साहन भी देते जाते थे। रायसाहब ने इस प्रहसन में एक मुकदमेबाज देहाती जमींदार का खाका उड़ाया था। कहने को तो प्रहसन था, मगर करुणा से भरा हुआ। नायक का बात-बात में कानून की धाराओं का उल्लेख करना, पत्नी पर केवल इसलिए मुकदमा दायर कर देना कि उसने भोजन तैयार करने में जरा-सी देर कर दी, फिर वकीलों के नखरे और देहाती गवाहों की चालाकियां और झांसे, पहले गवाही के लिए चट-पट तैयार हो जाना, मगर इजलास पर

तलबी के समय खूब मनावन कराना और नाना प्रकार की फर्माइशें करके उल्लू बनाना, ये सभी दृश्य देखकर लोग हंसी के मारे लोट जाते थे। सबसे सुंदर वह दृश्य था, जिसमें वकील गवांहों को उनके बयान रटा रहा था। गवाहों का बार-बार भूलें करना, वकील का बिगड़ना, फिर नायक का देहाती बोली में गवाहों का समझाना और अंत में इजलास पर गवाहों का बदल जाना, ऐसा सजीव और सत्य था कि मिस्टर मेहता उछल पड़े और तमाशा समाप्त होने पर नायक को गले लगा लिया और सभी नटों को एक-एक मेडल देने की घोषणा की। रायसाहब के प्रति उनके मन में श्रद्धा के भाव जाग उठे। रायसाहब स्टेज के पीछे ड्रामे का संचालन कर रहे थे। मेहता दौड़कर उनके गले लिपट गए और मुग्ध होकर बोले—आपकी दृष्टि इतनी पैनी है, इसका मुझे अनुमान न था।

दूसरे दिन जलपान के बाद शिकार का प्रोग्राम था। वहीं किसी नदी के तट पर बाग में भोजन बने, खूब जल-क्रीडा की जाय और शाम को लोग घर आवें। देहाती जीवन का आनंद उठाया जाय। जिन मेहमानों को विशेष काम था, वह तो बिदा हो गए, केवल वे ही लोग बच रहे, जिनकी रायसाहब से घनिष्ठता थी। मिसेज खन्ना के सिर में दर्द था, न जा सकीं, और संपादकजी इस मंडली से जले हुए थे और इनके विरुद्ध एक लेख-माला निकालकर इनकी खबर लेने के विचार में मग्न थे। सब-के-सब छटे हुए गुंडे हैं। हराम के पैसे उड़ाते हैं और मूंछों पर ताव देते हैं। दुनिया में क्या हो रहा है, इन्हें क्या खबर। इनके पड़ोस में कौन मर रहा है, इन्हें क्या परवा। इन्हें तो अपने भोग-विलास से काम है। यह मेहता, जो फिलासफर बना फिरता है, उसे यही धुन है कि जीवन को संपूर्ण बनाओ। महीने में एक हजार मार लाते हो, तुम्हें अख्तियार है, जीवन को संपूर्ण बनाओ या परिपूर्ण बनाओ। जिसको यह फिक्र दबाए डालती है कि लड़कों का ब्याह कैसे हो, या बीमार स्त्री के लिए वैद्य कैसे आएं या अबकी घर का किराया किसके घर से आएगा, वह अपना जीवन कैसे संपूर्ण बनाए। छूटे सांड़ बने दूसरों के खेत में मुंह मारते फिरते हो और समझते हो, संसार में सब सुखी हैं। तुम्हारी आंखें तब खुलेंगी, जब क्रांति होगी और तुमसे कहा जायगा—बचा, खेत में चलकर हल जोतो। तब देखें, तुम्हारा जीवन कैसे संपूर्ण होता है। और वह जो है मालती, जो बहत्तर घाटों का पानी पीकर भी मिस बनी फिरती है! शादी नहीं करेगी, इससे जीवन बंधन में पड़ जाता है, और बंधन में जीवन का पूरा विकास नहीं होता। बस, जीवन का पूरा विकास इसी में है कि दुनिया को लूटे जाओ और निर्द्वंद्व विलास किए जाओ! सारे बंधन तोड़ दो, धर्म और समाज को गोली मारो, जीवन के कर्त्तव्यों को पास न फटकने दो, बस तुम्हारा जीवन संपूर्ण हो गया। इससे ज्यादा आसान और क्या होगा! मां-बाप से नहीं पटती, उन्हें धता बताओ, शादी मत करो, यह बंधन है, बच्चे होंगे, यह मोहपाश है, मगर टैक्स क्यों देते हो? कानून भी तो बंधन है, उसे क्यों नहीं तोड़ते? उससे क्यों कन्नी काटते हो? जानते हो न कि कानून की जरा भी अवज्ञा की और बेड़ियां पड़ जायंगी। बस, वही बंधन तोड़ो जिसमें अपनी भोग-लिप्सा में बाधा नहीं पड़ती। रस्सी को सांप बनाकर पीटो और तीसमार खां बनो। जीते सांप के पास जाओ ही क्यों, वह फुंकार भी मारेगा तो लहरें आने लगेंगी। उसे आते देखो, तो दुम दबाकर भागो। यह तुम्हारा संपूर्ण जीवन है।

आठ बजे शिकार-पार्टी चली। खन्ना ने कभी शिकार न खेला था, बंदूक की आवाज से कांपते थे, लेकिन मिस मालती जा रही थीं, वह कैसे रुक सकते थे। मिस्टर तंखा को अभी तक एलेक्शन के विषय में बातचीत करने का अवसर न मिला था। शायद वहां वह अवसर

मिल जाय। रायसाहब अपने इलाके में बहुत दिनों से नहीं गए थे। वहां का रंग-ढंग देखना चाहते थे। कभी-कभी इलाके में आने-जाने से असामियों से एक संबंध भी तो हो जाता है और रोब भी रहता। कारकुन और प्यादे भी सचेत रहते हैं। मिर्जा खुर्शेद को जीवन के नए अनुभव प्राप्त करने का शौक था, विशेषकर ऐसे, जिनमें कुछ साहस दिखाना पड़े। मिस मालती अकेले कैसे रहतीं। उन्हें तो रसिकों का जमघट चाहिए। केवल मिस्टर मेहता शिकार खेलने के सच्चे उत्साह से जा रहे थे। रायसाहब की इच्छा तो थी कि भोजन की सामग्री, रसोइया, कहार, खिदमतगार, सब साथ चलें, लेकिन मिस्टर मेहता ने इसका विरोध किया।

खन्ना ने कहा—आखिर वहां भोजन करेंगे या भूखों मरेंगे?

मेहता ने जवाब दिया—भोजन क्यों न करेंगे, लेकिन आज हम लोग खुद अपना सारा काम करेंगे। देखना तो चाहिए कि नौकरों के बगैर हम जिंदा रह सकते हैं या नहीं। मिस मालती पकायंगी और हम लोग खायंगे। देहातों में हांड़ियां और पत्तल मिल ही जाते हैं, और ईंधन की कोई कमी नहीं। शिकार हम करेंगे ही।

मालती ने गिला किया—क्षमा कीजिए। आपने रात मेरी कलाई इतने जोर से पकड़ी कि अभी तक दर्द हो रहा है।

'काम तो हम लोग करेंगे, आप केवल बताती जाइएगा।'

मिर्जा खुर्शेद बोले—अजी आप लोग तमाशा देखते रहिएगा, मैं सारा इंतजाम कर दूंगा। बात ही कौन-सी है। जंगल में हांड़ी और बर्तन ढूंढ़ना हिमाकत है। हिरन का शिकार कीजिए, भूनिए, खाइए और वहीं दरख्त के साए में खर्राटे लीजिए।

यही प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। दो मोटरें चलीं। एक मिस मालती ड्राइव कर रही थीं, दूसरी खुद रायसाहब। कोई बीस-पच्चीस मील पर पहाड़ी प्रांत शुरू हो गया। दोनों तरफ ऊंची पर्वत-माला दौड़ी चली आ रही थी। सड़क भी पेंचदार होती जाती थी। कुछ दूर की चढ़ाई के बाद एकाएक ढाल आ गया और मोटर वेग से नीचे की ओर चली। दूर से नदी का पाट नजर आया, किसी रोगी की भांति दुर्बल, निस्पंद। कगार पर एक घने वट वृक्ष की छांह में कारें रोक दी गई और लोग उतरे। यह सलाह हुई कि दो-दो की टोली बने और शिकार खेलकर बारह बजे तक यहां आ जाय। मिस मालती मेहता के साथ चलने को तैयार हो गईं। खन्ना मन में ऐंठकर रह गए। जिस विचार से आए थे, उसमें जैसे पंचर हो गया। अगर जानते, मालती दगा देगी, तो घर लौट जाते, लेकिन रायसाहब का साथ उतना रोचक न होते हुए भी बुरा न था। उनसे बहुत-सी मुआमले की बातें करनी थीं। खुर्शेद और तंखा बच रहे। उनकी टोली बनी-बनाई थी। तीनों टोलियां एक-एक तरफ चल दीं।

कुछ दूर तक पथरीली पगडंडी पर मेहता के साथ चलने के बाद मालती ने कहा—तुम तो चले ही जाते हो। जरा दम ले लेने दो।

मेहता मुस्कराए—अभी तो हम एक मील भी नहीं आए। अभी से थक गईं?

'थकी नहीं, लेकिन क्यों न जरा दम ले लो।'

'जब तक कोई शिकार हाथ न आ जाय, हमें आराम करने का अधिकार नहीं।'

'मैं शिकार खेलने न आई थी।'

मेहता ने अनजान बनकर कहा—अच्छा, यह मैं न जानता था। फिर क्या करने आई थीं?

'अब तुमसे क्या बताऊं।'

हिरनों का एक झुंड चरता हुआ नजर आया। दोनों एक चट्टान की आड़ में छिप गए और निशाना बांधकर गोली चलाई। निशाना खाली गया। झुंड भाग निकला। मालती ने पूछा—अब?

'कुछ नहीं, चलो फिर कोई शिकार मिलेगा।'

दोनों कुछ देर तक चुपचाप चलते रहे। फिर मालती ने जरा रुककर कहा—गर्मी के मारे बुरा हाल हो रहा है। आओ, इस वृक्ष के नीचे बैठ जायं।

'अभी नहीं। तुम बैठना चाहती हो, तो बैठो। मैं तो नहीं बैठता।'

'बड़े निर्दयी हो तुम। सच कहती हूं।'

'जब तक कोई शिकार न मिल जाय, मैं बैठ नहीं सकता।'

'तब तो तुम मुझे मार ही डालोगे। अच्छा बताओ, रात तुमने मुझे इतना क्यों सताया? मुझे तुम्हारे ऊपर बड़ा क्रोध आ रहा था। याद है, तुमने मुझे क्या कहा था? तुम हमारे साथ चलेगा दिलदार? मैं न जानती थी, तुम इतने शरीर हो। अच्छा, सच कहना, तुम उस वक्त मुझे अपने साथ ले जाते?'

मेहता ने कोई जवाब न दिया, मानो सुना ही नहीं।

दोनों कुछ दूर चलते रहे। एक तो जेठ की धूप, दूसरे पथरीला रास्ता। मालती थककर बैठ गई।

मेहता खड़े-खड़े बोले—अच्छी बात है, तुम आराम कर लो। मैं यहीं आ जाऊंगा।

'मुझे अकेले छोड़कर चले जाओगे?'

'मैं जानता हूं, तुम अपनी रक्षा कर सकती हो?'

'कैसे जानते हो?'

'नए युग की देवियों की यही सिफत है। वह मर्द का आश्रय नहीं चाहतीं, उससे कंधा मिलाकर चलना चाहती हैं।'

मालती ने झेंपते हुए कहा—तुम कोरे फिलासफर हो मेहता, सच।

सामने वृक्ष पर एक मोर बैठा हुआ था। मेहता ने निशाना साधा और बंदूक चलाई। मोर उड़ गया।

मालती प्रसन्न होकर बोली—बहुत अच्छा हुआ। मेरा शाप पड़ा।

मेहता ने बंदूक कंधे पर रखकर कहा—तुमने मुझे नहीं, अपने आपको शाप दिया। शिकार मिल जाता, तो मैं दस मिनट की मुहलत देता। अब तो तुमको फौरन चलना पड़ेगा।

मालती उठकर मेहता का हाथ पकड़ती हुई बोली—फिलासफरों के शायद हृदय नहीं होता। तुमने अच्छा किया, विवाह नहीं किया, उस गरीब को मार ही डालते। मगर मैं यों न छोड़ूंगी। तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते।

मेहता ने एक झटके से हाथ छुड़ा लिया और आगे बढ़े।

मालती सजल नेत्र होकर बोली—मैं कहती हूं, मत जाओ। नहीं मैं इसी चट्टान पर सिर पटक दूंगी।

मेहता ने तेजी से कदम बढ़ाए। मालती उन्हें देखती रही। जब वह बीस कदम निकल गए, तो झुंझलाकर उठी और उनके पीछे दौड़ी। अकेले विश्राम करने में कोई आनंद न था।

समीप आकर बोली—मैं तुम्हें इतना पशु न जानती थी।

'मैं जो हिरन मारूंगा, उसकी खाल तुम्हें भेंट करूंगा।'

'खाल जाय भाड़ में। मैं अब तुमसे बात न करूंगी।'

'कहीं हम लोगों के हाथ कुछ न लगा और दूसरों ने अच्छे शिकार मारे तो मुझे बड़ी झेंप होगी।'

एक चौड़ा नाला मुंह फैलाए बीच में खड़ा था। बीच की चट्टानें उसके दांतों-सी लगती थीं। धार में इतना वेग था कि लहरें उछली पड़ती थीं। सूर्य मध्याह्न पर आ पहुंचा था और उसकी प्यासी किरणें जल में क्रीड़ा कर रही थीं।

मालती ने प्रसन्न होकर कहा—अब तो लौटना पड़ा।

'क्यों? उस पार चलेंगे। यहीं तो शिकार मिलेंगे।'

'धारा में कितना वेग है। मैं तो बह जाऊंगी।'

'अच्छी बात है। तुम यहीं बैठो, मैं जाता हूं।'

'हां, आप जाइए। मुझे अपनी जान से बैर नहीं है।'

मेहता ने पानी में कदम रखा और पांव साधते हुए चले। ज्यों-ज्यों आगे जाते थे, पानी गहरा होता जाता था। यहां तक कि छाती तक आ गया।

मालती अधीर हो उठी। शंका से मन चंचल हो उठा। ऐसी विकलता तो उसे कभी न होती थी। ऊंचे स्वर में बोली—पानी गहरा है। ठहर जाओ, मैं भी आती हूं।

'नही-नहीं, तुम फिसल जाओगी। धार तेज है।'

'कोई हरज नहीं, मैं आ रही हूं। आगे न बढ़ना, खबरदार।'

मालती साड़ी ऊपर चढ़ाकर नाले में पैठी। मगर दस हाथ आते-आते पानी उसकी कमर तक आ गया।

मेहता घबड़ाए। दोनों हाथ से उसे लौट जाने को कहते हुए बोले—तुम यहां मत आओ मालती। यहां तुम्हारी गर्दन तक पानी है।

मालती ने एक कदम और आगे बढ़कर कहा—होने दो। तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं मर जाऊं तो तुम्हारे पास ही मरूंगी।

मालती पेट तक पानी में थी। धार इतनी तेज थी कि मालूम होता था, कदम उखड़ा। मेहता लौट पड़े और मालती को एक हाथ से पकड़ लिया।

मालती ने नशीली आंखों में रोष भरकर कहा—मैंने तुम्हारे-जैसा बेदर्द आदमी कभी न देखा था। बिल्कुल पत्थर हो। खैर, आज सता लो, जितना सताते बने, मैं भी कभी समझूंगी।

मालती के पांव उखड़ते हुए मालूम हुए। वह बंदूक संभालती हुई उनसे चिमट गई।

मेहता ने आश्वासन देते हुए कहा—तुम यहां खड़ी नहीं रह सकतीं। मैं तुम्हें अपने कंधे पर बिठाए लेता हूं।

मालती ने भृकुटी टेढ़ी करके कहा—तो उस पार जाना क्या इतना जरूरी है?

मेहता ने कुछ उत्तर न दिया। बंदूक कनपटी से कंधे पर दबा ली और मालती को दोनों हाथों से उठाकर कंधे पर बैठा लिया।

मालती अपनी पुलक को छिपाती हुई बोली—अगर कोई देख ले?

'भद्दा तो लगता है।'

दो पग के बाद उसने करुण स्वर में कहा—अच्छा बताओ, मैं यहीं पानी में डूब जाऊं,

तो तुम्हें रंज हो या न हो? मैं तो समझती हूं, तुम्हें बिल्कुल रंज न होगा।

मेहता ने आहत स्वर से कहा—तुम समझती हो, मैं आदमी नहीं हूं?

'मैं तो यही समझती हूं, क्यों छिपाऊं।'

'सच कहती हो मालती?'

'तुम क्या समझते हो?'

'मैं! कभी बतलाऊंगा।'

पानी मेहता की गर्दन तक आ गया। कहीं अगला कदम उठाते ही सिर तक न आ जाय। मालती का हृदय धक्-धक् करने लगा। बोली—मेहता, ईश्वर के लिए अब आगे मत जाओ, नहीं, मैं पानी में कूद पड़ूंगी।

उस संकट में मालती को ईश्वर याद आया, जिसका वह मजाक उड़ाया करती थी। जानती थी, ईश्वर कहीं बैठा नहीं है, जो आकर उन्हें उबार लेगा, लेकिन मन को जिस अवलब और शक्ति की जरूरत थी, वह और कहां मिल सकती थी?

पानी कम होने लगा था। मालती ने प्रसन्न होकर कहा—अब तुम मुझे उतार दो।

'नहीं-नहीं, चुपचाप बैठी रहो। कहीं आगे कोई गढ़ा मिल जाय।'

'तुम समझते होगे, यह कितनी स्वार्थिन है।'

'मुझे इसकी मजदूरी दे देना।'

मालती के मन में गुदगुदी हुई।

'क्या मजदूरी लोगे?'

'यही कि जब तुम्हें जीवन में ऐसा ही कोई अवसर आए, तो मुझे बुला लेना।'

किनारे आ गए। मालती ने रेत पर अपनी साड़ी का पानी निचोड़ा, जूते का पानी निकाला, मुह-हाथ धोया, पर ये शब्द अपने रहस्यमय आशय के साथ उसके सामने नाचते रहे।

उसने इस अनुभव का आनद उठाते हुए कहा—यह दिन याद रहेगा।

मेहता ने पूछा—तुम बहुत डर रही थीं?

'पहले तो डरी, लेकिन फिर मुझे विश्वास हो गया कि तुम हम दोनो की रक्षा कर सकते हो।'

मेहता ने गर्व से मालती को देखा—उनके मुख पर परिश्रम की लाली के साथ तेज था।

'मुझे यह सुनकर कितना आनंद आ रहा है, तुम यह समझ सकोगी मालती?'

'तुमने समझाया कब? उलटे और जंगलों में घसीटते फिरते हो, और अभी फिर लौटती बार यही नाला पार करना पड़ेगा। तुमने कैसी आफत में जान डाल दी। मुझे तुम्हारे साथ रहना पड़े, तो एक दिन न पटे।'

मेहता मुस्कराए। इन शब्दों का संकेत खूब समझ रहे थे।

'तुम मुझे इतना दुष्ट समझती हो! और जो मैं कहूं कि मैं तुमसे प्रेम करता हूं, तो तुम मुझसे विवाह करोगी?'

'ऐसे काठ-कठोर से कौन विवाह करेगा। रात-दिन जलाकर मार डालोगे।'

और मधुर नेत्रों से देखा, मानो कह रही हो—इसका आशय तुम खूब समझते हो। इतने बुद्धू नहीं हो।

मेहता ने जैसे सचेत होकर कहा—तुम सच कहती हो मालती। मैं किसी रमणी को प्रसन्न नहीं रख सकता। मुझसे कोई स्त्री प्रेम का स्वांग नहीं कर सकती। मैं उसके अंतस्तल तक पहुंच जाऊंगा। फिर मुझे उससे अरुचि हो जायगी।

मालती कांप उठी। इन शब्दों में कितना सत्य था।

उसने पूछा—अच्छा बताओ, तुम कैसे प्रेम से संतुष्ट होगे?

'बस यही कि जो मन में हो, वही मुख पर हो। मेरे लिए रंग-रूप और हाव-भाव और नाजो-अंदाज का मूल्य उतना ही है, जितना होना चाहिए। मैं वह भोजन चाहता हूं, जिससे आत्मा की तृप्ति हो। उत्तेजक और शोषक पदार्थों की मुझे जरूरत नहीं।'

मालती ने होंठ सिकोड़कर ऊपर को सांस खींचते हुए कहा—तुमसे कोई पेश न पाएगा। एक ही घाघ हो। अच्छा बताओ, मेरे विषय में तुम्हारा क्या खयाल है?

मेहता ने नटखटपन से मुस्कराकर कहा—तुम सब कुछ कर सकती हो, बुद्धिमती हो, चतुर हो, प्रतिभावान हो, दयालु हो, चंचल हो, स्वाभिमानी हो, त्याग कर सकती हो, लेकिन प्रेम नहीं कर सकतीं।

मालती ने पैनी दृष्टि से ताककर कहा—झूठे हो तुम, बिल्कुल झूठे। मुझे तुम्हारा यह दावा निस्सार मालूम होता है कि तुम नारी-हृदय तक पहुंच जाते हो।

दोनों नाले के किनारे-किनारे चले जा रहे थे। बारह बज चुके थे, पर अब मालती को न विश्राम की इच्छा थी, न लौटने की। आज के संभाषण में उसे एक ऐसा आनंद आ रहा था, जो उसके लिए बिल्कुल नया था। उसने कितने ही विद्वानों और नेताओं को एक मुस्कान में, एक चितवन में, एक रसीले वाक्य में उल्लू बनाकर छोड़ दिया था। ऐसी बालू की दीवार पर वह जीवन का आधार नहीं रख सकती थी। आज उसे वह कठोर, ठोस, पत्थर-सी भूमि मिल गई थी, जो फावड़ों से चिंगारियां निकाल रही थी और उसकी कठोरता उसे उत्तरोत्तर मोहे लेती थी।

धायं की आवाज हुई। एक लालसर नाले पर उड़ा जा रहा था। मेहता ने निशाना मारा। चिड़िया चोट खाकर भी कुछ दूर उड़ी, फिर बीच धार में गिर पड़ी और लहरों के साथ बहने लगी।

'अब?'

'अभी जाकर लाता हूं। जाती कहां है?'

यह कहने के साथ वह रेत में दौड़े और बंदूक किनारे पर रख गड़ाप से पानी में कूद पड़े और बहाव की ओर तैरने लगे, मगर आध मील तक पूरा जोर लगाने पर भी चिड़िया न पा सके। चिड़िया मरकर भी जैसे उड़ी जा रही थी।

सहसा उन्होंने देखा, एक युवती किनारे की एक झोंपड़ी से निकली, चिड़िया को बहते देखकर साड़ी को जांघों तक चढ़ाया और पानी में घुस पड़ी। एक क्षण में उसने चिड़िया पकड़ ली और मेहता को दिखाती हुई बोली—पानी से निकल आओ बाबूजी, तुम्हारी चिड़िया यह है।

मेहता युवती की चपलता और साहस देखकर मुग्ध हो गए। तुरंत किनारे की ओर हाथ चलाए और दो मिनट में युवती के पास जा खड़े हुए।

युवती का रंग था तो काला और वह भी गहरा, कपड़े बहुत ही मैले और फूहड़, आभूषण के नाम पर केवल हाथों में दो-दो मोटी चूड़ियां, सिर के बाल उलझे अलग-अलग। मुख-मंडल

का कोई भाग ऐसा नहीं, जिसे सुंदर या सुघड़ कहा जा सके। लेकिन उस स्वच्छ, निर्मल जलवायु ने उसके कालेपन में ऐसा लावण्य भर दिया था और प्रकृति की गोद में पलकर उसके अंग इतने सुडौल, सुगठित और स्वच्छंद हो गए थे कि यौवन का चित्र खीचने के लिए उससे सुंदर कोई रूप न मिलता। उसका सबल स्वास्थ्य जैसे मेहता के मन में बल और तेज भर रहा था।

मेहता ने उसे धन्यवाद देते हुए कहा—तुम बड़े मौके से पहुंच गईं, नहीं मुझे न जाने कितनी दूर तैरना पड़ता।

युवती ने प्रसन्नता से कहा—मैंने तुम्हें तैरते आते देखा, तो दौड़ी। सिकार खेलने आए होंगे?'

'हां, आए तो थे शिकार ही खेलने, मगर दोपहर हो गया और यही चिड़िया मिली है।'

'तेंदुआ मारना चाहो, तो मैं उसका ठौर दिखा दूं। रात को यहां रोज पानी पीने आता है। कभी-कभी दोपहर में भी आ जाता है।'

फिर जरा सकुचाकर सिर झुकाए बोली—उसकी खाल हमें देनी पड़ेगी। चलो, मेरे द्वार पर। वहां पीपल की छाया है। यहां धूप में कब तक खड़े रहोगे? कपड़े भी तो गीले हो गए हैं।

मेहता ने उसकी देह में चिपकी हुई गीली साड़ी की ओर देखकर कहा—तुम्हारे कपड़े भी तो गीले हैं।

उसने लापरवाही से कहा—ऊंह हमारा क्या, हम तो जंगल के हैं। दिन-दिन भर धूप और पानी में खड़े रहते हैं, तुम थोड़े ही रह सकते हो।

लड़की कितनी समझदार है और बिल्कुल गंवार।

'तुम खाल लेकर क्या करोगी?'

'हमारे दादा बाजार में बेचते हैं। यही तो हमारा काम है।'

'लेकिन दोपहरी यहां काटें, तुम खिलाओगी क्या?'

युवती ने लजाते हुए कहा—तुम्हारे खाने लायक हमारे घर में क्या है। मक्के की रोटिया खाओ, तो धरी हैं। चिड़िये का सालन पका दूंगी। तुम बताते जाना, जैसे बनाना हो। थोड़ा-सा दूध भी है। हमारी गैया को एक बार तेंदुए ने घेरा था। उसे सींगों से भगा कर भाग आई, तब से तेंदुआ उससे डरता है।

'लेकिन मैं अकेला नहीं हूं। मेरे साथ एक औरत भी है।'

'तुम्हारी घरवाली होगी?'

'नहीं, घरवाली तो अभी नहीं है, जान-पहचान की है।'

'तो मैं दौड़कर उनको बुला लाती हूं। तुम चलकर छांह में बैठो।'

'नहीं-नहीं, मैं बुला लाता हूं।'

'तुम थक गए होगे। शहर के रहैया, जंगल में काहे आते होंगे। हम तो जंगली आदमी हैं। किनारे ही तो खड़ी होंगी।'

जब तक मेहता कुछ बोलें, वह हवा हो गई। मेहता ऊपर चढ़कर पीपल की छांह में बैठे, तो इस स्वच्छंद जीवन से उनके मन में अनुराग उत्पन्न हुआ। सामने की पर्वत-माला दर्शन-तत्त्व की भांति अगम्य और अनंत फैली हुई, मानो ज्ञान का विस्तार कर रही हो, मानों आत्मा उस ज्ञान को, उस प्रकाश को, उस अगम्यता को, उसके प्रत्यक्ष विराट् रूप में देख रही हो।

दूर के एक बहुत ऊंचे शिखर पर एक छोटा-सा मंदिर था, जो उस अगम्यता में बुद्धि की भांति ऊंचा, पर खोया हुआ-सा खड़ा था, मानो वहां तक पर मार कर पक्षी विश्राम लेना चाहता है और कहीं स्थान नहीं पाता।

मेहता इन्हीं विचारों में डूबे हुए थे कि युवती मिस मालती को साथ लिए आ पहुंची, एक वन-पुष्प की भांति धूप में खिली हुई, दूसरी गमले के फूल की भांति धूप में मुरझाई और निर्जीव।

मालती ने बेदिली के साथ कहा-पीपल की छांह बहुत अच्छी लग रही है, क्यों और यहां भूख के मारे प्राण निकले जा रहे हैं।

युवती दो बड़े-बड़े मटके उठा लाई और बोली-तुम जब तक यहीं बैठो, मैं अभी दौड़कर पानी लाती हूं, फिर चूल्हा जला दूंगी, और मेरे हाथ का खाओ, तो मैं एक छन में बाटियां सेंक दूंगी, नहीं, अपने आप सेंक लेना। हां, गेहूं का आटा मेरे घर में नहीं है और यहां कहीं कोई दूकान भी नहीं है कि ला दूं।

मालती को मेहता पर क्रोध आ रहा था। बोली-तुम यहां क्यों आकर पड़ रहे?

मेहता ने चिढ़ाते हुए कहा-एक दिन जरा जीवन का आनंद भी तो उठाओ। देखो, मक्के की रोटियों में कितना स्वाद है।

'मुझसे मक्के की रोटियां खाई ही न जायंगी, और किसी तरह निगल भी जाऊं तो हजम न होंगी। तुम्हारे साथ आकर मैं बहुत पछता रही हू। रास्ते-भर दौड़ा के मार डाला और अब यहां लाकर पटक दिया।'

मेहता ने कपड़े उतार दिए थे और केवल एक नीला जांघिया पहने बैठे हुए थे। युवती को मटके ले जाते देखा, तो उसके हाथ से मटके छीन लिए और कुएं पर पानी भरने चले। दर्शन के गहरे अध्ययन मे भी उन्होने अपने स्वास्थ्य की रक्षा की थी और दोनों मटके लेकर चलते हुए उनकी मांसल और चौड़ी छाती और मछलीदार जांघें किसी यूनानी प्रतिमा के सुगठित अगों की भांति उनके पुरुषार्थ का परिचय दे रही थीं। युवती उन्हें पानी खींचते हुए अनुराग-भरी आंखों से देख रही थी। वह अब उसकी दया के पात्र नहीं, श्रद्धा के पात्र हो गए थे।

कुआ बहुत गहरा था, कोई साठ हाथ, मटके भारी थे और मेहता कसरत का अभ्यास करते रहने पर भी एक मटका खीचत-खीचते शिथिल हो गए। युवती ने दौडकर उनके हाथ से रस्सी छीन ली और बोली-तुमसे न खिचेगा। तुम जाकर खाट पर बैठो, मैं खींचे लेती हूं।

मेहता अपने पुरुषत्व का यह अपमान न सह सके। रस्सी उसके हाथ से फिर ले ली और जोर मारकर एक क्षण मे दूसरा मटका भी खीच लिया और दोनों हाथो में दोनों मटके लिए, आकर झोंपड़ी के द्वार पर खड़े हो गए। युवती ने चटपट आग जलाई, लालसर के पंख झुलस डाले। छुरे से उसकी बोटियां बनाईं और चूल्हे में आग जलाकर मांस चढ़ा दिया और चूल्हे के दूसरे ऐले पर कढ़ाई में दूध उबालने लगी।

और मालती भौंहें चढ़ाए, खाट पर खिन्न-मन पड़ी इस तरह यह दृश्य देख रही थी, मानो उसके आपरेशन की तैयारी हो रही हो।

मेहता झोंपड़ी के द्वार पर खड़े होकर, युवती के गृह-कौशल को अनुरक्त नेत्रों से देखते हुए बोले-मुझे भी तो कोई काम बताओ, मैं क्या करूं?

युवती ने मीठी झिड़की के साथ कहा—तुम्हें कुछ नहीं करना है, जाकर बाई के पास बैठो, बेचारी बहुत भूखी है, दूध गरम हुआ जाता है, उसे पिला देना।

उसने एक घड़े से आटा निकाला और गूंधने लगी। मेहता उसके अंगों का विलास देखते रहे। युवती भी रह-रहकर उन्हें कनखियों से देखकर अपना काम करने लगती थी।

मालती ने पुकारा—तुम वहां क्यों खड़े हो? मेरे सिर में जोर का दर्द हो रहा है। आधा सिर ऐसा फटा पड़ता है, जैसे गिर जायगा।

मेहता ने आकर कहा—मालूम होता है, धूप लग गई है।

'मैं क्या जानती थी, तुम मुझे मार डालने के लिए यहां ला रहे हो।'

'तुम्हारे साथ कोई दवा भी तो नहीं है?'

'क्या मैं किसी मरीज को देखने आ रही थी, जो दवा लेकर चलती? मेरा एक दवाओं का बक्स है, वह सेमरी में है उफ! सिर फटा जाता है।'

मेहता ने उसके सिर की ओर जमीन पर बैठकर धीरे-धीरे उसका सिर सहलाना शुरू किया। मालती ने आंखें बंद कर लीं।

युवती हाथों में आटा भरे, सिर के बाल बिखेरे, आंखें धुएं से लाल और सजल, सारी देह पसीने में तर, जिससे उसका उभरा हुआ वक्ष साफ झलक रहा था, आकर खड़ी हो गई और मालती को आंखें बंद किए पड़ी देखकर बोली—बाई को क्या हो गया है?

मेहता बोले—सिर में बड़ा दर्द है।

'पूरे सिर में है कि आधे में?'

'आधे में बतलाती हैं।'

'दाईं ओर है, कि बाईं ओर?'

'बाईं ओर।'

'मैं अभी दौड़ के एक दवा लाती हूं। घिसकर लगाते ही अच्छा हो जायगा।'

'तुम इस धूप में कहां जाओगी?'

युवती ने सुना ही नहीं। वेग से एक ओर जाकर पहाड़ियों में छिप गई। कोई आधा घंटे बाद मेहता ने उसे ऊंची पहाड़ी पर चढ़ते देखा। दूर से बिल्कुल गुड़िया-सी लग रही थी। मन में सोचा—इस जंगली छोकरी में सेवा का कितना भाव और कितना व्यावहारिक ज्ञान है। लू और धूप में आसमान पर चढ़ी चली जा रही है।

मालती ने आंखें खोलकर देखा—कहां गई वह कलूटी। गजब की काली है, जैसे आबनूस का कुंदा हो। इसे भेज दो, रायसाहब से कह आए, कार यहां भेज दें। इस तपिश में मेरा दम निकल जायगा।

'कोई दवा लेने गई है। कहती है, उससे आधा-सिर का दर्द बहुत जल्द आराम हो जाता है।'

'इनकी दवाएं इन्हीं को फायदा करती हैं, मुझे न करेंगी। तुम तो इस छोकरी पर लट्टू हो गए हो। कितने छिछोरे हो। जैसी रूह वैसे फरिश्ते।'

मेहता को कटु सत्य कहने में संकोच न होता था।

'कुछ बातें तो उसमें ऐसी हैं कि अगर तुममें होतीं, तो तुम सचमुच देवी हो जातीं।'

'उसकी खूबियां उसे मुबारक, मुझे देवी बनने की इच्छा नहीं।'

'तुम्हारी इच्छा हो, तो मैं जाकर कार लाऊं, यद्यपि कार यहां आ भी सकेगी, मैं नहीं कह सकता।'

'उस कलूटी को क्यों नहीं भेज देते?'

'वह तो दवा लेने गई है, फिर भोजन पकाएगी।'

'तो आज आप उसके मेहमान हैं। शायद रात को भी यहीं रहने का विचार होगा। रात को शिकार भी तो अच्छे मिलते हैं।'

मेहता ने इस आक्षेप से चिढ़कर कहा—इस युवती के प्रति मेरे मन में जो प्रेम और श्रद्धा है, वह ऐसी है कि अगर मैं उसकी ओर वासना से देखूं तो आंखें फूट जायं। मैं अपने किसी घनिष्ठ मित्र के लिए भी इस धूप और लू में उस ऊंची पहाड़ी पर न जाता। और हम केवल घड़ी-भर के मेहमान हैं, यह वह जानती है। वह किसी गरीब औरत के लिए भी इसी तत्परता से दौड़ जायगी। मैं विश्व-बंधुत्व और विश्व-प्रेम पर केवल लेख लिख सकता हूं, केवल भाषण दे सकता हूं, वह उस प्रेम और त्याग का व्यवहार करती है। कहने से करना कहीं कठिन है। इसे तुम भी जानती हो।

मालती ने उपहास भाव से कहा—बस-बस, वह देवी है। मैं मान गई। उसके वक्ष में उभार है, नितंबों में भारीपन है, देवी होने के लिए और क्या चाहिए।

मेहता तिलमिला उठे। तुरंत उठे और कपड़े पहने, जो सूख गए थे। बंदूक उठाई और चलने को तैयार हुए। मालती ने फुंकार मारी—तुम नहीं जा सकते, मुझे अकेली छोड़कर।

'तब कौन जायगा?'

'वही तुम्हारी देवी।'

मेहता हतबुद्धि-से खड़े थे। नारी पुरुष पर कितनी आसानी से विजय पा सकती है, इसका आज उन्हें जीवन में पहला अनुभव हुआ।

वह दौड़ती-हांफती चली आ रही थी। वही कलूटी युवती, हाथ में एक झाड़ लिए हुए। समीप आकर मेहता को कहीं जाने को तैयार देखकर बोली—मैं वह जड़ी खोज लाई। अभी घिसकर लगाती हूं, लेकिन तुम कहां जा रहे हो? मांस तो पक गया होगा, मैं रोटियां सेंक देती हूं। दो-एक खा लेना। बाई दूध पी लेगी। ठंडा हो जाय, तो चले जाना।

उसने निस्संकोच भाव से मेहता के अचकन की बटनें खोल दीं। मेहता अपने को बहुत रोके हुए थे। जी होता था, इस गंवारिन के चरणों को चूम ले।

मालती ने कहा—अपनी दवाई रहने दे। नदी के किनारे, बरगद के नीचे हमारी मोटरकार खड़ी है। वहां और लोग होंगे। उनसे कहना, कार यहां लाएं। दौड़ी हुई जा।

युवती ने दीन नेत्रों से मेहता को देखा। इतनी मेहनत से बूटी लाई, उसका यह अनादर! इस गंवारिन की दवा इन्हें नहीं जंची, तो न सही, उसका मन रखने को ही जरा-सी लगवा लेतीं, तो क्या होता।

उसने बूटी जमीन पर रखकर पूछा—तब तक तो चूल्हा ठंडा हो जायगा बाईजी। कहो तो रोटियां सेंककर रख दूं। बाबूजी खाना खा लें, तुम दूध पी लो और दोनों जने आराम करो। तब तक मैं मोटर वाले को बुला लाऊंगी।

वह झोंपड़ी में गई, बुझी हुई आग फिर जलाई। देखा तो मांस उबल गया था। कुछ जल भी गया था। जल्दी-जल्दी रोटियां सेंकी, दूध गर्म था, उसे ठंडा किया और एक कटोरे

में मालती के पास लाई। मालती ने कटोरे के भद्देपन पर मुंह बनाया, लेकिन दूध त्याग न सकी। मेहता झोंपड़ी के द्वार पर बैठकर एक थाली में मांस और रोटियां खाने लगे। युवती खड़ी पंख झल रही थी।

मालती ने युवती से कहा—उन्हें खाने दो। कहीं भागे नहीं जाते हैं। तू जाकर गाड़ी ला।

युवती ने मालती की ओर एक बार सवाल की आंखों से देखा, यह क्या चाहती हैं। इनका आशय क्या है? उसे मालती के चेहरे पर रोगियों की-सी नम्रता और कृतज्ञता और याचना न दिखाई दी। उसकी जगह अभिमान और प्रमाद की झलक थी। गंवारिन मनोभावों को पहचानने में चतुर थी। बोली—मैं किसी की लौंडी नहीं हूं बाईजी। तुम बड़ी हो, अपने घर की बड़ी हो। मैं तुमसे कुछ मांगने तो नहीं जाती। मैं गाड़ी लेने न जाऊंगी।

मालती ने डांटा—अच्छा, तूने गुस्ताखी पर कमर बांधी। बता, तू किसके इलाके में रहती है?

'यह रायसाहब का इलाका है।'

'तो तुझे उन्हीं रायसाहब के हाथों हंटरों से पिटवाऊंगी।'

'मुझे पिटवाने से तुम्हें सुख मिले तो पिटवा लेना बाईजी। कोई रानी-महारानी थोड़ी हूं कि लस्कर भेजनी पड़ेगी।'

मेहता ने दो-चार कौर निगले थे कि मालती की यह बातें सुनीं। कौर कंठ में अटक गया। जल्दी से हाथ धोया और बोले—वह नहीं जायगी। मैं जा रहा हूं।

मालती भी खड़ी हो गई—उसे जाना पड़ेगा।

मेहता ने अंग्रेजी में कहा—उसका अपमान करके तुम अपना सम्मान बढ़ा नहीं रही हो मालती।

मालती ने फटकार बताई—ऐसी ही लौंडिया मर्दों को पसंद आती हैं, जिनमें और कोई गुण हो या न हो, उनकी टहल दौड़-दौड़कर प्रसन्न मन से करें और अपना भाग्य सराहें कि इस पुरुष ने मुझसे यह काम करने को तो कहा। वह देवियां हैं, शक्तियां हैं, विभूतियां हैं। मैं समझती थी, वह पुरुषत्व तुममें कम-से-कम नहीं है, लेकिन अंदर से, संस्कारों से, तुम भी वही बर्बर हो।

मेहता मनोविज्ञान के पंडित थे। मालती के मनोरहस्यों को समझ रहे थे। ईर्ष्या का ऐसा अनोखा उदाहरण उन्हें कभी न मिला था। उस रमणी में, जो इतनी मृदु-स्वभाव, इतनी उदार, इतनी प्रसन्न-मुख थी, ईर्ष्या की ऐसी प्रचंड ज्वाला।

बोले—कुछ भी कहो, मैं उसे न जाने दूंगा। उसकी सेवाओं और कृपाओं का यह पुरस्कार देकर मैं अपनी नजरों में नीच नहीं बन सकता।

मेहता के स्वर में कुछ ऐसा तेज था कि मालती धीरे-से उठी और चलने को तैयार हो गई। उसने जलकर कहा—अच्छा, तो मैं ही जाती हूं, तुम उसके चरणों की पूजा करके पीछे आना।

मालती दो-तीन कदम चली गई, तो मेहता ने युवती से कहा—अब मुझे आज्ञा दो बहन, तुम्हारा यह नेह, तुम्हारी यह निःस्वार्थ सेवा हमेशा याद रहेगी।

युवती ने दोनों हाथों से, सजल नेत्र होकर उन्हें प्रणाम किया और झोंपड़ी के अंदर चली गई।

दूसरी टोली रायसाहब और खन्ना की थी। रायसाहब तो अपने उसी रेशमी कुरते और रेशमी चादर में थे। मगर खन्ना ने शिकारी सूट डाटा था, जो शायद आज ही के लिए बनवाया गया था, क्योंकि खन्ना को असामियों के शिकार से इतनी फुर्सत कहां थी कि जानवरों का शिकार करते। खन्ना ठिगने, इकहरे, रूपवान आदमी थे, गेहुंआ रंग, बड़ी-बड़ी आंखें, मुंह पर चेचक के दाग, बातचीत में बड़े कुशल।

कुछ देर चलने के बाद खन्ना ने मिस्टर मेहता का जिक्र छेड़ दिया, जो कल से ही उनके मस्तिष्क में राहु की भांति समाए हुए थे।

बोले–यह मेहता भी कुछ अजीब आदमी है। मुझे तो कुछ बना हुआ मालूम होता है।

रायसाहब मेहता की इज्जत करते थे और उन्हें सच्चा और निष्कपट आदमी समझते थे, पर खन्ना से लेन-देन का व्यवहार था, कुछ स्वभाव से शांतिप्रिय भी थे, विरोध न कर सके। बोले–मैं तो उन्हें केवल मनोरंजन की वस्तु समझता हूं। कभी उनसे बहस नहीं करता और करना भी चाहूं तो उतनी विद्या कहां से लाऊं? जिसने जीवन के क्षेत्र में कभी कदम ही नहीं रखा, वह अगर जीवन के विषय में कोई नया सिद्धांत अलापता है, तो मुझे उस पर हंसी आती है। मजे से एक हजार माहवार फटकारते हैं, न जोरू न जांता, न कोई चिंता न बाधा, वह दर्शन न बघारें तो कौन बघारे? आप निर्द्वंद्व रहकर जीवन को संपूर्ण बनाने का स्वप्न देखते हैं। ऐसे आदमी से क्या बहस की जाय।

'मैंने सुना, चरित्र का अच्छा नहीं है।'

'बेफिक्री में चरित्र अच्छा रह ही कैसे सकता है। समाज में रहो और समाज के कर्त्तव्यों और मर्यादाओं का पालन करो, तब पता चले।'

'मालती न जाने क्या देखकर उन पर लट्टू हुई जाती है।'

'मैं समझता हूं, वह केवल तुम्हें जला रही है।'

'मुझे वह क्या जलाएंगी, बेचारी। मैं उन्हें खिलौने से ज्यादा नहीं समझता।'

'यह तो न कहो मिस्टर खन्ना, मिस मालती पर जान तो देते हो तुम।'

'यों तो मैं आपको भी यही इल्जाम दे सकता हूं।'

'मैं सचमुच खिलौना समझता हूं। आप उन्हें प्रतिमा बनाए हुए हैं।'

खन्ना ने जोर से कहकहा मारा, हालांकि हंसी की कोई बात न थी।

'अगर एक लोटा जल चढ़ा देने से वरदान मिल जाय, तो क्या बुरा है।'

अबकी रायसाहब ने जोर से कहकहा मारा, जिसका कोई प्रयोजन न था।

'तब आपने उस देवी को समझा ही नहीं। आप जितनी ही उसकी पूजा करेंगे, उतना ही वह आपसे दूर भागेंगी। जितना ही दूर भागिएगा, उतना ही आपकी ओर दौड़ेंगी।'

'तब तो उन्हें आपकी ओर दौड़ना चाहिए था।'

'मेरी ओर! मैं उस रसिक-समाज से बिल्कुल बाहर हूं मिस्टर खन्ना, सच कहता हूं। मुझमें जितनी बुद्धि, जितना बल है, वह इस इलाके के प्रबंध में ही खर्च हो जाता है। घर के जितने प्राणी हैं, सभी अपनी-अपनी धुन में मस्त, कोई उपासना में, कोई विषय-वासना में। कोऊ काहू में मगन, कोऊ काहू में मगन। और इन सब अजगरों को भक्ष्य देना मेरा काम है, कर्त्तव्य है। मेरे बहुत से ताल्लुकेदार भाई भोग-विलास करते हैं, यह मैं जानता हूं। मगर वह

लोग घर फूंककर तमाशा देखते हैं। कर्ज का बोझ सिर पर लदा जा रहा है, रोज डिगरियां हो रही हैं। जिससे लेते हैं, उसे देना नहीं जानते, चारों तरफ बदनाम। मैं तो ऐसी जिंदगी से मर जाना अच्छा समझता हूं। मालूम नहीं, किसी संस्कार से मेरी आत्मा में जरा-सी जान बाकी रह गई, जो मुझे देश और समाज के बंधन में बांधे हुए है। सत्याग्रह-आंदोलन छिड़ा। मेरे सारे भाई शराब-कबाब में मस्त थे। मैं अपने को न रोक सका। जेल गया और लाखों रुपये की जेरबारी उठाई और अभी तक उसका तावान दे रहा हूं। मुझे उसका पछतावा नहीं है। बिल्कुल नहीं। मुझे उसका गर्व है? मैं उस आदमी को आदमी नहीं समझता, जो देश और समाज की भलाई के लिए उद्योग न करे और बलिदान न करे। मुझे क्या यह अच्छा लगता है कि निर्जीव किसानों का रक्त चूसूं और अपने परिवार वालों की वासनाओं की तृप्ति के साधन जुटाऊं, मगर करूं क्या? जिस व्यवस्था में पला और जिया, उससे घृणा होने पर भी उसका मोह त्याग नहीं सकता और उसी चर्खे में रात-दिन पड़ा हुआ हूं कि किसी तरह आबरू-इज्जत बची रहे, और आत्मा की हत्या न होने पाए। ऐसा आदमी मिस मालती क्या, किसी भी मिस के पीछे नहीं पड़ सकता, और पड़े तो उसका सर्वनाश ही समझिए। हां, थोड़ा-सा मनोरंजन कर लेना दूसरी बात है।'

मिस्टर खन्ना भी साहसी आदमी थे, संग्राम में आगे बढ़ने वाले। दो बार जेल हो आए थे। किसी से दबना न जानते थे। खद्दर पहनते थे और फ्रांस की शराब पीते थे। अवसर पड़ने पर बड़ी-बड़ी तकलीफें झेल सकते थे। जेल में शराब छुई तक नहीं, और 'ए' क्लास में रहकर भी 'सी' क्लास की रोटियां खाते रहे, हालांकि, उन्हें हर तरह का आराम मिल सकता था, मगर रण-क्षेत्र में जाने वाला रथ भी तो बिना तेल के नहीं चल सकता। उनके जीवन में थोड़ी-सी रसिकता लाजिमी थी। बोले-आप संन्यासी बन सकते हैं, मैं तो नहीं बन सकता। मैं तो समझता हूं, जो भोगी नहीं है, वह संग्राम में भी पूरे उत्साह से नहीं जा सकता। जो रमणी से प्रेम नहीं कर सकता, उसके देश-प्रेम में मुझे विश्वास नहीं।

रायसाहब मुस्कराए-आप मुझी पर आवाजें कसने लगे।

'आवाज नहीं है, तत्त्व की बात है।'

'शायद हो।'

'आप अपने दिल के अंदर पैठकर देखिए तो पता चले।'

'मैंने तो पैठकर देखा है, और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं, वहां और चाहे जितनी बुराइयां हों, विषय की लालसा नहीं है।'

'तब मुझे आपके ऊपर दया आती है। आप जो इतने दुखी और निराश और चिंतित हैं, इसका एकमात्र कारण आपका निग्रह है। मैं तो यह नाटक खेलकर रहूंगा, चाहे दु:खांत ही क्यों न हो। वह मुझसे मजाक करती है, दिखाती है कि मुझे तेरी परवाह नहीं है, लेकिन मैं हिम्मत हारने वाला मनुष्य नहीं हूं। मैं अब तक उसका मिजाज नहीं समझ पाया। कहां निशाना ठीक बैठेगा, इसका निश्चय न कर सका। जिस दिन यह कुंजी मिल गई, बस फतह है।'

'लेकिन वह कुंजी आपको शायद ही मिले। मेहता शायद आपसे बाज़ी मार ले जायं।'

एक हिरन कई हिरनियों के साथ चर रहा था, बड़ी सींगों वाला, बिल्कुल काला। रायसाहब ने निशाना बांधा। खन्ना ने रोका-क्यों हत्या करते हो यार? बेचारा चर रहा है, चरने दो। धूप तेज हो गई। आइए कहीं बैठ जायं। आपसे कुछ बातें करनी हैं।

रायसाहब ने बंदूक चलाई, मगर हिरन भाग गया। बोले-एक शिकार मिला भी तो निशाना

खाली गया।

'एक हत्या से बचे।'

'हां कहिए, क्या कहने जा रहे थे।'

'आपके इलाके में ऊख होती है?'

'बड़ी कसरत से।'

'तो फिर क्यों न हमारे शुगर मिल में शामिल हो जाइए? हिस्से धड़ाधड़ बिक रहे हैं। आप ज्यादा नहीं, एक हजार हिस्से खरीद लें?'

'गजब किया, मैं इतने रुपये कहां से लाऊंगा?'

'इतने नामी इलाकेदार और आपको रुपयों की कमी। कुल पचास हजार ही तो होते हैं। उनमें भी अभी 25 फीसदी ही देना है।'

'नहीं भाई साहब, मेरे पास इस वक्त बिल्कुल रुपये नहीं हैं।

'रुपये जितने चाहें, मुझसे लीजिए। बैंक आपका है। हां, अभी आपने अपनी जिंदगी इंश्योर्ड न कराई होगी। मेरी कंपनी में एक अच्छी-सी पालिसी लीजिए! सौ-दो सौ रुपये तो आप बड़ी आसानी से हर महीने दे सकते हैं और इकट्ठी रकम मिल जायगी–चालीस-पचास हजार। लड़कों के लिए इससे अच्छा प्रबंध आप नहीं कर सकते। हमारी नियमावली देखिए। हम पूर्ण सहकारिता के सिद्धांत पर काम करते हैं। दफ्तर और कर्मचारियों के खर्च के सिवा नफे की एक पाई भी किसी की जेब में नहीं जाती। आपको आश्चर्य होगा कि इस नीति से कंपनी चल कैसे रही है। और मेरी सलाह से थोड़ा-सा स्पेकुलेशन का काम भी शुरू कर दीजिए। यह जो सैकड़ों करोड़पति बने हुए हैं, सब इसी स्पेकुलेशन से बने हैं। रुई, शक्कर, गेहूं, रबर किसी जिंस का सट्टा कीजिए। मिनटों में लाखों का वारा-न्यारा होता है। काम जरा अटपटा है। बहुत से लोग गच्चा खा जाते हैं, लेकिन वही, जो अनाड़ी हैं। आप जैसे अनुभवी, सुशिक्षित और दूरंदेश लोगों के लिए इससे ज्यादा नफे का काम ही नहीं। बाजार का चढ़ाव-उतार कोई आकस्मिक घटना नहीं। इसका भी विज्ञान है। एक बार उसे गौर से देख लीजिए फिर क्या मजाल कि धोखा हो जाय।'

रायसाहब कंपनियों पर अविश्वास करते थे, दो-एक बार इसका उन्हें कड़वा अनुभव हो भी चुका था, लेकिन मिस्टर खन्ना को उन्होंने अपनी आंखों के सामने बढ़ते देखा था और उनकी कार्यक्षमता के कायल हो गए थे। अभी दस साल पहले जो व्यक्ति बैंक में क्लर्क था, वह केवल न अपने अध्यवसाय, पुरुषार्थ और प्रतिभा से शहर में पुजता है। उसकी सलाहों की उपेक्षा न की जा सकती थी। इस विषय में अगर खन्ना उनके पथ-प्रदर्शक हो जायं, तो उन्हें बहुत कुछ कामयाबी हो सकती है। ऐसा अवसर क्यों छोड़ा जाय? तरह-तरह के प्रश्न करते रहे।

सहसा एक देहाती एक बड़ी-सी टोकरी में कुछ जड़ें, कुछ पत्तियां, कुछ फूल लिए, जाता नजर आया।

खन्ना ने पूछा–अरे, क्या बेचता है?

देहाती सकपका गया। डरा, कहीं बेगार में न पकड़ जाय। बोला–कुछ तो नहीं मालिक। यही घास-पात है?

'क्या करेगा इनको?'

'बेचूंगा मालिक। जड़ी-बूटी है।'

'कौन-कौन-सी जड़ी-बूटी है, बता?'

देहाती ने अपना औषधालय खोलकर दिखलाया। मामूली चीजें थीं, जो जंगल के आदमी उखाड़कर ले जाते हैं और शहर में अत्तारों के हाथ दो-चार आने में बेच आते हैं। जैसे मकोय, कंघी, सहदेइया, कुकरौंधे, धतूरे के बीज, मदार के फूल, करंजे, घुमची आदि। हर एक चीज दिखाता था और रटे हुए शब्दों में उनके गुण भी बयान करता जाता था। यह मकोय है सरकार। ताप हो, मंदाग्नि हो, तिल्ली हो, धड़कन हो, शूल हो, खांसी हो, एक खुराक में आराम हो जाता है। यह धतूरे के बीज हैं, मालिक गठिया हो, बाई हो....

खन्ना ने दाम पूछा—उसने आठ आने कहे। खन्ना ने एक रुपया फेंक दिया और उसे पड़ाव तक रख आने का हुक्म दिया। गरीब ने मुंह-मांगा दाम ही नहीं पाया, उसका दुगुना पाया। आशीर्वाद देता चला गया।

रायसाहब ने पूछा—आप यह घास-पात लेकर क्या करेंगे?

खन्ना ने मुस्कराकर कहा—इनकी अशर्फियां बनाऊंगा। मैं कीमियागर हूं। यह आपको शायद नहीं मालूम।

'तो यार, वह मंत्र हमें भी सिखा दो।'

'हां-हां, शौक से। मेरी शागिर्दी कीजिए। पहले सवा सेर लड्डू लाकर चढ़ाइए, तब बतलाऊंगा। बात यह है कि मेरा तरह-तरह के आदमियों से साबका पड़ता है। कुछ ऐसे लोग भी आते हैं, जो जड़ी-बूटियों पर जान देते हैं। उनको इतना मालूम हो जाय कि यह किसी फकीर की दी हुई बूटी है, फिर आपकी खुशामद करेंगे, नाक रगड़ेंगे, और आप वह चीज उन्हें दे दें, तो हमेशा के लिए आपका ऋणी हो जायंगे। एक रुपये में अगर दस-बीस बुद्धुओं पर एहसान का नमदा कसा जा सके, तो क्या बुरा है? जरा से एहसान से बड़े-बड़े काम निकल जाते हैं।'

रायसाहब ने कौतूहल से पूछा—मगर इन बूटियों के गुण आपको याद कैसे रहेंगे?

खन्ना ने कहकहा मारा—आप भी रायसाहब। बड़े मजे की बातें करते हैं। जिस बूटी में जो भी गुण चाहे बता दीजिए, वह आपकी लियाकत पर मुनहसर है। सेहत तो रुपये में आठ आने विश्वास से होती है। आप जो इन बड़े-बड़े अफसरों को देखते हैं, और इन लंबी पूंछवाले विद्वानों को, और इन रईसों को, ये सब अंधविश्वासी होते हैं। मैं तो वनस्पति-शास्त्र के प्रोफेसर को जानता हूं, जो कुकरौंधे का नाम भी नहीं जानते। इन विद्वानों का मजाक तो हमारे स्वामीजी खूब उड़ाते हैं। आपको तो कभी उनके दर्शन न हुए होंगे। अबकी आप आएंगे, तो उनसे मिलाऊंगा। जब से मेरे बगीचे में ठहरे हैं, रात-दिन लोगों का तांता लगा रहता है। माया तो उन्हें छू भी नहीं गई। केवल एक बार दूध पीते हैं। ऐसा विद्वान् महात्मा मैंने आज तक नहीं देखा। न जाने कितने वर्ष हिमालय पर तप करते रहे। पूरे सिद्ध पुरुष हैं। आप उनसे अवश्य दीक्षा लीजिए। मुझे विश्वास है, आपकी यह सारी कठिनाइयां छूमंतर हो जायंगी। आपको देखते ही आपका भूत-भविष्य सब कह सुनाएंगे। ऐसे प्रसन्न-मुख हैं कि देखते ही मन खिल उठता है। ताज्जुब तो, यह है कि खुद इतने बड़े महात्मा हैं, मगर संन्यास और त्याग, मंदिर और मठ, संप्रदाय और पंथी, इन सबको ढोंग कहते हैं, पाखंड कहते हैं। रूढ़ियों के बंधन को तोड़ो और मनुष्य बनो, देवता बनने का खयाल छोड़ो। देवता बनकर तुम मनुष्य न रहोगे।

रायसाहब के मन में शंका हुई। महात्माओं में उन्हें भी वह विश्वास था, जो प्रभुतावालों

में आमतौर पर होता है। दु:खी प्राणी को आत्मचिंतन में जो शांति मिलती है, उसके लिए वह भी लालायित रहते थे। जब आर्थिक कठिनाइयों से निराश हो जाते, मन में आता, संसार से मुंह मोड़कर एकांत में जा बैठें और मोक्ष की चिंता करें। संसार के बंधनों को वह भी साधारण मनुष्यों की भांति आत्मोन्नति के मार्ग की बाधाएं समझते थे और इनसे दूर हो जाना ही उनके जीवन का भी आदर्श था, लेकिन संन्यास और त्याग के बिना बंधनों को तोड़ने का और क्या उपाय है?

'लेकिन जब वह संन्यास को ढोंग कहते हैं, तो खुद क्यों संन्यास लिया है?'

'उन्होंने संन्यास कब लिया है साहब, वह तो कहते हैं–आदमी को अंत तक काम करते रहना चाहिए। विचार-स्वातंत्र्य उनके उपदेशों का तत्त्व है।'

'मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। विचार-स्वातंत्र्य का आशय क्या है?'

'समझ में तो मेरे भी कुछ नहीं आया, अबकी आइए, तो उनसे बातें हों। वह प्रेम को जीवन का सत्य कहते हैं। और इसकी ऐसी सुंदर व्याख्या करते हैं कि मन मुग्ध हो जाता है।'

'मिस मालती को उनसे मिलाया या नहीं?'

'आप भी दिल्लगी करते हैं। मालती को भला इनसे क्या मिलाता....

वाक्य पूरा न हुआ था कि सामने झाड़ी में सरसराहट की आवाज सुनकर चौंक पड़े और प्राण-रक्षा की प्रेरणा से रायसाहब के पीछे आ गए। झाड़ी में से एक तेंदुआ निकला और मंद गति से सामने की ओर चला।

रायसाहब ने बंदूक उठाई और निशाना बांधना चाहते थे कि खन्ना ने कहा–यह क्या करते हैं आप? ख्वाहमख्वाह उसे छेड़ रहे हैं,। कहीं लौट पड़े तो?

'लौट क्या पड़ेगा, वहीं ढेर हो जायगा।'

'तो मुझे उस टीले पर चढ़ जाने दीजिए। मैं शिकार का ऐसा शौकीन नहीं हूं।'

'तब क्या शिकार खेलने चले थे?'

'शामत और क्या।'

रायसाहब ने बंदूक नीचे कर ली।

'बड़ा अच्छा शिकार निकल गया। ऐसे अवसर कम मिलते हैं।'

'मैं तो अब यहां नहीं ठहर सकता। खतरनाक जगह है।'

'एकाध शिकार तो मार लेने दीजिए। खाली हाथ लौटते शर्म आती है।'

'आप मुझे कृपा करके कार के पास पहुंचा दीजिए, फिर चाहे तेंदुए का शिकार कीजिए या चीते का।'

'आप बड़े डरपोक हैं मिस्टर खन्ना, सच।'

'व्यर्थ में अपनी जान खतरे में डालना बहादुरी नहीं है।'

'अच्छा तो आप खुशी से लौट सकते हैं।'

'अकेला?'

'रास्ता बिल्कुल साफ है।'

'जी नहीं। आपको मेरे साथ चलना पड़ेगा।'

रायसाहब ने बहुत समझाया, मगर खन्ना ने एक न मानी। मारे भय के उनका चेहरा पीला पड़ गया था। उस वक्त अगर झाड़ी में से एक गिलहरी भी निकल आती, तो वह चीख मारकर

गिर पड़ते। बोटी-बोटी कांप रही थी। पसीने से तर हो गए थे। रायसाहब को लाचार होकर उनके साथ लौटना पड़ा।

जब दोनों आदमी बड़ी दूर निकल आए, तो खन्ना के होश ठिकाने आए।

बोले—खतरे से नहीं डरता, लेकिन खतरे के मुंह में उंगली डालना हिमाकत है।

'अजी, जाओ भी। जरा-सा तेंदुआ देख लिया, तो जान निकल गई।'

'मैं शिकार खेलना उस जमाने का संस्कार समझता हूं, जब आदमी पशु था। तब से संस्कृति बहुत आगे बढ़ गई है।'

'मैं मिस मालती से आपकी कलई खोलूंगा।'

'मैं अहिंसावादी होना लज्जा की बात नहीं समझता।'

'अच्छा, तो यह आपका अहिंसावाद था। शाबाश।'

खन्ना ने गर्व से कहा—जी हां, यह मेरा अहिंसावाद था। आप बुद्ध और शंकर के नाम पर गर्व करते हैं और पशुओं की हत्या करते हैं, लज्जा आपको आनी चाहिए, न कि मुझे।

कुछ दूर दोनों फिर चुपचाप चलते रहे। तब खन्ना बोले—तो आप कब तक आयेंगे? मैं चाहता हूं, आप पालिसी का फार्म आज ही भर दें और शक्कर के हिस्सों का भी। मेरे पास दोनों फार्म भी मौजूद हैं।

रायसाहब ने चिंतित स्वर में कहा—जरा सोच लेने दीजिए

'इसमें सोचने की ज़रूरत नहीं।'

तीसरी टोली मिर्जा खुर्शेद और मिस्टर तंखा की थी। मिर्जा खुर्शेद के लिए भूत और भविष्य सादे कागज की भाँति था। वह वर्तमान में रहते थे। न भूत का पछतावा था, न भविष्य की चिंता। जो कुछ सामने आ जाता था, उसमें जी-जान से लग जाते थे। मित्रों की मंडली में वह विनोद के पुतले थे। कौंसिल में उनसे ज्यादा उत्साही मेंबर कोई न था। जिस प्रश्न के पीछे पड़ जाते, मिनिस्टरों को रुला देते। किसी के साथ रू-रियायत करना न जानते थे। बीच-बीच में परिहास भी करते जाते थे। उनके लिए आज जीवन था, कल का पता नहीं। गुस्सेवर भी ऐसे थे कि ताल ठोंककर सामने आ जाते थे। नम्रता के सामने दंडवत करते थे, लेकिन जहां किसी ने शान दिखाई और यह हाथ धोकर उसके पीछे पड़े। न अपना लेना याद रखते थे, न दूसरों का देना। शौक था शायरी का और शराब का। औरत केवल मनोरंजन की वस्तु थी। बहुत दिन हुए हृदय का दिवाला निकाल चुके थे।

मिस्टर तंखा दांव-पेंच के आदमी थे, सौदा पटाने में, मुआमला सुलझाने में, अड़ंगा लगाने में, बालू से तेल निकालने में, गला दबाने में, दुम झाड़कर निकल जाने में बड़े सिद्धहस्त। कहिए रेत में नाव चला दें, पत्थर पर दूब उगा दें। ताल्लुकेदारों को महाजनों से कर्ज दिलाना, नई कंपनियां खोलना, चुनाव के अवसर पर उम्मेदवार खड़े करना, यही उनका व्यवसाय था। खासकर चुनाव के समय उनकी तकदीर चमकती थी। किसी पोढ़े उम्मेदवार को खड़ा करते, दिलोजान से उसका काम करते और दस-बीस हजार बना लेते। जब कांग्रेस का जोर था, तो कांग्रेस के उम्मेदवार के सहायक थे। जब सांप्रदायिक दल का जोर हुआ, तो हिन्दूसभा की ओर से काम करने लगे,

मगर इस उलटफेर के समर्थन के लिए उनके पास ऐसी दलीलें थीं कि कोई उंगली न दिखा सकता था। शहर के सभी रईस, सभी हुक्काम, सभी अमीरों से उनका याराना था। दिल में चाहे लोग उनकी नीति पसंद न करें, पर वह स्वभाव के इतने नम्र थे कि कोई मुंह पर कुछ न कह सकता था।

मिर्जा खुर्शेद ने रूमाल से माथे का पसीना पोंछकर कहा—आज तो शिकार खेलने के लायक दिन नहीं है। आज तो कोई मुशायरा होना चाहिए था।

वकील ने समर्थन किया—जी हां, वहीं बाग में। बड़ी बहार रहेगी।

थोड़ी देर के बाद मिस्टर तंखा ने मामले की बात छेड़ी।

'अबकी चुनाव में बड़े-बड़े गुल खिलेंगे। आपके लिए भी मुश्किल है।'

मिर्जा विरक्त मन से बोले—अबकी मैं खड़ा ही न हूंगा।

तंखा ने पूछा—क्यों?

'मुफ्त की बकबक कौन करे? फायदा ही क्या। मुझे अब इस डेमॉक्रेसी में भक्ति नहीं रही। जरा-सा काम और महीनों की बहस। हां, जनता की आंखों में धूल झोंकने के लिए अच्छा स्वांग है। इससे तो कहीं अच्छा है कि एक गवर्नर रहे, चाहे वह हिन्दुस्तानी हो, या अंग्रेज, इससे बहस नहीं। एक इंजिन जिस गाड़ी को बड़े मजे से हजारों मील खींच ले जा सकता है, उसे दस हजार आदमी मिलकर भी उतनी तेजी से नहीं खींच सकते। मैं तो यह सारा तमाशा देखकर कौंसिल से बेजार हो गया हूं। मेरा बस चले, तो कौंसिल में आग लगा दूं। जिसे हम डेमॉक्रेसी कहते हैं, वह व्यवहार में बड़े-बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य है, और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाजी ले जाता है, जिसके पास रुपये हैं। रुपये के जोर से उसके लिए सभी सुविधाएं तैयार हो जाती हैं। बड़े-बड़े पंडित, बड़े-बड़े मौलवी, बड़े-बड़े लिखने और बोलने वाले, जो अपनी जबान और कलम से पब्लिक को जिस तरफ चाहें फेर दें, सभी सोने के देवता के पैरों पर माथा रगड़ते हैं, मैंने तो इरादा कर लिया है, अब इलेक्शन के पास न जाऊंगा। मेरा प्रोपेगंडा अब डेमॉक्रेसी के खिलाफ होगा।'

मिर्जा साहब कुरान की आयतों से सिद्ध किया कि पुराने जमाने के बादशाहों के आदर्श कितने ऊंचे थे। आज तो हम उसकी तरफ ताक भी नहीं सकते। हमारी आंखों में चकाचौंध आ जायगी। बादशाह को खजाने की एक कौड़ी भी निजी खर्च में लाने का अधिकार न था। वह किताबें नकल करके, कपड़े सीकर, लड़कों को पढ़ाकर अपना गुजर करता था। मिर्जा ने आदर्श महीपों की एक लंबी सूची गिना दी। कहां तो वह प्रजा को पालने वाला बादशाह, और कहां आजकल के मंत्री और मिनिस्टर, पांच, छः, सात, आठ हजार माहवार मिलना चाहिए। यह लूट है या डेमॉक्रेसी।

हिरनों का झुंड चरता हुआ नजर आया। मिर्जा के मुख पर शिकार का जोश चमक उठा। बंदूक संभाली और निशाना मारा। एक काला-सा हिरन गिर पड़ा। वह मारा। इस उन्मत्त ध्वनि के साथ मिर्जा भी बेतहाशा दौड़े—बिलकुल बच्चों की तरह उछलते, कूदते, तालियां बजाते।

समीप ही एक वृक्ष पर एक आदमी लकड़ियां काट रहा था। वह भी चट-पट वृक्ष से उतरकर मिर्जाजी के साथ दौड़ा। हिरन की गर्दन में गोली लगी थी, उसके पैरों में कंपन हो रहा था और आंखें पथरा गई थीं।

लकड़हारे ने हिरन को करुण नेत्रों से देखकर कहा—अच्छा पट्ठा था, मन-भर से कम

न होगा। हुकुम हो, तो मैं उठाकर पहुंचा दूं?

मिर्जा कुछ बोले नहीं। हिरन की टंगी हुई, दीन, वेदना से भरी आंखें देख रहे थे। अभी एक मिनट पहले इसमें जीवन था। जरा-सा पत्ता भी खड़कता, तो कान खड़े करके चौकड़ियां भरता हुआ निकल भागता। अपने मित्रों और बाल-बच्चों के साथ ईश्वर की उगाई हुई घास खा रहा था, मगर अब निस्पंद पड़ा है। उसकी खाल उधेड़लो, उसकी बोटियां कर डालो, उसका कीमा बना डालो, उसे खबर भी न होगी। उसके क्रीड़ामय जीवन में जो आकर्षण था, जो आनंद था, वह क्या इस निर्जीव शव में है? कितनी सुंदर गठन थी, कितनी प्यारी आंखें, कितनी मनोहर छवि। उसकी छलांगें हृदय में आनंद की तरंगें पैदा कर देती थीं, उसकी चौकड़ियों के साथ हमारा मन भी चौकड़ियां भरने लगता था। उसकी स्फूर्ति जीवन-सा बिखेरती चलती थी, जैसे फूल सुगंध बिखेरता है, लेकिन अब। उसे देखकर ग्लानि होती है।

लकड़हारे ने पूछा—कहां पहुंचाना होगा मालिक? मुझे भी दो-चार पैसे दे देना।

मिर्जाजी जैसे ध्यान से चौंक पड़े। बोले—अच्छा, उठा ले। कहां चलेगा?

'जहां हुकुम हो मालिक।'

'नहीं, जहां तेरी इच्छा हो, वहां ले जा। मैं तुझे देता हूं।'

लकड़हारे ने मिर्जा की ओर कौतूहल से देखा। कानों पर विश्वास न आया।

'अरे नहीं मालिक, हुजूर ने सिकार किया है, तो हम कैसे खा लें।'

'नहीं-नहीं, मैं खुशी से कहता हूं, तुम इसे ले जाओ। तुम्हारा घर यहां से कितनी दूर है?'

'कोई आधा कोस होगा मालिक।'

'तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। देखूंगा, तुम्हारे बाल-बच्चे कैसे खुश होते हैं।'

'ऐसे तो मैं न ले जाऊंगा सरकार। आप इतनी दूर से आए, इस कड़ी धूप में सिकार किया, मैं कैसे उठा ले जाऊं?'

'उठा उठा, देर न कर। मुझे मालूम हो गया, तू भला आदमी है।'

लकड़हारे ने डरते-डरते और रह-रहकर मिर्जाजी के मुख की ओर सशंक नेत्रों से देखते हुए कि कहीं बिगड़ न जायं, हिरन को उठाया। सहसा उसने हिरन को छोड़ दिया और खड़ा होकर बोला—मैं समझ गया मालिक, हुजूर ने इसकी हलाली नहीं की।

मिर्जाजी ने हंसकर कहा—बस-बस, तूने खूब समझा। अब उठा ले और घर चल।

मिर्जाजी धर्म के इतने पाबंद न थे। दस साल से उन्होंने नमाज न पढ़ी थी। दो महीने में एक दिन व्रत रख लेते थे। बिल्कुल निराहर, निर्जल, मगर लकड़हारे को इस खयाल से जो संतोष हुआ था कि हिरन अब इन लोगों के लिए अखाद्य हो गया है, उसे फीका न करना चाहते थे।

लकड़हारे ने हल्के मन से हिरन को गर्दन पर रख लिया और घर की ओर चला। तंखा अभी तक तटस्थ से वहीं पेड़ के नीचे खड़े थे। धूप में हिरन के पास जाने का कष्ट क्यों उठाते? कुछ समझ में न आ रहा था कि मुआमला क्या है, लेकिन जब लकड़हारे को उल्टी दिशा में जाते देखा, तो आकर मिर्जा से बोले—आप उधर कहां जा रहे हैं हजरत। क्या रास्ता भूल गए?

मिर्जा ने अपराधी भाव से मुस्कराकर कहा—मैंने शिकार इस गरीब आदमी को दे दिया। अब ज़रा इसके घर चल रहा हूं। आप भी आइए न।

तंखा ने मिर्जा को कौतूहल की दृष्टि से देखा और बोले—आप अपने होश में हैं या नहीं?

'कह नहीं सकता। मुझे खुद नहीं मालूम।'

'शिकार इसे क्यों दे दिया?'

'इसलिए कि उसे पाकर इसे जितनी खुशी होगी, मुझे या आपको न होगी।'

तंखा खिसियाकर बोले—जाइए! सोचा था, खूब कबाब उड़ाएंगे, सो आपने सारा मजा किरकिरा कर दिया। खैर, रायसाहब और मेहता कुछ न कुछ लाएंगे ही। कोई गम नहीं। मैं इस इलेक्शन के बारे में कुछ अर्ज करना चाहता हूं। आप नहीं खड़ा होना चाहते न सही, आपकी जैसी मर्जी, लेकिन आपको इसमें क्या ताम्मुल है कि जो लोग खड़े हो रहे हैं, उनसे इसकी अच्छी कीमत वसूल की जाय। मैं आपसे सिर्फ इतना चाहता हूं कि आप किसी पर यह भेद ने खुलने दें कि आप नहीं खड़े हो रहे हैं। सिर्फ इतनी मेहरबानी कीजिए मेरे साथ। ख्वाजा जमाल ताहिर इसी शहर से खड़े हो रहे हैं। रईसों के वोट तो सोलहों आने उनकी तरफ हैं ही, हुक्काम भी उनके मददगार हैं। फिर भी पब्लिक पर आपका जो असर है, इससे उनकी कोर दब रही है। आप चाहें तो आपको उनसे दस-बीस हजार रुपये महज यह जाहिर कर देने के मिल सकते हैं कि आप उनकी खातिर बैठ जाते हैं.... नहीं मुझे अर्ज कर लेने दीजिए। इस मुआमले में आपको कुछ नहीं करना है। आप बेफिक्र बैठे रहिए। मैं आपकी तरफ से एक मेनिफेस्टो निकाल दूंगा और उसी र॥म को आप मुझसे दस हजार नकद वसूल कर लीजिए।

मिर्जा साहब ने उनकी ओर हिकारत से देखकर कहा—मैं ऐसे रुपये पर और आप पर लानत भेजता हूं।

मिस्टर तंखा ने जरा भी बुरा नहीं माना। माथे पर बल तक न आने दिया।

'मुझ पर जितनी लानत चाहें भेजें, मगर रुपगे पर लानत भेजकर आप अपना ही नुकसान कर रहे हैं।'

'मैं ऐसी रकम को हराम समझता हूं।'

'आप शरीयत के इतने पाबंद तो नहीं हैं।'

'लूट की कमाई को हराम समझने के लिए शरा का पाबंद होने की जरूरत नहीं है।'

'तो इस मुआमले में क्या आप फैसला तब्दील नहीं कर सकते?

'जी नहीं।'

'अच्छी बात है, इसे जाने दीजिए। किसी बीमा कंपनी के डाइरेक्टर बनने में तो आपको कोई एतराज नहीं है? आपको कंपनी का एक हिस्सा भी न खरीदना पड़ेगा। आप सिर्फ अपना नाम दे दीजिएगा।'

'जी नहीं, मुझे यह भी मंजूर नहीं है। मैं कई कंपनियों का डाइरेक्टर, कई का मैनेजिंग एजेंट, कई का चेयरमैन था। दौलत मेरे पांव चूमती थी। मैं जानता हूं, दौलत से आराम और तकल्लुफ के कितने सामान जमा किए जा सकते हैं, मगर यह भी जानता हूं कि दौलत इंसान को कितना खुदगरज बना देती है, कितना ऐश ग्संद, कितना मक्कार, कितना बेगैरत।'

वकील साहब को फिर कोई प्रस्ताव करने का साहस न हुआ। मिर्जाजी की बुद्धि और प्रभाव में उनका जो विश्वास था, वह बहुत कम हो गया। उनके लिए धन ही सब कुछ था और ऐसे आदमी से, जो लक्ष्मी को ठोकर मारता हो, उनका कोई मेल न हो सकता था।

लकड़हारा हिरन को कंधे पर रखे लपका चला जा रहा था। मिर्जा ने भी कदम बढ़ाया,

पर स्थूलकाय तंखा पीछे रह गए।

उन्होंने पुकारा—जरा सुनिए, मिर्जाजी, आप तो भागे जा रहे हैं।

मिर्जाजी ने बिना रुके हुए जवाब दिया—वह गरीब बोझ लिए इतनी तेजी से चला जा रहा है। हम क्या अपना बदन लेकर भी उसके बराबर नहीं चल सकते?

लकड़हारे ने हिरन को एक ठूंठ पर उतारकर रख दिया था और दम लेने लगा था।

मिर्जा साहब ने आकर पूछा—थक गए, क्यों?

लकड़हारे ने सकुचाते हुए कहा—बहुत भारी है सरकार।

'तो लाओ, कुछ दूर मैं ले चलूं।'

लकड़हारा हंसा। मिर्जा डील-डौल में उससे कहीं ऊंचे और मोटे-ताजे थे, फिर भी वह दुबला-पतला आदमी उनकी इस बात पर हंसा। मिर्जाजी पर जैसे चाबुक पड़ गया।

'तुम हंसे क्यों? क्या तुम समझते हो, मैं इसे नहीं उठा सकता?'

लकड़हारे ने मानो क्षमा मांगी—सरकार आप बड़े आदमी हैं। बोझ उठाना तो हम-जैसे मजूरों का ही काम है।

'मैं तुम्हारा दुगुना जो हूं।'

'इससे क्या होता है मालिक।'

मिर्जाजी का पुरुषत्व अपना और अपमान न सह सका। उन्होंने बढ़कर हिरन को गर्दन पर उठा लिया और चले, मगर मुश्किल से पचास कदम चले होंगे कि गर्दन फटने लगी, पांव थरथराने लगे और आंखों में तितलियां उड़ने लगीं। कलेजा मजबूत किया और एक बीस कदम और चले। कम्बख्त कहां रह गया? जैसे इस लाश में सीसा भर दिया गया हो। जरा मिस्टर तंखा की गर्दन पर रख दूं, तो मजा आए। मशक की तरह जो फूले चलते हैं, जरा इसका मजा भी देखें, लेकिन बोझा उतारें कैसे? दोनों अपने दिल में कहेंगे, बड़ी जवांमर्दी दिखाने चले थे। पचास कदम में चीं बोल गए।

लकड़हारे ने चुटकी ली—कहो मालिक, कैसे रंग-ढंग हैं? बहुत हलका है न?

मिर्जाजी को बोझ कुछ हलका मालूम होने लगा। बोले—उतनी दूर तो ले ही जाऊंगा, जितनी दूर तुम लाए हो।

'कई दिन गर्दन दुखेगी मालिक।'

'तुम क्या समझते हो, मैं यों ही फूला हुआ हूं।'

'नहीं मालिक, अब तो ऐसा नहीं समझता। मुदा आप हैरान न हों, वह चट्टान है, उस पर उतार दीजिए।'

'मैं अभी इसे इतनी ही दूर और ले जा सकता हूं।'

'मगर यह अच्छा तो नहीं लगता कि मैं ठाला चलूं और आप लदे रहें।'

मिर्जा साहब ने चट्टान पर हिरन को उतारकर रख दिया। वकील साहब आ पहुंचे।

मिर्जा ने दाना फेंका—अब आपको भी कुछ दूर ले चलना पड़ेगा जनाब।

वकील साहब की नजरों में अब मिर्जाजी का कोई महत्त्व न था। बोले—मुआफ कीजिए। मुझे अपनी पहलवानी का दावा नहीं है।

'बहुत भारी नहीं है सच।'

'अजी, रहने भी दीजिए।'

'आप अगर इसे सौ कदम ले चलें, तो मैं वादा करता हूं, आप मेरे सामने जो तजवीज रखेंगे, उसे मंजूर कर लूंगा।'

'मैं इन चकमों में नहीं आता।'

'मैं चकमा नहीं दे रहा हूं, वल्लाह! आप जिस हलके से कहेंगे, खड़ा हो जाऊंगा। जब हुक्म देंगे, बैठ जाऊंगा। जिस कंपनी का डाइरेक्टर, मेंबर, मुनीम, कनवेसर, जो कुछ कहिएगा, बन जाऊंगा। बस, सौ कदम ले चलिए। मेरी तो ऐसे ही दोस्तों से निभती है, जो मौका पड़ने पर सब कुछ कर सकते हों।'

तंखा का मन चुलबुला उठा। मिर्जा अपने कौल के पक्के हैं। इसमें कोई संदेह न था। हिरन ऐसा क्या बहुत भारी होगा। आखिर मिर्जा इतनी दूर ले ही आए। बहुत ज्यादा थके तो नहीं जान पड़ते, अगर इंकार करते हैं, तो सुनहरा अवसर हाथ से जाता है। आखिर ऐसा क्या कोई पहाड़ है। बहुत होगा, चार-पांच पंसेरी होगा। दो-चार दिन गर्दन ही तो दुखेगी! जेब में रुपये हों, तो थोड़ी-सी बीमारी सुख की वस्तु है।

'सौ कदम की रही।'

'हां, सौ कदम। मैं गिनता चलूंगा।'

'देखिए, निकल न जाइएगा।'

'निकल जाने वाले पर लानत भेजता हूं।

तंखा ने जूते का फीता फिर से बांधा, कोट उतारकर लकड़हारे को दिया, पतलून ऊपर चढ़ाया, रूमाल से मुंह पोंछा और इस तरह हिरन को देखा, मानो ओखली में सिर देने जा रहे हैं। फिर हिरन को उठाकर गर्दन पर रखने की चेष्टा की। दो-तीन बार जोर लगाने पर लाश गर्दन पर तो आ गई, पर गर्दन न उठ सकी। कमर झुक गई, हांफ उठे और लाश को जमीन पर पटकने वाले थे कि मिर्जा ने उन्हें सहारा देकर आगे बढ़ाया।

तंखा ने एक डग इस तरह उठाया, जैसे दलदल में पांव रख रहे हों। मिर्जा ने बढ़ावा दिया—शाबाश! मेरे शेर, वाह-वाह!

तंखा ने एक डग और रखा। मालूम हुआ, गर्दन टूटी जाती है।

'मार लिया मैदान! शबाश! जीते रहो पट्ठे।'

तंखा दो डग और बढ़े। आंखें निकली पड़ती थीं।

'बस, एक बार और जोर मारो दोस्त! सौ कदम की शर्त गलत। पचास कदम की ही रही।'

वकील साहब का बुरा हाल था। वह बेजान हिरन शेर की तरह उनको दबोचे हुए, उनका हृदय-रक्त चूस रहा था। सारी शक्तियां जवाब दे चुकी थीं। केवल लोभ, किसी लोहे की धरन की तरह छत को संभाले हुए था। एक से पच्चीस हजार तक की गोटी थी। मगर अंत में वह शहतीर भी जवाब दे गई। लोभी की कमर भी टूट गई। आंखों के सामने अंधेरा छा गया। सिर में चक्कर आया और वह शिकार गर्दन पर लिए पथरीली जमीन पर गिर पड़े।

मिर्जा ने तुरंत उन्हें उठाया और अपने रूमाल से हवा करते हुए उनकी पीठ ठोंकी।

'जोर तो यार तुमने खूब मारा, लेकिन तकदीर के खोटे हो।'

तंखा ने हांफते हुए लंबी सांस खींचकर कहा—आपने तो आज मेरी जान ही ले ली थी। दो मन से कम न होगा ससुर।

मिर्जा ने हंसते हुए कहा—लेकिन भाईजान, मैं भी तो इतनी दूर उठाकर लाया ही था।

वकील साहब ने खुशामद करनी शुरू की—मुझे तो आपकी फर्माइश पूरी करनी थी। आपको तमाशा देखना था, वह आपने देख लिया। अब आपको अपना वादा पूरा करना होगा।

'आपने मुआहदा (कौल-करार, शर्त) कब पूरा किया?'

'कोशिश तो जान तोड़कर की।'

'इसकी सनद नहीं।'

लकड़हारे ने फिर हिरन उठा लिया और भागा चला जा रहा था। वह दिखा देना चाहता था कि तुम लोगों ने कांख-कूंखकर दस कदम इसे उठा लिया, तो यह न समझो कि पास हो गए। इस मैदान में मैं दुर्बल होने पर भी तुमसे आगे रहूंगा। हां, कागद तुम चाहे जितना काला करो और झूठे मुकदमे चाहे जितने बनाओ।

एक नाला मिला, जिसमें बहुत थोड़ा पानी था। नाले के उस पार टीले पर एक छोटा-सा पांच-छ: घरों का पुरवा था और कई लड़के इमली के नीचे खेल रहे थे। लकड़हारे को देखते ही सबों ने दौड़कर उसका स्वागत किया और लगे पूछने—किसने मारा बापू? कैसे मारा, कहां मारा, कैसे गोली लगी, कहां लगी, इसी को क्यों लगी, और हिरनों को क्यों न लगी? लकड़हारा हूं-हां करता इमली के नीचे पहुंचा और हिरन को उतारकर पास की झोंपड़ी से दोनों महानुभावों के लिए खाट लेने दौड़ा। उसके चारों लड़कों और लड़कियों ने शिकार को अपने चार्ज में ले लिया और अन्य लड़कों को भगाने की चेष्टा करने लगे।

सबसे छोटे बालक ने कहा—यह हमारा है।

उसकी बड़ी बहन ने, जो चौदह-पंद्रह साल की थी, मेहमानों की ओर देखकर छोटे भाई को डांटा—चुप, नहीं सिपाही पकड़ ले जायगा।

मिर्जा ने लड़के को छेड़ा—तुम्हारा नहीं, हमारा है।

बालक ने हिरन पर बैठकर अपना कब्जा सिद्ध कर दिया और बोला—बापू तो लाए हैं।

बहन ने सिखाया—कह दे भैया, तुम्हारा है।

इन बच्चों की मां बकरी के लिए पत्तियां तोड़ रही थी। दो नए भले आदमियों को देखकर जरा-सा घूंघट निकाल लिया और शरमाई कि उसकी साड़ी कितनी मैली, कितनी फटी, कितनी उटंगी है। वह इस वेश में मेहमानों के सामने कैसे जाय? और गए बिना काम नहीं चलता। पानी वानी देना है।

अभी दोपहर होने में कुछ कसर थी, लेकिन मिर्जा साहब ने दोपहरी इसी गांव में काटने का निश्चय किया। गांव के आदमियों को जमा किया। शराब मंगवाई, शिकार पका, समीप के बाजार से घी और मैदा मंगाया और सारे गांव को भोज दिया। छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष सबों ने दावत उड़ाई। मर्दों ने खूब शराब पी और मस्त होकर शाम तक गाते रहे और मिर्जाजी बालकों के साथ बालक, शराबियों के साथ शराबी, बूढ़ों के साथ बूढ़े, जवानों के साथ जवान बने हुए थे। इतनी ही देर में सारे गांव से उनका इतना घनिष्ठ परिचय हो गया था, मानो यहीं के निवासी हों। लड़के तो उन पर लदे पड़ते थे। कोई उनकी फुंदनेदार टोपी सिर पर रखे लेता था, कोई उनकी राइफल कंधे पर रखकर अकड़ता हुआ चलता था, कोई उनकी कलाई की घड़ी खोलकर अपनी कलाई पर बांध लेता था। मिर्जा ने खुद खूब देशी शराब पी और झूम-झूमकर जंगली आदमियों के साथ गाते रहे।

जब ये लोग सूर्यास्त के समय यहां से बिदा हुए तो गांव-भर के नर-नारी इन्हें बड़ी दूर तक पहुंचाने आए। कई तो रोते थे। ऐसा सौभाग्य उन गरीबों के जीवन में शायद पहली बार आया हो कि किसी शिकारी ने उनकी दावत की हो। जरूर यह कोई राजा है, नहीं तो इतना दरियाव दिल किसका होता है। इनके दर्शन फिर काहे को होंगे।

कुछ दूर चलने के बाद मिर्जा ने पीछे फिरकर देखा और बोले—बेचारे कितने खुश थे। काश, मेरी जिंदगी में ऐसे मौके रोज आते। आज का दिन बड़ा मुबारक था।

तंखा ने बेरुखी के साथ कहा—आपके लिए मुबारक होगा, मेरे लिए तो मनहूस ही था। मतलब की कोई बात न हुई। दिन-भर जंगलों और पहाड़ों की खाक छानने के बाद अपना-सा मुंह लिए लौटे जाते हैं।

मिर्जा ने निर्दयता से कहा—मुझे आपके साथ हमदर्दी नहीं है।

दोनों आदमी जब बरगद के नीचे पहुंचे, तो दोनों टोलियां लौट चुकी थीं। मेहता मुंह लटकाए हुए थे। मालती विमन-सी अलग बैठी थी, जो नई बात थी। रायसाहब और खन्ना दोनों भूखे रह गए थे और किसी के मुंह से बात न निकलती थी। वकील साहब इसलिए दु:खी थे कि मिर्जा ने उनके साथ बेवफाई की। अकेले मिर्जा साहब प्रसन्न थे और वह प्रसन्नता अलौकिक थी।

आठ

जब से होरी के घर में गाय आ गई है, घर की श्री ही कुछ और हो गई है। धनिया का घमंड तो उसके संभाल से बाहर हो-हो जाता है। जब देखो, गाय की चर्चा।

भूसा छिज गया था। ऊख में थोड़ी-सी चरी बो दी गई थी। उसी की कुट्टी काटकर जानवरों को खिलाना पड़ता था। आंखें आकाश की ओर लगी रहती थीं कि पानी बरसे और घास निकले। आधा असाढ़ बीत गया और वर्षा न हुई।

सहसा एक दिन बादल उठे और असाढ़ का पहला दौंगड़ा [पहली वर्षा] गिरा। किसान खरीफ बोने के लिए हल ले-लेकर निकले कि रायसाहब के कारकुन ने कहला भेजा, जब तक बाकी न चुक जायगी, किसी को खेत में हल न ले जाने दिया जायगा। किसानों पर जैसे वज्रपात हो गया। और कभी तो इतनी कड़ाई न होती थी, अबकी यह कैसा हुक्म। कोई गांव छोड़कर भागा थोड़े ही जाता है, अगर खेतों में हल न चले, तो रुपये कहां से आ जायंगे? निकालेंगे तो खेत ही से। सब मिलकर कारकुन के पास जाकर रोए। कारकुन का नाम था पंडित नोखेराम। आदमी बुरे न थे, मगर मालिक का हुक्म था। उसे कैसे टालें? अभी उस दिन रायसाहब ने होरी से कैसी दया और धर्म की बातें की थीं और आज असामियों पर यह जुल्म। होरी मालिक के पास जाने को तैयार हुआ, लेकिन फिर सोचा, उन्होंने कारकुन को एक बार जो हुक्म दे दिया, उसे क्यों टालने लगे? वह अगुवा बनकर क्यों बुरा बने? जब और कोई कुछ नहीं बोलता, तो वही आग में क्यों कूदे? जो सबके सिर पड़ेगी, वह भी झेल लेगा।

किसानों में खलबली मची हुई थी। सभी गांव के महाजनों के पास रुपये के लिए दौड़े।

गांव में मंगरू साह की आजकल चढ़ी हुई थी। इस साल सन में उसे अच्छा फायदा हुआ था। गेहूं और अलसी में भी उसने कुछ कम नहीं कमाया था। पंडित दातादीन और दुलारी सहुआइन भी लेन-देन करती थीं। सबसे बड़े महाजन थे झिंगुरीसिंह। वह शहर के एक बड़े महाजन के एजेंट थे। उनके नीचे कई आदमी और थे, जो आस-पास के देहातों में घूम-घूमकर लेन-देन करते थे। इनके उपरांत और भी कई छोटे-मोटे महाजन थे, जो दो आने रुपये ब्याज पर बिना लिखा-पढ़ी के रुपये देते थे। गांव वालों को लेन-देन का कुछ ऐसा शौक था कि जिसके पास दस-बीस रुपये जमा हो जाते, वही महाजन बन बैठता था। एक समय होरी ने भी महाजनी की थी। उसी का यह प्रभाव था कि लोग अभी तक यही समझते थे कि होरी के पास दबे हुए रुपये हैं। आखिर वह धन गया कहां? बंटवारे में निकला नहीं, होरी ने कोई तीर्थ, व्रत, भोज किया नहीं, गया तो कहां गया? जूते फट जाने पर भी उनके घट्ठे बने रहते हैं।

किसी ने किसी देवता को सीधा किया, किसी ने किसी को। किसी ने आना रुपया ब्याज देना स्वीकार किया, किसी ने दो आना। होरी में आत्मसम्मान का सर्वथा लोप न हुआ था। जिन लोगों के रुपये उस पर बाकी थे, उनके पास कौन मुंह लेकर जाय? झिंगुरीसिंह के सिवा उसे और कोई न सूझा। वह पक्का कागज लिखाते थे, नजराना अलग लेते थे, दस्तूरी अलग, स्टांप की लिखाई अलग। उस पर एक साल का ब्याज पेशगी काटकर रुपया देते थे। पच्चीस रुपये का कागज लिखा तो मुश्किल से सत्रह रुपये हाथ लगते थे, मगर इस गाढ़े समय में और क्या किया जाय? रायसाहब की जबरदस्ती है, नहीं इस समय किसी के सामने क्यों हाथ फैलाना पड़ता?

झिंगुरीसिंह बैठे दातून कर रहे थे। नाटे, मोटे, खल्वाट, काले, लंबी नाक और बड़ी-बड़ी मूंछों वाले आदमी थे, बिल्कुल विदूषक-जैसे। और थे भी बड़े हंसोड़। इस गांव को अपनी ससुराल बनाकर मर्दों से साले या ससुर और औरतों से साली या सलहज का नाता जोड़ लिया था। रास्ते में लड़के उन्हें चिढ़ाते–पंडितजी पैलगी। और झिंगुरीसिंह उन्हें चटपट आशीर्वाद देते–तुम्हारी आंखें फूटें, घुटना टूटे, मिर्गी आए, घर में आग लग जाय आदि। लड़के इस आशीर्वाद से कभी न अघाते थे, मगर लेन-देन में बड़े कठोर थे। सूद की एक पाई न छोड़ते थे और वादे पर बिना रुपये लिये द्वार से न टलते थे।

होरी ने सलाम करके अपनी विपत्ति-कथा सुनाई।

झिंगुरीसिंह ने मुस्कराकर कहा–वह सब पुराना रुपया क्या कर डाला?

'पुराने रुपये होते ठाकुर, तो महाजनों से अपना गला न छुड़ा लेता, कि सूद भरते किसी को अच्छा लगता है?'

'गड़े रुपये न निकलें, चाहे सूद कितना ही देना पड़े। तुम लोगों की यही नीति है।'

'कहां के गड़े रुपये बाबू साहब, खाने को तो होता नहीं। लड़का जवान हो गया, ब्याह का कहीं ठिकाना नहीं। बड़ी लड़की भी ब्याहने जोग हो गई। रुपये होते, तो किस दिन के लिए गाड़ रखते?'

झिंगुरीसिंह ने जब से उसके द्वार पर गाय देखी थी, उस पर दांत लगाए हुए थे। गाय का डील-डौल और गठन कह रहा था कि उसमें पांच सेर से कम दूध नहीं है। मन में सोच लिया था, होरी को किसी अड़दब में डालकर गाय को उड़ा लेना चाहिए। आज वह अवसर

आ गया।

बोले—अच्छा भई, तुम्हारे पास कुछ नहीं है, अब राजी हुए। जितने रुपये चाहो, ले जाओ, लेकिन तुम्हारे भले के लिए कहते हैं, कुछ गहने-गाठे हों, तो गिरो रखकर रुपये ले लो। इसटाम लिखोगे, तो सूद बढ़ेगा और झमेले में पड़ जाओगे।

होरी ने कसम खाई कि घर में गहने के नाम कच्चा सूत भी नहीं है। धनिया के हाथों में कड़े हैं, वह भी गिलट के।

झिंगुरीसिंह ने सहानुभुति का रंग मुंह पर पोतकर कहा—तो एक बात करो, यह नई गाय जो लाए हो, इसे हमारे हाथ बेच दो। सूद इसटाम सब झगड़ों से बच जाओ, चार आदमी जो दाम कहें, वह हमसे ले लो। हम जानते हैं, तुम उसे अपने शौक से लाए हो और बेचना नहीं चाहते, लेकिन यह संकट तो टालना ही पड़ेगा।

होरी पहले तो इस प्रस्ताव पर हंसा, उस पर शांत मन से विचार भी न करना चाहता था, लेकिन ठाकुर ने ऊंच-नीच सुझाया, महाजनी के हथकंडों का ऐसा भीषण रूप दिखाया कि उसके मन में भी यह बात बैठ गई। ठाकुर ठीक ही तो कहते हैं, जब हाथ में रुपये आ जायं, गाय ले लेना। तीस रुपये का कागद लिखने पर कहीं पच्चीस रुपये मिलेंगे और तीन-चार साल तक न दिए गए, तो पूरे सौ हो जायंगे। पहले का अनुभव यही बता रहा था कि कर्ज वह मेहमान है, जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता।

बोला—मैं घर जाकर सबसे सलाह कर लूं, तो बताऊं।

'सलाह नहीं करना है, उनसे कह देना है कि रुपये उधार लेने में अपनी बर्बादी के सिवा और कुछ नहीं।'

'मैं समझ रहा हूं ठाकुर, अभी आ के जवाब देता हूं।'

लेकिन घर आकर उसने ज्योंही वह प्रस्ताव किया कि कुहराम मच गया। धनिया तो कम चिल्लाई, दोनों लड़कियों ने तो दुनिया सिर पर उठा ली। नहीं देते अपनी गाय, रुपये जहां से चाहे लाओ। सोना ने तो यहां तक कह डाला, इससे तो कहीं अच्छा है, मुझे बेच डालो। गाय से कुछ बेसी ही मिल जायगा। होरी असमंजस में पड़ गया।

दोनों लड़कियां सचमुच गाय पर जान देती थीं। रूपा तो उसके गले से लिपट जाती थी और बिना उसे खिलाए कौर मुंह में न डालती थी। गाय कितने प्यार से उसका हाथ चाटती थी, कितनी स्नेहभरी आंखों से उसे देखती थी। उसका बछड़ा कितना सुंदर होगा। अभी से उसका नामकरण हो गया था—मटरू। वह उसे अपने साथ लेकर सोएगी। इस गाय के पीछे दोनों बहनों में कई बार लड़ाइयां हो चुकी थीं। सोना कहती, मुझे ज्यादा चाहती है, रूपा कहती, मुझे। इसका निर्णय अभी तक न हो सका था। और दोनों दावे कायम थे।

मगर होरी ने आगा-पीछा सुझाकर आखिर धनिया को किसी तरह राजी कर लिया। एक मित्र से गाय उधार लेकर बेच देना भी बहुत ही वैसी बात है, लेकिन बिपत में तो आदमी का धरम तक चला जाता है, यह कौन-बड़ी बात है। ऐसा न हो तो लोग बिपत से इतना डरें क्यों? गोबर ने भी विशेष आपत्ति न की। वह आजकल दूसरी ही धुन में मस्त था। यह तै किया कि जब दोनों लड़कियां रात को सो जायं, तो गाय झिंगुरीसिंह के पास पहुंचा दी जाय।

दिन किसी तरह कट गया। सांझ हुई। दोनों लड़कियां आठ बजते-बजते खा-पीकर सो

गईं। गोबर इस करुण दृश्य से भागकर कहीं चला गया। वह गाय को जाते कैसे देख सकेगा? अपने आंसुओं को कैसे रोक सकेगा? होरी भी ऊपर ही से कठोर बना हुआ था। मन उसका भी चंचल था। ऐसा कोई माई का लाल नहीं, जो इस वक्त उसे पच्चीस रुपये उधार दे-दे, चाहे फिर पचास रुपये ही ले-ले। वह गाय के सामने जाकर खड़ा हुआ, तो उसे ऐसा जान पड़ा कि उसकी काली-काली आंखों में आंसू भरे हुए हैं और वह कह रही है—क्या चार दिन में ही तुम्हारा मन मुझसे भर गया? तुमने तो वचन दिया था कि जीते-जी इसे न बेचूंगा। यही वचन था तुम्हारा! मैंने तो तुमसे कभी किसी बात का गिला नहीं किया। जो कुछ रूखा-सूखा तुमने दिया, वही खाकर संतुष्ट हो गई। बोलो।

धनिया ने कहा—लड़कियां तो सो गईं। अब इसे ले क्यों नहीं जाते? जब बेचना ही है, तो अभी बेच दो।

होरी कांपते हुए स्वर में कहा—मेरा तो हाथ नहीं उठता धनिया! उसका मुंह नहीं देखती? रहने दो, रुपये सूद पर ले लूंगा। भगवान् ने चाहा तो सब अदा हो जायंगे, तीन-चार सौ होत ही क्या हैं। एक बार ऊख लग जाय।

धनिया ने गर्व-भरे प्रेम से उसकी ओर देखा—और क्या! इतनी तपस्या के बाद तो घर में गऊ आई। उसे भी बेच दो। ले लो कल रुपये। जैसे और सब चुकाए जायंगे, वैसे इसे भी चुका देंगे।

भीतर बड़ी उमस हो रही थी। हवा बंद थी। एक पत्ती न हिलती थी। बादल छाए हुए थे, पर वर्षा के लक्षण न थे। होरी ने गाय को बाहर बाध दिया। धनिया ने टोका भी, कहां लिए जाते हो? पर होरी ने सुना नहीं, बोला—बाहर हवा में बाधे देता हूं। आराम से रहेगी, उसक भी तो जान है। गाय बांधकर वह अपने मंझले भाई सोभा को देखने गया। सोभा को इ ार कई महीने से दमे का आरजा हो गया था। दवा-दारू की जुगत नहीं। खाने-पीने का प्रबंध नहीं, और काम करना पड़ता था जी तोड़कर, इसलिए उसकी दशा दिन-दिन बिगड़ती जाती थी। सोभा सहनशील आदमी था, लड़ाई-झगड़ों से कोसों दूर भागने वाला। किसी से मतलब नहीं। अपने काम से काम। होरी उसे चाहता था और वह भी होरी का अदब करता था। दोनों में रुपये-पैसे की बातें होने लगीं। रायसाहब का यह नया फमान आलोचनाओं का केंद्र बना हुआ था।

कोई ग्यारह बजते-बजते होरी लौटा और भीतर जा रहा था कि उसे भास हुआ, जैसे गाय के पास कोई आदमी खड़ा है। पूछा—कौन खड़ा है वहां?

हीरा बोला—मैं हूं दादा, तुम्हारे कौड़े में आग लेने आया था।

हीरा उसके कौड़े में आग लेने आया है, इस जरा-सी बात में होरी को भाई की आत्मीयता का परिचय मिला। गांव में और भी तो कौड़े हैं। कहीं भी आग मिल सकती थी। हीरा उसके कौड़े में आग ले रहा है, तो अपना ही समझकर तो। सारा गांव इस कौड़े में आग लेने आता था। गांव में सबसे सम्पन्न यही कौड़ा था, मगर हीरा का आना दूसरी बात थी। और उस दिन की लड़ाई के बाद। हीरा के मन में कपट नहीं रहता। गुस्सैल है, लेकिन दिल साफ।

उसने स्नेह-भरे स्वर में पूछा—तमाखू है कि ला दूं?

'नहीं, तमाखू तो है दादा।'

'सोभा तो आज बहुत बेहाल है।'

'कोई दवाई नहीं खाता, तो क्या किया जाय। उसके लेखे तो सारे बैद, डाक्टर, हकीम अनाड़ी हैं। भगवान के पास जितनी अक्कल थी, वह उसके और उसकी घरवाली के हिस्से पड़ गई।'

होरी ने चिंता से कहा—यही तो बुराई है उसमें। अपने सामने किसी को गिनता ही नहीं। और चिढ़ने तो बीमारी में सभी हो जाते हैं। तुम्हें याद है कि नहीं, जब तुम्हें इंफिंजा हो गया था, तो दवाई उठाकर फेंक देते थे। मैं तुम्हारे दोनों हाथ पकड़ता था, जब तुम्हारी भाभी तुम्हारे मुंह में दवाई डालती थीं। उस पर तुम उसे हजारों गालियां देते थे।

'हां दादा, भला वह बात भूल सकता हूं? तुमने इतना न किया होता, तो तुमसे लड़ने के लिए कैसे बचा रहता।'

होरी को ऐसा मालूम हुआ कि हीरा का स्वर भारी हो गया है। उसका गला भी भर आया।

'बेटा, लड़ाई-झगड़ा तो जिंदगी का धरम है। इससे जो अपने हैं, वह पराए थोड़े ही हो जाते हैं, जब घर में चार आदमी रहते हैं, तभी तो लड़ाई-झगड़े भी होते हैं, जिसके कोई है ही नहीं, उससे कौन लड़ाई करेगा?'

दोनों ने साथ चिलम पी। तब हीरा अपने घर गया, होरी अंदर भोजन करने चला।

धनिया रोष से बोली—देखी अपने सपूत की लीला? इतनी रात गई और अभी उसे अपने सैल से छुट्टी नहीं मिली। मैं सब जानती हूं। मुझको सारा पता मिल गया है। भोला की वह रांड़ लड़की नहीं है, झुनिया। उसी के घर में पड़ा रहता है।

होरी के कानों में भी इस बात की भनक पड़ी थी, पर उसे विश्वास न आया था। गोबर बेचारा इन बातों को क्या जाने।

बोला—किसने कहा तुमसे?

धनिया प्रचंड हो गई—तुमसे छिपी होगी और तो सभी जगह चर्चा चल रही है। यह है, भुग्गा, वह बहत्तर घाट का पानी पिए हुए। इसे उंगलियों पर नचा रही है, और यह समझता है, वह इस पर जान देती है। तुम उसे समझा दो, नहीं कोई ऐसी-वैसी हो गई, तो कहीं के न रहोगे।

होरी का दिल उमंग पर था। चुहल की सूझी—झुनिया देखने-सुनने में तो बुरी नहीं है। उसी से कर ले सगाई। ऐसी सस्ती मेहरिया और कहां मिली जाती है?

धनिया को यह चुहल तीर-सा लगा—झुनिया इस घर में आये, तो मुंह झुलस दूं रांड़ का। गोबर की चहेती है, तो उसे लेकर जहां चाहे रहे?

'और जो गोबर इसी घर में लाए?'

'तो यह दोनों लड़कियां किसके गले बांधोगे? फिर बिरादरी में तुम्हें कौन पूछेगा, कोई द्वार पर खड़ा तक तो होगा नहीं।'

'उसे इसकी क्या परवाह।'

'इस तरह नहीं छोड़ूंगी लाला को। मर-मर के मैंने पाला है और झुनिया आकर राज करेगी। मुंह में आग लगा दूंगी रांड़ के।'

सहसा गोबर आ के घबड़ाई हुई आवाज में बोला—दादा, सुन्दरिया को क्या हो गया? क्या काले नाग ने छू लिया? वह तो पड़ी तड़प रही है।

होरी चौके में जा चुका था। थाली सामने छोड़कर बाहर निकल आया और बोला—क्या असगुन मुंह से निकालते हो। अभी तो मैं देखे आ रहा हूं। लेटी थी।

तीनों बाहर गए। चिराग लेकर देखा। सुन्दरिया के मुंह से फिचकुर निकल रहा था। आंखें पथरा गई थीं, पेट फूल गया था और चारों पांव फैल गए थे। धनिया सिर पीटने लगी। होरी पंडित दातादीन के पास दौड़ा। गांव में पशु-चिकित्सा के वही आचार्य थे। पंडितजी सोने जा रहे थे। दौड़े हुए आए। दम-के-दम में सारा गांव जमा हो गया। गाय को किसी ने कुछ खिला दिया। लक्षण स्पष्ट थे। साफ विष दिया गया है, लेकिन गांव में कौन ऐसा मुद्दई है, जिसने विष दिया हो, ऐसी वारदात तो इस गांव में कभी हुई नहीं, लेकिन बाहर का कौन आदमी गांव में आया। होरी की किसी से दुश्मनी भी न थी कि उस पर संदेह किया जाय। हीरा से कुछ कहा-सुनी हुई थी, मगर वह भाई-भाई का झगड़ा था। सबसे ज्यादा दु:खी तो हीरा ही था। धमकियां दे रहा था कि जिसने यह हत्यारों का काम किया है, उसे पाए तो खून पी जाय। वह लाख गुस्सैल हो, पर नीच काम नहीं कर सकता।

आधी रात तक जमघट रहा। सभी होरी के दु:ख में दु:खी थे और बधिक को गालियां देते थे। वह इस समय पकड़ा जा सकता, तो उसके प्राणों की कुशल न थी। जब यह हाल है तो कोई जानवरों को बाहर कैसे बांधेगा? अभी तक रात-बिरात सभी जानवर बाहर पड़े रहते थे। किसी तरह की चिंता न थी, लेकिन अब तो एक नई विपत्ति आ खड़ी हुई थी। क्या गाय थी कि बस देखता रहे! पूजने जोग। पांच सेर से कम दूध न था। सौ-सौ का एक-एक बाछा होता। आते देर न हुई और यह वज्र गिर पड़ा।

जब सब लोग अपने-अपने घर चले गए, तो धनिया होरी को कोसने लगी—तुम्हें कोई लाख समझाए, करोगे अपनी मन की। तुम गाय खोलकर आंगन से चले, तब तक मैं जूझती रही कि बाहर न ले जाओ। हमारे दिन पतले हैं, न जाने कब क्या हो जाय, लेकिन नहीं, उसे गर्मी लग रही है। अब तो खूब ठंडी हो गई और तुम्हारा कलेजा भी ठंडा हो गया! ठाकुर मांगते थे, दे दिया होता, तो एक बोझ सिर से उतर जाता और निहोरे का निहोरा होता, मगर यह तमाचा कैसे पड़ता? कोई बुरी बात होने वाली होती है, तो मति पहले ही हर जाती है। इतने दिन मजे से घर में बंधती रही, न गर्मी लगी, न जूड़ी आई। इतनी जल्दी सबको पहचान गई थी कि मालूम ही न होता था कि बाहर से आई है। बच्चे उसके सींगों से खेलते रहते थे। सिर तक न हिलाती थी। जो कुछ नांद में डाल दो, चाट-पोंछकर साफ कर देती थी। लच्छमी थी, अभागों के घर क्या रहती? सोना और रूपा भी यह हलचल सुनकर जाग गई थीं और बिलख-बिलखकर रो रही थीं। उसकी सेवा का भार अधिकतर उन्हीं दोनों पर था। उनकी संगिनी हो गई थी। दोनों खाकर उठतीं, तो एक-एक टुकड़ा रोटी उसे अपने हाथों से खिलातीं। कैसा जीभ निकालकर खा लेती थी, और जब तक उनके हाथ का कौर न पा लेती, खड़ी ताकती रहती। भाग्य फूट गए!

गोबर और दोनों लड़कियां रो-धोकर सो गई थीं। होरी भी लेटा। धनिया उसके सिरहाने पानी का लोटा रखने आई, तो होरी ने धीरे से कहा—तेरे पेट में बात पचती नहीं, कुछ सुन पाएगी, तो गांव भर में ढिंढोरा पीटती फिरेगी।

धनिया ने आपत्ति की—भला सुनूं, मैंने कौन-सी बात पीट दी कि यों ही नाम बदनाम कर दिया।

'अच्छा, तेरा संदेह किसी पर होता है?'

'मेरा संदेह तो किसी पर नहीं है। कोई बाहरी आदमी था।'

'किसी से कहेगी तो नहीं?'

'कहूंगी नहीं, तो गांव वाले मुझे गहने कैसे गढ़वा देंगे।'

'अगर किसी से कहा, तो मार ही डालूंगा।'

'मुझे मारकर सुखी न रहोगे। अब दूसरी मेहरिया नहीं मिली जाती। जब तक हूं, तुम्हारा घर संभाले हुए हूं। जिस दिन मर जाऊंगी, सिर पर हाथ धरकर रोओगे। अभी मुझमें सारी बुराइयां ही बुराइयां हैं, तब आंखों ने आंसू निकलेंगे।'

'मेरा संदेह तो हीरा पर होता है।'

'झूठ, बिल्कुल झूठ। हीरा इतना नीच नहीं है। वह मुंह का ही खराब है।'

'मैंने अपनी आंखों देखा। सच, तेरे सिर की सौंह।'

'तुमने अपनी आंखों देखा। कब?'

'वही, मैं सोभा को देखकर आया, तो वह सुन्दरिया की नांद के पास खड़ा था। मैंने पूछा—कौन है, तो बोला, मैं हूं हीरा, कौड़े में से आग लेने आया था। थोड़ी देर मुझसे बातें करता रहा। मुझे चिलम पिलाई। वह उधर गया, मैं भीतर आया और वहीं गोबर ने पुकार मचाई। मालूम होता है, मैं गाय बांधकर सोभा के घर गया हूं, और इसने इधर आकर कुछ खिला दिया है। साइत फिर यह देखने आया था कि मरी या नहीं।'

धनिया ने लंबी सांस लेकर कहा—इस तरह के होते हैं भाई, जिन्हें भाई का गला काटने मे भी हिचक नही होती। उफ्फोह! हीरा मन का इतना काला है। और दाढ़ीजार को मैंने पाल-पोसकर बड़ा किया।

'अच्छा, जा सो रह, मगर किसी से भूलकर भी जिकर न करना।'

'कौन, सबेरा होते ही लाला को थाने न पहुंचाऊं तो अपने असल बाप की नहीं। यह हत्यारा भाई कहने जोग है! यही भाई का काम है! वह बैरी है, पक्का बैरी और बैरी को मारने में पाप नही, छोड़ने में पाप है।'

होरी ने धमकी दी—मैं कहे देता हूं धनिया, अनर्थ हो जायगा।

धनिया आवेश में बोली—अनर्थ नहीं, अनर्थ का बाप हो जाय। मैं लाला को बिना बड़े घर भिजवाए, मानूंगी नहीं। तीन साल चक्की पिसवाऊंगी, तीन साल। वहां स छूटेंगे, तो हत्या लगेगी, तीरथ करना पड़ेगा। भोज देना पड़ेगा। इस धोखे में न रहें लाला और गवाही दिलवाऊंगी तुमसे, बेटे के सिर पर हाथ रखकर।

उसने भीतर जाकर किवाड़ बंद कर लिए और होरी बाहर अपने को कोसता पड़ा रहा। जब स्वयं उसके पेट में बात न पची, तो धनिया के पेट में क्या पचेगी? अब यह चुड़ैल मानने वाली नहीं! जिद पर आ जाती है, तो किसी की सुनती ही नहीं। आज उसने अपने जीवन में सबसे बड़ी भूल की।

चारों ओर नीरव अंधकार छाया हुआ था। दोनों बैलों के गले की घंटियां कभी-कभी बज उठती थीं। दस कदम पर मृतक गाय पड़ी हुई थी और होरी घोर पश्चात्ताप में करवटें बदल रहा था। अंधकार में प्रकाश की रेखा कहीं नजर न आती थी।

नौ

प्रात:काल होरी के घर में एक पूरा हंगामा हो गया। होरी धनिया को मार रहा था। धनिया उसे गालियां दे रही थी। दोनों लड़कियां बाप के पांवों से लिपटी चिल्ला रही थीं और गोबर मां को बचा रहा था। बार-बार होरी का हाथ पकड़कर पीछे ढकेल देता, पर ज्योंही ध ानिया के मुंह से कोई गाली निकल जाती, होरी अपने हाथ छुड़ाकर उसे दो-चार घूंसे और लात जमा देता। उसका बूढ़ा क्रोध जैसे किसी गुप्त संचित शक्ति को निकाल लाया हो। सारे गांव में हलचल पड़ गई। लोग समझाने के बहाने तमाशा देखने आ पहुंचे। सोभा लाठी टेकता आ खड़ा हुआ। दातादीन ने डांटा–यह क्या है होरी, तुम बावले हो गए हो क्या? कोइ इस तरह घर की लच्छमी पर हाथ छोड़ता है। तुम्हें तो यह रोग न था। क्या हीरा की छूत तुम्हें भी लग गई?

होरी ने पालागन करके कहा–महाराज, तुम इस बखत न बोलो। मैं आज इसकी बान छुड़ाकर तब दम लूंगा। मैं जितना ही तरह देता हूं, उतना ही यह सिर चढ़ती जाती है।

धनिया सजल क्रोध में बोली–महाराज, तुम गवाह रहना। मैं आज इसे और इसके हत्यारे भाई को जेहल भेजवाकर तब पानी पिऊंगी। इसके भाई ने गाय को माहुर खिलाकर मार डाला। अब तो मैं थाने में रपट लिखाने जा रही हूं, तो यह हत्यारा मुझे मारता है। इसके पीछे अपनी जिंदगी चौपट कर दी, उसका यह इनाम दे रहा है।

होरी ने दांत पीसकर और आंखें निकालकर कहा–फिर वही बात मुह से निकाली। तूने देखा था हीरा को माहुर खिलाते?

'तू कसम खा जा कि तूने हीरा को गाय की नांद के पास खड़े नहीं देखा?'

'हां, मैंने नहीं देखा, कसम खाता हूं।'

'बेटे के माथे प्रर हाथ रखके कसम खा।'

होरी ने गोबर के माथे पर कांपता हुआ हाथ रखकर कांपते हुए स्वर में कहा–मैं बेट की कसम खाता हूं कि मैंने हीरा को नांद के पास नहीं देखा।

धनिया ने जमीन पर थूककर कहा–थुडी है तेरी झुठाई पर। तूनं खुद मुझसे कहा कि हीरा चोरों की तरह नाद के पास खड़ा था। और अब भाई के पच्छ मे झूठ बोलता है। थुड़ी है। अगर मेरे बेटे का बाल भी बाका हुआ, तो घर में आग लगा दूंगी। सारी गृहस्थी म आग लगा दूंगी। भगवान्, आदमी मुंह से बात कहकर इतनी बेसरमी से मुकर जाता है।

होरी पांव पटककर बोला–धनिया, गुस्सा मत दिला, नहीं बुरा होग।

'मार तो रहा है, और मार ले। जो, तू अपने बाप का बेटा होगा तो आज मुझे मारकर तब पानी पिएगा। पापी ने मारते-मारते मेरा भुरकस निकाल लिया, फिर भी इसका जी नहीं भरा। मुझे मारकर समझता है, मैं बड़ा वीर हूं। भाइयों के सामने भीगी बिल्ली बन जाता है, पापी कहीं का, हत्यारा।'

फिर वह बैन कहकर रोने लगी–इस घर में आकर उसने क्या नहीं झेला, किस-किस तरह. पेट-तन नहीं काटा, किस तरह एक-एक लत्ते को तरसी, किस तरह एक-एक पैसा प्राणों की तरह संचा, किस तरह घर-भर को खिलाकर आप पानी पीकर सो रही। और आज उन सारे बलिदानों का यह पुरस्कार। भगवान् बैठे यह अन्याय देख रहे हैं और उसकी

रक्षा को नहीं दौड़ते। गज की और द्रौपदी की रक्षा करने बैकुंठ से दौड़े थे। आज क्यों नींद में सोए हुए हैं?

जनमत धीरे-धीरे धनिया की ओर आने लगा। इसमें अब किसी को संदेह नहीं रहा कि हीरा ने ही गाय को जहर दिया। होरी ने बिलकुल झूठी कसम खाई है, इसका भी लोगों को विश्वास हो गया। गोबर को भी बाप की इस झूठी कसम और उसके फलस्वरूप आने वाली विपत्ति की शंका ने होरी के विरुद्ध कर दिया। उस पर जो दातादीन ने डांट बताई, तो होरी परास्त हो गया। चुपके से बाहर चला गया। सत्य ने विजय पाई।

दातादीन ने सोभा से पूछा-तुम कुछ जानते हो सोभा, क्या बात हुई?

सोभा जमीन पर लेटा हुआ बोला--मैं तो महाराज, आठ दिन से बाहर नहीं निकला। होरी दादा कभी-कभी जाकर कुछ दे आते हैं, उसी से काम चलता है। रात भी वह मेरे पास गए थे। किसने क्या किया, मैं कुछ नहीं जानता। हां, कल सांझ को हीरा मेरे घर खुरपी मांगने गया था। कहता था, एक जड़ी खोदना है। फिर तब से मेरी उससे भेंट नहीं हुई।

धनिया इतनी शह पाकर बोली-पंडित दादा, वह उसी का काम है। सोभा के घर से खुरपी मांगकर लाया और कोई जड़ी खोदकर गाय को खिला दी। उस रात को जो झगड़ा हुआ था, उसी दिन से वह खार खाए बैठा था।

दातादीन बोले-यह बात साबित हो गई, तो उसे हत्या लगेगी। पुलिस कुछ करे या न करे, धरम तो बिना दंड दिए न रहेगा। चली तो जा रुपिया, हीरा को बुला ला। कहना, पंडित दादा बुला रहे हैं। अगर उसने हत्या नहीं की है, तो गंगाजली उठा ले और चौरे पर चढ़कर कसम खाए।

धनिया बोली-महाराज, उसके कसम का भरोसा नहीं। चटपट खा लेगा। जब इसने झूठी कसम खा ली, जो बड़ा धर्मात्मा बनता है, तो हीरा का क्या विश्वास?

अब गोबर बोला-खा ले झूठी कसम। बंस का अंत हो जाय। बूढ़े जीते रहें। जवान जीकर क्या करेंगे।

रूपा एक क्षण में आकर बोली-काका घर में नहीं है, पंडित दादा। काकी कहती हैं, कहीं चले गए हैं।

दातादीन ने लंबी दाढ़ी फटकारकर कहा-तूने पूछा नहीं, कहां चले गए हैं? घर में छिपा बैठा न हो। देख तो सोना, भीतर तो नहीं बैठा?

धनिया ने टोका-उसे मत भेजो दादा। हीरा के सिर हत्या सवार है, न जाने क्या कर बैठे।

दातादीन ने खुद लकड़ी संभाली और खबर लाए कि हीरा सचमुच कहीं चला गया है। पुनिया कहती है, लुटिया-डोर और डंडा सब लेकर गए है। पुनिया ने पूछा भी, कहां जाते हो, पर बताया नहीं। उसने पांच रुपये आले में रखे थे। रुपये वहां नहीं हैं। साइत रुपये भी लेता गया।

धनिया शीतल हृदय से बोली-मुंह में कालिख लगाकर कहीं भागा होगा।

सोभा बोला-भाग के कहां जायगा? गंगा नहाने न चला गया हो।

धनिया ने शंका की-गंगा जाता तो रुपये क्यों ले जाता, और आजकल कोई परब भी तो नहीं है?

इस शंका का कोई समाधान न मिला। धारणा दृढ़ हो गई।

आज होरी के घर भोजन नहीं पका। न किसी ने बैलों को सानी-पानी दिया। सारे गांव में सनसनी फैली हुई थी। दो-दो चार-चार आदमी जगह-जगह जमा होकर इसी विषय की आलोचना कर रहे थे। हीरा अवश्य कहीं भाग गया। देखा होगा कि भेद खुल गया, अब जेहल जाना पड़ेगा, हत्या अलग लगेगी। बस, कहीं भाग गया। पुनिया अलग रो रही थी, कुछ कहा न सुना, न जाने कहां चल दिए।

जो कुछ कसर रह गई थी, वह संध्या-समय हल्के के थानेदार ने आकर पूरी कर दी। गांव के चौकीदार ने इस घटना की रपट की, जैसा उसका कर्त्तव्य था, और थानेदार साहब भला, अपने कर्त्तव्य से कब चूकने वाले थे? अब गांव वालों को भी उनका सेवा-सत्कार करके अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। दातादीन, झिंगुरीसिंह, नोखेराम, उनके चारों प्यादे, मंगरू साह और लाला पटेश्वरी, सभी आ पहुंचे और दारोगाजी के सामने हाथ बांधकर खड़े हो गए। होरी की तलबी हुई। जीवन में यह पहला अवसर था कि वह दारोगा के सामने आया। ऐसा डर रहा था, जैसे फांसी हो जायगी। धनिया को पीटते समय उसका एक-एक अंग फड़क रहा था। दारोगा के सामने कछुए की भांति भीतर सिमटा जाता था। दारोगा ने उसे आलोचक नेत्रों से देखा और उसके हृदय तक पहुंच गए। आदमियों की नस पहचानने का उन्हें अच्छा अभ्यास था। किताबी मनोविज्ञान में कोरे, पर व्यावहारिक मनोविज्ञान के मर्मज्ञ थे। यकीन हो गया, आज अच्छे का मुंह देखकर उठे हैं। और होरी का चेहरा कहे देता था, इसे केवल एक घुड़की काफी है।

दारोगा ने पूछा—तुझे किस पर शुबहा है?

होरी ने जमीन छुई और हाथ बांधकर बोला—मेरा सुबहा किसी पर नही है सरकार, गाय अपनी मौत से मरी है। बुड्ढ़ी हो गई थी।

धनिया भी आकर पीछे खड़ी थी। तुरंत बोली—गाय मारी है तुम्हारे भाई हीरा ने। सरकार ऐसे बौड़म नहीं हैं कि जो कुछ तुम कह दोगे, वह मान लेंगे। यहां जांच-तहक़ियात करने आए हैं।

दारोगाजी ने पूछा—यह कौन औरत है?

कई आदमियों ने दारोगाजी से कुछ बातचीत करने का सौभाग्य प्राप्त करने के लिए चढ़ा-ऊपरी की। एक साथ बोले और अपने मन को इस कल्पना से सन्तोष दिया कि पहले मैं बोला—होरी की घरवाली है सरकार।

'तो इसे बुलाओ, मैं पहले इसी का बयान लिखूंगा। वह कहां है हीरा?'

विशिष्ट जनों ने एक स्वर से कहा—वह तो आज सबेरे से कहीं चला गया है सरकार।

'मैं उसके घर की तलाशी लूंगा।'

तलाशी! होरी की सांस तले-ऊपर होने लगी। उसके भाई हीरा के घर की तलाशी होगी और हीरा घर में नहीं है। और फिर होरी के जीते-जो, उसके देखते यह तलाशी न होने पाएगी, और धनिया से अब उसका कोई संबंध नहीं। जहां चाहे जाय। जब वह उसकी इज्जत बिगाड़ने पर आ गई है, तो उसके घर में कैसे रह सकती है? जब गली-गली ठोकर खाएगी, तब पता चलेगा।

गांव के विशिष्ट जनों ने इस महान संकट को टालने के लिए कानाफूसी शुरू की।

दातादीन ने गंजा सिर हिलाकर कहा—यह सब कमाने के ढंग हैं। पूछो, हीरा के घर में

क्या रखा है?

पटेश्वरीलाल बहुत लंबे थे, पर लंबे होकर भी बेवकूफ न थे। अपना लंबा, काला मुंह और लंबा करके बोले—और यहां आया है किसलिए, और जब आया है, बिना कुछ लिए दिए गया कब है।

झिंगुरीसिंह ने होरी को बुलाकर कान में कहा—निकालो, जो कुछ देना हो। यों गला न छूटेगा।

दारोगाजी ने अब जरा गरजकर कहा—मैं हीरा के घर की तलाशी लूंगा।

होरी के मुख का रंग उड़ गया था, जैसे देह का सारा रक्त सूख गया हो। तालाशी उसके घर हुई तो, उसके भाई के घर हुई तो, एक ही बात है। हीरा अलग सही, पर दुनिया तो जानती है, वह उसका भाई है, मगर इस वक्त उसका कुछ बस नहीं। उसके पास रुपये होते, तो इसी वक्त पचास रुपये लाकर दारोगाजी के चरणों पर रख देता और कहता—सरकार, मेरी इज्जत अब आपके हाथ है। मगर उसके पास तो जहर खाने को भी एक पैसा नहीं है। धनिया के पास चाहे दो-चार रुपये पड़े हों, पर वह चुड़ैल भला क्यों देने लगी? मृत्यु-दंड पाए हुए आदमी की भांति सिर झुकाए, अपने अपमान की वेदना का तीव्र अनुभव करता हुआ चुपचाप खड़ा रहा।

दातादीन ने होरी को सचेत किया—अब इस तरह खड़े रहने से काम न चलेगा होरी। रुपये की कोई जुगत करो।

होरी दीन स्वर में बोला—अब मैं क्या अरज करूं महाराज। अभी तो पहले ही की गठरी सिर पर लदी है, और किस मुंह से मांगूं, लेकिन इस संकट से उबार लो। जीता रहा, तो कौड़ी-कौड़ी चुका दूंगा। मैं मर भी जाऊं तो गोबर तो है ही।

नेताओं में सलाह होने लगी। दारोगाजी को क्या भेंट किया जाय? दातादीन ने पचास का प्रस्ताव किया। झिंगुरीसिंह के अनुमान में सौ से कम पर सौदा न होगा। नोखेराम भी सौ के पक्ष मे थे। और होरी के लिए सौ और पचास में कोई अंतर न था। इस तलाशी का संकट उसके सिर से टल जाय। पूजा चाहे कितनी ही चढ़ानी पड़े। मरे को मन-भर लकड़ी से जलाओ, या दस मन से, उसे क्या चिंता।

मगर पटेश्वरी से यह अन्याय न देखा गया। कोई डाका या कतल तो हुआ नहीं। केवल तलाशी हो रही है। इसके लिए बीस रुपये बहुत हैं।

नेताओं ने धिक्कारा—तो फिर दारोगाजी से बातचीत करना। हम लोग नगीच न जायंगे। कौन घुडकियां खाए?

होरी ने पटेश्वरी के पांव पर अपना सिर रख दिया—भैया, मेरा उद्धार करो। जब तक जिऊंगा, तुम्हारी ताबेदारी करूंगा।

दारोगाजी ने फिर अपने विशाल वक्ष और विशाल उदर की पूरी शक्ति से कहा—कहां है हीरा का घर? मैं उसके घर की तलाशी लूंगा।

पटेश्वरी ने आगे बढ़कर दारोगाजी के कान में कहा—तलाशी लेकर क्या करोगे हुजूर, उसका भाई आपकी ताबेदारी के लिए हाजिर है।

दोनों आदमी जरा अलग जाकर बातें करने लगे।

'कैसा आदमी है?'

'बहुत ही गरीब हुजूर। भोजन का ठिकाना भी नहीं।'

'सच?'

'हां, हुजूर, ईमान से कहता हूं।'

'अरे, तो क्या एक पचासे का डौल भी नहीं है?'

'कहां की बात हुजूर। दस मिल जायं, तो हजार समझिए। पचास तो पचास जनम में भी मुमकिन नहीं और वह भी जब कोई महाजन खड़ा हो जायगा।'

दारोगाजी ने एक मिनट तक विचार करके कहा—तो फिर उसे सताने से क्या फायदा? मैं ऐसों को नहीं सताता, जो आप ही मर रहे हों।

पटेश्वरी ने देखा, निशाना और आगे जा पड़ा। बोले—नहीं हुजूर, ऐसा न कीजिए, नहीं फिर हम कहां जायंगे। हमारे पास दूसरी और कौन-सी खेती है?

'तुम इलाके के पटवारी हो जी, कैसी बातें करते हो?'

'जब ऐसा कोई अवसर आ जाता है, तो आपकी बदौलत हम भी कुछ पा जाते है, नहीं पटवारी को कौन पूछता है?'

'अच्छा जाओ, तीस रुपये दिलवा दो, बीस रुपये हमारे दस रुपये तुम्हारे।'

'चार मुखिया हैं, इसका खयाल कीजिए।'

'अच्छा आधे-आध पर रखो, जल्दी करो। मुझे देर हो रही है।'

पटेश्वरी ने झिंगुरी से कहा, झिंगुरी ने होरी को इशारे से बुलाया, अपने घर ले गए, तीस रुपये गिनकर उसके हवाले किए और एहसान से दबाते हुए बोले—आज ही कागद लिखा लेना। तुम्हारा मुंह देखकर रुपये दे रहा हूं, तुम्हारी भलमंसी पर।

होरी ने रुपये लिए और अंगोछे के कोर में बांधे प्रसन्न-मुख आकर दारोगाजी की ओर चला।

सहसा धनिया झपटकर आगे आई और अंगोछी एक झटके के साथ उसके हाथ से छीन ली। गांठ पक्की न थी। झटका पाते ही खुल गई और सारे रुपये जमीन पर बिखर गए। नागिन की तरह फुंकारकर बोली—ये रुपये कहां लिए जा रहा है, बता? भला चाहता है, तो सब रुपये लौटा दे, नहीं कहे देती हूं। घर के परानी रात-दिन मरें और दाने-दाने का तरसे, लत्ता भी पहनने को मयस्सर न हो और अंजुली-भर रुपये लेकर चला है इज्जत बचाने। ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत। जिसके घर में चूहे लोटें, वह भी इज्जत वाला है। दारोगा तलासी ही तो लगा। ले-ले जहां चाहे तलासी। एक तो सौ रुपये की गाय गई, उस पर यह पलेथन। वाह री तेरी इज्जत।

होरी खून का घूंट पीकर रह गया। सारा समूह जैसे थर्रा उठा। नेताओं के सिर झुक गए। दारोगा का मुंह जरा-सा निकल आया। अपने जीवन में उसे ऐसी लताड़ न मिली थी।

होरी स्तंभित-सा खड़ा रहा। जीवन में आज पहली बार धनिया ने उसे भरे अखाड़े में पटकनी दी आकाश तका दिया। अब वह कैसे सिर उठाए।

मगर दारोगाजी इतनी जल्दी हार मानने वाले न थे। खिसियाकर बोले—मुझे ऐसा मालूम होता है, कि इस शैतान को खाला ने हीरा को फंसाने के लिए खुद गाय को जहर दे दिया।

धनिया हाथ मटकाकर बोली—हां, द दिया। अपनी गाय थी, मार डाली, फिर किसी दूसरे का जानवर तो नहीं मारा? तुम्हारे तहकियात में यही निकलता है, तो यही लिखो। पहना दो मेरे हाथ में हथकड़ियां। देख लिया तुम्हारा न्याय और तुम्हारे अक्कल की दौड़। गरीबों का गला काटना दूसरी बात है। दूध का दूध और पानी का पानी करना दूसरी बात।

होरी आंखों से अंगारे बरसाता धनिया की ओर लपका, पर गोबर सामने आकर खड़ा हो गया और उग्र भाव से बोला—अच्छा दादा, अब बहुत हुआ। पीछे हट जाओ, नहीं मैं कहे देता हूं, मेरा मुंह न देखोगे। तुम्हारे ऊपर हाथ न उठाऊंगा। ऐसा कपूत नहीं हूं। यहीं गले में फांसी लगा लूंगा।

होरी पीछे हट गया और धनिया शेर होकर बोली—तू हट जा गोबर, देखूं तो क्या करता है मेरा। दारोगाजी बैठे हैं। इसकी हिम्मत देखूं। घर में तलासी होने से इसकी इज्जत जाती है। अपनी मेहरिया को सारे गांव के सामने लतियाने से इसकी इज्जत नहीं जाती! यही तो वीरों का धरम है। बड़ा वीर है, तो किसी मरद से लड़। जिसकी बांह पकड़कर लाया, उसे मारकर बहादुर कहलाएगा। तू समझता होगा, मैं इसे रोटी-कपड़ा देता हूं। आज से अपना घर संभाल। देख तो इसी गांव में तेरी छाती पर मूंग दलकर रहती हूं कि नहीं, और इससे अच्छा खाऊं-पहनूंगी। इच्छा हो देख ले।

होरी परास्त हो गया। उसे ज्ञात हुआ, स्त्री के सामने पुरुष कितना निर्बल, कितना निरुपाय है।

नेताओं ने रुपये चुनकर उठा लिए थे और दारोगाजी को वहां से चलने का इशारा कर रहे थे। धनिया ने एक ठोकर और जमाई—जिसके रुपये हों, ले जाकर उसे दे दो। हमें किसी से उधार नहीं लेना है। और जो देना है, तो उसी से लेना। मैं दमड़ी भी न दूंगी, चाहे मुझे हाकिम के इजलास तक ही चढ़ना पड़े। हम बाकी चुकाने को पच्चीस रुपये मांगते थे, किसी ने न दिया। आज अंजुली-भर रुपये ठनाठन निकाल के दे दिए। मैं सब जानती हूं। यहां तो बांट-बखरा होने वाला था, सभी के मुंह मीठे होते। ये हत्यारे गांव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले। सूद-ब्याज, डेढ़ी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी, गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेहल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से।

नेताओं के मुख में कालिख-सी लगी हुई थी। दारोगाजी के मुंह पर झाड़ू-सी फिरी हुई थी। इज्जत बचाने के लिए हीरा के घर की ओर चले।

रास्ते में दारोगा ने स्वीकार किया—औरत है बड़ी दिलेर।

पटेश्वरी बोले—दिलेर है हुजूर, कर्कशा है। ऐसी औरत को तो गोली मार दे।

'तुम लोगों का काफिया तंग कर दिया उसने। चार-चार तो मिलते ही।'

'हुजूर के भी तो पंद्रह रुपये गए।'

'मेरे कहां जा सकते हैं? वह न देगा, गांव के मुखिया देंगे और पंद्रह रुपये की जगह पूरे पचास रुपये। आप लोग चटपट इंतजाम कीजिए।'

पटेश्वरीलाल ने हंसकर कहा—हुजूर बड़े दिल्लगीबाज हैं।

दातादीन बोले—बड़े आदमियों के यही लक्षण हैं। ऐसे भाग्यवानों के दर्शन कहां होते हैं?

दारोगाजी ने कठोर स्वर में कहा—यह खुशामद फिर कीजिएगा। इस वक्त तो मुझे पचास

रुपये दिलवाइए, नकद, और यह समझ लो कि आनाकानी की, तो तुम चारों के घर की तलाशी लूंगा। बहुत मुमकिन है कि तुमने हीरा और होरी को फंसाकर उनसे सौ-पचास ऐंठने के लिए पाखंड रचा हो।

नेतागण अभी तक यही समझ रहे हैं, दारोगाजी विनोद कर रहे हैं।

झिंगुरीसिंह ने आंखें मारकर कहा—निकालो पचास रुपये पटवारी साहब।

नोखेराम ने उनका समर्थन किया—पटवारी साहब का इलाका है। उन्हें जरूर आपकी खातिर करनी चाहिए।

पंडित दातादीन की चौपाल आ गई। दारोगाजी एक चारपाई पर बैठ गए और बोले—तुम लोगों ने क्या निश्चय किया? रुपये निकालते हो या तलाशी करवाते हो?

दातादीन ने आपत्ति की—मगर हुजूर....

'मैं अगर-मगर कुछ नहीं सुनना चाहता।'

झिंगुरीसिंह ने साहस किया—सरकार, यह तो सरासर....

'मैं पंद्रह मिनट का समय देता हूं। अगर इतनी देर में पूरे पचास रुपये न आए तो तुम चारों के घर की तलाशी होगी। और गंडासिंह को जानते हो? उसका मारा पानी भी नहीं मांगता।'

पटेश्वरीलाल ने तेज स्वर से कहा—आपको अख्तियार है, तलाशी ले लें। यह अच्छी दिल्लगी है, काम कौन करे, पकड़ा कौन जाय।

'मैंने पच्चीस साल थानेदारी की है, जानते हो?'

'लेकिन ऐसा अंधेर तो कभी नहीं हुआ।'

'तुमने अभी अंधेर नहीं देखा। कहो तो वह भी दिखा दूं? एक-एक को पांच-पांच साल के लिए भेजवा दूं। यह मेरे बांए हाथ का खेल है। एक डाके में सारे गांव को काले पानी भेजवा सकता हूं। इस धोखे में न रहना।'

चारों सज्जन चौपाल के अंदर जाकर विचार करने लगे।

फिर क्या हुआ, किसी को मालूम नहीं। हां, दारोगाजी प्रसन्न दिखाई दे रहे थे और चारों सज्जनों के मुंह पर फटकार बरस रही थी।

दारोगाजी घोड़े पर सवार होकर चले, तो चारों नेता दौड़ रहे थे। घोड़ा दूर निकल गया तो चारों सज्जन लौटे, इस तरह मानो किसी प्रियजन का संस्कार करके श्मशान से लौट रहे हों।

सहसा दातादीन बोले—मेरा सराप न पड़े तो मुंह न दिखाऊं।

नोखेराम ने समर्थन किया—ऐसा धन कभी फलते नहीं देखा।

पटेश्वरी ने भविष्यवाणी—हराम की कमाई हराम में जायगी।

झिंगुरीसिंह को आज ईश्वर की न्यायपरता में संदेह हो गया था। भगवान् न जाने कहां है कि यह अंधेर देखकर भी पापियों को दंड नहीं देते।

इस वक्त इन सज्जनों की तस्वीर खींचने लायक थी।

दस

हीरा का कहीं पता न चला और दिन गुजरते जाते थे। होरी से जहां तक दौड़-धूप हो सकी, की, फिर हारकर बैठ रहा। खेती-बारी की भी फिक्र करना थी। अकेला आदमी क्या-क्या करता? और अब अपनी खेती से ज्यादा फिक्र थी पुनिया की खेती की। पुनिया अब अकेली होकर और भी प्रचंड हो गई थी। होरी को अब उसकी खुशामद करते बीतती थी। हीरा था, तो वह पुनिया को दबाए रहता था। उसके चले जाने से अब पुनिया पर कोई अंकुस न रह गया था। होरी की पट्टीदारी हीरा से थी। पुनिया अबला थी। उससे वह क्या तनातनी करता? और पुनिया उसके स्वभाव से परिचित थी और उसकी सज्जनता का उसे खूब दंड देती थी। खैरियत यही हुई कि कारकुन साहब ने पुनिया से बकाया लगान वसूल करने की कोई सख्ती न की, केवल थोड़ी-सी पूजा लेकर राजी हो गए। नहीं, होरी अपनी बकाया के साथ उसकी बकाया चुकाने के लिए भी कर्ज लेने को तैयार था। सावन में धान की रोपाई की ऐसी धूम रही कि मजूर न मिले और होरी अपने खेतों में धान न रोप सका, लेकिन पुनिया के खेतों में कैसे न रोपाई होती? होरी ने पहर रात-रात तक काम करके उसके धान रोपे। अब होरी ही तो उसका रक्षक है। अगर पुनिया को कोई कष्ट हुआ, तो दुनिया उसी को तो हंसेगी। नतीजा यह हुआ कि होरी की खरीफ की फसल में बहुत थोड़ा अनाज मिला, और पुनिया के बखार मे धान रखने की जगह न रही।

होरी और धनिया में उस दिन से बराबर मनमुटाव चला आता था। गोबर से भी होरी की बोलचाल बंद थी। मां-बेटे ने मिलकर जैसे उसका बहिष्कार कर दिया था। अपने घर में परदेसी बना हुआ था। दो नावों पर सवार होने वालों की जो दुर्गति होती है, वही उसकी हो रही थी। गांव में भी अब उसका उतना आदर न था। धनिया ने अपने साहस से स्त्रियों का ही नहीं, पुरुषों का नेतृत्व भी प्राप्त कर लिया था। महीनों तक आसपास के इलाकों में इस कांड की खूब चर्चा रही। यहां तक कि वह एक अलौकिक रूप तक धारण करता जाता था-' धनिया नाम है उसका जी। भवानी का इष्ट है उसे। दारोगाजी ने ज्यों ही उसके आदमी के हाथ में हथकड़ी डाली कि धनिया ने भवानी का सुमिरन किया। भवानी उसके सिर आ गई। फिर तो उसमें इतनी शक्ति आ गई कि उसने एक झटके में पति की हथकड़ी तोड़ डाली और दारोगा की मूंछें पकड़कर उखाड़ लीं, फिर उसकी छाती पर चढ़ बैठी। दारोगा ने जब बहुत मानता की, तब जाकर उसे छोड़ा।' कुछ दिन तो लोग धनिया के दर्शनों को आते रहे। वह बात अब पुरानी पड़ गई थी, लेकिन गांव में धनिया का सम्मान बहुत बढ़ गया था। उसमें अद्भुत साहस है और समय पड़ने पर वह मर्दों के भी कान काट सकती है।

मगर धीरे-धीरे धनिया में एक परिवर्तन हो रहा था। होरी को पुनिया की खेती में लगे देखकर भी वह कुछ न बोलती थी। और यह इसलिए नहीं कि वह होरी से विरक्त हो गई थी, बल्कि इसलिए कि पुनिया पर अब उसे भी दया आती थी। हीरा का घर से भाग जाना उसकी पतिशोध-भावना की तुष्टि के लिए काफी था।

इसी बीच में होरी को ज्वर आने लगा। फस्ली बुखार फैला था ही। होरी उसके चपेट में आ गया। और कई साल के बाद जो ज्वर आया, तो उसने सारी बकाया चुका ली। एक महीने तक होरी खाट पर पड़ा रहा। इस बीमारी ने होरी को तो कुचल डाला ही, पर धनिया पर भी

विजय पा गई। पति जब मर रहा है, तो उससे कैसा बैर? ऐसी दशा में तो बैरियों से भी बैर नहीं रहता, वह तो अपना पति है। लाख बुरा हो, पर उसी के साथ जीवन के पचीस साल कटे हैं, सुख किया है तो उसी के साथ, दुःख भोगा है तो उसी के साथ। अब तो चाहे वह अच्छा है या बुरा, अपना है। दाढ़ीजार ने मुझे सबके सामने मारा, सारे गांव के सामने मेरा पानी उतार लिया, लेकिन तब से कितना लज्जित है कि सीधे ताकता नहीं। खाने आता है तो सिर झुकाए खाकर उठ जाता है, डरता रहता है कि मैं कुछ कह न बैठूं।

होरी जब अच्छा हुआ, तो पति-पत्नी में मेल हो गया था।

एक दिन धनिया ने कहा—तुम्हें इतना गुस्सा कैसे आ गया? मुझे तो तुम्हारे ऊपर कितना ही गुस्सा आए, मगर हाथ न उठाऊंगी।

होरी लजाता हुआ बोला—अब उसकी चर्चा न कर धनिया! मेरे ऊपर कोई भूत सवार था। इसका मुझे कितना दुःख हुआ है, वह मैं ही जानता हूं।

'और जो मैं भी क्रोध में डूब मरी होती!'

'तो क्या मैं रोने के लिए बैठा रहता? मेरी लहास भी तेरे साथ चिता पर जाती।'

'अच्छा चुप रहो, बेबात की बात मत करो।'

'गाय गई सो गई, मेरे सिर पर एक विपत्ति डाल गई। पुनिया की फिकर मुझे मारे डालती है।'

'इसीलिए तो कहते हैं, भगवान् घर का बड़ा न बनाए। छोटों को कोई नहीं हंसता। नेकी-बदी सब बड़ों के सिर जाती है।'

माघ के दिन थे। महावट लगी हुई थी। घटाटोप अंधेरा छाया हुआ था। एक तो जाड़ों की रात, दूसरे माघ की वर्षा। मौत का सा-सन्नाटा छाया हुआ था। अंधेरा तक न सूझता था। होरी भोजन करके पुनिया के मटर के खेत की मेंड़ पर अपनी मड़ैया में लेटा हुआ था। चाहता था, शीत को भूल जाय और सो रहे, लेकिन तार-तार कंबल और फटी हुई मिर्जई और शीत के झोंकों से गीली पुआल। इतने शत्रुओं के सम्मुख आने का नींद में साहस न था। आज तमाखू भी न मिला कि उसी से मन बहलाता। उपला सुलगा लाया था, पर शीत में वह भी बुझ गया। बेवाय फटे पैरों को पेट में डालकर और हाथों को जांघों के बीच में दबाकर और कंबल में मुंह छिपाकर अपनी ही गर्म सांसों से अपने को गर्म करने की चेष्टा कर रहा था। पांच साल हुए, यह मिर्जई बनवाई थी। धनिया ने एक प्रकार से जबरदस्ती बनवा दी थी, वही जब एक बार काबुली से कपड़े लिए थे, जिसके पीछे कितनी सांसत हुई, कितनी गालियां खानी पड़ीं। और यह कंबल उसके जन्म से भी पहले का है। बचपन में अपने बाप के साथ वह इसी में सोता था, जवानी में गोबर को लेकर इसी कंबल में उसके जाड़े कटे थे और बुढ़ापे में आज वही बूढ़ा कंबल उसका साथी है, पर अब वह भोजन को चबाने वाला दांत नहीं, दुखने वाला दांत है। जीवन में ऐसा तो कोई दिन ही नहीं आया कि लगान और महाजन को देकर कभी कुछ बचा हो। और बैठे-बैठाए यह एक नया जंजाल पड़ गया। न करो तो दुनिया हंसे, करो तो यह संशय बना रहे कि लोग क्या कहते हैं। सब यह समझते हैं कि वह पुनिया को लूट लेता है, उसकी सारी उपज घर में भर लेता है। एहसान तो क्या होगा, उलटा कलंक लग रहा है। और उधर भोला कई बेर याद दिला चुके हैं कि कहीं कोई सगाई का डौल करो, अब काम नहीं चलता। सोभा उससे कई बार कह चुका

है कि पुनिया के विचार उसकी ओर से अच्छे नहीं हैं। न हों। पुनिया की गृहस्थी तो उसे संभालनी ही पड़ेगी, चाहे हंसकर संभाले या रोकर।

धनिया का दिल भी अभी तक साफ नहीं हुआ। अभी तक उसके मन में मलाल बना हुआ है। मुझे सब आदमियों के सामने उसको मारना न चाहिए था। जिसके साथ पच्चीस साल गुजर गए, उसे मारना और सारे गांव के सामने, मेरी नीचता थी, लेकिन धनिया ने भी तो मेरी आबरू उतारने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मेरे सामने से कैसा कतराकर निकल जाती है, जैसे कभी की जान-पहचान ही नहीं। कोई बात कहनी होती है, तो सोना या रूपा से कहलाती है। देखता हूं, उसकी साड़ी फट गई है, मगर कल मुझसे कहा भी, तो सोना की साड़ी के लिए, अपनी साड़ी का नाम तक न लिया। सोना की साड़ी अभी दो-एक महीने थेगलियां लगाकर चल सकती है। उसकी साड़ी तो मारे पेबंदों के बिल्कुल कथरी हो गई है। और फिर मैं ही कौन उसका मनुहार कर रहा हूं? अगर मैं ही उसके मन की दो-चार बातें करता रहता, तो कौन छोटा हो जाता? यही तो होता, वह थोड़ा-सा अदरावन कराती, दो-चार लगने वाली बातें कहती, तो क्या मुझे चोट लग जाती, लेकिन मैं बुड्ढा होकर भी उल्लू बना रह गया। वह तो कहो, इस बीमारी ने आकर उसे नर्म कर दिया, नहीं जाने कब तक मुंह फुलाए रहती।

और आज उन दोनों में जो बातें हुई थीं, वह मानो भूखे का भोजन थीं। वह दिल से बोली थी और होरी गद्‌गद हो गया था। उसके जी में आया, उसके पैरों पर सिर रख दे और कहे—मैंने तुझे मारा है तो ले मैं सिर झुकाए लेता हूं, जितना चाहे मार ले, जितनी गालियां देना चाहे दे ले।

सहसा उसे मंड़ैया के सामने चूड़ियों की झंकार सुनाई दी। उसने कान लगाकर सुना। हां, कोई है। पटवारी की लड़की होगी, चाहे पंडित की घरवाली हो। मटर उखाड़ने आई होगी। न जाने क्यों इन लोगों की नीयत इतनी खोटी है। सारे गांव से अच्छा पहनते हैं। सारे गांव से अच्छा खाते हैं, घर में हजारों रुपये गड़े हुए हैं, लेन-देन करते हैं, ड्योढ़ी-सवाई चलाते हैं, घूस लेते हैं, दस्तूरी लेते हैं, एक-न-एक मामला खड़ा करके हमा-सुमा को पीसते ही रहते हैं, फिर भी नीयत का यह हाल! बाप जैसा होगा, वैसी ही संतान भी होगी। और आप नहीं आते, औरतों को भेजते हैं। अभी उठकर हाथ पकड़ लूं तो क्या पानी रह जाय! नीच कहने को नीच हैं, जो ऊंचे हैं, उनका मन तो और नीचा है। औरत जात का हाथ पकड़ते भी तो नहीं बनता, आंखों देखकर मक्खी निगलनी पड़ती है। उखाड़ ले भाई, जितना तेरा जी चाहे। समझ ले, मैं नहीं हूं। बड़े आदमी अपनी लाज न रखें, छोटों को तो उनकी लाज रखनी ही पड़ती है।

मगर नहीं, यह तो धनिया है। पुकार रही है।

धनिया ने पुकारा—सो गए कि जागते हो?

होरी झटपट उठा और मंड़ैया के बाहर निकल आया। आज मालूम होता है, देवी प्रसन्न हो गई, उसे वरदान देने आई हैं, इसके साथ ही इस बादल-बूंदी और जाड़े-पाले में इतनी रात गए उसका आना शंकाप्रद भी था। जरूर कोई-न-कोई बात हुई है।

बोला—ठंड के मारे नींद भी आती है? तू इस जाड़े-पाले में कैसे आई? सब कुसल तो है?

'हां, सब कुसल है।'

'गोबर को भेजकर मुझे क्यों नहीं बुलवा लिया?'

धनिया ने कोई उत्तर न दिया। मंड़ैया में आकर पुआल पर बैठती हुई बोली—गोबर ने तो मुंह में कालिख लगा दी, उसकी करनी क्या पूछते हो! जिस बात को डरती थी, वह होकर रही।

'क्या हुआ? किसी से मार-पीट कर बैठा?'

'अब मैं क्या जानूं, क्या कर बैठा, चलकर पूछो उसी रांड से?'

'किस रांड से? क्या कहती है तू? बौरा तो नहीं गई?'

'हां, बौरा क्यों न जाऊंगी। बात ही ऐसी हुई है कि छाती दुगनी हो जाय!'

होरी के मन में प्रकाश की एक लंबी रेखा ने प्रवेश किया।

'साफ-साफ क्यों नहीं कहती। किस रांड को कह रही है?'

'उसी झुनिया को, और किसको!'

'तो झुनिया क्या यहां आई है?'

'और कहां जाती, पूछता कौन?'

'गोबर क्या घर में नहीं है?'

'गोबर का कहीं पता नहीं। जाने कहां भाग गया। इसे पांच महीने का पेट है।'

होरी सब कुछ समझ गया। गोबर को बार-बार अहिराने जाते देखकर वह खटका था जरूर, मगर उसे ऐसा खिलाड़ी न समझता था। युवकों में कुछ रसिकता होती ही है, इसमें कोई नई बात नहीं। मगर जिस रुई के गाले को उसने नीले आकाश में हवा के झोंके से उड़ते देखकर केवल मुस्करा दिया था, वह सारे आकाश में छाकर उसके मार्ग को इतना अंधकारमय बना देगा, यह तो कोई देवता भी न जान सकता था। गोबर ऐसा लंपट! वह सरल गंवार, जिसे वह अभी बच्चा समझता था! लेकिन उसे भोज की चिंता न थी, पंचायत का भय न था, झुनिया घर में कैसे रहेगी, इसकी चिंता भी उसे न थी। उसे चिंता थी गोबर की। लड़का लज्जाशील है, अनाड़ी है, आत्माभिमानी है, कहीं कोई नादानी न कर बैठे।

घबड़ाकर बोला—झुनिया ने कुछ कहा नहीं, गोबर कहां गया? उससे कहकर ही गया होगा?

धनिया झुंझलाकर बोली—तुम्हारी अक्कल तो घास खा गई है। उसकी चहेती तो यहां बैठी है, भागकर जायगा कहां? यहीं कहीं छिपा बैठा होगा। दूध थोड़े ही पीता है कि खो जायगा। मुझे तो इस कलमुंही झुनिया की चिंता है कि इसे क्या करूं? अपने घर में मैं तो छन-भर भी न रहने दूंगी। जिस दिन गाय लाने गया है, उसी दिन दोनों में ताक-झांक होने लगी। पेट न रहता तो अभी बात न खुलती। मगर जब पेट रह गया, तो झुनिया लगी घबड़ाने। कहने लगी, कहीं भाग चलो। गोबर टालता रहा। एक औरत को साथ ले के कहां जाय, कुछ न सूझा। आखिर जब आज वह सिर हो गई कि मुझे यहां से ले चलो, नहीं मैं परान दे दूंगी, तो बोला—तू चलकर मेरे घर में रह, कोई कुछ न बोलेगा, मैं अम्मां को मना लूंगा। यह गधी उसके साथ चल पड़ी। कुछ दूर तो आगे-आगे आता रहा, फिर न जाने किधर सरक गया। यह खड़ी-खड़ी उसे पुकारती रही। जब रात भीग गई और वह न लौटा, भागी यहां चली आई। मैंने तो कह दिया, जैसा किया है, उसका फल भोग। चुड़ैल ने लेके मेरे लड़के को चौपट कर दिया। तब से बैठी रो रही है। उठती ही नहीं। कहती है, अपने घर कौन मुंह लेकर जाऊं। भगवान् ऐसी संतान से तो बांझ ही रखें तो अच्छा। सबेरा होते-होते सारे गांव में कांव-कांव मच जायगी। ऐसा जी होता है, माहुर खा लूं। मैं तुमसे कहे देती हूं, मैं अपने घर में न रखूंगी। गोबर को रखना हो, अपने सिर

पर रखे। मेरे घर में ऐसी छत्तीसियों के लिए जगह नहीं है और अगर तुम बीच में बोले, तो फिर या तो तुम्हीं रहोगे, या मैं ही रहूंगी।

होरी बोला—तुझसे बना नहीं। उसे घर में आने ही न देना चाहिए था।

'सब कुछ कह के हार गई। टलती ही नहीं। धरना दिए बैठी है।'

'अच्छा चल, देखूं कैसे नहीं उठती, घसीटकर बाहर निकाल दूंगा।'

'दाढ़ीजार भोला सब कुछ देख रहा था, पर चुप्पी साधे बैठा रहा। बाप भी ऐसे बेहया होते हैं।'

'वह क्या जानता था, इनके बीच क्या खिचड़ी पक रही है।'

'जानता क्यों नहीं था? गोबर दिन-रात घेरे रहता था तो क्या उसकी आंखें फूट गई थीं। सोचना चाहिए था न, कि यहां क्यों दौड़-दौड़ आता है।'

'चल, मैं झुनिया से पूछता हूं न।'

दोनों मंड़ैया से निकलकर गांव की ओर चले। होरी ने कहा—पांच घड़ी के ऊपर रात गई होगी।

धनिया बोली—हां, और क्या, मगर कैसा सोता पड़ गया है। कोई चोर आए, तो सारे गांव को मूस ले जाय।

'चोर ऐसे गांव में नहीं आते। धनियों के घर जाते हैं।'

धनिया ने ठिठककर होरी का हाथ पकड़ लिया और बोली—देखो, हल्ला न मचाना, नहीं सारा गांव जाग उठेगा और बात फैल जायगी।

होरी ने कठोर स्वर में कहा—मैं यह कुछ नहीं जानता। हाथ पकड़कर घसीट लाऊंगा और गांव के बाहर कर दूंगा। बात तो एक दिन खुलनी ही है, फिर आज ही क्यों न खुल जाय? वह मेरे घर आई क्यों? जाय जहां गोबर है। उसके साथ कुकरम किया, तो क्या हमसे पूछकर किया था?

धनिया ने फिर उसका हाथ पकड़ा और धीरे-से बोली—तुम उसका हाथ पकड़ोगे तो वह चिल्लाएगी।

'तो चिल्लाया करे।'

'मुदा इतनी रात गए, अंधेरे सन्नाटे रात में जायगी कहां, यह तो सोचो।'

'जाय जहां उसके सगे हों। हमारे घर में उसका क्या रखा है?'

'हां, लेकिन इतनी रात गए, घर से निकालना उचित नहीं। पांव भारी है, कहीं डर-डरा जाय, तो और आफत हो। ऐसी दसा में कुछ करते-धरते भी तो नहीं बनता।'

'हमें क्या करना है, मरे या जिए। जहां चाहे जाय। क्यों अपने मुंह में कालिख लगाऊं? मैं तो गोबर को भी निकाल बाहर करूंगा।'

धनिया ने गंभीर चिंता से कहा—कालिख जो लगनी थी, वह तो अब लग चुकी। वह अब जीते-जी नहीं छूट सकती। गोबर ने नौका डुबा दी।

'गोबर ने नहीं, डुबाई इसी ने। वह तो बच्चा था। इसके पंजे में आ गया।'

'किसी ने डुबाई, अब तो डूब गई।'

दोनों द्वार के सामने पहुंच गए। सहसा धनिया ने होरी के गले में हाथ डालकर कहा—देखो, तुम्हें मेरी सौंह, उस पर हाथ न उठाना। वह तो आप ही रो रही है। भाग की खोटी न होती, तो

यह दिन ही क्यों आता?

होरी की आंखें आर्द्र हो गईं। धनिया का यह मातृ-स्नेह उस अंधेरे में भी जैसे दीपक के समान उसकी चिंता-जर्जर आकृति को शोभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के हृदय में जैसे अतीत-यौवन सचेत हो उठा। होरी को इस वीत-यौवना में भी वही कोमल हृदय बालिका नजर आई, जिसने पच्चीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस आलिंगन में कितना अथाह वात्सल्य था, जो सारे कलंक, सारी बाधाओं और सारी मूलबद्ध परंपराओं को अपने अंदर समेटे लेता था।

दोनों ने द्वार पर आकर किवाड़ों के दराज से अंदर झांका। दीवट पर तेल की कुप्पी जल रही थी और उसके मध्यम प्रकाश में झुनिया घुटने पर सिर रखे, द्वार की ओर मुंह किए, अंधकार में उस आनंद को खोज रही थी, जो एक क्षण पहले अपनी मोहिनी छवि दिखाकर विलीन हो गया था। वह आफत की मारी, व्यंग-बाणों से आहत और जीवन के आघातों से व्यथित किसी वृक्ष की छांह खोजती फिरती थी, और उसे एक भवन मिल गया था, जिसके आश्रय में वह अपने को सुरक्षित और सुखी समझ रही थी, पर आज वह भवन अपना सारा सुख-विलास लिए अलादीन के राजमहल की भांति गायब हो गया था और भविष्य एक विकराल दानव के समान उसे निगल जाने को खड़ा था।

एकाएक द्वार खुलते और होरी को आते देखकर वह भय से कांपती हुई उठी और होरी के पैरों पर गिरकर रोती हुई बोली—दादा, अब तुम्हारे सिवाय मुझे दूसरा ठौर नहीं है, चाहे मारो चाहे काटो, लेकिन अपने द्वार से दुरदुराओ मत।

होरी ने झुककर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए प्यार-भरे स्वर में कहा—डर मत बेटी, डर मत। तेरा घर है, तेरा द्वार है, तेरे हम हैं। आराम से रह। जैसी तू भोला की बेटी है, वैसी ही मेरी बेटी है। जब तक हम जीते हैं, किसी बात की चिंता मत कर। हमारे रहते, कोई तुझे तिरछी आंखों से न देख सकेगा। भोज-भात जो लगेगा, वह हम सब दे लेंगे, तू खातिर जमा रख।

झुनिया, सांत्वना पाकर और भी होरी के पैरों से चिमट गई और बोली—दादा, अब तुम्हीं मेरे बाप हो, और अम्मां, तुम्हीं मां हो। मैं अनाथ हूं। मुझे सरन दो, नहीं मेरे काका और भाई मुझे कच्चा ही खा जायंगे।

धनिया अपनी करुणा के आवेश को अब न रोक सकी। बोली—तू चल घर में बैठ, मैं देख लूंगी काका और भैया को। संसार में उन्हीं का राज नहीं है। बहुत करेंगे, अपने गहने ले लेंगे। फेंक देना उतारकर।

अभी जरा देर पहले धनिया ने क्रोध के आवेश में झुनिया को कुलटा और कलंकिनी और कलमुंही, न जाने क्या-क्या कह डाला था। झाड़ू मारकर घर से निकालने जा रही थी। अब जो झुनिया ने स्नेह, क्षमा और आश्वासन से भरे यह वाक्य सुने, तो होरी के पांव छोड़कर धनिया के पांव से लिपट गई और वही साध्वी, जिसने होरी के सिवा किसी पुरुष को आंख भरकर देखा भी न था, इस पापिष्ठा को गले लगाए, उसके आंसू पोंछ रही थी और उसके त्रस्त हृदय को कोमल शब्दों से शांत कर रही थी, जैसे कोई चिड़िया अपने बच्चे को परों में छिपाए बैठी हो।

होरी ने धनिया को संकेत किया कि इसे कुछ खिला-पिला दे और झुनिया से पूछा—क्यों

बेटी, तुझे कुछ मालूम है, गोबर किधर गया।

झुनिया ने सिसकते हुए कहा—मुझसे तो कुछ नहीं कहा। मेरे कारन तुम्हारे ऊपर.... यह कहते-कहते उसकी आवाज आंसुओं में डूब गई।

होरी अपनी व्याकुलता न छिपा सका।

'जब तूने आज उसे देखा, तो कुछ दु:खी था?'

'बातें तो हंस-हंसकर कर रहे थे। मन का हाल भगवान् जाने।'

'तेरा मन क्या कहता है, है गांव में ही कि कहीं बाहर चला गया?'

'मुझे तो शंका होती है, कहीं बाहर चले गए हैं।'

'यही मेरा मन भी कहता है, कैसी नादानी की। हम उसके दुसमन थोड़े ही थे। जब भली या बुरी एक बात हो गई, तो वह निभानी पड़ती है। इस तरह भागकर तो उसने हमारी जान आफत में डाल दी।'

धनिया ने झुनिया का हाथ पकड़कर अंदर ले जाते हुए कहा—कायर कहीं का! जिसकी बांह पकड़ी, उसका निबाह करना चाहिए कि मुंह में कालिख लगाकर भाग जाना चाहिए! अब जो आए, तो घर में पैठने न दूं।

होरी वहीं पआल पर लेटा। गोबर कहां गया? यह प्रश्न उसके हृदयाकाश में किसी पक्षी की भांति मंडराने लगा।

ग्यारह

ऐसे असाधारण कांड पर गांव में जो कुछ हलचल मचनी चाहिए, वह मची और महीनों तक मचती रही। झुनिया के दोनों भाई लाठियां लिए गोबर को खोजते फिरते थे। भोला ने कसम खाई कि अब न झुनिया का मुंह देखेंगे और न इस गांव का। होरी से उन्होंने अपनी सगाई की जो बातचीत की थी, वह अब टूट गई। अब वह अपनी गाय के दाम लेंगे और नकद, और इसमें विलंब हुआ तो होरी पर दावा करके उसका घर-द्वार नीलाम करा लेंगे। गाव वालों ने होरी को जाति-बाहर कर दिया। कोई उसका हुक्का नहीं पीता, न उसके घर का पानी पीता है। पानी बंद कर देने की कुछ बातचीत थी, लेकिन धनिया का चंडी-रूप सब देख चुके थे, इसलिए किसी की आगे आने की हिम्मत न पड़ी। धनिया ने सबको सुना-सुनाकर कह दिया—किसी ने उसे पानी भरने से रोका, तो उसका और अपना खून एक कर देगी। इस ललकार ने सभी के पित्ते पानी कर दिए। सबसे दुखी है झुनिया, जिसके कारण यह सब उपद्रव हो रहा है, और गोबर की कोई खोज-खबर न मिलना, इस दु:ख को और भी दारुण बना रहा है। सारे दिन मुंह छिपाए घर में पड़ी रहती है। बाहर निकले तो चारों ओर से वाग्बाणों की ऐसी वर्षा हो कि जान बचना मुश्किल हो जाय। दिन-भर घर के धंधे करती रहती है और जब अवसर पाती है, रो लेती है। हरदम थर-थर कांपती रहती है कि कहीं धनिया कुछ कह न बैठे। अकेला भोजन तो नहीं पका सकती, क्योंकि कोई उसके हाथ का खायगा नहीं, बाकी सारा काम उसने अपने ऊपर ले लिया। गांव में चार स्त्री-पुरुष जमा हो जाते हैं, यही

कुत्सा होने लगती है।

एक दिन धनिया हाट से चली आ रही थी कि रास्ते में पंडित दातादीन मिल गए। धनिया ने सिर नीचा कर लिया और चाहती थी कि कतराकर निकल जाय, पर पंडितजी छेड़ने का अवसर पाकर कब चूकने वाले थे? छेड़ ही तो दिया—गोबर का कुछ सर-संदेस मिला कि नहीं धनिया? ऐसा कपूत निकला कि घर की सारी मरजाद बिगाड़ दी।

धनिया के मन में स्वयं यही भाव आते रहते थे। उदास मन से बोली—बुरे दिन आते हैं, बाबा, तो आदमी की मति फिर जाती है, और क्या कहूं।

दातादीन बोले—तुम्हें इस दुष्टा को घर में न रखना चाहिए था। दूध में मक्खी पड़ जाती है, तो आदमी उसे निकालकर फेंक देता है और दूध पी जाता है। सोचो, कितनी बदनामी और जग-हंसाई हो रही है। वह कुलटा घर में न रहती, तो कुछ न होता। लड़कों से इस तरह की भूल-चूक होती रहती है। जब तक बिरादरी को भात न दोगे, बाम्हनों को भोज न दोगे, कैसे उद्धार होगा? उसे घर में न रखते, तो कुछ न होता। होरी तो पागल है ही, तू कैसे धोखा खा गई।

दातादीन का लड़का मातादीन एक चमारिन से फंसा हुआ था। इसे सारा गांव जानता था, पर वह तिलक लगाता था, पोथी-पत्रे बांचता था, कथा-भागवत कहता था, धर्म-संस्कार कराता था। उसकी प्रतिष्ठा में जरा भी कमी न थी। वह नित्य स्नान-पूजा करके अपने पापों का प्रायश्चित कर लेता था। धनिया जानती थी, झुनिया को आश्रय देने ही से यह सारी विपत्ति आई है। उसे न जाने कैसे दया आ गई, नहीं उसी रात को झुनिया को निकाल देती, तो क्यों इतना उपहास होता, लेकिन यह भय भी तो था कि तब उसके लिए नदी या कुआं के सिवा और ठिकाना कहा था? एक प्राण का मूल्य देकर—एक नहीं दो प्राणों का—वह अपनी मरजाद की रक्षा कैसे करती? फिर झुनिया के गर्भ में जो बालक है, वह धनिया ही के हृदय का टुकड़ा तो है। हंसी के डर से उसके प्राण कैसे ले लेती। और फिर झुनिया की नम्रता और दीनता भी उसे निरस्त्र करती रहती थी। वह जली-भुनी बाहर से आती, पर ज्योंही झुनिया लोटे का पानी लाकर रख देती और उसके पांव दबाने लगती, उसका क्रोध पानी हो जाता। बेचारी अपनी लज्जा और दुःख से आप दबी हुई है, उसे और क्या दबाए, मरे को क्या मारे?

उसने तीव्र स्वर में कहा—हमको कुल-परतिसठा इतनी प्यारी नहीं है महाराज, कि उसके पीछे एक जीवन की हत्या कर डालते। ब्याहता न सही, पर उसकी बांह तो पकड़ी है मेरे बेटे ने ही। किस मुंह से निकाल देती? वही काम बड़े-बड़े करते हैं, मुदा उनसे कोई नहीं बोलता, उन्हें कलंक ही नहीं लगता। वही काम छोटे आदमी करते हैं, उनकी मरजाद बिगड़ जाती है। नाक कट जाती है। बड़े आदमियों को अपनी नाक दूसरों की जान से प्यारी होगी, हमें तो अपनी नाक इतनी प्यारी नहीं।

दातादीन हार मानने वाले जीव न थे। वह इस गांव के नारद थे। यहां की वहां, वहां की यहां, यही उनका व्यवसाय था। वह चोरी तो न करते थे, उसमें जान-जोखिम था, पर चोरी के माल में हिस्सा बंटाने के समय अवश्य पहुंच जाते थे। कहीं पीठ में धूल न लगने देते थे। जमींदार को आज तक लगान की एक पाई न दी थी, कुर्की आती, तो कुएं में गिरने चलते, नोखेराम के किए कुछ न बनता, मगर असामियों को सूद पर रुपये उधार देते थे। किसी स्त्री को आभूषण बनवाना है, दातादीन उसकी सेवा के लिए हाजिर हैं। शादी-ब्याह तय करने मे

उन्हें बड़ा आनंद आता है, यश भी मिलता है, दक्षिणा भी मिलती है। बीमारी में दवा-दारू भी करते हैं, झाड़-फूंक भी, जैसी मरीज की इच्छा हो। और सभा-चतुर इतने हैं कि जवानों में जवान बन जाते हैं, बालकों में बालक और बूढ़ों में बढ़े। चोर के भी मित्र हैं और साह के भी। गांव में किसी को उन पर विश्वास नहीं है, पर उनकी वाणी में कुछ ऐसा आकर्षण है कि लोग बार-बार धोखा खाकर भी उन्हीं की शरण जाते हैं।

सिर और दाढ़ी हिलाकर बोले—यह तू ठीक कहती है धनिया। धर्मात्मा लोगों का यही धरम है, लेकिन लोक-रीति का निबाह तो करना ही पड़ता है।

इसी तरह एक दिन लाला पटेश्वरी ने होरी को छेड़ा। वह गांव में पुण्यात्मा मशहूर थे। पूर्णमासी को नित्य सत्यनारायण की कथा सुनते, पर पटवारी होने के नाते खेत बेगार में जुतवाते थे, सिंचाई बेगार में करवाते थे और असामियों को एक-दूसरे से लड़ाकर रकमें मारते थे। सारा गांव उनसे कांपता था। गरीबों को दस-दस, पांच-पांच कर्ज देकर उन्होंने कई हजार की संपत्ति बना ली थी। फसल की चीजें असामियों से लेकर कचहरी और पुलिस के अमलों की भेंट करते रहते थे। इससे इलाके भर में उनकी अच्छी धाक थी। अगर कोई उनके हत्थे नहीं चढ़ा, तो वह दारोगा गंडासिंह थे, जो हाल में इस इलाके में आए थे। परमार्थी भी थे। बुखार के दिनों में सरकारी कुनैन बांटकर यश कमाते थे, कोई बीमार-आराम हो, तो उसकी कुशल पूछने अवश्य जाते थे। छोटे-मोटे झगड़े आपस में ही तय करा देते थे। शादी-ब्याह में अपनी पालकी, कालीन और महफिल के सामान मंगनी देकर लोगों का उबार कर देते थे। मौका पाकर न चूकते थे, पर जिसका खाते थे, उसका काम भी करते थे।

बोले—यह तुमने क्या रोग पाल लिया होरी?

होरी ने पीछे फिरकर पूछा—तुमने क्या कहा लाला—मैंने सुना नहीं।

पटेश्वरी पीछे से कदम बढ़ाते हुए बराबर आकर बोले—यही कह रहा था कि धनिया के साथ क्या तुम्हारी बुद्धि भी घास खा गई? झुनिया को क्यों नहीं उसके बाप के घर भेज देते, सेंत-मेंत में अपनी हंसी करा रहे हो। न जाने किसका लड़का लेकर आ गई और तुमने घर में बैठा लिया। अभी तुम्हारी दो-दो लड़कियां ब्याहने को बैठी हुई हैं, सोचो, कैसे बेड़ा पार होगा?

होरी इस तरह की आलोचनाएं और शुभकामनाएं सुनते-सुनते तंग आ गया था। खिन्न होकर बोला—यह सब मैं समझता हूं लाला। लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं। मैं झुनिया को निकाल दूं, तो भोला उसे रख लेंगे? अगर वह राजी हों, तो आज मैं उनके घर पहुंचा दूं। अगर तुम उन्हें राजी कर दो, तो जनम-भर तुम्हारा औसान मानूं, मगर वहां तो उनके दोनों लड़के खून करने को उतारू हो रहे हैं। फिर मैं उसे कैसे निकाल दूं? एक तो नालायक आदमी मिला कि उसकी बांह पकड़कर दगा दे गया। मैं भी निकाल दूंगा, तो इस दसा में वह कहीं मेहनत-मजूरी भी तो न कर सकेगी। कहीं डूब-धंस मरी तो किसे अपराध लगेगा। रहा लड़कियों का ब्याह, सो भगवान् मालिक है। जब उसका समय आएगा, कोई न कोई रास्ता निकल ही आएगा। लड़की तो हमारी बिरादरी में आज तक कभी कुंवारी नहीं रही। बिरादरी के डर से हत्यारे का काम नहीं कर सकता।

होरी नम्र स्वभाव का आदमी था। सदा सिर झुकाकर चलता और चार बातें गम खा लेता था। हीरा को छोड़कर गांव में कोई उसका अहित न चाहता था, पर समाज इतना बड़ा अनर्थ

कैसे सह ले! और उसकी मुटमर्दी तो देखो कि समझाने पर भी नहीं समझता। स्त्री-पुरुष दोनों जैसे समाज को चुनौती दे रहे हैं कि देखें, कोई उनका क्या कर लेता है। तो समाज भी दिखा देगा कि उसकी मर्यादा तोड़ने वाले सुख की नींद नहीं सो सकते।

उसी रात को इस समस्या पर विचार करने के लिए गांव के विधाताओं की बैठक हुई।

दातादीन बोले—मेरी आदत किसी की निंदा करने की नहीं है। संसार में क्या-क्या कुकर्म नहीं होता, अपने से क्या मतलब? मगर वह रांड धनिया तो मुझसे लड़ने पर उतारू हो गई। भाइयों का हिस्सा दबाकर हाथ में चार पैसे हो गए, तो अब कुपंथ के सिवा और क्या सूझेगी? नीच जात, जहां पेट-भर रोटी खाई और टेढ़े चले, इसी से तो सासतरों में कहा है—नीच जात लतियाए अच्छा।

पटेश्वरी ने नारियल का कश लगाते हुए कहा—यही तो इनमें बुराई है कि चार पैसे देखे और आंखें बदलीं। आज होरी ने ऐसी हेकड़ी जताई कि मैं अपना-सा मुंह लेकर रह गया। न जाने अपने को क्या समझता है! अब सोचो, इस अनीति का गांव में क्या फल होगा? झुनिया को देखकर दूसरी विधवाओं का मन बढ़ेगा कि नहीं? आज भोला के घर में यह बात हुई। कल हमारे-तुम्हारे घर में भी होगी। समाज तो भय के बल से चलता है। आज समाज का आंकुस जाता रहे, फिर देखो संसार में क्या-क्या अनर्थ होने लगते हैं।

झिंगुरीसिंह दो स्त्रियों के पति थे। पहली स्त्री पांच लड़के-लड़कियां छोड़कर मरी थी। उस समय इनकी अवस्था पैंतालीस के लगभग थी, पर आपने दूसरा ब्याह किया और जब उससे कोई संतान न हुई, तो तीसरा ब्याह कर डाला। अब इनकी पचास की अवस्था थी और दो जवान पत्नियां घर में बैठी थीं। उन दोनों ही के विषय में तरह-तरह की बातें फैल रही थीं, पर ठाकुर साहब के डर से कोई कुछ न कह सकता था, और कहने का अवसर भी तो हो। पति की आड़ में सब कुछ जायज है। मुसीबत तो उसको है, जिसे कोई आड़ नहीं। ठाकुर साहब स्त्रियों पर बड़ा कठोर शासन रखते थे और उन्हें घमंड था कि उनकी पत्नियों का घूंघट किसी ने न देखा होगा। मगर घूंघट की आड़ में क्या होता है, उसकी उन्हें क्या खबर?

बोले—ऐसी औरत का तो सिर काट ले। होरी ने इस कुलटा को घर में रखकर समाज में विष बोया है। ऐसे आदमी को गांव में रहने देना सारे गांव को भ्रष्ट करना है। रायसाहब को इसकी सूचना देनी चाहिए। साफ-साफ कह देना चाहिए, अगर गांव में यह अनीति चली तो किसी की आबरू सलामत न रहेगी।

पंडित नोखेराम कारकुन बड़े कुलीन ब्राह्मण थे। इनके दादा किसी राजा के दीवान थे। पर अपना सब कुछ भगवान् के चरणों में भेंट करके साधु हो गए थे। इनके बाप ने भी राम-नाम की खेती में उम्र काट दी। नोखेराम ने भी वही भक्ति तरके में पाई थी। प्रातःकाल पूजा पर बैठ जाते थे और दस बजे तक बैठे राम-नाम लिखा करते थे, मगर भगवान् के सामने से उठते ही उनकी मानवता इस अवरोध से विकृत होकर उनके मन, वचन और कर्म सभी को विषाक्त कर देती थी। इस प्रस्ताव में उनके अधिकार का अपमान होता था। फूले हुए गालों में धंसी हुई आंखें निकालकर बोले—इसमें रायसाहब से क्या पूछना है। मैं जो चाहूं, कर सकता हूं। लगा दो सौ रुपये डांड़। आप गांव छोड़कर भागेगा। इधर बेदखली भी दायर किए देता हूं।

पटेश्वरी ने कहा—मगर लगान तो बेबाक कर चुका है?

झिंगुरीसिंह ने समर्थन किया—हां, लगान के लिए ही तो हमसे तीस रुपये लिये हैं।

नोखेराम ने घमंड के साथ कहा—लेकिन अभी रसीद तो नहीं दी। सबूत क्या है कि लगान बेबाक कर दिया?

सर्वसम्मति से यही तय हुआ कि होरी पर सौ रुपये तावान लगा दिया जाय। केवल एक दिन गांव के आदमियों को बटोरकर उनकी मंजूरी ले लेने का अभिनय आवश्यक था। संभव था, इसमें दस-पांच दिन की देर हो जाती। पर आज ही रात को झुनिया के लड़का पैदा हो गया। और दूसरे ही दिन गांव वालों की पंचायत बैठ गई। होरी और धनिया, दोनों अपनी किस्मत का फैसला सुनने के लिए बुलाए गए। चौपाल में इतनी भीड़ थी कि कहीं तिल रखने की जगह न थी। पंचायत ने फैसला किया कि होरी पर सौ रुपये नकद और तीस मन अनाज डांड़ लगाया जाय।

धनिया भरी सभा में रुंधे हुए कंठ से बोली—पंचो, गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना। हम तो मिट जायंगे, कौन जाने, इस गांव में रहें या न रहें, लेकिन मेरा सराप तुमको भी जरूर लगेगा। मुझसे इतना कड़ा जरीबाना इसलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा। क्यों उसे घर से निकालकर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया। यही न्याय है—ऐं?

पटेश्वरी बोले—वह तेरी बहू नहीं है, हरजाई है।

होरी ने धनिया को डांटा—तू क्यों बोलती है धनिया! पंच में परमेसर रहते हैं। उनका जो न्याय है, वह सिर आंखों पर। अगर भगवान् की यही इच्छा है कि हम गांव छोड़कर भाग जायं, तो हमारा क्या बस। पंचो, हमारे पास जो कुछ है, वह अभी खलिहान में है। एक दाना भी घर में नहीं आया, जितना चाहे, ले लो। सब लेना चाहो, सब ले लो। हमारा भगवान् मालिक है, जितनी कमी पड़े, उसमें हमारे दोनों बैल ले लेना।

धनिया दांत कटकटाकर बोली—मैं एक दाना न अनाज दूंगी, न कौड़ी डांड़। जिसमें बूता हो, चलकर मुझसे ले। अच्छी दिल्लगी है। सोचा होगा, डांड़ के बहाने इसकी सब जैजात ले लो और नजराना लेकर दूसरों को दे दो। बाग-बगीचा बेचकर मजे से तर माल उड़ाओ। धनिया के जीते-जी यह नहीं होने का, और तुम्हारी लालसा तुम्हारे मन में ही रहेगी। हमें नहीं रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकुत न हो जायगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी अपने पसीने की कमाई खायंगे।

होरी ने उसके सामने हाथ जोड़कर कहा—धनिया, तेरे पैरों पड़ता हूं, चुप रह। हम सब बिरादरी के चाकर हैं, उसके बाहर नहीं जा सकते। वह जो डांड़ लगाती है, उसे सिर झुकाकर मंजूर कर। नक्कू बनकर जीने से तो गले में फांसी लगा लेना अच्छा है। आज मर जायं, तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगाएगी? बिरादरी ही तारेगी तो तरेंगे। पंचो, मुझे अपने जवान बेटे का मुंह देखना नसीब न हो, अगर मेरे पास खलिहान के अनाज के सिवा और कोई चीज हो। मैं बिरादरी से दगा न करूंगा। पंचों को मेरे बाल-बच्चों पर दया आए, तो उनकी कुछ परवरिस करें, नहीं मुझे तो उनकी आज्ञा पालनी है।

धनिया झल्लाकर वहां से चली गई और होरी पहर रात तक खलिहान से अनाज ढो-ढोकर झिंगुरीसिंह की चौपाल में ढेर करता रहा। बीस मन जौ था, पांच मन गेहूं और इतना ही मटर, थोड़ा-सा चना और तेलहन भी था। अकेला आदमी और दो गृहस्थियों का बोझ। यह जो

कुछ हुआ, धनिया के पुरुषार्थ से हुआ। झुनिया भीतर का सारा काम कर लेती थी और धनिया अपनी लड़कियों के साथ खेती में जुट गई थी। दोनों ने सोचा था, गेहूं और तिलहन से लगान की एक किस्त अदा हो जायगी और हो सके तो थोड़ा-थोड़ा सूद भी दे देंगे। जौ खाने के काम आएगा। लंगे-तंगे पांच-छ: महीने कट जायंगे, तब तक जुआर, मक्का, सांवा, धान के दिन आ जायंगे। वह सारी आशा मिट्टी में मिल गई। अनाज तो हाथ से गया ही, सौ रुपये की गठरी और सिर पर लद गई। अब भोजन का कहीं ठिकाना नहीं। और गोबर का क्या हाल हुआ, भगवान् जाने। न हाल न हवाल। अगर दिल इतना कच्चा था, तो ऐसा काम ही क्यों किया? मगर होनहार कौन टाल सकता है। बिरादरी का वह आतंक था कि अपने सिर पर लादकर अनाज ढो रहा था, मानो अपने हाथों से अपनी कब्र खोद रहा हो। जमींदार, साहूकार, सरकार, किसका इतना रोब था? कल बाल-बच्चे क्या खाएंगे, इसकी चिंता प्राणों को सोखे लेती थी, पर बिरादरी का भय पिशाच की भांति सर पर सवार आंकुस दिए जा रहा था। बिरादरी से पृथक् जीवन की वह कोई कल्पना ही न कर सकता था। शादी-ब्याह, मुंडन-छेदन, जन्म-मरण सब कुछ बिरादरी के हाथ में है। बिरादरी उसके जीवन में वृक्ष की भांति जड़ जमाए हुए थी और उसकी नसें उसके रोम-रोम में बिंधी हुई थीं। बिरादरी से निकलकर उसका जीवन विशृंखल हो जायगा—तार-तार हो जायगा।

जब खलिहान में केवल डेढ़-दो मन जौ रह गया, तो धनिया ने दौड़कर उसका हाथ पकड लिया और बोली—अच्छा अब रहने दो। ढो तो चुके बिरादरी की लाज। बच्चों के लिए भी कुछ छोड़ोगे कि सब बिरादरी के भाड़ में झोंक दोगे? मैं तुमसे हार जाती हूं। मेरे भाग्य में तुम्हीं जैसे बुद्धू का संग लिखा था।

होरी ने अपना हाथ छुड़ाकर टोकरी में अनाज भरते हुए कहा—यह न होगा धनिया, पंचों की आंख बचाकर एक दाना भी रख लेना मेरे लिए हराम है। मैं ले जाकर सब-का-सब वहां ढेर कर देता हूं। फिर पंचों के मन में दया उपजेगी, तो कुछ मेरे बाल-बच्चों के लिए देंगे, नहीं भगवान् मालिक है।

धनिया तिलमिलाकर बोली—यह पंच नहीं हैं, राच्छस हैं, पक्के राच्छस। यह सब हमारी जगह-जमीन छीनकर माल मारना चाहते हैं। डांड़ तो बहाना है। समझाती जाती हूं, पर तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं। तुम इन पिसाचों से दया की आसा रखते हो? सोचते हो, दस-पांच मन निकालकर तुम्हें दे देंगे। मुंह धो रखो।

जब होरी ने न माना और टोकरी सिर पर रखने लगा, तो धनिया ने दोनों हाथों से पूरी शक्ति के साथ टोकरी पकड़ ली और बोली—इसे तो मैं न ले जाने दूंगी, चाहे तुम मेरी जान ही ले लो। मर-मरकर हमने कमाया, पहर रात-रात को सींचा, अगोरा, इसलिए कि पंच लोग मूछों पर ताव देकर भोग लगाएं और हमारे बच्चे दाने-दाने को तरसें। तुमने अकेले ही सब कुछ नहीं कर लिया है। मैं भी अपनी बच्चियों के साथ सती हुई हूं। सीधे से टोकरी रख दो नहीं आज सदा के लिए नाता टूट जायगा। कहे देती हूं।

होरी सोच में पड़ गया। धनिया के कथन में सत्य था। उसे अपने बाल-बच्चों की कमाई छीनकर तावान देने का क्या अधिकार है। वह घर का स्वामी इसलिए है कि सबका पालन करे, इसलिए नहीं कि उनकी कमाई छीनकर बिरादरी की नजर में सुर्खरू बने। टोकरी उसके हाथ से छूट गई। धीरे से बोला—तू ठीक कहती है धनिया। दूसरों के हिस्से पर मेरा कोई जोर नहीं

है। जो कुछ बचा है, वह ले जा। मैं जाकर पंचों से कहे देता हूं।

धनिया अनाज की टोकरी घर में रखकर अपनी लड़कियों के साथ पोते के जन्मोत्सव में गला फाड़-फाड़कर सोहर गा रही थी, जिससे सारा गांव सुन ले। आज यह पहला मौका था कि ऐसे शुभ अवसरों पर बिरादरी की कोई औरत न थी। सौर से झुनिया ने कहला भेजा था, सोहर गाने का काम नहीं है, लेकिन धनिया कब मानने लगी। अगर बिरादरी को उसकी परवा नहीं है, तो वह भी बिरादरी की परवा नहीं करती।

उसी वक्त होरी अपने घर को अस्सी रुपये पर झिंगुरीसिंह के हाथ गिरों रख रहा था। डांड़ के रुपये का इसके सिवा वह और कोई प्रबंध न कर सका था। बीस रुपये तो तेलहन, गेहूं और मटर से मिल गए। शेष के लिए घर लिखना पड़ गया। नोखेराम तो चाहते थे कि बैल बिकवा लिए जायं, लेकिन पटेश्वरी और दातादीन ने इसका विरोध किया। बैल बिक गए, तो होरी खेती कैसे करेगा? बिरादरी उसकी जायदाद से रुपये वसूल करे, पर ऐसा तो न करे कि वह गांव छोड़कर भाग जाय। इस तरह बैल बच गए।

होरी रेहननामा लिखकर कोई ग्यारह बजे रात घर आया, तो धनिया ने पूछा—इतनी रात तक वहां क्या करते रहे?

होरी ने जुलाहे का गुस्सा दाढ़ी पर उतारते हुए कहा—करता क्या रहा, इस लौंडे की करनी भरता रहा। अभागा आप तो चिंगारी छोड़कर भागा, आग मुझे बुझानी पड़ रही है। अस्सी रुपये में घर रेहन लिखना पड़ा। करता क्या! अब हुक्का खुल गया। बिरादरी ने अपराध क्षमा कर दिया।

धनिया ने होंठ चबाकर कहा—न हुक्का खुलता, तो हमारा क्या बिगड़ा जाता था? चार-पांच महीने नहीं किसी का हुक्का पिया, तो क्या छोटे हो गए? मैं कहती हूं, तुम इतने भोंदू क्यों हो? मेरे सामने तो बड़े बुद्धिमान बनते हो, बाहर तुम्हारा मुंह क्यों बंद हो जाता है? ले-दे के बाप-दादों की निसानी एक घर बच रहा था, आज तुमने उसका भी वारा-न्यारा का दिया। इसी तरह कल तीन-चार बीघे जमीन है, इसे भी लिख देना और तब गली-गली भीख मांगना। मैं पूछती हूं, तुम्हारे मुंह में जीभ न थी कि उन पंचों से पूछते, तुम कहां के बड़े धर्मात्मा हो, जो दूसरों पर डांड़ लगाते फिरते हो, तुम्हारा तो मुंह देखना भी पाप है।

होरी ने डांटा—चुप रह, बहुत बढ़-चढ़ न बोल। बिरादरी के चक्कर में अभी पड़ी नहीं है, नहीं मुंह से बात न निकलती।

धनिया उत्तेजित हो गई—कौन-सा पाप किया है, जिसके लिए बिरादरी से डरें? किसी की चोरी की है, किसी का माल काटा है? मेहरिया रख लेना पाप नहीं है, हां, रख के छोड़ देना पाप है। आदमी का बहुत सीधा होना भी बुरा है। उसके सीधेपन का फल यही होता है कि कुत्ते भी मुंह चाटने लगते हैं। आज उधर तुम्हारी वाह-वाह हो रही होगी कि बिरादरी की कैसी मरजाद रख ली। मेरे भाग फूट गए थे कि तुम-जैसे मर्द से पाला पड़ा। कभी सुख की रोटी न मिली।

'मैं तेरे बाप के पांव पड़ने गया था? वही तुझे मेरे गले बांध गया था!'

'पत्थर पड़ गया था उनकी अक्कल पर और उन्हें क्या कहूं? न जाने क्या देखकर लट्टू हो गए। ऐसे कोई बड़े सुंदर भी तो न थे तुम।'

विवाद विनोद के क्षेत्र में आ गया। अस्सी रुपये गए, लाख रुपये का बालक तो मिल

गया! उसे तो कोई न छीन लेगा। गोबर घर लौट आए, धनिया अलग झोंपड़ी में सुखी रहेगी।

होरी ने पूछा—बच्चा किसको पड़ा है?

धनिया ने प्रसन्न मुख होकर जवाब दिया—बिल्कुल गोबर को पड़ा है। सच!

'रिस्ट-पुस्ट तो है?'

'हां, अच्छा है।'

बारह

रात को गोबर झुनिया के साथ चला, तो ऐसा कांप रहा था, जैसे उसकी नाक कटी हुई हो। झुनिया को देखते ही सारे गांव में कुहराम मच जायगा, लोग चारों ओर से कैसी हाय-हाय मचायंगे, धनिया कितनी गालियां देगी, यह सोच-सोचकर उसके पांव पीछे रह जाते थे। होरी का तो उसे भय न था। वह केवल एक बार दहाड़ेंगे, फिर शांत हो जायंगे। डर था धनिया का, जहर खाने लगेगी, घर में आग लगाने लगेगी। नहीं, इस वक्त वह झुनिया के साथ घर नहीं जा सकता।

लेकिन कहीं धनिया ने झुनिया को घर में घुसने ही न दिया और झाड़ू लेकर मारने दौड़ी, तो वह बेचारी कहां जायगी? अपने घर तो लौट नहीं सकती। कहीं कुएं में कूद पड़े या गले में फांसी लगा ले, तो क्या हो? उसने लंबी सांस ली। किसकी शरण ले?

मगर अम्मां इतनी निर्दयी नहीं हैं कि मारने दौड़ें। क्रोध में दो-चार गालियां देंगी। लेकिन जब झुनिया उनके पांव पकड़कर रोने लगेगी, तो उन्हें जरूर दया आ जायगी। तब तक वह खुद कहीं छिपा रहेगा। जब उपद्रव शांत हो जायगा, तब वह एक दिन धीरे से आयगा और अम्मां को मना लेगा। अगर इस बीच उसे कहीं मजूरी मिल जाय और दो-चार रुपये लेकर घर लौटे, तो फिर धनिया का मुंह बंद हो जायगा।

झुनिया बोली—मेरी छाती धक्-धक् कर रही है। मैं क्या जानती थी, तुम मेरे गले यह रोग मढ़ दोगे। न जाने किस बुरी साइत में तुमको देखा। न तुम गाय लेने आते, न यह सब कुछ होता। तुम आगे-आगे जाकर जो कुछ कहना-सुनना हो, कह-सुन लेना। मैं पीछे से जाऊंगी।

गोबर ने कहा—नहीं-नहीं, पहले तुम जाना और कहना, मैं बाजार से सौदा बेचकर घर जा रही थी। रात हो गई है, अब कैसे जाऊं? तब तक मैं आ जाऊंगा।

झुनिया ने चिंतित मन से कहा—तुम्हारी अम्मां बड़ी गुस्सैल हैं। मेरा तो जी कांपता है। कहीं मुझे मारने लगें तो क्या करूंगी?

गोबर ने धीरज दिलाया—अम्मां की आदत ऐसी नहीं। हम लोगों तक को तो कभी एक तमाचा मारा नहीं, तुम्हें क्या मारेंगी। उनको जो कुछ कहना होगा, मुझे कहेंगी, तुमसे तो बोलेंगी भी नहीं।

गांव समीप आ गया। गोबर ने ठिठककर कहा—अब तुम जाओ।

झुनिया ने अनुरोध किया—तुम भी देर न करना।

'नहीं-नहीं, छन भर में आता हूं, तू चल तो।'

'मेरा जी न जाने कैसा हो रहा है ! तुम्हारे ऊपर क्रोध आता है।'

'तुम इतना डरती क्यों हो? मैं तो आ ही रहा हूं।'

'इससे तो कहीं अच्छा था कि किसी दूसरी जगह भाग चलते।'

'जब अपना घर है तो क्यों कहीं भागें? तुम नाहक डर रही हो।'

'जल्दी से आओगे न?'

'हां-हां, अभी आता हूं।'

'मुझसे दगा तो नहीं कर रहे हो? मुझे घर भेजकर आप कहीं चलते बनो?'

'इतना नीच नहीं हूं झुना ! जब तेरी बांह पकड़ी है, तो मरते दम तक निभाऊंगा।'

झुनिया घर की ओर चली। गोबर एक क्षण दुविधे में पड़ा खड़ा रहा। फिर एकाएक सिर पर मंडराने वाली धिक्कार की कल्पना भयंकर रूप धारण करके उसके सामने खड़ी हो गई। कहीं सचमुच अम्मां मारने दौड़ें, तो क्या हो? उसके पांव जैसे धरती से चिमट गए। उसके और उसके घर के बीच केवल आमों का छोटा-सा बाग था। झुनिया की काली परछाईं धीरे-धीरे जाती हुई दीख रही थी। उसकी ज्ञानेंद्रियां बहुत तेज हो गई थीं। उसके कानों में ऐसी भनक पड़ी, जैसे अम्मां झुनिया को गाली दे रही हैं। उसके मन की कुछ ऐसी दशा हो रही थी, मानो सिर पर गड़ांसे का हाथ पड़ने वाला हो। देह का सारा रक्त सूख गया हो। एक क्षण के बाद उसने देखा, जैसे धनिया घर से निकलकर कहीं जा रही हो। दादा के पास जाती होगी। साइत दादा खा-पीकर मटर अगोरने चले गए हैं। वह मटर के खेत की ओर चला। जौ-गेहूं के खेतों को रौंदता हुआ वह इस तरह भागा जा रहा था, मानो पीछे दौड़ आ रही है। वह है दादा की मंड़ैया। वह रुक गया और दबे पांव आकर मंडैया के पीछे बैठ गया। उसका अनुमान ठीक निकला। वह पहुंचा ही था कि धनिया की बोली सुनाई दी। ओह ! गजब हो गया। अम्मां इतनी कठोर हैं। एक अनाथ लड़की पर इन्हें तनिक भी दया नहीं आती। और जो मैं सामने जाकर फटकार दूं कि तुमको झुनिया से बोलने का कोई मजाल नहीं है, तो सारी सेखी निकल जाय। अच्छा ! दादा भी बिगड़ रहे हैं। केले के लिए आज ठीकरा भी तेज हो गया। मैं जरा अदब करता हूं, उसी का फल है। यह तो दादा भी वहीं जा रहे हैं। अगर झुनिया को इन्होंने मारा-पीटा तो मुझसे न सहा जायगा। भगवान्! अब तुम्हारा ही भरोसा है। मैं न जानता था, इस विपत में जान फंसेगी। झुनिया मुझे अपने मन में कितना धूर्त, कायर और नीच समझ रही होगी, मगर उसे मार कैसे सकते हैं? घर से निकाल भी कैसे सकते हैं? क्या घर में मेरा हिस्सा नहीं है? अगर झुनिया पर किसी ने हाथ उठाया, तो आज महाभारत हो जायगा। मां-बाप जब तक लड़कों की रक्षा करें, तब तक मां-बाप हैं। जब उनमें ममता ही नहीं है, तो कैसे मां-बाप !

होरी ज्योंही मंड़ैया से निकला, गोबर भी दबे पांव धीरे-धीरे पीछे-पीछे चला, लेकिन द्वार पर प्रकाश देखकर उसके पांव बंध गए। उस प्रकाश-रेखा के अंदर वह पांव नहीं रख सकता। वह अंधेरे में ही दीवार से चिमटकर खड़ा हो गया। उसकी हिम्मत ने जवाब दे दिया। हाय ! बेचारी झुनिया पर निरपराध यह लोग झल्ला रहे हैं, और वह कुछ नहीं कर सकता। उसने खेल-खेल में जो एक चिंगारी फेंक दी थी, वह सारे खलिहान को भस्म कर देगी, यह उसने न समझा था। और अब उसमें इतना साहस न था कि सामने आकर कहे—हां, मैंने चिंगारी फेंकी थी। जिन टिकौनों से उसने अपने मन को संभाला था,

वे सब इस भूकंप में नीचे आ रहे और वह झोंपड़ा नीचे गिर पड़ा। वह पीछे लौटा। अब वह झुनिया को क्या मुंह दिखाए।

वह सौ कदम चला, पर इस तरह जैसे कोई सिपाही मैदान से भागे। उसने झुनिया से प्रीति और विवाह की जो बातें की थीं, वह सब याद आने लगीं। वह अभिसार की मीठी स्मृतियां याद आईं, जब वह अपने उन्मत्त उसांसों में, अपनी नशीली चितवनों में मानो अपने प्राण निकालकर उसके चरणों पर रख देता था। झुनिया किसी वियोगी पक्षी की भांति अपने छोटे-से घोंसले में एकांत-जीवन काट रही थी। वहां नर का मत्त आग्रह न था, न वह उद्दीप्त उल्लास, न शावकों की मीठी आवाजें, मगर बहेलिये का जाल और छल भी तो वहां न था। गोबर ने उसके एकांत घोंसले में जाकर उसे कुछ आनंद पहुंचाया या नहीं, कौन जाने, पर उसे विपत्ति में डाल ही दिया। वह संभल गया। भागता हुआ सिपाही मानो अपने एक साथी का बढ़ावा सुनकर पीछे लौट पड़ा।

उसने द्वार पर आकर देखा, तो किवाड़ बंद हो गए थे। किवाड़ों के दराजों से प्रकाश की रेखाएं बाहर निकल रही थीं। उसने एक दरार से अंदर झांका। धनिया और झुनिया बैठी हुई थीं। होरी खड़ा था। झुनिया की सिसकियां सुनाई दे रही थीं और धनिया उसे समझा रही थी–बेटी, तू चलकर घर में बैठ। मैं तेरे काका और भाइयों को देख लूंगी। जब तक हम जीते हैं, किसी बात की चिंता नहीं है। हमारे रहते कोई तुझे तिरछी आंखों देख भी न सकेगा। गोबर गद्‌गद हो गया। आज वह किसी लायक होता, तो दादा और अम्मां को सोने से मढ़ देता और कहता–अब तुम कुछ परवा न करो, आराम से बैठे खाओ और जितना दान-पुन्न करना चाहो, करो। झुनिया के प्रति अब उसे कोई शंका नहीं है। वह उसे जो आश्रय देना चाहता था, वह मिल गया। झुनिया उसे दगाबाज समझती है, तो समझे। वह र.। अब तभी घर आएगा, जब वह पैसे के बल से सारे गांव का मुंह बंद कर सके और दादा और अम्मां उसे कुल का कलंक न समझकर कुल का तिलक समझें। मन पर जितना ही गहरा आघात होता है उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही गहरी होती है। इस अपकीर्ति और कलंक ने गोबर के अंतस्तल को मथकर वह रत्न निकाल लिया, जो अभी तक छिपा पड़ा था। आज पहली बार उसे अपने दायित्व का ज्ञान हुआ और उसके साथ ही संकल्प भी। अब तक वह कम-से-कम काम करना और ज्यादा-से-ज्यादा खाना अपना हक समझता था। उसके मन में कभी यह विचार ही नहीं उठा कि घरवालों के साथ उसका भी कुछ कर्त्तव्य है। आज माता-पिता की उदात्त क्षमा ने जैसे उसके हृदय में प्रकाश डाल दिया। जब धनिया और झुनिया भीतर चली गईं, तो वह होरी की उसी मंड़ैया में जा बैठा और भविष्य के मंसूबे बांधने लगा।

शहर के बेलदारों को पांच-छ: आने रोज मिलते हैं, यह उसने सुन रखा था। अगर उसे छ: आने रोज मिलें और वह एक आने में गुजर कर ले, तो पांच आने रोज बच जायं। महीने में दस रुपये होते हैं, और साल-भर में सवा सौ। वह सवा-सौ की थैली लेकर घर आए, तो किसकी मजाल है, जो उसके सामने मुंह खोल सके? यही दातादीन और यही पटेसरी आकर उसकी हां में हां मिलाएंगे और झुनिया तो मारे गर्व के फूल जाय। दो-चार साल वह इसी तरह कमाता रहे, तो सारे घर का दलिद्दर मिट जाय। अभी तो सारे घर की कमाई भी सवा सौ नहीं होती। अब वह अकेला सवा सौ कमाएगा। यही तो लोग कहेंगे कि मजूरी करता है। कहने दो। मजूरी करना कोई पाप तो नहीं है। और सदा छ: आने थोड़े मिलेंगे। जैसे-जैसे वह काम में

होशियार होगा, मजूरी भी तो बढ़ेगी। तब वह दादा से कहेगा, अब तुम घर में बैठकर भगवान् का भजन करो। इस खेती में जान खपाने के सिवा और क्या रखा है? सबसे पहले वह एक पछाईं गाय लाएगा, जो चार-पांच सेर दूध देगी और दादा से कहेगा, तुम गऊ माता की सेवा करो। इससे तुम्हारा लोक भी बनेगा, परलोक भी।

और क्या, एक आने में उसका गुजर आराम से न होगा? घर-द्वार लेकर क्या करना है? किसी के ओसारे में पड़ा रहेगा। सैकड़ों मंदिर हैं, धरमसाले हैं। और फिर जिसकी वह मजूरी करेगा, क्या वह उसे रहने के लिए जगह न देगा? आटा रुपये का दस सेर आता है। एक आने में ढाई पाव हुआ। एक आने का तो वह आटा ही खा जायगा। लकड़ी, दाल, नमक, साग यह सब कहां से आएगा? दोनों जून के लिए सेर भर तो आटा ही चाहिए। ओह ! खाने की तो कुछ न पूछो। मुट्ठी-भर चने में भी काम चल सकता है। हलुवा और पूरी खाकर भी काम चल सकता है। जैसी कमाई हो। वह आध सेर आटा खाकर दिन-भर मजे से काम कर सकता है। इधर-उधर से उपले चुन लिए, लकड़ी का काम चल गया। कभी एक पैसे की दाल ले ली, कभी आलू। आलू भूनकर भुरता बना लिया। यहां दिन काटना है कि चैन करना है। पत्तल पर आटा गूंधा, उपलों पर बाटियां सेंकीं, आलू भूनकर भुरता बनाया और मजे से खाकर सो रहे। घर ही पर कौन दोनों जून रोटी मिलती है, एक जून तो चबेना ही मिलता है। वहां भी एक जून चबेने पर काटेंगे।

उसे शंका हुई, अगर कभी मजूरी न मिली, तो वह क्या करेगा? मगर मजूरी क्यों न मिलेगी? जब वह जी तोड़कर काम करेगा, तो सौ आदमी उसे बुलाएंगे। काम सबको प्यारा होता है, चाम नहीं प्यारा होता। यहां भी तो सूखा पड़ता है, पाला गिरता है, ऊख में दीमक लगते हैं, जौ में गेरुई लगती है, सरसों में लाही लग जाती है। उसे रात को कोई काम मिल जायगा, तो उसे भी न छोड़ेगा। दिन-भर मजूरी की, रात कहीं चौकीदारी करलेगा। दो आने भी रात के काम में मिल जायं, तो चांदी है। जब वह लौटेगा, तो सबके लिए साड़ियां लाएगा। झुनिया के लिए हाथ का कंगन जरूर बनवायगा और दादा के लिए एक मुंड़ासा लाएगा।

इन्हीं मनमोदकों का स्वाद लेता हुआ वह सो गया, लेकिन ठंड में नींद कहां ! किसी तरह रात काटी और तड़के उठकर लखनऊ की सड़क पकड़ ली। बीस कोस ही तो है। सांझ तक पहुंच जायगा। गांव का कौन आदमी वहां आया-जाता है और वह अपना ठिकाना ही क्यों लिखेगा, नहीं दादा दूसरे ही दिन सिर पर सवार हो जायंगे। उसे कुछ पछतावा था, तो यही कि झुनिया से क्यों न साफ-साफ कह दिया—अभी तू घर जा, मैं थोड़े दिनों में कुछ कमाकर लौटूंगा, लेकिन तब वह घर जाती ही क्यों? कहती—मैं भी तुम्हारे साथ लौटूंगी? उसे वह कहां-कहां बांधे फिरता?

दिन चढ़ने लगा। रात को कुछ न खाया था। भूख मालूम होने लगी। पांव लड़खड़ाने लगे। कहीं बैठकर दम लेने की इच्छा होती थी। बिना कुछ पेट में गले, वह अब नहीं चल सकता, लेकिन पास एक पैसा भी नहीं है। सड़क के किनारे झड़बेरियों के झाड़ थे। उसने थोड़े से बेर तोड़ लिए और उदर को बहलाता हुआ चला। एक गांव में गुड़ पकने की सुगंध आई। अब मन न माना। कोल्हाड़ में जाकर लोटा-डोर मांगा और पानी भरकर चुल्लू से पीने बैठा कि एक किसान ने कहा—अरे भाई, क्या निराला ही पानी पियोगे? थोड़ा-सा मीठा खा लो। अबकी और चला

लें कोल्हू और बना लें खांड़। अगले साल तक मिल तैयार हो जायगी, सारी ऊख खड़ी बिक जायगी। गुड़ और खांड़ के भाव चीनी मिलेगी, तो हमारा गुड़ कौन लेगा? उसने एक कटोरे में गुड़ की कई पिंडियां लाकर दीं। गोबर ने गुड़ खाया, पानी पिया। तमाखू तो पीते होगे? गोबर ने बहाना किया—अभी चिलम नहीं पीता। बुड्ढे ने प्रसन्न होकर कहा—बड़ा अच्छा करते हो भैया ! बुरा रोग है। एक बेर पकड़ ले, तो जिंदगी-भर नहीं छोड़ता।

इंजन को कोयला-पानी भी मिल गया। चाल तेज हुई। जाड़े के दिन, न जाने कब दोपहर हो गया। एक जगह देखा, एक युवती एक वृक्ष के नीचे पति से सत्याग्रह किए बैठी थी। पति सामने खड़ा उसे मना रहा था। दो-चार राहगीर तमाशा देखने खड़े हो गए थे। गोबर भी खड़ा हो गया। मानलीला से रोचक और कौन जीवन-नाटक होगा। युवती ने पति की ओर घूरकर कहा—मैं न जाऊंगी, न जाऊंगी, न जाऊंगी।

पुरुष ने जैसे अल्टीमेटम दिया—न जायगी?

'न जाऊंगी।'

'न जायगी?'

'न जाऊंगी।'

पुरुष ने उसके केश पकड़कर घसीटना शुरू किया। युवती भूमि पर लोट गई।

पुरुष ने हारकर कहा—मैं फिर कहता हूं, उठकर चल।

स्त्री ने उसी दृढ़ता से कहा—मैं तेरे घर सात जनम न जाऊंगी, बोटी-बोटी काट डाल।

'मैं तेरा गला काट लूंगा।'

'तो फांसी पाओगे।'

पुरुष ने उसके केश छोड़ दिए और सिर पर हाथ रखकर बैठ गया। पुरुषत्व अपनी चरम सीमा तक पहुंच गया। उसके आगे अब उसका कोई बस नहीं है।

एक क्षण में वह फिर खड़ा हुआ और परास्त होकर बोला—आखिर तू क्या चाहती है?

युवती भी उठ बैठी और निश्चल भाव से बोली—मैं यही चाहती हूं, तू मुझे छोड़ दे।

'कुछ मुंह से कहेगी, क्या बात हुई?'

'मेरे माई-बाप को कोई क्यों गाली दे?'

'किसने गाली दी, तेरे माई-बाप को?'

'जाकर अपने घर में पूछ।'

'चलेगी तभी तो पूछूंगा?'

'तू क्या पूछेगा? कुछ दम भी है। जाकर अम्मां के आंचल में मुंह ढांककर सो। वह तेरी मां होगी। मेरी कोई नहीं है। तू उसकी गालियां सुन। मैं क्यों सुनूं? एक रोटी खाती हूं, तो चार रोटी का काम करती हूं। क्यों किसी की धौंस सहूं? मैं तेरा एक पीतल का छल्ला भी तो नहीं जानती।'

राहगीरों को इस कलह में अभिनय का आनंद आ रहा था, मगर उसके जल्द समाप्त होने की कोई आशा न थी। मंजिल खोटी होती थी। एक-एक करके लोग खिसकने लगे। गोबर को पुरुष की निर्दयता बुरी लग रही थी। भीड़ के सामने तो कुछ न कह सकता था। मैदान खाली हुआ तो बोला—भाई, मर्द और औरत के बीच में बोलना तो न चाहिए, मगर इतनी बेदरदी भी अच्छी नहीं होती।

पुरुष ने कौड़ी की-सी आंखें निकालकर कहा—तुम कौन हो?

गोबर ने निःशंक भाव से कहा—मैं कोई हूं, लेकिन अनुचित बात देखकर सभी को बुरा लगता है।

पुरुष ने सिर हिलाकर कहा—मालूम होता है, अभी मेहरिया नहीं आई, तभी इतना दरद है।

'मेहरिया आएगी, तो भी उसके झोटे पकड़कर न खींचूंगा।'

'अच्छा, तो अपनी राह लो। मेरी औरत है, मैं उसे मारूंगा, काटूंगा। तुम कौन होते हो बोलने वाले। चले जाओ सीधे से, यहां मत खड़े हो।'

गोबर का गर्म खून और गर्म हो गया। वह क्यों चला जाय? सड़क सरकार की है। किसी के बाप की नहीं है। वह जब तक चाहे, वहां खड़ा रह सकता है। वहां से उसे हटाने का किसी को अधिकार नहीं है।

पुरुष ने होंठ चबाकर कहा—तो तुम न जाओगे? आऊं?

गोबर ने अंगोछा कमर में बांध लिया और समर के लिए तैयार होकर बोला—तुम आओ या न आओ। मैं तो तभी जाऊंगा, जब मेरी इच्छा होगी।

'तो मालूम होता है, हाथ-पैर तुड़ा के जाओगे?'

'यह कौन जानता है, किसके हाथ-पांव टूटेंगे।'

'तो तुम न जाओगे?'

'ना।'

पुरुष मुट्ठी बांधकर गोबर की ओर झपटा। उसी क्षण युवती ने उसकी धोती पकड़ ली और उसे अपनी ओर खींचती हुई गोबर से बोली—तुम क्यों लड़ाई करने पर उतारू हो रहे हो जी, अपनी राह क्यों नहीं जाते? यहां कोई तमासा है? हमारा आपस का झगड़ा है। कभी वह मुझे मारता है, कभी मैं उसे डांटती हूं। तुमसे मतलब?

गोबर यह धिक्कार पाकर चलता बना। दिल में कहा—यह औरत मार खाने ही लायक है।

गोबर आगे निकल गया, तो युवती ने पति को डांटा—तुम सबसे लड़ने क्यों लगते हो? उसने कौन-सी बुरी बात कही थी कि तुम्हें चोट लोग गई। बुरा काम करोगे, तो दुनिया बुरा कहेगी ही, मगर है किसी भले घर का और अपनी बिरादरी का ही जान पड़ता है। क्यों उसे अपनी बहन के लिए नहीं ठीक कर लेते?

पति ने संदेह के स्वर में कहा—क्या अब तक कुवांरा बैठा होगा?

'तो पूछ ही क्यों न लो?'

पुरुष ने दस कदम दौड़कर गोबर को आवाज दी और हाथ से ठहर जाने का इशारा किया। गोबर ने समझा, शायद फिर इसके सिर भूत सवार हुआ, तभी ललकार रहा है। मार खाए बगैर बिना न मानेगा। अपने गांव में कुत्ता भी शेर हो जाता है, लेकिन आने दो।

लेकिन उसके मुख पर समर की ललकार न थी, मैत्री का निमंत्रण था। उसने गांव और नाम और जात पूछी। गोबर ने ठीक-ठीक बता दिया। उस पुरुष का नाम कोदई था।

कोदई ने मुस्कराकर कहा—हम दोनों में लड़ाई होते-होते बची। तुम चले आए, तो मैंने सोचा, तुमने ठीक ही कहा। मैं हक-नाहक तुमसे तन बैठा। कुछ खेती-बारी घर में होती है न?

गोबर ने बताया—उसके मौरूसी पांच बीघे खेत हैं और एक हल की खेती होती है।

'मैंने तुम्हें जो भला-बुरा कहा है, उसकी माफी दे दो भाई। क्रोध में आदमी अंधा हो जाता है। औरत गुन-सहूर में लच्छमी है, मुदा कभी-कभी न जाने कौन-सा भूत इस पर सवार हो जाता है। अब तुम्हीं बताओ, माता पर मेरा क्या बस है? जनम तो उन्हीं ने दिया है, पाला-पोसा तो उन्होंने है। जब कोई बात होगी, तो मैं जो कुछ कहूंगा, लुगाई ही से कहूंगा। उस पर अपना बस है। तुम्हीं सोचो, मैं कुपद तो नहीं कह रहा हूं? हां, मुझे उसके बाल पकड़कर घसीटना न था, लेकिन औरत जात बिना कुछ ताड़ना दिए काबू में भी तो नहीं रहती। चाहती है, मां से अलग हो जाऊं। तुम्हीं सोचो, कैसे अलग हो जाऊं और किससे अलग हो जाऊं। अपनी मां से? जिसने जनम दिया? यह मुझसे न होगा। औरत रहे या जाय।'

गोबर को भी राय बदलनी पड़ी। बोला—माता का आदर करना तो सबका धरम ही है भाई। माता से कौन उरिन हो सकता है?

कोदई ने उसे अपने घर चलने का नेवता दिया। आज वह किसी तरह लखनऊ नहीं पहुंच सकता। कोस दो-कोस जाते-जाते सांझ हो जायगी। रात को कहीं टिकना ही पड़ेगा।

गोबर ने विनोद किया—लुगाई मान गई?

'न मानेगी तो क्या करेगी।'

'मुझे तो उसने ऐसी फटकार बताई कि मैं लजा गया।'

'वह खुद पछता रही है। चलो, जरा माताजी को समझा देना। मुझसे तो कुछ कहते नहीं बनता। उन्हें भी सोचना चाहिए कि बहू को बाप-माई की गाली क्यों देती है। हमारी भी बहन है। चार दिन में उसकी सगाई हो जायगी। उसकी सास हमें गालियां देगी, तो उससे सुना न जायगा? सब दोस लुगाई ही का नहीं है। माता का भी दोस है। जब हर बात में वह अपनी बेटी का पच्छ करेंगी, तो हमें बुरा लगेगा ही। इसमें इतनी बात अच्छी है कि घर से रूठकर चली जाय, पर गाली का जवाब गाली से नहीं देती।'

गोबर को रात के लिए कोई ठिकाना चाहिए था ही। कोदई के साथ हो लिया। दोनों फिर उसी जगह आए, जहां युवती बैठी हुई थी। वह अब गृहिणी बन गई थी। जरा-सा घूंघट निकाल लिया था और लजाने लगी थी।

कोदई ने मुस्कराकर कहा—यह तो आते ही न थे। कहते थे, ऐसी डांट सुनने के बाद उनके घर कैसे जायं?

युवती ने घूंघट की आड़ से गोबर को देखकर कहा—इतनी ही डांट में डर गए? लुगाई आ जायगी, तब कहां भागोगे?

गांव समीप ही था। गांव क्या था, पुरवा था, दस-बारह घरों का, जिसमें आधे खपरैल के थे, आधे फूस के। कोदई ने अपने घर पहुंचकर खाट निकाली, उस पर एक दरी डाल दी, शर्बत बनाने को कह, चिलम भर लाया। और एक क्षण में वही युवती लोटे में शर्बत लेकर आई और गोबर को पानी का एक छींटा मारकर मानो क्षमा मांग ली। वह अब उसका ननदोई हो रहा था। फिर क्यों न अभी से छेड़-छाड़ शुरू कर दे।

तेरह

गोबर अंधेरे ही मुंह उठा और कोदई से बिदा मांगी। सबको मालूम हो गया था कि उसका ब्याह हो चुका है, इसलिए उससे कोई विवाह-संबंधी चर्चा नहीं की। उसके शील-स्वभाव ने सारे घर को मुग्ध कर लिया था। कोदई की माता को तो उसने ऐसे मीठे शब्दों में और उसके मातृपद की रक्षा करते हुए, ऐसा उपदेश दिया कि उसने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया था। 'तुम बड़ी हो माताजी, पूज्य हो। पुत्र माता के रिन से सौ जनम लेकर भी उरिन नहीं हो सकता, लाख जनम लेकर भी उरिन नहीं हो सकता। करोड़ जनम लेकर भी नहीं....'

बुढ़िया इस संख्यातीत श्रद्धा पर गद्‌गद हो गई। इसके बाद गोबर ने जो कुछ कहा, उसमें बुढ़िया को अपना मंगल ही दिखाई दिया। वैद्य एक बार रोगी को चंगा कर दे, फिर रोगी उसके हाथों विष भी खुशी से पी लेगा—अब जैसे आज ही बहू घर से रूठ कर चली गई, तो किसकी हेठी हुई। बहू को कौन जानता है? किसकी लड़की है, किसकी नातिन है, कौन जानता है। संभव है, उसका बाप घसियारा ही रहा हो...।

बुढ़िया ने निश्चयात्मक भाव से कहा—घसियारा तो है ही बेटा, पक्का घसियारा। सबेरे उसका मुंह देख लो, तो दिन-भर पानी न मिले।

गोबर बोला—तो ऐसे आदमी की क्या हंसी हो सकती है। हंसी हुई तुम्हारी और तुम्हारे आदमी की। जिसने पूछा, यही पूछा कि किसकी बहू है? फिर यह अभी लड़की है, अबोध, अल्हड़। नीच माता-पिता की लड़की है, अच्छी कहां से बन जाय। तुमको तो बूढ़े तोते को राम-नाम पढ़ाना पड़ेगा। मारने से तो वह पढ़ेगा नहीं, उसे तो सहज स्नेह ही से पढ़ाया जा सकता है। ताड़ना भी दो, लेकिन उसके मुंह मत लगो। उसका तो कुछ नहीं बिगड़ता, तुम्हारा अपमान होता है।

जब गोबर चलने लगा, तो बुढ़िया ने खांड़ और सत्तू मिलाकर उसे खाने को दिया। गांव के और कई आदमी मजूरी की टोह में शहर जा रहे थे। बातचीत में रास्ता कट गया और नौ बजते-बजते सब लोग अमीनाबाद के बाजार में आ पहुंचे। गोबर हैरान था, इतने आदमी नगर में कहां से आ गए? आदमी पर आदमी गिरा पड़ता था।

उस दिन बाजार में चार-पांच सौ मजदूरों से कम न थे। राज और बढ़ई और लोहार और बेलदार और खाट बुनने वाले और टोकरी ढोने वाले और संगतराश सभी जमा थे। गोबर यह जमघट देखकर निराश हो गया। इतने सारे मजदूरों को कहां काम मिला जाता है। और उसके हाथ तो कोई औजार भी नहीं है। कोई क्या जानेगा कि वह क्या काम कर सकता है। कोई उसे क्यों रखने लगा? बिना औजार के उसे कौन पूछेगा?

धीरे-धीरे एक-एक करके मजदूरों को काम मिलता जा रहा था। कुछ लोग निराश होकर घर लौटे जा रहे थे। अधिकतर वह बूढ़े और निकम्मे बच रहे थे, जिनका कोई पुछत्तर न था। और उन्हीं में गोबर भी था। लेकिन अभी आज उसके पास खाने को है। कोई गम नहीं।

सहसा मिर्जा खुर्शेद ने मजदूरों के बीच में आकर ऊंची आवाज से कहा—जिसको छ: आने रोज पर काम करना हो, वह मेरे साथ आए। सबको छ: आने मिलेंगे। पांच बजे छुट्टी मिलेगी।

दस-पांच राजों और बढ़इयों को छोड़कर सब-के-सब उनके साथ चलने को तैयार हो गए। चार सौ फटेहालों की एक विशाल सेना सज गई। आगे मिर्जा थे, कंधे पर मोटा सोटा रखे

हुए। पीछे भुखमरों की लंबी कतार थी, जैसे भेड़ें हों।

एक बूढ़े ने मिर्जा से पूछा—कौन काम करना है मालिक?

मिर्जा ने जो काम बतलाया, उस पर सब और भी चकित हो गए? केवल एक कबड्डी खेलना! यह कैसा आदमी है, जो कबड्डी खेलने के छः आना रोज दे रहा है। सनकी तो नहीं है कोई! बहुत धन पाकर आदमी सनक ही जाता है। बहुत पढ़-लेने से भी आदमी पागल हो जाते हैं। कुछ लोगों को संदेह होने लगा, कहीं यह कोई मखौल तो नहीं है! यहां से घर पर ले जाकर कह दे, कोई काम नहीं है, तो कौन इसका क्या कर लेगा! वह चाहे कबड्डी खेलाए, चाहे आंखमिचौनी, चाहे गुल्ली-डंडा, मजूरी पेशगी दे दे। ऐसे झक्कड़ आदमी का क्या भरोसा!

गोबर ने डरते-डरते कहा—मालिक, हमारे पास कुछ खाने को नहीं है। पैसे मिल जायं तो कुछ लेकर खा लूं।

मिर्जा ने झट छः आने पैसे उसके हाथ में रख दिए और ललकारकर बोले—मजूरी सबको चलते-चलते पेशगी दे दी जायगी। इसकी चिंता मत करो।

मिर्जा साहब ने शहर के बाहर थोड़ी-सी जमीन ले रखी थी। मजूरों ने जाकर देखा, तो एक बड़ा अहाता घिरा हुआ था और उसके अंदर केवल एक छोटी-सी फूस की झोंपड़ी थी, जिसमें तीन-चार कुर्सियां थीं, एक मेज। थोड़ी-सी किताबें मेज पर रखी हुई थीं। झोंपड़ी बेलों और लताओं से ढकी हुई बहुत सुंदर लगती थी। अहाते में एक तरफ आम और नींबू और अमरूद के पौधे लगे हुए थे, दूसरी तरफ कुछ फूल। बड़ा हिस्सा परती था। मिर्जा ने सबको कतार में खड़ा करके पहले ही मजूरी बांट दी। अब किसी को उनके पागलपन में संदेह न रहा।

गोबर पैसे पहले ही पा चुका था, मिर्जा ने उसे बुलाकर पौधे सींचने का काम सौंपा। उसे कबड्डी खेलने को न मिलेगी। मन में ऐंठकर रह गया। इन बुड्ढों को उठा-उठाकर पटकता, लेकिन कोई परवाह नहीं। बहुत कबड्डी खेल चुका है। पैसे तो पूरे मिल गए।

आज युगों के बाद इन जरा-ग्रस्तों को कबड्डी खेलने का सौभाग्य मिला। अधिकतर तो ऐसे थे, जिन्हें याद भी न आता था कि कभी कबड्डी खेली है या नहीं। दिनभर शहर में पिसते थे। पहर रात गए घर पहुंचते थे और जो कुछ रूखा मिल जाता था, खाकर पड़े रहते थे। प्रातःकाल फिर वही चरखा शुरू हो जाता था। जीवन नीरस, निरानंद, केवल एक ढर्रा मात्र हो गया था। आज तो एक यह अवसर मिला, तो बूढ़े भी जवान हो गए। अधमरे बूढ़े, ठठरियां लिए, मुंह में दांत न पेट में आंत, जांघ के ऊपर धोतियां या तहमद चढ़ाए ताल ठोंक-ठोंककर उछल रहे थे, मानो उन बूढ़ी हड्डियों में जवानी धंस पड़ी हो। चटपट पाली बन गई, दो नायक बन गए। गोइयों का चुनाव होने लगा और बारह बजते-बजते खेल शुरू हो गया। जाड़ों की ठंडी धूप ऐसी क्रीड़ाओं के लिए आदर्श ऋतु है।

इधर अहाते के फाटक पर मिर्जा साहब तमाशाइयों को टिकट बांट रहे थे। उन पर इस तरह कोई-न-कोई सनक हमेशा सवार रहती थी। अमीरों से पैसा लेकर गरीबों को बांट देना। इस बूढ़ी कबड्डी का विज्ञापन कई दिन से हो रहा था। बड़े-बड़े पोस्टर चिपकाए गए थे, नोटिस बांटे गए थे। यह खेल अपने ढंग का निराला होगा, बिल्कुल अभूतपूर्व। भारत के बूढ़े आज भी कैसे पोढ़े हैं, जिन्हें यह देखना हो, आएं और अपनी आंखें तृप्त कर लें। जिसने यह तमाशा

न देखा, वह पछताएगा। ऐसा सुअवसर फिर न मिलेगा। टिकट दस रुपये से लेकर दो आने तक के थे। तीन बजते-बजते सारा अहाता भर गया। मोटरों और फिटनों का तांता लगा हुआ था। दो हजार से कम की भीड़ न थी। रईसों के लिए कुर्सियों और बेंचों का इंतजाम था। साधारण जनता के लिए साफ-सुथरी जमीन।

मिस मालती, मेहता, खन्ना, तंखा और रायसाहब सभी विराजमान थे।

खेल शुरू हुआ तो मिर्जा ने मेहता से कहा—आइए डाक्टर साहब, एक गोईं हमारी और आपकी हो जाय।

मिस मालती बोलीं--फिलासफर का जोड़ फिलासफर ही से हो सकता है।

मिर्जा ने मूंछों पर ताव देकर कहा—तो क्या आप समझती हैं, मैं फिलासफर नहीं हूं? मेरे पास पुछल्ला नहीं है, लेकिन हूं मैं फिलासफर, आप मेरा इम्तहान ले सकते हैं मेहताजी।

मालती ने पूछा—अच्छा बतलाइए, आप आइडियलिस्ट हैं या मेटीरियलिस्ट?

'मैं दोनों हूं।'

'यह क्योंकर?'

'बहुत अच्छी तरह। जब जैसा मौका देखा, वैसा बन गया।'

'तो आपका अपना कोई निश्चय नहीं है।'

'जिस बात का आज तक कभी निश्चय न हुआ, और न कभी होगा, उसका निश्चय मैं भला क्या कर सकता हूं, और लोग आंखें फोड़कर और किताबें चाटकर जिस नतीजे पर पहुंचे हैं, वहां मैं यों ही पहुंच गया। आप बता सकती हैं, किसी फिलासफर ने अक्लीगद्दे लड़ाने के सिवाय और कुछ किया है?'

डाक्टर मेहता ने अचकन के बटन खोलते हुए कहा—तो चलिए, हमारी और आपकी हो ही जाय। और कोई माने या न माने, मैं आपको फिलासफर मानता हूं।

मिर्जा ने खन्ना से पूछा--आपके लिए भी कोई जोड़ ठीक करूं?

मालती ने पुचारा दिया—हां, हां, इन्हें जरूर ले जाइए मिस्टर तंखा के साथ।

खन्ना झेंपते हुए बोले—जी नहीं, मुझे क्षमा कीजिए।

मिर्जा ने रायसाहब से पूछा—आपके लिए कोई जोड़ लाऊं?

रायसाहब बोले—मेरा जोड़ तो ओंकारनाथ का है, मगर वह आज नजर ही नहीं आते।

मिर्जा और मेहता भी नगी देह, केवल जांघिए पहने हुए मैदान में पहुच गये। एक इधर दूसरा उधर। खेल शुरू हो गया।

जनता बूढ़े कुलेलों पर हंसती थी, तालियां बजाती थी, गालियां देती थी, ललकारती थी, बाजियां लगाती थी। वाह! जरा इन बूढ़े बाबा को देखो! किस शान से जा रहे हैं, जैसे सबको मारकर ही लौटेंगे। अच्छा, दूसरी तरफ से भी उन्हीं के बड़े भाई निकले। दोनों कैसे पैंतरे बदल रहे हैं! इन हड्डियों में अभी बहुत जान है भाई। इन लोगों ने जितना घी खाया है, उतना अब हमे पानी भी मयस्सर नहीं। लोग कहते हैं, भारत धनी हो रहा है। होता होगा। हम तो यही देखते हैं कि इन बुड्ढों-जैसे जीवट के जवान भी आज मुश्किल से निकलेंगे। वह उध र वाले बुड्ढे ने इसे दबोच लिया। बेचारा छूट निकलने के लिए कितना जोर मार रहा है, मगर अब नहीं जा सकते बच्चा। एक को तीन लिपट गए। इस तरह लोग अपनी दिलचस्पी जाहिर

कर रहे थे, उनका सारा ध्यान मैदान की ओर था। खिलाड़ियों के आघात-प्रतिघात, उछल-कूद, धर-पकड़ और उनके मरने-जीने में तन्मय हो रहे थे। कभी चारों तरफ से कहकहे पड़ते, कभी कोई अन्याय या धांधली देखकर लोग 'छोड़ दो, छोड़ दो' का गुल मचाते। कुछ लोग तैश में आकर पाली की तरफ दौड़ते, लेकिन जो थोड़े-से सज्जन शामियाने में ऊंचे दरजे के टिकट लेकर बैठे थे, उन्हें इस खेल में विशेष आनंद न मिल रहा था। वे इससे अधिक महत्त्व की बातें कर रहे थे।

खन्ना ने जिंजर का ग्लास खाली करके सिगार सुलगाया और रायसाहब से बोले—मैंने आपसे कह दिया, बैंक इससे कम सूद पर किसी तरह राजी न होगा और यह रिआयत भी मैंने आपके साथ की है, क्योंकि आपके साथ घर का मुआमला है।

रायसाहब ने मूंछों में मुस्कराहट को लपेटकर कहा—आपकी नीति में घर वालों को ही उलटे छुरे से हलाल करना चाहिए?

'यह आप क्या फरमा रहे हैं?'

'ठीक कह रहा हूं। सूर्यप्रतापसिंह से आपने केवल सात फीसदी लिया है, मुझसे नौ फीसदी मांग रहे हैं और उस पर एहसान भी रखते हैं, क्यों न हो।'

खन्ना ने कहकहा मारा, मानो यह कथन हंसने के ही योग्य था।

'उन शर्तों पर मैं आपसे भी वही सूद ले लूंगा। हमने उनकी जायदाद रेहन रख ली है और शायद यह जायदाद फिर उनके हाथ न जायगी।'

'मैं भी अपनी कोई जायदाद निकाल दूंगा। नौ परसेंट देने से यह कहीं अच्छा है कि फालतू जायदाद अलग कर दूं। मेरी जैकसन रोड वाली कोठी आप निकलवा दें। कमीशन ले लीजिएगा।'

'उस कोठी का सुभीते से निकलना जरा मुश्किल है। आप जानते हैं, वह जगह बस्ती से कितनी दूर है, मगर खैर, देखूंगा। आप उसकी कीमत का क्या अंदाजा करते हैं?'

रायसाहब ने एक लाख पच्चीस हजार बताए। पंद्रह बीघे जमीन भी तो है उसके साथ। खन्ना स्तंभित हो गए। बोले—आप आज से पंद्रह साल पहले का स्वप्न देख रहे हैं रायसाहब! आपको मालूम होना चाहिए कि इधर जायदादों के मूल्य में पचास परसेंट की कमी हो गई है।

रायसाहब ने बुरा मानकर कहा—जी नहीं, पद्रंह साल पहले उसकी कीमत डेढ़ लाख थी।

'मैं खरीददार की तलाश में रहूंगा, मगर मेरा कमीशन पांच प्रतिशत होगा आपसे।'

'औरों से शायद दस प्रतिशत हो क्यों, क्या करोगे इतने रुपये लेकर?'

'आप जो चाहें दे दीजिएगा। अब तो राजी हुए। शुगर के हिस्से अभी तक आपने न खरीदे? अब बहुत थोड़े-से हिस्से बच रहे हैं। हाथ मलते रह जाइएगा। इंश्योरेंस की पॉलिसी भी आपने न ली। आपमें टाल-मटोल की बुरी आदत है। जब अपने लाभ की बातों का इतना टाल-मटोल है, तब दूसरों को आप लोगों से क्या लाभ हो सकता है। इसी से कहते हैं, रियासत आदमी की अक्ल चर जाती है। मेरा बस चले तो मैं ताल्लुकेदारों की रियासतें जब्त कर लूं।'

मिस्टर तंखा मालती पर जाल डाल रहे थे। मालती ने साफ कह दिया था कि वह एलेक्शन के झमेले में नहीं पड़ना चाहती, पर तंखा आसानी से हार मानने वाले व्यक्ति न थे। आकर कुहनियों के बल मेज पर टिककर बोले—आप जरा उस मुआमले पर फिर विचार करें। मैं कहता

हूं, ऐसा मौका शायद आपको फिर न मिले। रानी साहब चंदा को आपके मुकाबले में रुपये में एक आना (रुपये का सोलहवां भाग) भी चांस नहीं है। मेरी इच्छा केवल यह है कि कौंसिल में ऐसे लोग जायं, जिन्होंने जीवन में कुछ अनुभव प्राप्त किया और जनता की कुछ सेवा की है। जिस महिला ने भोग-विलास के सिवा कुछ जाना ही नहीं, जिसने जनता को हमेशा अपनी कार का पेट्रोल समझा, जिसकी सबसे मूल्यवान सेवा वे पार्टियां हैं, जो वह गर्वनरों और सेक्रेटरियों को दिया करती हैं, उनके लिए इस कौंसिल में स्थान नहीं है। नई कौंसिल में बहुत कुछ अधिकार प्रतिनिधियों के हाथ में होगा और मैं नहीं चाहता कि वह अधिकार अनाधिकारियों के हाथ में जाय।

मालती ने पीछा छुड़ाने के लिए कहा– लेकिन साहब, मेरे पास दस-बीस हजार एलेक्शन पर खर्च करने के लिए कहां हैं? रानी साहब तो दो-चार लाख खर्च कर सकती हैं। मुझे भी साल में हजार-पांच सौ रुपये उनसे मिल जाते हैं, यह रकम भी हाथ से निकल जायगी।

'पहले आप यह बता दें कि आप जाना चाहती हैं या नहीं?'

'जाना तो चाहती हूं, मगर फ्री पास मिल जाय।'

'तो यह मेरा जिम्मा रहा। आपको फ्री पास मिल जायगा।'

'जी नहीं, क्षमा कीजिए। मैं हार की जिल्लत नहीं उठाना चाहती। जब रानी साहब रुपये की थैलियां खोल देंगी और एक-एक वोट पर अशर्फी चढ़ने लगेगी, तो शायद आप भी उधर वोट देंगे।'

'आपके खयाल मे एलेक्शन महज रुपये से जीता जा सकता है?'

'जी नहीं, व्यक्ति भी एक चीज है। लेकिन मैंने केवल एक बार जेल जाने के सिवा और क्या जन-सेवा की है? और सच पूछिए तो उस बार भी मैं अपने मतलब ही से गई थी, उसी तरह जैसे रायसाहब और खन्ना गए थे। इस नई सभ्यता का आधार धन है। विद्या और सेवा और कुल जाति सब धन के सामने हेच हैं। कभी-कभी इतिहास में ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब धन को आंदोलन के सामने नीचा देखना पड़ता है, मगर इसे अपवाद समझिए। मैं अपनी ही बात कहती हूं। कोई गरीब औरत दवाखाने में आ जाती है, तो घंटों उससे बोलती तक नहीं। पर कोई महिला कार पर आ गई, तो द्वार तक जाकर उसका स्वागत करती हूं और उसकी ऐसी उपासना करती हूं, मानों साक्षात् देवी हैं। मेरा और रानी साहब का कोई मुकाबला नहीं। जिस तरह के कौंसिल बन रहे हैं, उनके लिए रानी साहब ही ज्यादा उपयुक्त हैं।

उधर मैदान में मेहता की टीम कमजोर पड़ती जाती थी। आधे से ज्यादा खिलाड़ी मर चुके थे। मेहता ने अपने जीवन में कभी कबड्डी न खेली थी। मिर्जा इस फन के उस्ताद थे। मेहता की तातीलें अभिनय के अभ्यास में कटती थीं। रूप भरने में वह अच्छे-अच्छों को चकित कर देते थे। और मिर्जा के लिए सारी दिलचस्पी अखाड़े में थी, पहलवानों के भी और परियों के भी।

मालती का ध्यान उधर भी लगा हुआ था। उठकर रायसाहब से बोली– मेहता की पार्टी तो बुरी तरह पिट रही है।

रायसाहब और खन्ना में इंश्योरेंस की बातें हो रही थीं। रायसाहब उस प्रसंग से ऊबे हुए मालूम होते थे। मालती ने मानो उन्हें एक बंधन से मुक्त कर दिया। उठकर बोले– जी हां, पिट

तो रही है। मिर्जा पक्का खिलाड़ी है।

'मेहता को यह क्या सनक सूझी। व्यर्थ अपनी भद्द करा रहे हैं।'

'इसमें काहे की भद्द? दिल्लगी ही तो है।'

'मेहता की तरफ से जो बाहर निकलता है, वही मर जाता है।'

एक क्षण के बाद उसने पूछा—क्या इस खेल में हाफटाइम नहीं होता?

खन्ना को शरारत सूझी। बोले—आप चले थे मिर्जा से मुकाबला करने। समझते थे, यह भी फिलॉसफी है।

'मैं पूछती हूं, इस खेल में हाफटाइम नहीं होता?'

खन्ना ने फिर चिढ़ाया—अब खेल ही खतम हुआ जाता है। मजा आएगा तब, जब मिर्जा मेहता को दबोचकर रगड़ेंगे और मेहता साहब 'चीं' बोलेंगे।

'मैं तुमसे नहीं पूछती। रायसाहब से पूछती हूं।'

रायसाहब बोले—इस खेल में हाफटाइम! एक ही एक आदमी तो सामने आता है।

'अच्छा, मेहता का एक आदमी और मर गया।'

खन्ना बोले—आप देखती रहिए। इसी तरह सब मर जायंगे और आखिर में मेहता साहब भी मरेंगे।

मालती जल गई—आपकी तो हिम्मत न पड़ी बाहर निकलने की।

'मैं गंवारों के खेल नहीं खेलता। मेरे लिए टेनिस है।'

'टेनिस में भी मैं तुम्हें सैकड़ों गेम दे चुकी हूं।'

'आपसे जीतने का दावा ही कब है?'

'अगर दावा हो, तो मैं तैयार हूं।'

मालती उन्हें फटकार बताकर फिर अपनी जगह पर आ बैठी। किसी को मेहता से हमदर्दी नहीं है। कोई यह नहीं कहता कि अब खेल खत्म कर दिया जाय। मेहता भी अजीब बुद्धू आदमी हैं, कुछ धांधली क्यों नहीं कर बैठते। यहां भी अपनी न्यायप्रियता दिखा रहे हैं। अभी हारकर लौटेंगे तो चारों तरफ से तालियां पड़ेंगी। अब शायद बीस आदमी उनकी तरफ और होंगे और लोग कितने खुश हो रहे हैं।

ज्यों-ज्यों अंत समीप आता जाता था, लोग अधीर होते जाते थे और पाली की तरफ बढ़ते जाते थे। रस्सी का जो एक कठघरा-सा बनाया गया था, वह तोड़ दिया गया। स्वयं-सेवक रोकने की चेष्टा कर रहे थे, पर उस उत्सुकता के उन्माद में उनकी एक न चलती थी। यहां तक कि ज्वार अंतिम बिंदु तक आ पहुंचा और मेहता अकेले बच गए और अब उन्हें गूंगे का पार्ट खेलना पड़ेगा। अब सारा दारमदार उन्हीं पर है, अगर वह बचकर अपनी पाली में लौट आते हैं, तो उनका पक्ष बचता है। नहीं, हार का सारा अपमान और लज्जा लिए हुए उन्हें लौटना पड़ता है, वह दूसरे पक्ष के जितने आदमियों को छूकर अपनी पाली में आयंगे, वह सब मर जायंगे और उतने ही आदमी उनकी तरफ जी उठेंगे। सबकी आंखें मेहता की ओर लगी हुई थीं। वह मेहता चले। जनता ने चारों ओर से आकर पाली को घेर लिया। तन्मयता अपनी पराकाष्ठा पर थी। मेहता कितने शांत भाव से शत्रुओं की ओर जा रहे हैं। उनकी प्रत्येक गति जनता पर प्रतिबिंबित हो जाती है, किसी की गर्दन टेढ़ी हुई जाती है, कोई आगे को झुक पड़ता है। वातावरण गर्म हो गया। पारा ज्वाला-बिंदु पर आ पहुंचा है। मेहता शत्रु-दल में घुसे। दल पीछे हटता जाता है। उनका

संगठन इतना दृढ़ है कि मेहता की पकड़ या स्पर्श में कोई नहीं आ रहा है। बहुतों को आशा थी कि मेहता कम-से-कम अपने पक्ष के दस-पांच आदमियों को तो जिला ही लेंगे, वे निराश होते जा रहे हैं।

सहसा मिर्जा एक छलांग मारते हैं और मेहता की कमर पकड़ लेते हैं। मेहता अपने को छुड़ाने के लिए जोर मार रहे हैं। मिर्जा को पाली की तरफ खींचे लिए आ रहे हैं। लोग उन्मत्त हो जाते हैं। अब इसका पता चलना मुश्किल है कि कौन खिलाड़ी है, कौन तमाशाई। सब एक में गडमड हो गए हैं। मिर्जा और मेहता में मल्लयुद्ध हो रहा है। मिर्जा के कई बुड्ढे मेहता की तरफ लपके और उनसे लिपट गए। मेहता जमीन पर चुपचाप पड़े हुए हैं, अगर वह किसी तरह खींच-खांचकर दो हाथ और ले जायं, तो उनके पचासों आदमी जी उठते हैं, मगर एक वह इंच भी नहीं खिसक सकते। मिर्जा उनकी गर्दन पर बैठे हुए हैं। मेहता का मुख लाल हो रहा है। आंखें वीरबहूटी बनी हुई हैं। पसीना टपक रहा है, और मिर्जा अपने स्थूल शरीर का भार लिए उनकी पीठ पर हुमच रहे हैं।

मालती ने समीप जाकर उत्तेजित स्वर में कहा—मिर्जा खुर्शेद, यह फेयर नहीं है। बाजी ड्रान रही।

खुर्शेद ने मेहता की गर्दन पर एक घस्सा लगाकर कहा—जब तक यह 'चीं' न बोलेंगे, मैं हरगिज न छोड़ूंगा। क्यों नहीं 'चीं' बोलते?

मालती और आगे बढ़ी—'चीं' बुलाने के लिए आप इतनी जबरदस्ती नहीं कर सकते।

मिर्जा ने मेहता की पीठ पर हुमचकर कहा—बेशक कर सकता हूं। आप इनसे कह दें, 'चीं' बोलें, मैं अभी उठा जाता हूं।

मेहता ने एक बार फिर उठने की चेष्टा की, पर मिर्जा ने उनकी गर्दन दबा दी।

मालती ने उनका हाथ पकड़कर घसीटने की कोशिश करके कहा—यह खेल नहीं, अदावत है।

'अदावत ही सही।'

'आप न छोड़ेंगे?'

उसी वक्त जैसे कोई भूकंप आ गया। मिर्जा साहब जमीन पर पड़े हुए थे और मेहता दौड़े हुए पाली की ओर भागे जा रहे थे और हजारों आदमी पागलों की तरह टोपियां और पगड़ियां और छड़ियां उछाल रहे थे। कैसे यह कायापलट हुई, कोई समझ न सका।

मिर्जा ने मेहता को गोद में उठा लिया और लिए हुए शामियाने तक आए। प्रत्येक मुख पर यह शब्द थे—डाक्टर साहब ने बाजी मार ली। और प्रत्येक आदमी इस हारी हुई बाजी के एकबारगी पलट जाने पर विस्मित था। सभी मेहता के जीवट और दम और धैर्य का बखान कर रहे थे।

मजदूरों के लिए पहले से नारंगियां मंगा ली गई थीं। उन्हें एक-एक नारंगी देकर विदा किया गया। शामियाने में मेहमानों के चाय-पानी का आयोजन था। मेहता और मिर्जा एक ही मेज पर आमने-सामने बैठे। मालती मेहता के बगल में बैठी।

मेहता ने कहा—मुझे आज एक नया अनुभव हुआ। महिला की सहानुभूति हार को जीत बना सकती है।

मिर्जा ने मालती की ओर देखा—अच्छा ! यह बात थी। जभी तो मुझे हैरत हो रही थी

कि आप एकाएक कैसे ऊपर आ गए।

मालती शर्म से लाल हुई जाती थी। बोली—आप बड़े बेमुरौवत आदमी हैं मिर्जाजी। मुझे आज मालूम हुआ।

'कुसूर इनका था। यह क्यों 'चीं' नहीं बोलते थे?'

'मैं तो 'चीं' न बोलता, चाहे आप मेरी जान ही ले लेते।'

कुछ देर मित्रों में गपशप होती रही। फिर धन्यवाद के और मुबारकवाद के भाषण हुए और मेहमान लोग विदा हुए। मालती को भी एक विजिट करनी थी। वह भी चली गई। केवल मेहता और मिर्जा रह गए। उन्हें अभी स्नान करना था। मिट्टी में सने हुए थे। कपड़े कैसे पहनते? गोबर पानी खींच लाया और दोनों दोस्त नहाने लगे।

मिर्जा ने पूछा—शादी कब तक होगी?

मेहता ने अचंभे में आकर पूछा—किसकी?

'आपकी।'

'मेरी शादी। किसके साथ हो रही है?'

'वाह! आप तो ऐसा उड़ रहे हैं, गोया यह भी छिपाने की बात है।'

'नहीं-नहीं, मैं सच कहता हूं, मुझे बिल्कुल खबर नहीं है। क्या मेरी शादी होने जा रही है?'

'और आप क्या समझते हैं, मिस मालती आपकी कंपेनियन बनकर रहेंगी?'

मेहता गंभीर भाव से बोले—आपका खयाल बिल्कुल गलत है मिर्जाजी। मिस मालती हसीन हैं, खुशमिजाज हैं, समझदार हैं, रोशनखयाल हैं और भी उनमें कितनी खूबियां हैं, लेकिन मैं अपनी जीवन-संगिनी में जो बात देखना चाहता हूं, वह उनमें नहीं है और न शायद हो सकती है। मेरे जेहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेजबानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है पर आत्मा स्त्री की होती है। आप कहेंगे, मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता? औरत ही से क्यों इसकी आशा करता है? मर्द में वह सामर्थ्य ही नहीं है। वह अपने को मिटाएगा, तो शून्य हो जायगा। वह किसी खोह में जा बैठेगा और सर्वात्मा में मिल जाने का स्वप्न देखेगा। वह तेज प्रधान जीव है, और अहंकार में यह समझकर कि वह ज्ञान का पुतला है, सीधा ईश्वर में लीन होने की कल्पना किया करता है। स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान् है, शांति-संपन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं, तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं, तो वह कुलटा हो जाती है। पुरुष आकर्षित होता है स्त्री की ओर, जो सर्वांश में स्त्री हो। मालती ने अभी तक मुझे आकर्षित नहीं किया। मैं आपसे किन शब्दों में कहूं कि स्त्री मेरी नजरों में क्या है। संसार में जो कुछ सुंदर है, उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूं, मैं उससे यह आशा रखता हूं कि मैं उसे मार ही डालूं तो भी प्रतिहिंसा का भाव उसमें न आए। अगर मैं उसकी आंखों के सामने किसी स्त्री को प्यार करूं, तो भी उसकी ईर्ष्या न जागे। ऐसी नारी पाकर मैं उसके चरणों में गिर पड़ूंगा और उस पर अपने को अर्पण कर दूंगा।

मिर्जा ने सिर हिलाकर कहा—ऐसी औरत आपको इस दुनिया में तो शायद ही मिले।

मेहता ने हाथ मारकर कहा—एक नहीं हजारों, वरना दुनिया वीरान हो जाती।

'ऐसी एक ही मिसाल दीजिए।'

'मिसेज खन्ना को ही ले लीजिए।'

'लेकिन खन्ना!'

'खन्ना अभागे हैं, जो हीरा पाकर कांच का टुकड़ा समझ रहे हैं। सोचिए, कितना त्याग है और उसके साथ ही कितना प्रेम है। खन्ना के रूपासक्त मन में शायद उसके लिए रत्ती-भर भी स्थान नहीं है, लेकिन आज खन्ना पर कोई आफत आ जाय, तो वह अपने को उन पर न्योछावर कर देगी। खन्ना आज अंधे या कोढ़ी हो जायं, तो भी उसकी वफादारी में फर्क न आएगा। अभी खन्ना उसकी कद्र नहीं कर रहे हैं, मगर आप देखेंगे, एक दिन यही खन्ना उसके चरण धो-धोकर पिएंगे। मैं ऐसी बीवी नहीं चाहता, जिससे मैं आइंस्टीन के सिद्धांत पर बहस कर सकूं, या जो मेरी रचनाओं के प्रूफ देखा करे। मैं ऐसी औरत चाहता हूं, जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्ज्वल बना दे, अपने प्रेम और त्याग से।'

खुर्शेद ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए जैसे कोई भूली हुई बात याद करके कहा–आपका खयाल बहुत ठीक है मिस्टर मेहता। ऐसी औरत अगर कहीं मिल जाय, तो मैं भी शादी कर लूं, लेकिन मुझे उम्मीद नहीं है कि मिले।

मेहता ने हंसकर कहा–आप भी तलाश में रहिए, मैं भी तलाश में हूं। शायद कभी तकदीर जागे।

'मगर मिस मालती आपको छोड़ने वाली नहीं। कहिए लिख दूं।'

'ऐसी औरतों से मैं केवल मनोरंजन कर सकता हूं, ब्याह नहीं। ब्याह तो आत्मसमर्पण है।'

'अगर ब्याह आत्मसमर्पण है तो प्रेम क्या है?'

'प्रेम जब आत्मसमर्पण का रूप लेता है, तभी ब्याह है, उसके पहले ऐयाशी है।'

मेहता ने कपड़े पहने और विदा हो गए। शाम हो गई थी। मिर्जा ने जाकर देखा, तो गोबर अभी तक पेड़ों को सींच रहा था। मिर्जा ने प्रसन्न होकर कहा–जाओ, अब तुम्हारी छुट्टी है। कल फिर आओगे?

गोबर ने कातर भाव से कहा–मैं कहीं नौकरी करना चाहता हूं मालिक।

'नौकरी करना है, तो हम तुझे रख लेंगे।'

'कितना मिलेगा हुजूर?'

'जितना तू मांगे।'

'मैं क्या मांगूं। आप जो चाहे दे दें।'

'हम तुम्हें पंद्रह रुपये देंगे और खूब कसकर काम लेंगे।'

गोबर मेहनत से नहीं डरता। उसे रुपये मिलें, तो वह आठों पहर काम करने को तैयार है। पंद्रह रुपये मिलें, तो क्या पूछना। वह तो प्राण भी दे देगा।

बोला–मेरे लिए कोठरी मिल जाय, वहीं पड़ा रहूंगा।

'हां-हां, जगह का इंतजाम मैं कर दूंगा। इसी झोपड़ी में एक किनारे तुम भी पड़े रहना।'

गोबर को जैसे स्वर्ग मिल गया।

चौदह

होरी की फसल सारी की सारी डांड़ की भेंट हो चुकी थी। वैशाख तो किसी तरह कटा, मगर जेठ लगते-लगते घर में अनाज का एक दाना न रहा। पांच-पांच पेट खाने वाले और घर में अनाज नदारद। दोनों जून न मिले, एक जून तो मिलना ही चाहिए। भर-पेट न मिले, आधा पेट तो मिले। निराहार कोई के दिन रह सकता है ! उधार ले तो किससे? गांव के छोटे-बड़े महाजनों से तो मुंह चुराना पड़ता था। मजूरी भी करे, तो किसकी? जेठ में अपना ही काम ढेरों था। ऊख की सिंचाई लगी हुई थी, लेकिन खाली पेट मेहनत भी कैसे हो !

सांझ हो गई थी। छोटा बच्चा रो रहा था। मां को भोजन न मिले, तो दूध कहां से निकले? सोना परिस्थिति समझती थी, मगर रूपा क्या समझे। बार-बार रोटी-रोटी चिल्ला रही थी। दिन-भर तो कच्ची अमिया से जी बहला, मगर अब तो कोई ठोस चीज चाहिए। होरी दुलारी सहुआइन से अनाज उधार मांगने गया था, पर वह दूकान बंद करके पैंठ चली गई थी। मंगरू साह ने केवल इंकार ही न किया, लताड़ भी दी–उधार मांगने चले हैं, तीन साल से धेला सूद नहीं दिया, उस पर उधार दिए जाओ। अब आकबत में देंगे। खोटी नीयत हो जाती है, तो यही हाल होता है। भगवान् से भी यह अनीति नहीं देखी जाती है। कारकुन की डांट पड़ी, तो कैसे चुपके से रुपये उगल दिए। मेरे रुपये, रुपये ही नहीं हैं और मेहरिया है कि उसका मिजाज ही नहीं मिलता।

वहां से रुआंसा होकर उदास बैठा था कि पुन्नी आग लेने आई। रसोई के द्वार पर जाकर देखा तो अंधेरा पड़ा हुआ था। बोली–आज रोटी नहीं बना रही हो क्या भाभीजी? अब तो बेला हो गई।

जब से गोबर भागा था, पुन्नी और धनिया में बोलचाल हो गई थी। होरी का एहसान भी मानने लगी थी। हीरा को अब वह गालियां देती थी–हत्यारा, गऊ-हत्या करके भागा। मुंह में कालिख लगी है, घर कैसे आए? और आए भी तो घर के अंदर पांव न रखने दूं। गऊ-हत्या करते इसे लाज भी न आई। बहुत अच्छा होता, पुलिस बांधकर ले जाती और चक्की पिसवाती ।

धनिया कोई बहाना न कर सकी। बोली–रोटी कहां से बने, घर में दाना तो है ही नहीं। तेरे महतो ने बिरादरी का पेट भर दिया, बाल-बच्चे मरें या जिएं। अब बिरादरी झांकती तक नहीं।

पुनिया की फसल अच्छी हुई थी, और वह स्वीकार करती थी कि यह होरी का पुरुषार्थ है। हीरा के साथ कभी इतनी बरक्कत न हुई थी।

बोली–अनाज मेरे घर से क्यों नहीं मंगवा लिया? वह भी तो महतो ही की कमाई है, कि किसी और की? सुख के दिन आएं, तो लड़ लेना, दु:ख तो साथ रोने ही से कटता है। मैं क्या ऐसी अंधी हूं कि आदमी का दिल नहीं पहचानती। महतो ने न संभाला होता, तो आज मुझे कहां सरन मिलती?

वह उल्टे पांव लौटी और सोना को भी साथ लेती गई। एक क्षण में दो डल्ले अनाज से भरे लाकर आंगन में रख दिए। दो मन से कम जौ न था। धनिया अभी कुछ कहने न पाई थी कि वह फिर चल दी और एक क्षण में एक बड़ी-सी टोकरी अरहर की दाल से भरी हुई लाकर

रख दी और बोली—चलो, मैं आग जलाए देती हूं।

धनिया ने देखा तो जौ के ऊपर एक छोटी-सी डलिया में चार-पांच सेर आटा भी था। आज जीवन में पहली बार वह परास्त हुई। आंखों में प्रेम और कृतज्ञता के मोती भरकर बोली—सब-का-सब उठा लाई कि घर में कुछ छोड़ा? कहीं भागा जाता था?

आंगन में बच्चा खटोले पर पड़ा रो रहा था। पुनिया उसे गोद में लेकर दुलारती हुई बोली—तुम्हारी दया से अभी बहुत है भाभीजी! पंद्रह मन तो जौ हुआ है और दस मन गेहूं। पांच मन मटर हुआ, तुमसे क्या छिपाना है। दोनों घरों का काम चल जायगा। दो-तीन महीने में फिर मकई हो जायगी। आगे भगवान् मालिक है।

झुनिया ने आकर आंचल से छोटी सास के चरण छुए। पुनिया ने असीस दिया। सोना आग जलाने चली, रूपा ने पानी के लिए कलसा उठाया। रुकी हुई गाड़ी चल निकली। जल में अवरोध के कारण जो चक्कर था, फेन था, शोर था, गति की तीव्रता थी, वह अवरोध के हट जाने से शांत मधुर-ध्वनि के साथ सम, धीमी, एक-रस धार में बहने लगा।

पुनिया बोली—महतो को डांड़ देने की ऐसी जल्दी क्या पड़ी थी?

धनिया ने कहा—बिरादरी में सुरखरू कैसे होते?

'भाभी, बुरा न मानो तो, एक बात कहूं?'

'कह, बुरा क्यों मानूंगी?'

'न कहूंगी, कहीं तुम बिगड़ने न लगो?'

'कहती हूं, कुछ न बोलूंगी, कह तो।'

'तुम्हें झुनिया को घर में रखना न चाहिए था!'

'तब क्या करती? वह डूब मरती थी।'

'मेरे घर में रख देती। तब तो कोई कुछ न कहता।'

'यह तो तू आज कहती है। उस दिन भेज देती, तो झाड़ू लेकर दौड़ती!'

'इतने खरच में तो गोबर का ब्याह हो जाता।'

'होनहार को कौन टाल सकता है पगली! अभी इतने ही से गला नहीं छूटा, भोला अब अपनी गाय के दाम मांग रहा है। तब तो गाय दी थी कि मेरी सगाई कहीं ठीक कर दो। अब कहता है, मुझे सगाई नहीं करनी, मेरे रुपये दे दो। उसके दोनों बेटे लाठी लिए फिरते हैं। हमारे कौन बैठा है, जो उससे लड़े। इस सत्यानासी गाय ने आकर घर चौपट कर दिया।'

कुछ और बातें करके पुनिया आग लेकर चली गई। होरी सब कुछ देख रहा था। भीतर आकर बोला—पुनिया दिल की साफ है।

'हीरा भी तो दिल का साफ था?'

धनिया ने अनाज तो रख लिया था, पर मन में लज्जित और अपमानित हो रही थी। यह दिनों का फेर है कि आज उसे यह नीचा देखना पड़ा।

'तू किसी का औसान नहीं मानती, यही तुझमें बुराई है।'

'औसान क्यों मानूं? मेरा आदमी उसकी गिरस्ती के पीछे जान नहीं दे रहा है? फिर मैंने दान थोड़े ही लिया है। उसका एक-एक दाना भर दूंगी।'

मगर पुनिया अपनी जिठानी के मनोभाव समझकर भी होरी का एहसान चुकाती जाती थी। जब अनाज चुक जाता, मन-दो-मन दे जाती, मगर जब चौमासा आ गया और वर्षा

न हुई तो समस्या अत्यंत जटिल हो गई। सावन का महीना आ गया था और बगूले उठ रहे थे। कुओं का पानी भी सूख गया था और ऊख ताप से जली जा रही थी। नदी से थोड़ा-थोड़ा पानी मिलता था, मगर उसके पीछे आए दिन लाठियां निकलती थीं। यहां तक कि नदी ने भी जवाब दे दिया। जगह-जगह चोरियां होने लगीं, डाके पड़ने लगे। सारे प्रांत में हाहाकार मच गया। बारे कुशल हुई कि भादों में वर्षा हो गई और किसानों के प्राण हरे हुए। कितना उछाह था उस दिन! प्यासी पृथ्वी जैसे अघाती ही न थी और प्यासे किसान ऐसे उछल रहे थे, मानो पानी नहीं, अशर्फियां बरस रही हों। बटोर लो, जितना बटोरते बने। खेतों में जहां बगूले उठते थे, वहां हल चलने लगे। बालवृंद निकल-निकलकर तालाबों और पोखरों और गड़हियों का मुआयना कर रहे थे। ओहो! तालाब तो आधा भर गया, और वहां से गड़हिया की तरफ दौड़े।

मगर अब कितना ही पानी बरसे, ऊख तो विदा हो गई। एक-एक हाथ ही होके रह जायगी, मक्का और जुआर और कोदों से लगान थोड़े ही चुकेगा, महाजन का पेट थोड़े ही भरा जायगा। हां, गौओं के लिए चारा हो गया और आदमी जी गया।

जब माघ बीत गया और भोला के रुपये न मिले, तो एक दिन वह झल्लाया हुआ होरी के घर आ धमका और बोला—यही है तुम्हारा कौल? इसी मुंह से तुमने ऊख पेरकर मेरे रुपये देने का वादा किया था? अब तो ऊख पेर चुके। लाओ रुपये मेरे हाथ में।

होरी जब अपनी विपत्ति सुनाकर और सब तरह से चिरौरी करके हार गया और भोला द्वार से न हटा, तो उसने झुंझलाकर कहा—तो महतो, इस बखत तो मेरे पास रुपये नहीं हैं और न मुझे कहीं उधार ही मिल सकता है। मैं कहां से लाऊं? दाने-दाने की तंगी हो रही है। बिस्वास न हो, घर में आकर देख लो। जो कुछ मिले, उठा ले जाओ।

भोला ने निर्मम भाव से कहा—मैं तुम्हारे घर में क्यों तलासी लेने जाऊं और न मुझे इससे मतलब है कि तुम्हारे पास रुपये हैं या नहीं। तुमने ऊख पेरकर रुपये देने को कहा था। ऊख पेर चुके। अब रुपये मेरे हवाले करो।

'तो फिर जो कहो, वह करूं?'

'मैं क्या कहूं?'

'मैं तुम्हीं पर छोड़ता हूं।'

'मैं तुम्हारे दोनों बैल खोल ले जाऊंगा।'

होरी ने उसकी ओर विस्मय-भरी आंखों से देखा, मानो अपने कानों पर विश्वास न आया हो। फिर हतबुद्धि-सा सिर झुकाकर रह गया। भोला क्या उसे भिखारी बनाकर छोड़ देना चाहते हैं? दोनों बैल चले गए, तब तो उसके दोनों हाथ ही कट जायंगे।

दीन स्वर में बोला—दोनों बैल ले लोगे, तो मेरा सर्वनास हो जायगा। अगर तुम्हारा धरम यही कहता है, तो खोल ले जाओ।

'तुम्हारे बनने-बिगड़ने की मुझे परवा नहीं है। मुझे अपने रुपये चाहिए।'

'और जो मैं कह दूं, मैंने रुपये दे दिए?'

भोला सन्नाटे में आ गया। उसे अपने कानों पर विश्वास न आया। होरी इतनी बड़ी बेइमानी कर सकता है, यह संभव नहीं।

उग्र होकर बोला—अगर तुम हाथ में गंगाजली लेकर कह दो कि मैंने रुपये दे दिए, तो

सबर कर लूंगा।

'कहने का मन तो चाहता है, मरता क्या न करता, लेकिन कहूंगा नहीं।'

'तुम कह ही नहीं सकते।'

'हां भैया, मैं नहीं कह सकता। हंसी कर रहा था।'

एक क्षण तक वह दुविधा में पड़ा रहा। फिर बोला–तुम मुझसे इतना बैर क्यों पाल रहे हो भोला भाई। झुनिया मेरे घर में आ गई, तो मुझे कौन-सा सरग मिल गया? लड़का अलग हाथ से गया, दो सौ रुपया डांड़ अलग भरना पड़ा। मैं तो कहीं का न रहा और अब तुम भी मेरी जड़ खोद रहे हो। भगवान् जानते हैं, मुझे बिल्कुल न मालूम था कि लौंडा क्या कर रहा है। मैं तो समझता था, गाना सुनने जाता होगा। मुझे तो उस दिन पता चला, जब आधी रात को झुनिया घर में आ गई। उस बखत मैं घर में न रखता, तो सोचो, कहां जाती? किसकी होकर रहती?

झुनिया बरौठे के द्वार पर छिपी खड़ी यह बातें सुन रही थी। बाप को अब वह बाप नहीं शत्रु समझती थी। डरी, कहीं होरी बैलों को दे न दें। जाकर रूपा से बोली–अम्मां को जल्दी से बुला ला। कहना, बड़ा काम है, बिलम न करो।

धनिया खेत में गोबर फेंकने गई थी, बहू का संदेश सुना, तो आकर बोली–काहे बुलाया है बहू, मैं तो घबड़ा गई।

'काका को तुमने देखा है न?'

'हां देखा, कसाई की तरह द्वार पर बैठा हुआ है। मैं तो बोली भी नहीं।'

'हमारे दोनों बैल मांग रहे हैं, दादा से।'

धनिया के पेट की आंतें भीतर सिमट गईं।

'दोनों बैल मांग रहे हैं?'

'हां, कहते हैं या तो हमारे रुपये दो, या हम दोनों बैल खोल ले जायंगे।'

'तेरे दादा ने क्या कहा?'

'उन्होंने कहा, तुम्हारा धरम कहता हो, तो खोल ले जाओ।'

'तो खोल ले जाय, लेकिन इसी द्वार पर आकर भीख न मांगे, तो मेरे नाम पर थूक देना। हमारे लहू से उसकी छाती जुड़ाती हो, तो जुड़ा ले।'

वह इसी तैश में बाहर आकर होरी से बोली–महतो दोनों बैल मांग रहे हैं, तो दे क्यों नहीं देते? उनका पेट भरे, हमारे भगवान् मालिक हैं। हमारे हाथ तो नहीं काट लेंगे? अब तक अपनी मजूरी करते थे, अब दूसरों की मजूरी करेंगे। भगवान् की मरजी होगी, तो फिर बैल-बधिये हो जायंगे, और मजूरी ही करते रहे, तो कौन बुराई है। बूड़े-सूखे और पोत-लगान का बोझ न रहेगा। मैं न जानती थी, यह हमारे बैरी हैं, नहीं गाय लेकर अपने सिर पर विपत्ति क्यों लेती। उस निगोड़ी का पौरा जिस दिन से आया, घर तहस-नहस हो गया।

भोला ने अब तक जिस शस्त्र को छिपा रखा था, अब उसे निकालने का अवसर आ गया। उसे विश्वास हो गया, बैलों के सिवा इन सबों के पास कोई अवलंब नहीं है। बैलों को बचाने के लिए ये लोग सब कुछ करने को तैयार हो जायंगे। अच्छे निशानेबाज की तरह मन को साधकर बोला–अगर तुम चाहते हो कि हमारी बेइज्जती हो और तुम चैन से बैठो, तो यह न होगा। तुम अपने सौ-दो-सौ को रोते हो। यहां लाख रुपये की आबरू बिगड़ गई। तुम्हारी कुसल

इसी में है कि जैसे झुनिया को घर में रखा था, वैसे ही घर से निकाल दो, फिर न हम बैल मांगेंगे, न गाय का दाम मांगेंगे। उसने हमारी नाक कटवाई है, तो मैं भी उसे ठोकरें खाते देखना चाहता हूं। वह यहां रानी बनी बैठी रहे, और हम मुंह में कालिख लगाए उसके नाम को रोते रहें, यह मैं नहीं देख सकता। वह मेरी बेटी है, मैंने उसे गोद में खिलाया है, और भगवान् साखी है, मैंने उसे कभी बेटों से कम नहीं समझा, लेकिन आज उसे भीख मांगते और घूर पर दाने चुनते देखकर मेरी छाती सीतल हो जायगी। जब बाप होकर मैंने अपना हिरदा इतना कठोर बना लिया है, तब सोचो, मेरे दिल पर कितनी बड़ी चोट लगी होगी। इस मुंहजली ने सात पुस्त का नाम डुबा दिया। और तुम उसे घर में रखे हुए हो, यह मेरी छाती पर मूंग दलना नहीं तो और क्या है।

धनिया ने जैसे पत्थर की लकीर खींचते हुए कहा—तो महतो, मेरी भी सुन लो। जो बात तुम चाहते हो, वह न होगी। सौ जनम न होगी। झुनिया हमारी जान के साथ है। तुम बैल ही तो ले जाने को कहते हो, ले जाओ, अगर इससे तुम्हारी कटी हुई नाक जुड़ती हो, तो जोड़ लो, पुरखों की आबरू बचती हो, तो बचा लो। झुनिया से बुराई जरूर हुई। जिस दिन उसने मेरे घर में पांव रखा, मैं झाड़ू लेकर मारने को उठी थी, लेकिन जब उसकी आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे, तो मुझे उस पर दया आ गई। तुम अब बूढ़े हो गए महतो! पर आज भी तुम्हें सगाई की धुन सवार है। फिर वह तो अभी बच्चा है।

भोला ने अपील-भरी आंखों से होरी को देखा—सुनते हो होरी इसकी बातें! अब मेरा दोस नहीं। मैं बिना बैल लिए न जाऊंगा।

होरी ने दृढ़ता से कहा—ले जाओ।

'फिर रोना मत कि मेरे बैल खोल ले गए।'

'नहीं रोऊंगा।'

भोला बैलों की पगहिया खोल ही रहा था कि झुनिया चकतियोंदार साड़ी पहने, बच्चे को गोद में लिए, बाहर निकल आई और कंपित स्वर में बोली—काका, लो मैं इस घर से निकल जाती हूं और जैसी तुम्हारी मनोकामना है, उसी तरह भीख मांगकर अपना और अपने बच्चे का पेट पालूंगी, और जब भीख भी न मिलेगी, तो कहीं डूब मरूंगी।

भोला खिसियाकर बोला—दूर हो मेरे सामने से। भगवान् न करे, मुझे फिर तेरा मुंह देखना पड़े। कुलच्छिनी, कुल-कलंकनी कहीं की! अब तेरे लिए डूब मरना ही उचित है।

झुनिया ने उसकी ओर ताका भी नहीं। उसमें वह क्रोध था, जो अपने को खा जाना चाहता है, जिसमें हिंसा नहीं, आत्मसमर्पण है। धरती इस वक्त मुंह खोलकर उसे निगल लेती, तो वह कितना धन्य मानती। उसने आगे कदम उठाया।

लेकिन वह दो कदम भी न गई थी कि धनिया ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और हिंसा भरे स्नेह से बोली -तू कहां जाती है बहू, चल घर में। यह तेरा घर है, हमारे जीते भी और हमारे मरने के पीछे भी। डूब मरे वह, जिसे अपनी संतान से बैर हो। इस भले आदमी को मुंह से ऐसी बात कहते लाज नहीं आती। मुझ पर धौंस जमाता है नीच! ले जा, बैलों का रकत पी....

झुनिया रोती हुई बोली—अम्मां, जब अपना बाप हो के मुझे धिक्कार रहा है, तो मुझे डूब ही मरने दो। मुझ अभागिनी के कारन तो तुम्हें दु:ख ही मिला। जब से आई, तुम्हारा घर मिट्टी

में मिल गया। तुमने इतने दिन मुझे जिस परेम से रखा, मां भी न रखती। भगवान् मुझे फिर जनम दें, तो तुम्हारी कोख से दें, यही मेरी अभिलाखा है।

धनिया उसको अपनी ओर खींचती हुई बोली–यह तेरा बाप नहीं है, तेरा बैरी है, हत्यारा। मां होती, तो अलबत्ते उसे कलंक होता। ला सगाई। मेहरिया जूतों से न पीटे, तो कहना।

झुनिया सास के पीछे-पीछे घर में चली गई। उधर भोला ने जाकर दोनों बैलों को खूंटों से खोला और हांकता हुआ घर चला, जैसे किसी नेवते में जाकर पूरियों के बदले जूते पड़े हों–अब करो खेती और बजाओ बंसी। मेरा अपमान करना चाहते हैं सब, न जाने कब का बैर निकाल रहे हैं। नहीं, ऐसी लड़की को कौन भला आदमी अपने घर में रखेगा? सब-के-सब बेसरम हो गए हैं। लौंडे का कहीं ब्याह न होता था इसी से। और इस रांड झुनिया की ढिठाई देखो कि आकर मेरे सामने खड़ी हो गई। दूसरी लड़की होती, तो मुंह न दिखाती। आंखों का पानी मर गया है। सबके सब दुष्ट और मूरख भी हैं। समझते हैं झुनिया अब हमारी हो गई। यह नहीं समझते, जो अपने बाप के घर न रही, वह किसी के घर नहीं रहेगी। समय खराब है, नहीं बीच बाजार में इस चुड़ैल धनिया के झोंटे पकड़कर घसीटता। मुझे कितनी गालियां देती थी।

फिर उसने दोनों बैलों को देखा, कितने तैयार हैं। अच्छी जोड़ी है। जहां चाहूं, सौ रुपये में बेच सकता हूं। मेरे अस्सी रुपये खरे हो जायंगे।

अभी वह गाव के बाहर भी न निकला था कि पीछे से दातादीन, पटेश्वरी, शोभा और दस-बीस आदमी और दौड़े आते दिखाई दिए। भोला का लहू सर्द हो गया। अब फौजदारी हुई, बैल भी छिन जायंगे, मार भी पड़ेगी। वह रुक गया कमर कसकर। मरना ही है तो लड़कर मरेगा।

दातादीन ने समीप आकर कहा–यह तुमने क्या अनर्थ किया भोला, ऐं! उसके बैल खोल लाए, वह कुछ बोला नहीं, इसी से सेर हो गए। सब लोग अपने-अपने काम में लगे थे, किसी को खबर भी न हुई। होरी ने जरा-सा इशारा कर दिया होता, तो तुम्हारा एक-एक बाल नुच जाता। भला चाहते हो, तो ले चलो बैल, जरा भी भलमंसी नहीं है तुममें।

पटेश्वरी बोले–यह उसके सीधेपन का फल है। तुम्हारे रुपये उस पर आते हैं, तो जाकर दीवानी में दावा करो, डिगरी कराओ। बैल खोल लाने का तुम्हें क्या अख्तियार है? अभी फौजदारी में दावा कर दे तो बंधे-बंधे फिरो।

भोला ने दबकर कहा- तो लाला साहब, हम कुछ जबरदस्ती थोड़े ही खोल लाए। होरी ने खुद दिए।

पटेश्वरी ने भोला से कहा–तुम बैलों को लौटा दो भोला! किसान अपने बैल खुशी से देगा, कि इन्हें हल में जोतेगा।

भोला बैलों के सामने खड़ा हो गया–हमारे रुपये दिलवा दो, हमें बैलों को लेकर क्या करना है?

'हम बैल लिए जाते हैं, अपने रुपये के लिए दावा करो और नहीं तो मारकर गिरा दिए जाओगे। रुपये दिए थे नगद तुमने? एक कुलच्छिनी गाय बेचारे के सिर मढ़ दी और अब उसके बैल खोले लिए जाते हो।'

भोला बैलों के सामने से न हटा। खड़ा रहा गुमसुम, दृढ़, मानो मरकर ही हटेगा। पटवारी से दलील करके वह कैसे पेश पाता?

दातादीन ने एक कदम आगे बढ़ाकर अपनी झुकी कमर को सीधा करके ललकारा—तुम सब खड़े ताकते क्या हो, मार के भगा दो इसको। हमारे गांव से बैल खोल ले जायगा।

बंशी बलिष्ठ युवक था। उसने भोला को जोर से धक्का दिया। भोला संभल न सका, गिर पड़ा। उठना चाहता था कि बंशी ने फिर एक घूंसा दिया।

होरी दौड़ता हुआ आ रहा था। भोला ने उसकी ओर दस कदम बढ़कर पूछा—ईमान से कहना होरी महतो, मैंने बैल जबरदस्ती खोल लिए?

दातादीन ने इसका भावार्थ किया—यह कहते हैं कि होरी ने अपने खुशी से बैल मुझे दे दिए। हमीं को उल्लू बनाते हैं।

होरी ने सकुचाते हुए कहा—यह मुझसे कहने लगे या तो झुनिया को घर से निकाल दो, या मेरे रुपये दो, नहीं तो मैं बैल खोल ले जाऊंगा। मैंने कहा, मैं बहू को तो न निकालूंगा, न मेरे पास रुपये हैं, अगर तुम्हारा धरम कहे, तो बैल खोल लो। बस, मैंने इनके धरम पर छोड़ दिया और इन्होंने बैल खोल लिए।

पटेश्वरी ने मुंह लटकाकर कहा—जब तुमने धरम पर छोड़ दिया, तब काहे की जबरदस्ती। उसके धरम ने कहा, लिए जाता है। जाओ भैया, बैल तुम्हारे हैं।

दातादीन ने समर्थन किया—हां, जब धरम की बात आ गई, तो कोई क्या कहे। सब-के-सब होरी को तिरस्कार की आंखों से देखते परास्त होकर लौट पड़े और विजयी भोला शान से गर्दन उठाए बैलों को ले चला।

पंद्रह

मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हंसी ही हंसी नहीं है, केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है। और जिए भी तो वह कोई सुखी जीवन न होगा। वह हंसती है, इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका चहकना और चमकना, इसलिए नहीं है कि वह चहकने को ही जीवन समझती है, या उसने निजत्व को अपनी आंखों में इतना बढ़ा लिया है कि जो कुछ करे, अपने ही लिए करे। नहीं, वह इसलिए चहकती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्त्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है। उसके बाप उन विचित्र जीवों में थे, जो केवल जबान की मदद से लाखों के वारे-न्यारे करते थे। बड़े-बड़े जमींदारों और रईसों की जायदादें बिकवाना, उन्हें कर्ज दिलाना या उनके मुआमलों का अफसरों से मिलकर तय करा देना, यही उनका व्यवसाय था। दूसरे शब्दों में दलाल थे। इस वर्ग के लोग बड़े प्रतिभावान होते हैं। जिस काम से कुछ मिलने की आशा हो, वह उठा लेंगे, और किसी न किसी तरह उसे निभा भी देंगे। किसी राजा की शादी किसी राजकुमारी से ठीक करवा दी और दस-बीस हजार उसी में मार लिए। यही दलाल जब छोटे-छोटे सौदे करते हैं, तो टाउट कहे जाते हैं, और हम उनसे घृणा करते हैं। बड़े-बड़े काम करके वही

टाउट राजाओं के साथ शिकार खेलता है और गर्वनरों की मेज पर चाय पीता है। मिस्टर कौल उन्हीं भाग्यवानों में से थे। उनके तीन लड़कियां ही लड़कियां थीं। उनका विचार था कि तीनों को इंग्लैंड भेजकर शिक्षा के शिखर पर पहुंचा दें। अन्य बहुत से बड़े आदमियों की तरह उनका भी खयाल था कि इंग्लैंड में शिक्षा पाकर आदमी कुछ और हो जाता है। शायद वहां की जलवायु में बुद्धि को तेज कर देने की कोई शक्ति है, मगर उनकी यह कामना एक-तिहाई से ज्यादा पूरी न हुई। मालती इंग्लैंड में ही थी कि उन पर फालिज गिरा और बेकाम कर गया। अब बड़ी मुश्किल से दो आदमियों के सहारे उठते-बैठते थे। जबान तो बिल्कुल बंद ही हो गई। और जब जबान ही बंद हो गई, तो आमदनी भी बंद हो गई। जो कुछ थी, जबान ही की कमाई थी। कुछ बचाकर रखने की उनकी आदत न थी। अनियमित आय थी, और अनियमित खर्च था, इसलिए इधर कई साल से बहुत तंगहाल हो रहे थे। सारा दायित्व मालती पर आ पड़ा। मालती के चार-पांच सौ रुपये में वह भोग-विलास और ठाठ-बाट तो क्या निभता। हां, इतना था कि दोनों लड़कियों की शिक्षा होती जाती थी और भलेमानसों की तरह जिंदगी बसर होती थी। मालती सुबह से पहर रात तक दौड़ती रहती थी। चाहती थी कि पिता सात्विकता के साथ रहें, लेकिन पिताजी को शराब-कबाब का ऐसा चस्का पड़ा था कि किसी तरह गला न छोड़ता था। कहीं से कुछ न मिलता, तो एक महाजन से अपने बंगले पर प्रोनोट लिखकर हजार दो हजार ले लेते थे। महाजन उनका पुराना मित्र था, जिसने उनकी बदौलत लेन-देन में लाखों कमाए थे, और मुरौवत के मारे कुछ बोलता न था, उसके पचीस हजार चढ़ चुके थे, और जब चाहता, कुर्की करा सकता था, मगर मित्रता की लाज निभाता जाता था। आत्मसेवियों में जो निर्लज्जता आ जाती है, वह कौल में भी थी। तकाजे हुआ करें, उन्हें परवा न थी। मालती उनके अपव्यय पर झुंझलाती रहती थी, लेकिन उसकी माता जो साक्षात् देवी थीं और इस युग में भी पति की सेवा को नारी-जीवन का मुख्य हेतु समझती थीं, उसे समझाती रहती थीं, इसलिए गृह-युद्ध न होने पाता था।

संध्या हो गई थी। हवा में अभी तक गर्मी थी। आकाश में धुंध छाया हुआ था। मालती और उसकी दोनों बहनें बंगले के सामने घास पर बैठी हुई थीं। पानी न पाने के कारण वहां की दूब जल गई थी और भीतर की मिट्टी निकल आई थी।

मालती ने पूछा—माली क्या बिल्कुल पानी नहीं देता?

मंझली बहन सरोज ने कहा—पड़ा-पड़ा सोया करता है सूअर। जब कहो, तो बीस बहाने निकालने लगता है।

सरोज बी॰ ए॰ में पढ़ती थी, दुबली-सी, लंबी, पीली, रूखी, कटु। उसे किसी की कोई बात पसंद न आती थी। हमेशा ऐब निकालती रहती थी। डाक्टरों की सलाह थी कि वह कोई परिश्रम न करे और पहाड़ पर रहे, लेकिन घर की स्थिति ऐसी न थी कि उसे पहाड़ पर भेजा जा सकता।

सबसे छोटी वरदा को सरोज से इसलिए द्वेष था कि सारा घर सरोज को हाथों हाथ लिए रहता था, वह चाहती थी जिस बीमारी में इतना स्वाद है, वह उसे ही क्यों नहीं हो जाती। गोरी-सी, गर्वशील, स्वस्थ, चंचल आंखों वाली बालिका थी, जिसके मुख पर प्रतिभा की झलक थी। सरोज के सिवा उसे सारे संसार से सहानुभूति थी। सरोज के कथन का विरोध करना उसका स्वभाव था। बोली—दिन-भर दादाजी बाजार भेजते रहते हैं, फुरसत ही कहां पाता है। मरने

की छुट्टी तो मिलती नहीं, पड़ा-पड़ा सोएगा।

सरोज ने डांटा—दादाजी उसे कब बाजार भेजते हैं री, झूठी कहीं की।

'रोज भेजते हैं, रोज। अभी तो आज ही भेजा था। कहो तो बुलाकर पुछवा दूं?'

'पुछवाएगी, बुलाऊं?'

मालती डरी। दोनों गुथ जायंगी, तो बैठना मुश्किल कर देंगी। बात बदलकर बोली—अच्छा खैर, होगा। आज डाक्टर मेहता का तुम्हारे यहां भाषण हुआ था, सरोज?

सरोज ने नाक सिकोड़कर कहा—हां, हुआ तो था, लेकिन किसी ने पसंद नहीं किया। आप फरमाने लगे—संसार में स्त्रियों का क्षेत्र पुरुषों से बिल्कुल अलग है। स्त्रियों का पुरुषों के क्षेत्र में आना इस युग का कलंक है। सब लड़कियों ने तालियां और सीटियां बजानी शुरू कीं। बेचारे लज्जित होकर बैठ गए। कुछ अजीब-से आदमी मालूम होते हैं। आपने यहां तक कह डाला कि प्रेम केवल कवियों की कल्पना है। वास्तविक जीवन में इसका कहीं निशान नहीं। लेडी हुक्कू ने उनका खूब मजाक उड़ाया।

मालती ने कटाक्ष किया—लेडी हुक्कू ने? इस विषय में वह भी कुछ बोलने का साहस रखती हैं। तुम्हें डाक्टर साहब का भाषण आदि से अंत तक सुनना चाहिए था। उन्होंने दिल में लड़कियों को क्या समझा होगा?

'पूरा भाषण सुनने का सब्र किसे था? वह तो जैसे घाव पर नमक छिड़कते थे।'

'फिर उन्हें बुलाया ही क्यों? आखिर उन्हें औरतों से कोई बैर तो है नहीं। जिस बात को हम सत्य समझते हैं, उसी का तो प्रचार करते हैं। औरतों को खुश करने के लिए वह उनकी-सी कहने वालों में नहीं हैं और फिर अभी यह कौन जानता है कि स्त्रियां जिस रास्ते पर चलना चाहती हैं, वही सत्य है। बहुत संभव है, आगे चलकर हमें अपनी धारणा बदलनी पड़े।'

उसने फ्रांस, जर्मनी और इटली की महिलाओं के जीवन आदर्श बतलाए और कहा—शीघ्र ही वीमेन्स लीग की ओर से मेहता का भाषण होने वाला है।

सरोज को कौतूहल हुआ।

'मगर आप भी तो कहती हैं कि स्त्रियों और पुरुषों के अधिकार समान होने चाहिए।'

'अब भी कहती हूं, लेकिन दूसरे पक्ष वाले क्या कहते हैं, यह भी तो सुनना चाहिए। संभव है, हमीं गलती पर हों।'

यह लीग इस नगर की नई संस्था है और मालती के उद्योग से खुली है। नगर की सभी शिक्षित महिलाएं उसमें शरीक हैं। मेहता के पहले भाषण ने महिलाओं में बड़ी हलचल मचा दी थी और लीग ने निश्चय किया था, कि उनका खूब दंदाशिकन जवाब दिया जाय। मालती ही पर यह भार डाला गया था। मालती कई दिन तक अपने पक्ष के समर्थन में युक्तियां और प्रमाण खोजती रही। और भी कई देवियां अपने भाषण लिख रही थीं। उस दिन जब मेहता शाम को लीग के हाल में पहुंचे, तो जान पड़ता था, हाल फट जायगा। उन्हें गर्व हुआ। उनका भाषण सुनने के लिए इतना उत्साह! और वह उत्साह केवल मुख पर और आंखों में न था। आज सभी देवियां सोने और रेशम से लदी हुई थीं, मानो किसी बारात में आई हों। मेहता को परास्त करने के लिए पूरी शक्ति से काम लिया गया था और यह कौन कह सकता है कि जगमगाहट शक्ति

का अंग नहीं है। मालती ने तो आज के लिए नए फैशन की साड़ी निकाली थी, नए काट के जंपर बनवाए थे। और रंग-रोगन और फूलों से खूब सजी हुई थी, मानो उसका विवाह हो रहा हो। वीमेंस लीग में इतना समारोह और कभी न हुआ था। डाक्टर मेहता अकेले थे, फिर भी देवियों के दिल कांप रहे थे। सत्य की एक चिंगारी असत्य के एक पहाड़ को भस्म कर सकती है।

सबसे पीछे की सफ में मिर्जा और खन्ना और संपादकजी भी विराज रहे थे। रायसाहब भाषण शुरू होने के बाद आए और पीछे खड़े हो गए।

मिर्जा ने कहा—आ जाइए आप भी, खड़े कब तक रहिएगा?

रायसाहब बोले—नहीं भाई, यहां मेरा दम घुटने लगेगा।

'तो मैं खड़ा होता हूं। आप बैठिए।'

रायसाहब ने उनके कंधे दबाए—तकल्लुफ नहीं, बैठे रहिए। मैं थक जाऊंगा, तो आपको उठा दूंगा और बैठ जाऊंगा, अच्छा मिस मालती सभानेत्री हुई। खन्ना साहब कुछ इनाम दिलवाइए।

खन्ना ने रोनी सूरत बनाकर कहा—अब मिस्टर मेहता पर निगाह है। मैं तो गिर गया।

मिस्टर मेहता का भाषण शुरू हुआ—

'देविया, जब मैं इस तरह आपको संबोधित करता हूं, तो आपको कोई बात खटकती नहीं। आप इस सम्मान को अपना अधिकार समझती हैं, लेकिन आपने किसी महिला को पुरुषों के प्रति 'देवता' का व्यवहार करते सुना है? उसे आप देवता कहें, तो वह समझेगा, आप उसे बना रही हैं। आपके पास दान देने के लिए दया है, श्रद्धा है, त्याग है। पुरुष के पास दान के लिए क्या है? वह देवता नहीं, लेवता है। वह अधिकार के लिए हिंसा करता है, संग्राम करता है, कलह करता है...'

तालियां बजीं। रायसाहब ने कहा—औरतों को खुश करने का इसने कितना अच्छा ढंग निकाला।

'बिजली' संपादक को बुरा लगा—कोई नई बात नहीं। मैं कितनी ही बार यह भाव व्यक्त कर चुका हूं।

मेहता आगे बढ़े—इसलिए जब मैं देखता हूं, हमारी उन्नत विचारों वाली देवियां उस दया और श्रद्धा और त्याग के जीवन से असंतुष्ट होकर संग्राम और कलह और हिंसा के जीवन की ओर दौड़ रही हैं और समझ रही हैं कि यही सुख का स्वर्ग है, तो मैं उन्हें बधाई नहीं दे सकता।

मिसेज खन्ना ने मालती की ओर सगर्व नेत्रों से देखा। मालती ने गर्दन झुका ली।

खुर्शेद बोले—अब कहिए। मेहता दिलेर आदमी है। सच्ची बात कहता है और मुंह पर।

'बिजली' संपादक ने नाक सिकोड़ी—अब वह दिन लद गए, जब देवियां इन चकमों में आ जाती थीं। उनके अधिकार हड़पते जाओ और कहते जाओ, आप तो देवी हैं, लक्ष्मी हैं, माता हैं।

मेहता आगे बढ़े—स्त्री को पुरुष के रूप में, पुरुष के कर्म में रत देखकर मुझे उसी तरह वेदना होती है, जैसे पुरुष को स्त्री के रूप में, स्त्री के कर्म करते देखकर। मुझे विश्वास है, ऐसे पुरुषों को आप अपने विश्वास और प्रेम का पात्र नहीं समझतीं और मैं आपको विश्वास दिलाता

हूं, ऐसी स्त्री भी पुरुष के प्रेम और श्रद्धा का पात्र नहीं बन सकती।

खन्ना के चेहरे पर दिल की खुशी चमक उठी।

रायसाहब ने चुटकी ली—आप बहुत खुश हैं खन्नाजी।

खन्ना बोले—मालती मिलें, तो पूछूं। अब कहिए।

मेहता आगे बढ़े—मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुष के पद से श्रेष्ठ समझता हूं, उसी तरह जैसे प्रेम और त्याग और श्रद्धा को हिंसा और संग्राम और कलह से श्रेष्ठ समझता हूं। अगर हमारी देवियां सृष्टि और पालन के देव-मंदिर से हिंसा और कलह के दानव-क्षेत्र में आना चाहती हैं, तो उससे समाज का कल्याण न होगा। मैं इस विषय में दृढ़ हूं। पुरुष ने अपने अभिमान में अपनी दानवी कीर्ति को अधिक महत्त्व दिया है। वह अपने भाई का स्वत्व छीनकर और उसका रक्त बहाकर समझने लगा, उसने बहुत बड़ी विजय पाई। जिन शिशुओं को देवियों ने अपने रक्त से सिरजा और पाला, उन्हें बम और मशीनगन और सहस्रों टैंकों का शिकार बनाकर वह अपने को विजेता समझता है। और जब हमारी ही माताएं उसके माथे पर केसर का तिलक लगाकर और उसे अपनी असीसों का कवच पहनाकर हिंसा-क्षेत्र में भेजती हैं, तो आश्चर्य है कि पुरुष ने विनाश को ही संसार के कल्याण की वस्तु समझा और उसकी हिंसा-प्रवृत्ति दिन-दिन बढ़ती गई और आज हम देख रहे हैं कि यह दानवता प्रचंड होकर समस्त संसार को रौंदती, प्राणियों को कुचलती, हरी-भरी खेतियों को जलाती और गुलजार बस्तियों को वीरान करती चली जाती है। देवियो, मैं आपसे पूछता हूं, क्या आप इस दानवलीला में सहयोग देकर, इस संग्राम-क्षेत्र में उतरकर संसार का कल्याण करेंगी? मैं आपसे विनती करता हूं, नाश करने वालों को अपना काम करने दीजिए, आप अपने धर्म का पालन किए जाइए।

खन्ना बोले—मालती की तो गर्दन ही नहीं उठती।

रायसाहब ने इन विचारों का समर्थन किया—मेहता कहते तो यथार्थ ही हैं।

'बिजली' संपादक बिगड़े—मगर कोई बात तो नहीं कही। नारी-आंदोलन के विरोधी इन्हीं ऊटपटांग बातों की शरण लिया करते हैं। मैं इसे मानता ही नहीं कि त्याग और प्रेम से संसार ने उन्नति की। संसार ने उन्नति की है पौरुष से, पराक्रम से, बुद्धि-बल से , तेज से।

खुर्शेद ने कहा—अच्छा, सुनने दीजिएगा या अपनी ही गाए जाइएगा?

मेहता का भाषण जारी था—देवियो, मैं उन लोगों में नहीं हूं, जो कहते हैं, स्त्री और पुरुष में समान शक्तियां हैं, समान प्रवृत्तियां हैं, और उनमें कोई विभिन्नता नहीं है। इससे भयंकर असत्य की मैं कल्पना नहीं कर सकता। यह वह असत्य है, जो युग-युगांतरों से संचित अनुभव को उसी तरह ढंक लेना चाहता है, जैसे बादल का एक टुकड़ा सूर्य को ढंक लेता है। मैं आपको सचेत किए देता हूं कि आप इस जाल में न फंसें। स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अंधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म और अध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुंचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है, पर सफल नहीं हो सका। मैं कहता हूं, उसका सारा अध्यात्म और योग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ।

तालियां बजीं। हाल हिल उठा। रायसाहब ने गद्गद होकर कहा—मेहता वही कहते हैं, जो इनके दिल में है।

ओंकारनाथ ने टीका की—लेकिन बातें सभी पुरानी हैं, सड़ी हुई।

'पुरानी बात भी आत्मबल के साथ कही जाती है, तो नई हो जाती है।'

'जो एक हजार रुपये हर महीने फटकारकर विलास में उड़ाता हो, उसमें आत्मबल जैसी वस्तु नहीं रह सकती। यह केवल पुराने विचार की नारियों और पुरुषों को प्रसन्न करने के ढंग हैं।'

खन्ना ने मालती की ओर देखा—यह क्यों फूली जा रही है? इन्हें तो शरमाना चाहिए।

खुर्शेद ने खन्ना को उकसाया—अब तुम भी एक तकरीर कर डालो खन्ना, नहीं मेहता तुम्हें उखाड़ फेंकेगा। आधा मैदान तो उसने अभी मार लिया है।

खन्ना खिसियाकर बोले—मेरी न कहिए। मैंने ऐसी कितनी चिड़िया फंसाकर छोड़ दी हैं।

रायसाहब ने खुर्शेद की तरफ आंख मारकर कहा—आजकल आप महिला-समाज की तरफ आते-जाते हैं। सच कहना, कितना चंदा दिया?

खन्ना पर झेंप छा गई—मैं ऐसे समाजों को चंदे नहीं दिया करता, जो कला का ढोंग रचकर दुराचार फैलाते हैं।

मेहता का भाषण जारी था—

'पुरुष कहता है, जितने दार्शनिक और वैज्ञानिक आविष्कारक हुए हैं, वह सब पुरुष थे। जितने बड़े-बड़े महात्मा हुए हैं, वह सब पुरुष थे। सभी योद्धा, सभी राजनीति के आचार्य, बड़े-बड़े सब कुछ पुरुष थे, लेकिन इन बड़ों-बड़ों के समूहों ने मिलकर किया क्या? महात्माओं और धर्म-प्रवर्तकों ने संसार में रक्त की नदियां बहाने और वैमनस्य की आग भड़काने के सिवा और क्या किया, योद्धाओं ने भाइयों की गर्दनें काटने के सिवा और क्या यादगार छोड़ी, राजनीतिज्ञों की निशानी अब केवल लुप्त साम्राज्यों के खंडहर रह गए हैं, और आविष्कारकों ने मनुष्य को मशीन का गुलाम बना देने के सिवा और क्या समस्या हल कर दी? पुरुषों की इस रची हुई संस्कृति में शांति कहां है? सहयोग कहां है?'

ओंकारनाथ उठकर जाने को हुए—विलासियों के मुंह से बड़ी-बड़ी बातें सुनकर मेरी देह भस्म हो जाती है।

खुर्शेद ने उनका हाथ पकड़कर बैठाया—आप भी संपादकजी निरे पोंगा ही रहे। अजी यह दुनिया है, जिसके जी में जो आता है, बकता है। कुछ लोग सुनते हैं और तालियां बजाते हैं। चलिए, किस्सा खत्म। ऐसे-ऐसे बेशुमार मेहते आयंगे और चले जायंगे और दुनिया अपनी रफ्तार से चलती रहेगी। बिगड़ने की कौन-सी बात है?

'असत्य सुनकर मुझसे सहा नहीं जाता।'

रायसाहब ने उन्हें और चढ़ाया—कुलटा के मुंह से सतियों की-सी बात सुनकर किसका जी न जलेगा।

ओंकारनाथ फिर बैठ गए। मेहता का भाषण जारी था—

'मैं आपसे पूछता हूं, क्या बाज को चिड़ियों का शिकार करते देखकर हंस को यह शोभा देगा कि वह मानसरोवर की आनंदमयी शांति को छोड़कर चिड़ियों का शिकार करने लगे? और

अगर वह शिकारी बन जाय, तो आप उसे बधाई देंगी? हंस के पास उतनी तेज चोंच नहीं है, उतने तेज चंगुल नहीं हैं, उतनी तेज आंखें नहीं हैं, उतने तेज पंख नहीं हैं और उतनी तेज रक्त की प्यास नहीं है। उन अस्त्रों का संचय करने में उसे सदियां लग जायंगी, फिर भी वह बाज बन सकेगा या नहीं, इसमें संदेह है, मगर बाज बने या न बने, वह हंस न रहेगा--वह हंस जो मोती चुगता है।'

खुर्शेद ने टीका की—यह तो शायरों की-सी दलीलें हैं। मादा बाज भी उसी तरह शिकार करती है, जैसे, नर बाज।

ओंकारनाथ प्रसन्न हो गए—उस पर आप फिलॉसफर बनते हैं, इसी तर्क के बल पर।

खन्ना ने दिल का गुबार निकाला—फिलॉसफर नहीं फिलॉसफर की दुम हैं। फिलॉसफर वह है जा....

ओंकारनाथ ने बात पूरी की—जो सत्य से जौ-भर भी न टले।

खन्ना को यह समस्या-पूर्ति नहीं रुची—मैं सत्य-वत्य नहीं जानता। मैं तो फिलॉसफर उसे कहता हूं, जो फिलॉसफर हो सच्चा।

खुर्शेद ने दाद दी—फिलॉसफर की आपने कितनी सच्ची तारीफ की है। वाह, सुभानल्ला। फिलॉसफर वह है, जो फिलॉसफर हो। क्यों न हो।

मेहता आगे चले—मैं नहीं कहता, देवियों को विद्या की जरूरत नहीं है। है और पुरुषों से अधिक। मैं नहीं कहता, देवियों को शक्ति की जरूरत नहीं है। है और पुरुषों से अधिक, लेकिन वह विद्या और वह शक्ति नहीं, जिससे पुरुष ने संसार को हिंसाक्षेत्र बना डाला है। अगर वही विद्या और वही शक्ति आप भी ले लेंगी, तो संसार मरुस्थल हो जायगा। आपकी विद्या और आपका अधिकार हिंसा और विध्वंस में नहीं, सृष्टि और पालन में है। क्या आप समझती हैं, वोटों से मानव-जाति का उद्धार होगा, या दफ्तरों में और अदालतों में जबान और कलम चलाने से? इन नकली, अप्राकृतिक, विनाशकारी अधिकारों के लिए आप वह अधिकार छोड़ देना चाहती हैं, जो आपको प्रकृति ने दिए हैं?

सरोज अब तक बड़ी बहन के अदब से जब्त किए बैठी थी। अब न रहा गया। फुफकार उठी—हमें वोट चाहिए, पुरुषों के बराबर।

और कई युवतियों ने हांक लगाई—वोट। वोट।

ओंकारनाथ ने खड़े होकर ऊंचे स्वर से कहा—नारी-जाति के विरोधियों की पगड़ी नीची हो।

मालती ने मेज पर हाथ पटककर कहा—शांत रहो, जो लोग पक्ष या विपक्ष में कुछ कहना चाहेंगे, उन्हें पूरा अवसर दिया जायगा।

मेहता बोले—वोट नए युग का मायाजाल है, मरीचिका है, कलंक है, धोखा है, उसके चक्कर में पड़कर आप न इधर की होंगी, न उधर की। कौन कहता है कि आपका क्षेत्र संकुचित है और उसमें आपको अभिव्यक्ति का अवकाश नहीं मिलता। हम सभी पहले मनुष्य हैं, पीछे और कुछ। हमारा जीवन हमारा घर है। वहीं हमारी सृष्टि होती है, वहीं हमारा पालन होता है, वहीं जीवन के सारे व्यापार होते हैं। अगर वह क्षेत्र परिमित है, तो अपरिमित कौन-सा क्षेत्र है? क्या वह संघर्ष, जहां संगठित अपहरण है? जिस कारखाने में मनुष्य और उसका भाग्य बनता है, उसे छोड़कर आप उन कारखानों में जाना चाहती हैं, जहां मनुष्य पीसा जाता है, जहां उसका

रक्त निकाला जाता है?

मिर्जा ने टोका—पुरुषों के जुल्म ने ही उनमें बगावत की यह स्पिरिट पैदा की है।

मेहता बोले—बेशक, पुरुषों ने अन्याय किया है, लेकिन उसका यह जवाब नहीं है। अन्याय को मिटाइए, लेकिन अपने को मिटाकर नहीं।

मालती बोली—नारियां इसलिए अधिकार चाहती हैं कि उनका सदुपयोग करें और पुरुषों को उनका दुरुपयोग करने से रोकें।

मेहता ने उत्तर दिया—संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं और वह आपको मिले हुए हैं। उन अधिकारों के सामने वोट कोई चीज नहीं। मुझे खेद है, हमारी बहनें पश्चिम का आदर्श ले रही हैं, जहां नारी ने अपना पद खो दिया है और स्वामिनी से गिरकर विलास की वस्तु बन गई है। पश्चिम की स्त्री स्वछंद होना चाहती हैं, इसीलिए कि वह अधिक से अधिक विलास कर सकें। हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास नहीं रहा। उन्होंने केवल सेवा के अधिकार से सदैव गृहस्थी का संचालन किया है। पश्चिम में जो चीजें अच्छी हैं, वह उनसे लीजिए। संस्कृति में सदैव आदान-प्रदान होता आया है, लेकिन अंधी नकल तो मानसिक दुर्बलता का ही लक्षण है। पश्चिम की स्त्री आज गृह-स्वामिनी नहीं रहना चाहती। भोग की विदग्ध लालसा ने उसे उच्छृंखल बना दिया है। वह अपनी लज्जा और गरिमा को, जो उसकी सबसे बड़ी विभूति थी, चंचलता और आमोद-प्रमोद पर होम कर रही है। जब मैं वहां की शिक्षित बालिकाओं को अपने रूप का, या भरी हुई गोल बांहों या अपनी नग्नता का प्रदर्शन करते देखता हूं, तो मुझे उन पर दया आती है। उनकी लालसाओं ने उन्हें इतना पराभूत कर दिया है कि वे अपनी लज्जा की भी रक्षा नहीं कर सकतीं। नारी की इससे अधिक और क्या अधोगति हो सकती है?

रायसाहब ने तालियां बजाईं। हाल तालियों से गूंज उठा, जैसे पटाखों की लड़ियां छूट रही हों।

मिर्जा साहब ने संपादकजी से कहा—इसका जवाब तो आपके पास भी न होगा?

संपादकजी ने विरक्त मन से कहा—सारे व्याख्यान में इन्होंने यही एक बात सत्य कही है।

'तब तो आप भी मेहता के मुरीद हुए।'

'जी नहीं, अपने लोग किसी के मुरीद नहीं होते। मैं इसका जवाब ढूंढ निकालूंगा, 'बिजली' में देखिएगा।'

'इसके माने यह हैं कि आप हक की तलाश नहीं करते, सिर्फ अपने पक्ष के लिए लड़ना चाहते हैं।'

रायसाहब ने आड़े हाथों लिया—इसी पर आपको अपने सत्य-प्रेम का अभिमान है?

संपादकजी अविचल रहे—वकील का काम अपने मुअक्किल का हित देखना है, सत्य या असत्य का निराकरण नहीं।

'तो यों कहिए कि आप औरतों के वकील हैं?'

'मैं उन सभी लोगों का वकील हूं, जो निर्बल हैं, निस्सहाय हैं, पीड़ित हैं।'

'बड़े बेहया हो यार!'

मेहताजी कह रहे थे—और यह पुरुषों का षड्यंत्र है। देवियों को ऊंचे शिखर से खींचकर

अपने बराबर बनाने के लिए, उन पुरुषों का, जो कायर हैं, जिनमें वैवाहिक जीवन का दायित्व संभालने की क्षमता नहीं है, जो स्वच्छंद काम-क्रीड़ा की तरंगों में सांड़ों की भाँति दूसरों की हरी-भरी खेती में मुंह डालकर अपनी कुत्सित लालसाओं को तृप्त करना चाहते हैं। पश्चिम में इनका षड्यंत्र सफल हो गया और देवियां तितलियां बन गईं। मुझे यह कहते हुए शर्म आती है कि इस त्याग और तपस्या की भूमि भारत में भी कुछ वही हवा चलने लगी है। विशेषकर हमारी शिक्षित बहनों पर वह जादू बड़ी तेजी से चढ़ रहा है। वह गृहिणी का आदर्श त्यागकर तितलियों का रंग पकड़ रही हैं।

सरोज उत्तेजित होकर बोली—हम पुरुषों से सलाह नहीं मांगतीं। अगर वह अपने बारे में स्वतंत्र हैं, तो स्त्रियां भी अपने विषय में स्वतंत्र हैं। युवतियां अब विवाह को पेशा नहीं बनाना चाहतीं। वह केवल प्रेम के आधार पर विवाह करेंगी।

जोर से तालियां बजीं, विशेषकर अगली पंक्तियों में, जहां महिलाएं थीं।

मेहता ने जवाब दिया—जिसे तुम प्रेम कहती हो, वह धोखा है, उद्दीप्त लालसा का कविकृत रूप, उसी तरह जैसे संन्यास केवल भीख मांगने का संस्कृत रूप है। वह प्रेम अगर वैवाहिक जीवन में कम है, तो मुक्त विलास में बिल्कुल नहीं है। सच्चा आनंद, सच्ची शांति केवल सेवा-व्रत में है। वही अधिकार का स्रोत है, वही शक्ति का उद्‌गम है। सेवा ही वह सीमेंट है, जो दंपति को जीवनपर्यंत स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है, जिस पर बड़े-बड़े आघातों का भी कोई असर नहीं होता। जहां सेवा का अभाव है, वहीं विवाह-विच्छेद है, परित्याग है, अविश्वास है। और आपके ऊपर, पुरुष-जीवन की नौका का कर्णधार होने के कारण जिम्मेदारी ज्यादा है। आप चाहें तो नौका को आंधी और तूफानों में पार लगा सकती हैं। और आपने असावधानी की, तो नौका डूब जायगी और उसके साथ आप भी डूब जायंगी।

भाषण समाप्त हो गया। विषय विवाद-ग्रस्त था और कई महिलाओं ने जवाब देने की अनुमति मांगी, मगर देर बहुत हो गई थी। इसलिए मालती ने मेहता को धन्यवाद देकर सभा भंग कर दी। हां, यह सूचना दे दी गई कि अगले रविवार को इसी विषय पर कई देवियां अपने विचार प्रकट करेंगी।

रायसाहब ने मेहता को बधाई दी—आपने मेरे मन की बातें कहीं मिस्टर मेहता। मैं आपके एक-एक शब्द से सहमत हूं।

मालती हंसी—आप क्यों न बधाई देंगे, चोर-चोर मौसेरे भाई जो होते हैं, मगर यहां सारा उपदेश गरीब नारियों ही के सिर क्यों थोपा जाता है? उन्हीं के सिर क्यों आदर्श और मर्यादा और त्याग सब कुछ पालन करने का भार पटका जाता है?

मेहता बोले—इसलिए कि वह बात समझती हैं।

खन्ना ने मालती की ओर अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से देखकर मानो उसके मन की बात समझने की चेष्टा करते हुए कहा—डाक्टर साहब के यह विचार मुझे तो कोई सौ साल पिछड़े हुए मालूम होते हैं।

मालती ने कटु होकर पूछा—कौन से विचार?

'यही सेवा और कर्त्तव्य आदि।'

'तो आपको ये विचार सौ साल पिछड़े हुए मालूम होते हैं। तो कृपा करके अपने ताजे

विचार बतलाइए। दंपति कैसे सुखी रह सकते हैं, इसका कोई ताजा नुस्खा आपके पास है?'

खन्ना खिसिया गए। बात कही मालती को खुश करने के लिए, और वह तिनक उठी। बोले—यह नुस्खा तो मेहता साहब को मालूम होगा।

'डाक्टर साहब ने तो बतला दिया और आपके खयाल में वह सौ साल पुराना है, तो नया नुस्खा आपको बतलाना चाहिए। आपको ज्ञात नहीं कि दुनिया में ऐसी बहुत-स्री बातें हैं, जो कभी पुरानी हो ही नहीं सकतीं। समाज में इस तरह की समस्याएं हमेशा उठती रहती हैं और हमेशा उठती रहेंगी।

मिसेज खन्ना बरामदे में चली गई थीं। मेहता ने उनके पास जाकर प्रणाम करते हुए पूछा—मेरे भाषण के विषय में आपकी क्या राय है?

मिसेज खन्ना ने आंखें झुकाकर कहा—अच्छा था, बहुत अच्छा, मगर अभी आप अविवाहित हैं, तभी नारियां देवियां हैं, श्रेष्ठ हैं, कर्णधार हैं। विवाह कर लीजिए तो पूछूंगी, अब नारियां क्या हैं? और विवाह आपको करना पड़ेगा, क्योंकि आप विवाह से मुंह चुराने वाले मर्दों को कायर कह चुके हैं।

मेहता हंसे—उसी के लिए तो जमीन तैयार कर रहा हूं।

'मिस मालती से जोड़ा भी अच्छा है।'

'शर्त यही है कि वह कुछ दिन आपके चरणों में बैठकर आपसे नारी-धर्म सीखें।'

'वही स्वार्थी पुरुषों की बात! आपने पुरुष-कर्त्तव्य सीख लिया है?'

'यही सोच रहा हूं किससे सीखूं।'

'मिस्टर खन्ना आपको बहुत अच्छी तरह सिखा सकते हैं।'

मेहता ने कहकहा मारा—नहीं, मैं पुरुष-कर्त्तव्य भी आप ही से सीखूंगा।

'अच्छी बात है, मुझी से सीखिए। पहली बात यही है कि भूल जाइए कि नारी श्रेष्ठ है और सारी जिम्मेदारी उसी पर है, श्रेष्ठ पुरुष है और उसी पर गृहस्थी का सारा भार है। नारी में सेवा और संयम और कर्त्तव्य सब कुछ वही पैदा कर सकता है, अगर उसमें इन बातों का अभाव है तो नारी में भी अभाव रहेगा। नारियों में आज जो यह विद्रोह है, इसका कारण पुरुष का इन गुणों से शून्य हो जाना है।'

मिर्जा साहब ने आकर मेहता को गोद में उठा लिया और बोले—मुबारक!

मेहता ने प्रश्न की आंखों से देखा—आपको मेरी तकरीर पसंद आई?

'तकरीर तो खैर जैसी थी वैसी थी, मगर कामयाब खूब रही। आपने परी को शीशे में उतार लिया। अपनी तकदीर सराहिए कि जिसने आज तक किसी को मुंह नहीं लगाया, वह आपका कलमा पढ़ रही है।'

मिसेज खन्ना दबी जबान से बोलीं—जब नशा ठहर जाय, तो कहिए।

मेहता ने विरक्त भाव से कहा—मेरे जैसे किताब के कीड़ों को कौन औरत पसंद करेगी देवीजी! मैं तो पक्का आदर्शवादी हूं।

मिसेज खन्ना ने अपने पति को कार की तरफ जाते देखा, तो उधर चली गईं। मिर्जा भी बाहर निकल गए। मेहता ने मंच पर से अपनी छड़ी उठाई और बाहर जाना चाहते थे कि मालती ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया और आग्रह-भरी आंखों से बोली—आप अभी नहीं जा सकते। चलिए, पापा से आपकी मुलाकात कराऊं और आज वहीं खाना खाइए।

मेहता ने कान पर हाथ रखकर कहा—नहीं, मुझे क्षमा कीजिए। वहां सरोज मेरी जान खा जायगी। मैं इन लड़कियों से बहुत घबराता हूं।

'नहीं-नहीं, मैं जिम्मा लेती हूं, जो वह मुंह भी खोले।'

'अच्छा, आप चलिए, मैं थोड़ी देर में आऊंगा।'

'जी नहीं, यह न होगा। मेरी कार सरोज लेकर चल दी। आप मुझे पहुंचाने तो चलेंगे ही।'

दोनों मेहता की कार में बैठे। कार चली।

एक क्षण बाद मेहता ने पूछा—मैंने सुना है, खन्ना साहब अपनी बीबी को मारा करते हैं। तब से मुझे इनकी सूरत से नफरत हो गई। जो आदमी इतना निर्दयी हो, उसे मैं आदमी नहीं समझता। उस पर आप नारी जाति के बड़े हितैषी बनते हैं। तुमने उन्हें कभी समझाया नहीं?

मालती उद्विग्न होकर बोली—ताली हमेशा दो हथेलियों से बजती है, यह आप भूले जाते हैं।

'मैं तो ऐसे किसी कारण की कल्पना ही नहीं कर सकता कि कोई पुरुष अपनी स्त्री को मारे।'

'चाहे स्त्री कितनी ही बदजबान हो?'

'हां, कितनी ही।'

'तो आप एक नए किस्म के आदमी हैं।'

'अगर मर्द बदमिजाज है, तो तुम्हारी राय में उस मर्द पर हंटरों की बौछार करनी चाहिए, क्यों?'

'स्त्री जितनी क्षमाशील हो सकती है, पुरुष नहीं हो सकता। आपने खुद आज यह बात स्वीकार की है।'

'तो औरत की क्षमाशीलता का यही पुरस्कार है। मैं समझता हूं, तुम खन्ना को मुंह लगाकर उसे और भी शह देती हो। तुम्हारा वह जितना आदर करता है, तुमसे उसे जितनी भक्ति है, उसके बल पर तुम बड़ी आसानी से उसे सीधा कर सकती हो, मगर तुम उसकी सफाई देकर स्वय उस अपराध में शरीक हो जाती हो।'

मालती उत्तेजित होकर बोली—तुमने इस समय यह प्रसंग व्यर्थ ही छेड़ दिया। मैं किसी की बुराई नहीं करना चाहती, मगर अभी आपने गोविन्दी देवी को पहचाना नहीं? आपने उनकी भोली-भाली शांत मुद्रा देखकर समझ लिया, वह देवी हैं। मैं उन्हें इतना ऊंचा स्थान नहीं देना चाहती। उन्होंने मुझे बदनाम करने का जितना प्रयत्न किया है, मुझ पर जैसे-जैसे आघात किए हैं वह बयान करूं, तो आप दंग रह जायंगे और तब आपको मानना पड़ेगा कि ऐसी औरत के साथ यही व्यवहार होना चाहिए।

'आखिर उन्हें आपसे जो इतना द्वेष है, इसका कोई कारण तो होगा?'

'कारण उनसे पूछिए। मुझे किसी के दिल का हाल क्या मालूम?'

'उनसे बिना पूछे भी अनुमान किया जा सकता है और वह यह है—अगर कोई पुरुष मेरे और मेरी स्त्री के बीच में आने का साहस करे, तो मैं उसे गोली मार दूंगा, और उसे न मार सकूंगा, तो अपनी छाती में मार लूंगा। इसी तरह अगर मैं किसी स्त्री को अपने और अपनी स्त्री के बीच में लाना चाहूं, तो मेरी पत्नी को भी अधिकार है कि वह जो चाहे, करे। इस विषय में मैं कोई समझौता नहीं कर सकता। यह अवैज्ञानिक मनोवृत्ति है, जो हमने अपने बनैले पूर्वजों

से पाई है और आजकल कुछ लोग इसे असभ्य और असामाजिक व्यवहार कहेंगे, लेकिन मैं अभी तक उस मनोवृत्ति पर विजय नहीं पा सका और न पाना चाहता हूं। इस विषय में मैं कानून की परवाह नहीं करता। मेरे घर में मेरा कानून है।'

मालती ने तीव्र स्वर में पूछा—लेकिन आपने यह अनुमान कैसे कर लिया कि मैं आपके शब्दों में खन्ना और गोविन्दी के बीच आना चाहती हूं? आप ऐसा अनुमान करके मेरा अपमान कर रहे हैं। मैं खन्ना को अपनी जूतियों की नोक के बराबर भी नहीं समझती।

मेहता ने अविश्वास-भरे स्वर में कहा—यह आप दिल से नहीं कह रही हैं मिस मालती। क्या आप सारी दुनिया को बेवकूफ समझती हैं? जो बात सभी समझ रहे हैं, अगर वही बात मिसेज खन्ना भी समझें, तो मैं उन्हें दोष नहीं दे सकता।

मालती ने तिनककर कहा—दुनिया को दूसरों को बदनाम करने में मजा आता है। यह उसका स्वभाव है। मैं उसका स्वभाव कैसे बदल दूं, लेकिन यह व्यर्थ का कलंक है। हां, मैं इतनी बेमुरौवत नहीं हूं कि खन्ना को अपने पास आते देखकर दुतकार देती। मेरा काम ही ऐसा है कि मुझे सभी का स्वागत और सत्कार करना पड़ता है। अगर कोई इसका कुछ और अर्थ निकालता है, तो वह...वह...

मालती का गला भर्रा गया और उसने मुंह फेरकर रूमाल से आंसू पोंछे। फिर एक मिनट बाद बोली—औरों के साथ तुम भी मुझे...मुझे...इसका दुख है...मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी।

फिर कदाचित् उसे अपनी दुर्बलता पर खेद हुआ। वह प्रचंड होकर बोली—आपको मुझ पर आक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है, अगर आप भी उन्हीं मर्दों में हैं, जो किसी स्त्री-पुरुष को साथ देखकर उंगली उठाए बिना नहीं रह सकते, तो शौक से उठाइए। मुझे रत्ती-भर परवा नहीं। अगर कोई स्त्री आपके पास बार-बार किसी-न-किसी बहाने से आए, आपको अपना देवता समझे, हर एक बात में आपसे सलाह ले, आपके चरणों के नीचे आंखें बिछाए, आपको इशारा पाते ही आग में कूदने को तैयार हो, तो मैं दावे से कह सकती हूं, आप उसकी उपेक्षा न करेंगे। अगर आप उसे ठुकरा सकते हैं, तो आप मनुष्य नहीं हैं। उसके विरुद्ध आप कितने ही तर्क और प्रमाण लाकर रख दें, लेकिन मैं मानूंगी नहीं। मैं तो कहती हूं, उपेक्षा तो दूर रही, ठुकराने की बात ही क्या, आप उस नारी के चरण धो-धोकर पिएंगे, और बहुत दिन गुजरने के पहले वह आपकी हृदयेश्वरी होगी। मैं आपसे हाथ जोड़कर कहती हूं, मेरे सामने खन्ना का कभी नाम न लीजिएगा।

मेहता ने इस ज्वाला में मानो हाथ सेंकते हुए कहा—शर्त यही है कि मैं खन्ना को आपके साथ न देखूं।

'मैं मानवता की हत्या नहीं कर सकती। वह आएंगे तो मैं उन्हें दुरदुराऊंगी नहीं।'

'उनसे कहिए, अपनी स्त्री के साथ सज्जनता से पेश आएं।'

'मैं किसी के निजी मुआमले में दखल देना उचित नहीं समझती। न मुझे इसका अधिकार है।'

'तो आप किसी की जबान नहीं बंद कर सकतीं।'

मालती का बंगला आ गया। कार रुक गई। मालती उतर पड़ी और बिना हाथ मिलाए चली गई। वह यह भी भूल गई कि उसने मेहता को भोजन की दावत दी है। वह एकांत में जाकर

खूब रोना चाहती है। गोविन्दी ने पहले भी आघात किए हैं, पर आज उसने जो आघात किया है, वह बहुत गहरा, बड़ा चौड़ा और बड़ा मर्मभेदी है।

सोलह

रायसाहब को खबर मिली कि इलाके में एक वारदात हो गई है और होरी से गांव के पंचों ने जुरमाना वसूल कर लिया है, तो फौरन नोखेराम को बुलाकर जवाब-तलब किया—क्यों उन्हें इसकी इत्तला नहीं दी गई। ऐसे नमकहराम और दगाबाज आदमी के लिए उनके दरबार में जगह नहीं है।

नोखेराम ने इतनी गालियां खाईं, तो जरा गर्म होकर बोले—मैं अकेला थोड़ा ही था। गांव के और पंच भी तो थे। मैं अकेला क्या कर लेता?

रायसाहब ने उनकी तोंद की तरफ भाले-जैसी नुकीली दृष्टि से देखा—मत बको जी। तुम्हें उसी वक्त कहना चाहिए था, जब तक सरकार को इत्तला न हो जाय, मैं पंचों को जुरमाना न वसूल करने दूंगा। पंचों को मेरे और मेरी रिआया के बीच में दखल देने का हक क्या है? इस डांड़-बांध के सिवा इलाके में और कौन-सी आमदनी है? वसूली सरकार के घर गई। बकाया असामियों ने दबा लिया। तब मैं कहां जाऊं? क्या खाऊं, तुम्हारा सिर। यह लाखों रुपये का खर्च कहां से आए? खेद है कि दो पुश्तों से कारिंदगीरी करने पर भी मुझे आज तुम्हें यह बात बतलानी पड़ती है। कितने रुपये वसूल हुए थे होरी से?

नोखेराम ने सिटपिटाकर कहा—अस्सी रुपये।

'नकद?'

'नकद उसके पास कहां थे हुजूर! कुछ अनाज दिया, बाकी में अपना घर लिख दिया।'

रायसाहब ने स्वार्थ का पक्ष छोड़कर होरी का पक्ष लिया—अच्छा, तो आपने और बगुलाभगत पंचों ने मिलकर मेरे एक मातबर असामी को तबाह कर दिया। मैं पूछता हूं, तुम लोगों को क्या हक था कि मेरे इलाके में मुझे इत्तिला दिए बगैर मेरे असामी से जुरमाना वसूल करते? इसी बात पर अगर मैं चाहूं, तो आपको, उस जालिए पटवारी और उस धूर्त्त पंडित को सात-सात साल के लिए जेल भिजवा सकता हूं। आपने समझ लिया कि आप ही इलाके के बादशाह हैं। मैं कहे देता हूं, आज शाम तक जुरमाने की पूरी रकम मेरे पास पहुंच जाय, वरना बुरा होगा। मैं एक-एक से चक्की पिसवाकर छोड़ूंगा। जाइए, हां, होरी को और उसके लड़के को मेरे पास भेज दीजिएगा।

नोखेराम ने दबी जबान से कहा—उसका लड़का तो गांव छोड़कर भाग गया। जिस रात को यह वारदात हुई, उसी रात को भागा।

रायसाहब ने रोष से कहा—झूठ मत बोलो। तुम्हें मालूम है, झूठ से मेरे बदन में आग लग जाती है। मैंने आज तक कभी नहीं सुना कि कोई युवक अपनी प्रेमिका को उसके घर से लाकर फिर खुद भाग जाय। अगर उसे भागना ही होता, तो वह उस लड़की को लाता क्यों? तुम लोगों की इसमें भी जरूर कोई शरारत है। तुम गंगा में डूबकर भी अपनी सफाई दो, तो मैं मानने का

नहीं। तुम लोगों ने अपने समाज की प्यारी मर्यादा की रक्षा के लिए उसे धमकाया होगा। बेचारा भाग न जाता, तो क्या करता।

नोखेराम इसका प्रतिवाद न कर सके। मालिक जो कुछ कहें, वह ठीक है। वह यह भी न कह सके कि आप खुद चलकर झूठ-सच की जांच कर लें। बड़े आदमियों का क्रोध पूरा समर्पण चाहता है। अपने खिलाफ एक शब्द भी नहीं सुन सकता।

पंचो ने रायसाहब का फैसला सुना, तो नशा हिरन हो गया। अनाज तो अभी तक ज्यों-का-त्यों पड़ा था, पर रुपये तो कब के गायब हो गए। होरी को मकान रेहन लिखा गया था, पर उस मकान को देहात में कौन पूछता था? जैसे हिंदू स्त्री पति के साथ घर की स्वामिनी है, और पति त्याग दे, तो कहीं की नहीं रहती, उसी तरह यह घर होरी के लिए लाख रुपये का है, पर उसकी असली कीमत कुछ भी नहीं। और इधर रायसाहब बिना रुपये लिए मानने के नहीं। यही होरी जाकर रो आया होगा। पटेश्वरी लाल सबसे ज्यादा भयभीत थे। उनकी तो नौकरी ही चली जायगी। चारों सज्जन इस गहन समस्या पर विचार कर रहे थे, पर किसी की अक्ल काम न करती थी। एक-दूसरे पर दोष रखता था। फिर खूब झगड़ा हुआ।

पटेश्वरी ने अपनी लंबी शंकाशील गर्दन हिलाकर कहा—मैं मना करता था कि होरी के विषय में हमें चुप्पी साधकर रह जाना चाहिए। गाय के मामले में सबको तावान देना पड़ा। इस मामले में तावान ही से गला न छूटेगा, नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा, मगर तुम लोगों को रुपये की पड़ी थी। निकालो बीस-बीस रुपये। अब भी कुशल है। कहीं रायसाहब ने रपट कर दी, तो सब जने बंध जाओगे।

दातादीन ने ब्रह्म तेज दिखाकर कहा—मेरे पास बीस रुपये की जगह बीस पैसे भी नहीं हैं। ब्राह्मणों को भोज दिया गया, होम हुआ। क्या इसमें कुछ खरच ही नहीं हुआ? रायसाहब की हिम्मत है कि मुझे जेहल ले जायं? ब्रह्म बनकर घर का घर मिटा दूंगा। अभी उन्हें किसी ब्राह्मण से पाला नहीं पड़ा।

झिंगुरीसिंह ने भी कुछ इसी आशय के शब्द कहे। वह रायसाहब के नौकर नहीं हैं। उन्होंने होरी को मारा नहीं, पीटा नहीं, कोई दबाव नहीं डाला। होरी अगर प्रायश्चित करना चाहता था, तो उन्होंने इसका अवसर दिया। इसके लिए कोई उन पर अपराध नहीं लगा सकता, मगर नोखेराम की गर्दन इतनी आसानी से न छूट सकती थी। यहां मजे से बैठे राज करते थे। वेतन तो दस रुपये से ज्यादा न था, पर एक हजार साल की ऊपर की आमदनी थी, सैकड़ों आदमियों पर हुकूमत, चार-चार प्यादे हाजिर, बेगार में सारा काम हो जाता था, थानेदार तक कुरसी देते थे, यह चैन उन्हें और कहां था। और पटेश्वरी तो नौकरी के बदौलत महाजन बने हुए थे। कहां जा सकते थे। दो-तीन दिन इसी चिंता में पड़े रहे कि कैसे इस विपत्ति से निकलें। आखिर उन्हें एक मार्ग सूझ ही गया। कभी-कभी कचहरी में उन्हें दैनिक 'बिजली' देखने को मिल जाती थी। यदि एक गुमनाम पत्र उसके संपादक की सेवा में भेज दिया जाय कि रायसाहब किस तरह असामियों से जुरमाना वसूल करते हैं, तो बचा को लेने के देने पड़ जायं। नोखेराम भी सहमत हो गए। दोनों ने मिलकर किसी तरह एक पत्र लिखा और रजिस्ट्री से भेज दिया।

संपादक ओंकारनाथ तो ऐसे पत्रों की ताक में रहते थे। पत्र पाते ही तुरंत रायसाहब को सूचना दी। उन्हें एक ऐसा समाचार मिला है, जिस पर विश्वास करने की उनकी इच्छा

नहीं होती, पर संवाददाता ने ऐसे प्रमाण दिए हैं कि सहसा अविश्वास भी नहीं किया जा सकता। क्या यह सच है कि रायसाहब ने अपने इलाके के एक आसामी से अस्सी रुपये तावान इसलिए वसूल किए कि उसके पुत्र ने एक विधवा को घर में डाल लिया था? संपादक का कर्त्तव्य उन्हें मजबूर करता है कि वह मुआमले की जांच करें और जनता के हितार्थ उसे प्रकाशित कर दें। रायसाहब इस विषय में जो कुछ कहना चाहें, संपादकजी उसे भी प्रकाशित कर देंगे। संपादकजी दिल से चाहते हैं कि यह खबर गलत हो, लेकिन उसमें कुछ भी सत्य हुआ, तो वह उसे प्रकाश में लाने के लिए विवश हो जायंगे। मैत्री उन्हें कर्त्तव्य-पथ से नहीं हटा सकती।

रायसाहब ने यह सूचना पाई, तो सिर पीट लिया। पहले तो उनको ऐसी उत्तेजना हुई कि जाकर ओंकारनाथ को गिनकर पचास हंटर जमाएं और कह दें, जहां वह पत्र छापना, वहां यह समाचार भी छाप देना, लेकिन इसका परिणाम सोचकर मन को शांत किया और तुरंत उनसे मिलने चले। अगर देर की, और ओंकारनाथ ने वह संवाद छाप दिया, तो उनके सारे यश में कालिमा पुत जायगी।

ओंकारनाथ सैर करके लौटे थे और आज के पत्र के लिए संपादकीय लेख लिखने की चिंता में बैठे हुए थे, पर मन पक्षी की भांति उड़ा-उड़ा फिरता था। उनकी धर्मपत्नी ने रात उन्हें कुछ ऐसी बातें कह डाली थीं, जो अभी तक कांटों की तरह चुभ रही थीं। उन्हें कोई दरिद्र कह ले, अभागा कह ले, बुद्धू कह ले, वह जरा भी बुरा न मानते थे, लेकिन यह कहना कि उनमें पुरुषत्व नहीं है, यह उनके लिए असह्य था। और फिर अपनी पत्नी को यह कहने का क्या हक है? उससे तो यह आशा की जाती है कि कोई इस तरह का आक्षेप करे, तो उसका मुंह बंद कर दे। बेशक वह ऐसी खबरें नहीं छापते, ऐसी टिप्पणियां नहीं करते कि सिर पर कोई आफत आ जाय। फूंक-फूंककर कदम रखते हैं। इन काले कानूनों के युग में वह और कर ही क्या सकते हैं, मगर वह क्यों सांप के बिल में हाथ नहीं डालते? इसीलिए तो कि उनके घर वालों को कष्ट न उठाने पड़ें। और उनकी सहिष्णुता का उन्हें यह पुरस्कार मिल रहा है? क्या अंधेर है। उनके पास रुपये नहीं हैं, तो बनारसी साड़ी कैसे मंगा दें? डाक्टर, सेठ और प्रोफेसर भाटिया और न जाने किस-किसकी स्त्रियां बनारसी साड़ी पहनती हैं, तो वह क्या करें? क्यों उनकी पत्नी इन साड़ीवालियों को अपनी खद्दर की साड़ी से लज्जित नहीं करती? उनकी खुद तो यह आदत है कि किसी बड़े आदमी से मिलने जाते हैं, तो मोटे से मोटे कपड़े पहन लेते हैं और कोई कुछ आलोचना करे, तो उसका मुंहतोड़ जवाब देने को तैयार रहते हैं। उनकी पत्नी में क्यों वही आत्माभिमान नहीं है? वह क्यों दूसरों का ठाट-बाट देखकर विचलित हो जाती है? उसे समझना चाहिए कि वह एक देश-भक्त पुरुष की पत्नी है। देश-भक्त के पास अपनी भक्ति के सिवा और क्या संपत्ति है? इसी विषय को आज के अग्रलेख का विषय बनाने की कल्पना करते-करते उनका ध्यान रायसाहब के मुआमले की ओर जा पहुंचा। रायसाहब सूचना का क्या उत्तर देते हैं, यह देखना है। अगर वह अपनी सफाई देने में सफल हो जाते हैं, तब तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर वह यह समझें कि ओंकारनाथ दबाव, भय या मुलाहजे में आकर अपने कर्त्तव्य से मुंह फेर लेंगे तो यह उनका भ्रम है। इस सारे तप और साधना का पुरस्कार उन्हें इसके सिवा और क्या मिलता है कि अवसर पड़ने पर वह इन कानूनी डकैतों का भंडाफोड़ करें। उन्हें खूब मालूम है कि रायसाहब बड़े प्रभावशाली जीव

हैं। कौंसिल के मेंबर तो हैं ही। अधिकारियों में भी उनका काफी रुसूख है। वह चाहें, तो उन पर झूठे मुकदमे चलवा सकते हैं, अपने गुंडों से राह चलते पिटवा सकते हैं, लेकिन ओंकार इन बातों से नहीं डरता। जब तक उसकी देह में प्राण है, वह आततायियों की खबर लेता रहेगा।

सहसा मोटरकार की आवाज सुनकर वह चौंके। तुरंत कागज लेकर अपना लेख आरंभ कर दिया। और एक ही क्षण में रायसाहब ने उनके कमरे में कदम्र रखा।

ओंकारनाथ ने न उनका स्वागत किया, न कुशल-क्षेम पूछा, न कुरसी दी। उन्हें इस तरह देखा, मानो कोई मुलजिम उनकी अदालत में आया हो और रोब से मिले हुए स्वर में पूछा—आपको मेरा पुरजा मिल गया था? मैं वह पत्र लिखने के लिए बाध्य नहीं था, मेरा कर्त्तव्य यह था कि स्वयं उसकी तहकीकात करता, लेकिन मुरौवत में सिद्धांतों की कुछ न कुछ हत्या करनी ही पड़ती है। क्या उस संवाद में कुछ सत्य है?

रायसाहब उसका सत्य होना अस्वीकार न कर सके। हालांकि अभी तक उन्हें जुरमाने के रुपये नहीं मिले थे और वह उनके पाने से साफ इंकार कर सकते थे, लेकिन वह देखना चाहते थे कि यह महाशय किस पहलू पर चलते हैं।

ओंकारनाथ ने खेद प्रकट करते हुए कहा—तब तो मेरे लिए उस संवाद को प्रकाशित करने के सिवा और कोइ मार्ग नहीं है। मुझे इसका दुःख है कि मुझे अपने एक परम हितैषी मित्र की आलोचना करनी पड़ रही है, लेकिन कर्त्तव्य के आगे व्यक्ति कोई चीज नहीं। संपादक अगर अपना कर्त्तव्य न पूरा कर सके तो उसे इस आसन पर बैठने का कोई हक नहीं है।

रायसाहब कुरसी पर डट गए और पान की गिलौरियां मुंह में भरकर बोले—लेकिन यह आपके हक में अच्छा न होगा। मुझे जो कुछ होना है, पीछे होगा, आपको तत्काल दंड मिल जायगा, अगर आप मित्रों की परवाह नहीं करते, तो मैं भी उसी कैंड़े का आदमी हूं।

ओंकारनाथ ने शहीद का गौरव धारण करके कहा—इसका तो मुझे कभी भय नहीं हुआ। जिस दिन मैंने पत्र-संपादन का भार लिया, उसी दिन प्राणों का मोह छोड़ दिया और मेरे समीप एक संपादक की सबसे शानदार मौत यही है कि वह न्याय और सत्य की रक्षा करता हुआ अपना बलिदान कर दे।

'अच्छी बात है। मैं आपकी चुनौती स्वीकार करता हूं। मैं अब तक आपको मित्र समझता आया था, मगर अब आप लड़ने ही पर तैयार हैं, तो लड़ाई ही सही। आखिर मैं आपके पत्र का पंचगुना चंदा क्यों देता हूं? केवल इसीलिए कि वह मेरा गुलाम बना रहे। मुझे परमात्मा ने रईस बनाया है। आपके बनाने से नहीं बना हूं। साधारण चंदा पंद्रह रुपया है। मैं पचहत्तर रुपया देता हूं, इसलिए कि आपका मुंह बंद रहे। जब आप घाटे का रोना रोते हैं और सहायता की अपील करते हैं, और ऐसी शायद ही कोई तिमाही जाती हो, जब आपकी अपील न निकलती हो, तो मैं ऐसे मौके पर आपकी कुछ-न-कुछ मदद कर देता हूं। किसलिए? दीपावली, दशहरा, होली में आपके यहां बैना भेजता हूं, और साल में पच्चीस बार आपकी दावत करता हूं, किसलिए? आप रिश्वत और कर्त्तव्य दोनों साथ-साथ नहीं निभा सकते।'

ओंकारनाथ उत्तेजित होकर बोले—मैंने कभी रिश्वत नहीं ली।

रायसाहब ने फटकारा—अगर यह व्यवहार रिश्वत नहीं है तो रिश्वत क्या है, जरा मुझे समझा दीजिए। क्या आप समझते हैं, आपको छोड़कर और सभी गधे हैं, जो निःस्वार्थ-भाव से आपका घाटा पूरा करते रहते हैं? निकालिए अपनी बही और बतलाइए, अब तक आपको मेरी रियासत से कितना मिल चुका है? मुझे विश्वास है, हजारों की रकम निकलेगी। अगर आपको स्वदेशी-स्वदेशी चिल्लाकर विदेशी दवाओं और वस्तुओं का विज्ञापन छापने में शरम नहीं आती, तो मैं अपने असामियों से डांड़, तावान और जुर्माना लेते क्यों शरमाऊं? यह न समझिए कि आप ही किसानों के हित का बीड़ा उठाए हुए हैं। मुझे किसानों के साथ जलना-मरना है, मुझसे बढ़कर दूसरा उनका हितेच्छु नहीं हो सकता, लेकिन मेरी गुजर कैसे हो? अफसरों को दावतें कहां से दूं, सरकारी चंदे कहां से दूं खानदान के सैकड़ों आदमियों की जरूरतें कैसे पूरी करूं? मेरे घर का क्या खर्च है, यह शायद आप जानते हैं, तो क्या मेरे घर में रुपये फलते हैं? आएगा तो असामियों ही के घर से। आप समझते होंगे, जमींदार और ताल्लुकेदार सारे संसार का सुख भोग रहे हैं। उनकी असली हालत का आपको ज्ञान नहीं, अगर वह धर्मात्मा बनकर रहें, तो उनका जिंदा रहना मुश्किल हो जाय। अफसरों को डालियां न दें, तो जेलखाना घर हो जाय। हम बिच्छू नहीं हैं कि अनायास ही सबको डंक मारते फिरें। न गरीबों का गला दबाना कोई बड़े आनंद का काम है, लेकिन मर्यादाओं का पालन तो करना ही पड़ता है। जिस तरह आप मेरी रईसी का फायदा उठाना चाहते हैं, उसी तरह और सभी हमें सोने की मुर्गी समझते हैं। आइए मेरे बंगले पर तो दिखाऊं कि सुबह से शाम तक कितने निशाने मुझ पर पड़ते हैं। कोई काश्मीर से शाल-दुशाला लिए चला आ रहा है, कोई इत्र और तंबाकू का एजेंट है, कोई पुस्तकों और पत्रिकाओं का, कोई जीवन बीमे का, कोई ग्रामोफोन लिए सिर पर सवार है, कोई कुछ। चंदे वाले तो अनगिनती। क्या सबके सामने अपना दुखड़ा लेकर बैठ जाऊं? ये लोग मेरे द्वार पर दुखड़ा सुनाने आते हैं? आते हैं मुझे उल्लू बनाकर मुझसे कुछ ऐंठने के लिए। आज मर्यादा का विचार छोड़ दूं, तो तालियां पिटने लगें। हुक्काम को डालियां न दूं, तो बागी समझा जाऊं। तब आप अपने लेखों से मेरी रक्षा न करेंगे। कांग्रेस में शरीक हुआ, उसका तावान अभी तक देता जाता हूं। काली किताब में नाम दर्ज हो गया। मेरे सिर पर कितना कर्ज है, यह भी कभी आपने पूछा है? अगर सभी महाजन डिग्रियां करा लें, तो मेरे हाथ की यह अंगूठी तक बिक जायगी। आप कहेंगे, क्यों यह आडंबर पालते हो? कहिए, सात पुश्तों से जिस वातावरण में पला हूं, उससे अब निकल नहीं सकता। घास छीलना मेरे लिए असंभव है। आपके पास जमीन नहीं, जायदाद नहीं, मर्यादा का झमेला नहीं, आप निर्भीक हो सकते हैं, लेकिन आप भी दुम दबाए बैठे रहते हैं। आपको कुछ खबर है, अदालतों में कितनी रिश्वतें चल रही हैं, कितने गरीबों का खून हो रहा है, कितनी देवियां भ्रष्ट हो रही हैं। है बूता लिखने का? सामग्री मैं देता हूं, प्रमाण सहित।

ओंकारनाथ कुछ नर्म होकर बोले—जब कभी अवसर आया है, मैंने कदम पीछे नहीं हटाया।

रायसाहब भी कुछ नर्म हुए—हां, मैं स्वीकार करता हूं कि दो-एक मौकों पर आपने जवांमर्दी दिखाई, लेकिन आपकी निगाह हमेशा अपने लाभ की ओर रही है, प्रजा-हित की ओर नहीं। आंखें न निकालिए और न मुंह लाल कीजिए। जब कभी आप मैदान में आए हैं,

उसका शुभ परिणाम यही हुआ कि आपके सम्मान और प्रभाव और आमदनी में इजाफा हुआ है, अगर मेरे साथ भी आप वही चाल चल रहे हों, तो आपकी खातिर करने को तैयार हूं। रुपये न दूंगा, क्योंकि वह रिश्वत है। आपकी पत्नीजी के लिए कोई आभूषण बनवा दूंगा। है मंजूर? अब मैं आपसे सत्य कहता हूं कि आपको जो संवाद मिला, वह गलत है, मगर यह भी कह देना चाहता हूं कि अपने और सभी भाइयों की तरह मैं भी असामियों से जुरमाना लेता हूं और साल में दस-पांच हजार रुपये मेरे हाथ लग जाते हैं, और अगर आप मेरे मुंह से ग्रह कौर छीनना चाहेंगे, तो आप घाटे में रहेंगे। आप भी संसार में सुख से रहना चाहते हैं, मैं भी चाहता हूं। इससे क्या फायदा कि आप न्याय और कर्त्तव्य का ढोंग रचकर मुझे भी जेरबार करें, खुद भी जेरबार हों। दिल की बात कहिए। मैं आपका बैरी नहीं हूं। आपके साथ कितनी ही बार एक चौके में एक मेज पर खा चुका हूं। मैं यह भी जानता हूं कि आप तकलीफ में हैं। आपकी हालत शायद मेरी हालत से भी खराब है। हां, अगर आपने हरिश्चन्द्र बनने की कसम खा ली है, तो आपकी खुशी। मैं चलता हूं।

रायसाहब कुरसी से उठ खड़े हुए। ओंकारनाथ ने उनका हाथ पकड़कर संधि-भाव से कहा—नहीं-नहीं, अभी आपको बैठना पड़ेगा। मैं अपनी पोजीशन साफ कर देना चाहता हूं। आपने मेरे साथ जो सलूक किए हैं, उनके लिए मैं आपका अभारी हूं, लेकिन यहां सिद्धांत की बात आ गई है और आप तो जानते हैं, सिद्धांत प्राणों से भी प्यारे होते हैं।

रायसाहब कुरसी पर बैठकर जरा मीठे स्वर में बोले—अच्छा भाई, जो चाहे लिखो। मैं तुम्हारे सिद्धांत को तोड़ना नहीं चाहता। और तो क्या होगा, बदनामी होगी। हां, कहां तक नाम के पीछे मरूं। कौन ऐसा ताल्लुकेदार है, जो असामियों को थोड़ा-बहुत नहीं सताता? कुत्ता हड्डी की रखवाली करे तो खाए क्या? मैं इतना ही कर सकता हूं कि आगे आपको इस तरह की कोई शिकायत न मिलेगी, अगर आपको मुझ पर कुछ विश्वास है, तो इस बार क्षमा कीजिए। किसी दूसरे संपादक से मैं इस तरह खुशामद नहीं करता। उसे सरे बाजार पिटवाता, लेकिन मुझसे आपकी दोस्ती है, इसलिए दबना ही पड़ेगा। यह समाचार-पत्रों का युग है। सरकार तक उनसे डरती है, मेरी हस्ती क्या। आप जिसे चाहें बना दें। खैर, यह झगड़ा खत्म कीजिए। कहिए, आजकल पत्र की क्या दशा है? कुछ ग्राहक बढ़े?

ओंकारनाथ ने अनिच्छा के भाव से कहा—किसी न किसी तरह काम चल जाता है और वर्तमान परिस्थिति में मैं इससे अधिक आशा नहीं रखता। मैं इस तरफ धन और भोग की लालसा लेकर नहीं आया था, इसलिए मुझे शिकायत नहीं है। मैं जनता की सेवा करने आया था और वह यथाशक्ति किए जाता हूं। राष्ट्र का कल्याण हो, यही मेरी कामना है। एक व्यक्ति के सुख-दुःख का कोई मूल्य नहीं है।

रायसाहब ने जरा और सहृदय होकर कहा—यह सब ठीक है भाई साहब, लेकिन सेवा करने के लिए भी जीना जरूरी है। आर्थिक चिंताओं में आप एकाग्रचित्त होकर सेवा भी तो नहीं कर सकते। क्या ग्राहक-संख्या बिल्कुल नहीं बढ़ रही है?

'बात यह है कि मैं अपने पत्र का आदर्श गिराना नहीं चाहता, अगर मैं भी आज सिनेमा-स्टारों के चित्र और चरित्र छापने लगूं तो मेरे ग्राहक बढ़ सकते हैं, लेकिन अपनी तो यह नीति नहीं। और भी कितने ही ऐसे हथकंडे हैं, जिनसे पत्रों द्वारा धन कमाया जा सकता है, लेकिन मैं उन्हें गर्हित समझता हूं।'

'इसी का यह फल है कि आज आपका इतना सम्मान है। मैं एक प्रस्ताव करना चाहता हूं। मालूम नहीं, आप उसे स्वीकार करेंगे या नहीं। आप मेरी ओर से सौ आदमियों के नाम फ्री पत्र जारी कर दीजिए। चंदा मैं दे दूंगा।'

ओंकारनाथ ने कृतज्ञता से सिर झुकाकर कहा—मैं धन्यवाद के साथ आपका दान स्वीकार करता हूं। खेद यही है कि पत्रों की ओर से जनता कितनी उदासीन है। स्कूल और कालिजों और मंदिरों के लिए धन की कमी नहीं है, पर आज तक एक भी ऐसा दानी न निकला, जो पत्रों के प्रचार के लिए दान देता, हालांकि जन-शिक्षा का उद्देश्य जितने कम खर्च में पत्रों से पूरा हो सकता है, और किसी तरह नहीं हो सकता। जैसे शिक्षालयों को संस्थाओं द्वारा सहायता मिला करती है, एसे ही अगर पत्रकारों को मिलने लगे, तो इन बेचारों को अपना जितना समय और स्थान विज्ञापनों की भेंट करना पड़ता है, वह क्यों करना पड़े? मैं आपका बड़ा अनुगृहीत हूं।

रायसाहब बिदा हो गए। ओंकारनाथ के मुख पर प्रसन्नता की झलक न थी। रायसाहब ने किसी तरह की शर्त न की थी, कोई बंधन न लगाया था, पर ओंकारनाथ आज इतनी करारी फटकार पाकर भी इस दान को अस्वीकार न कर सके। परिस्थिति ऐसी आ पड़ी थी कि उन्हें उबरने का कोई उपाय ही न सूझ रहा था। प्रेस के कर्मचारियों का तीन महीने का वेतन बाकी पड़ा हुआ था। कागज वाले के एक हजार से ऊपर आ रहे थे, यही क्या कम था कि उन्हें हाथ नहीं फैलाना पड़ा।

उनकी स्त्री गोमती ने आकर विद्रोह के स्वर में कहा—क्या अभी भोजन का समय नहीं आया, या यह भी कोई नियम है कि जब तक एक न बज जाय, जगह से न उठो? कब तक कोई चूल्हा अगोरता रहे?

ओंकारनाथ ने दु:खी आंखों से पत्नी की ओर देखा। गोमती का विद्रोह उड़ गया। वह उनकी कठिनाइयों को समझती थी। दूसरी महिलाओं के वस्त्राभूषण देखकर कभी-कभी उसके मन में विद्रोह के भाव जाग उठते थे और वह पति को दो-चार जली कटी सुना जाती थी, पर वास्तव में यह क्रोध उनके प्रति नहीं, अपने दुर्भाग्य के प्रति था, और इसकी थोड़ी-सी आंच अनायास ही ओंकारनाथ तक पहुंच जाती थी। वह उनका तपस्वी जीवन देखकर मन में कुढ़ती थी और उनसे सहानुभूति भी रखती थी। बस, उन्हें थोड़ा-सा सनकी समझती थी। उनका उदास मुंह देखकर पूछा—क्यों उदास हो, पेट में कुछ गड़बड़ है क्या?

ओंकारनाथ को मुस्कराना पड़ा—कौन उदास है, मैं? मुझे तो आज जितनी खुशी है, उतनी अपने विवाह के दिन भी न हुई थी। आज सबेरे पंद्रह सौ की बोहनी हुई। किसी भाग्यवान् का मुंह देखा था।

गोमती को विश्वास न आया, बोली—झूठे हो, तुम्हें पंद्रह सौ कहां मिल जाते हैं? पंद्रह रुपये कहो, मान लेती हूं।

'नहीं-नहीं, तुम्हारे सिर की कसम, पंद्रह सौ मारे। अभी रायसाहब आए थे। सौ ग्राहकों का चंदा अपनी तरफ से देने का वचन दे गए हैं।'

गोमती का चेहरा उतर गया—तो मिल चुके!

'नहीं, रायसाहब वादे के पक्के हैं।'

'मैंने किसी ताल्लुकेदार को वादे का पक्का देखा ही नहीं। दादा एक ताल्लुकेदार के नौकर

थे। साल-साल भर तलब नहीं मिलती थी। उसे छोड़कर दूसरे की नौकरी की। उसने दो साल तक एक पाई न दी। एक बार दादा गरम पड़े, तो मारकर भगा दिया। इनके वादों का कोई करार नहीं।'

'मैं आज ही बिल भेजता हूं।'

'भेजा करो। कह देंगे, कल आना। कल अपने इलाके पर चले जायंगे। तीन महीने में लौटेंगे।'

ओंकारनाथ संशय में पड़ गए। ठीक तो है, कहीं रायसाहब पीछे से मुकर गए तो वह क्या कर लेंगे? फिर भी दिल मजबूत करके कहा—ऐसा नहीं हो सकता। कम-से-कम रायसाहब को मैं इतना धोखेबाज नहीं समझता। मेरा उनके यहां कुछ बाकी नहीं है।

गोमती ने उसी संदेह के भाव से कहा—इसी से तो मैं तुम्हें बुद्धू कहती हूं। जरा किसी ने सहानुभूति दिखाई और तुम फूल उठे। मोटे रईस हैं। इनके पेट में ऐसे कितने वादे हजम हो सकते हैं। जितने वादे करते हैं, अगर सब पूरा करने लगें, तो भीख मांगने की नौबत आ जाय। मेरे गांव के ठाकुर साहब तो दो-दो, तीन-तीन साल तक बनियों का हिसाब न करते थे। नौकरों का वेतन तो नाम के लिए देते थे। साल-भर काम लिया, जब नौकर ने वेतन मांगा, मारकर निकाल दिया। कई बार इसी नादिहंदी में स्कूल से उनके लड़कों के नाम कट गए। आखिर उन्होंने लड़कों को घर बुला लिया। एक बार रेल का टिकट भी उधार मांगा था। यह रायसाहब भी तो उन्हीं के भाईबंद हैं। चलो, भोजन करो और चक्की पीसो, जो तुम्हारे भाग्य में लिखा है। यह समझ लो कि ये बड़े आदमी तुम्हें फटकारते रहें, वही अच्छा है। यह तुम्हें एक पैसा देंगे, तो उसका चौगुना अपने असामियों से वसूल कर लेंगे। अभी उनके विषय में जो कुछ चाहते हो, लिखते हो। तब तो ठकुरसोहाती ही करनी पड़ेगी।

पंडितजी भोजन कर रहे थे, पर कौर मुंह में फंसा हुआ जान पड़ता था। आखिर बिना दिल का बोझ हल्का किए, भोजन करना कठिन हो गया। बोले—अगर रुपये न दिए, तो ऐसी खबर लूंगा कि याद करेंगे। उनकी चोटी मेरे हाथ में है। गांव के लोग झूठी खबर नहीं दे सकते। सच्ची खबर देते तो उनकी जान निकलती है, झूठी खबर क्या देंगे। रायसाहब के खिलाफ एक रिपोर्ट मेरे पास आई है। छाप दूं, तो बचा को घर से निकलना मुश्किल हो जाय। मुझे वह खैरात नहीं दे रहे हैं, बड़े दबसट में पड़कर इस राह पर आए हैं। पहले धमकियां दिखा रहे थे। जब देखा, इससे काम न चलेगा, तो यह चारा फेंका। मैंने भी सोचा, एक इनके ठीक हो जाने से तो देश से अन्याय मिटा जाता नहीं, फिर क्यों न इस दान को स्वीकार कर लूं? मैं अपने आदर्श से गिर गया हूं जरूर, लेकिन इतने पर भी रायसाहब ने दगा की, तो मैं भी शठता पर उतर आऊंगा। जो गरीबों को लूटता है, उसको लूटने के लिए अपनी आत्मा को बहुत समझाना न पड़ेगा।

सत्रह

गांव में खबर फैल गई कि रायसाहब ने पंचों को बुलाकर खूब डांटा और इन लोगों ने जितने रुपये वसूल किए थे, वह सब इनके पेट से निकाल लिए। वह तो इन लोगों को जेहल भेजवा

रहे थे, लेकिन इन लोगों ने हाथ-पांव जोड़े, थूककर चाटा, तब जाके उन्होंने छोड़ा। धनिया को कलेजा शीतल हो गया, गांव में घूम-घूमकर पंचों को लज्जित करती फिरती थी—आदमी न सुने गरीबों की पुकार, भगवान् तो सुनते हैं। लोगों ने सोचा था, इनसे डांड़ लेकर मजे से फुलौड़ियां खायंगे। भगवान् ने ऐसा तमाचा लगाया कि फुलौड़ियां मुंह से निकल पड़ीं। एक-एक के दो-दो भरने पड़े। अब चाटो मेरा मकान लेकर।

मगर बैलों के बिना खेती कैसे हो? गांवों में बोआई शुरू हो गई। कार्तिक के महीने में किसान के बैल मर जायं, तो उसके दोनों हाथ कट जाते हैं। होरी के दोनों हाथ कट गए थे। और सब लोगों के खेतों में हल चल रहे थे। बीज डाले जा रहे थे। कहीं-कहीं गीत की तानें सुनाई देती थीं। होरी के खेत किसी अनाथ अबला के घर की भांति सूने पड़े थे। पुनिया के पास भी गोई थी, सोभा के पास भी गोई थी, मगर उन्हें अपने खेतों की बुआई से कहां फुरसत कि होरी की बुआई करें। होरी दिन-भर इधर-उधर मारा-मारा फिरता था। कहीं इसके खेत में जा बैठता, कहीं उसकी बोआई करा देता। इस तरह कुछ अनाज मिल जाता। धनिया, रूपा, सोना सभी दूसरों की बोआई में लगी रहती थीं। जब तक बुआई रही, पेट की रोटियां मिलती गईं, विशेष कष्ट न हुआ। मानसिक वेदना तो अवश्य होती थी, पर खाने भर को मिल जाता था। रात को नित्य स्त्री-पुरुष में थोड़ी-सी लड़ाई हो जाती थी।

यहां तक कि कातिक का महीना बीत गया और गांव में मजदूरी मिलनी भी कठिन हो गई। अब सारा दारमदार ऊख पर था, जो खेतों में खड़ी थी।

रात का समय था। सर्दी खूब पड़ रही थी। होरी के घर में आज कुछ खाने को न था। दिन को तो थोड़ा-सा भुना हुआ मटर मिल गया था, पर इस वक्त चूल्हा जलने का कोई डौल न था और रूपा भूख के मारे व्याकुल थी और द्वार पर कौड़े के सामने बैठी रो रही थी। घर में जब अनाज का एक दाना भी नहीं है, तो क्या मांगे, क्या कहे!

जब भूख न सही गई तो वह आग मांगने के बहाने पुनिया के घर गई। पुनिया बाजरे की रोटियां और बथुए का साग पका रही थी। सुगंध से रूपा के मुंह में पानी भर आया।

पुनिया ने पूछा—क्या अभी तेरे घर आग नहीं जली, क्या री?

रूपा ने दीनता से कहा—आज तो घर में कुछ था ही नहीं, आग कहां से जलती?

'तो फिर आग काहे को मांगने आई है?'

'दादा तमाखू पिएंगे।'

पुनिया ने उपले की आग उसकी ओर फेंक दी, मगर रूपा ने आग उठाई नहीं और समीप जाकर बोली—तुम्हारी रोटियां महक रही हैं काकी! मुझे बाजरे की रोटियां बड़ी अच्छी लगती हैं।

पुनिया ने मुस्कराकर पूछा—खाएगी?

'अम्मां डांटेगी।'

'अम्मां से कौन कहने जायगा?'

रूपा ने पेट-भर रोटियां खाईं और जूठे मुंह भागी हुई घर चली गई।

होरी मन-मारे बैठा था कि पंडित दातादीन ने जाकर पुकारा। होरी की छाती धड़कने लगी। क्या कोई नई विपत्ति आने वाली है? आकर उनके चरण छुए और कौड़े के सामने उनके लिए मांची रख दी।

दातादीन ने बैठते हुए अनुग्रह भाव से कहा—अबकी तो तुम्हारे खेत परती पड़ गए होरी। तुमने गांव में किसी से कुछ कहा नहीं, नहीं भोला की मजाल थी कि तुम्हारे द्वार से बैल खोल ले जाता। यहीं लहास गिर जाती। मैं तुमसे जनेऊ हाथ में लेकर कहता हूं होरी, मैंने तुम्हारे ऊपर डांड़ न लगाया था। धनिया मुझे नाहक बदनाम करती फिरती है। यह सब लाला पटेश्वरी और झिंगुरीसिंह की कारस्तानी है। मैं तो लोगों के कहने से पंचायत में बैठ भर गया था। वह लोग तो और कड़ा दंड लगा रहे थे। मैंने कह-सुनके कम कराया, मगर अब सब जने सिर पर हाथ धरे रो रहे हैं। समझे थे, यहां उन्हीं का राज है। यह न जानते थे कि गांव का राजा कोई और है। तो अब अपने खेतों की बोआई का क्या इंतजाम कर रहे हो?

होरी ने करुण-कंठ से कहा—क्या बताऊं महाराज, परती रहेंगे।

'परती रहेंगे? यह तो बड़ा अनर्थ होगा।'

'भगवान् की यही इच्छा है, तो अपना क्या बस।'

'मेरे देखते तुम्हारे खेत कैसे परती रहेंगे? कल मैं तुम्हारी बोआई करा दूंगा। अभी खेतों में कुछ तरी है। उपज दस दिन पीछे होगी, इसके सिवा और कोई बात नहीं। हमारा-तुम्हारा आधा साझा रहेगा। इसमें न तुम्हें कोई टोटा है, न मुझे। मैंने आज बैठे-बैठे सोचा, तो चित्त बड़ा दुखी कि जुते-जुताए खेत परती रहे जाते हैं।'

होरी सोच में पड़ गया। चौमासे-भर इन खेतों में खाद डाली, जोता और आज केवल बोआई के लिए आधी फसल देनी पड़ रही है। उस पर एहसान कैसा जता रहे हैं, लेकिन इससे तो अच्छा यही है कि खेत परती पड़ जायं। और कुछ न मिलेगा, लगान तो निकल ही आएगा। नहीं, अबकी बेबाकी न हुई, तो बेदखली आई धरी है।

उसने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

दातादीन प्रसन्न होकर बोले—तो चलो, मैं अभी बीज तौल दूं, जिसमें सबेरे का झंझट न रहे। रोटी तो खा ली है न?

होरी ने लजाते हुए आज घर में चूल्हा न जलने की कथा कही।

दातादीन ने मीठे उलाहने के भाव से कहा—अरे! तुम्हारे घर में चूल्हा नहीं जला और तुमने मुझसे कहा भी नहीं। हम तुम्हारे बैरी तो नहीं थे। इसी बात पर तुमसे मेरा जी कुढ़ता है। अरे भले आदमी, इसमें लाज-सरम की कौन बात है! हम सब एक ही तो हैं। तुम सूद्र हुए तो क्या, हम बाम्हन हुए तो क्या, हैं तो सब एक ही घर के। दिन सबके बराबर नहीं जाते। कौन जाने, कल मेरे ही ऊपर कोई संकट आ पड़े, तो मैं तुमसे अपना दुःख न कहूंगा तो किससे कहूंगा? अच्छा जो हुआ, चलो, बेंग ही के साथ तुम्हें मन-दो-मन अनाज खाने को भी तौल दूंगा।

आध घंटे में होरी मन-भर जौ का टोकरा सिर पर रखे आया और घर की चक्की चलने लगी। धनिया रोती थी और सोना के साथ जौ पीसती थी। भगवान् उसे किस कुकर्म का यह दंड दे रहे हैं।

दूसरे दिन से बोआई शुरू हुई। होरी का सारा परिवार इस तरह काम में जुटा हुआ था, मानो सब कुछ अपना ही है। कई दिन के बाद सिंचाई भी इसी तरह हुई। दातादीन को सेंत-मेंत के मजूर मिल गए। अब कभी-कभी उनका लड़का मातादीन भी घर में आने लगा। जवान आदमी था, बड़ा रसिक और बातचीत का मीठा। दातादीन जो कुछ छीन-झपटकर लाते

थे, वह उसे भांग बूटी में उड़ाता था। एक चमारिन से उसकी आशनाई हो गई थी, इसलिए अभी तक ब्याह न हुआ था। वह रहती अलग थी, पर सारा गांव यह रहस्य जानते हुए भी कुछ न बोल सकता था। हमारा धर्म है हमारा भोजन। भोजन पवित्र रहे, फिर हमारे धर्म पर कोई आंच नहीं आ सकती। रोटियां ढाल बनकर अधर्म से हमारी रक्षा करती हैं।

अब साझे की खेती होने से मातादीन को झुनिया से बातचीत करने का अवसर मिलने लगा। वह ऐसे दांव से आता, जब घर में झुनिया के सिवा और कोई न होता, कभी किसी बहाने से, कभी किसी बहाने से। झुनिया रूपवती न थी, लेकिन जवान थी और उसकी चमारिन प्रेमिका से अच्छी थी। कुछ दिन शहर में रह चुकी थी, पहनना-ओढ़ना, बोलना-चालना जानती थी और लज्जाशील भी थी, जो स्त्री का सबसे बड़ा आकर्षण है। मातादीन कभी-कभी उसके बच्चे को गोद में उठा लेता और प्यार करता। झुनिया निहाल हो जाती थी।

एक दिन उसने झुनिया से कहा—तुम क्या देखकर गोबर के साथ आईं झूना?

झुनिया ने लजाते हुए कहा—भाग खींच लाया महराज, और क्या कहूं।

मातादीन दु:खी मन से बोला—बड़ा बेवफा आदमी है। तुम जैसी लच्छमी को छोड़कर न जाने कहां मारा-मारा फिर रहा है। चंचल सुभाव का आदमी है, इसी से मुझे संका होती है कि कहीं और न फंस गया हो। ऐसे आदमियों को तो गोली मार देनी चाहिए। आदमी का धरम है, जिसकी बांह पकड़े, उसे निभाए। यह क्या कि एक आदमी की जिंदगानी खराब कर दी और दूसरा घर ताकने लगे।

युवती रोने लगी। मातादीन ने इधर-उधर ताककर उसका हाथ पकड़ लिया और समझाने लगा—तुम उसकी क्यों परवा करती हो झूना, चला गया, चला जाने दो। तुम्हारे लिए किस बात की कमी है? रुपया-पैसा, गहना-कपड़ा, जो चाहो मुझसे लो।

झुनिया ने धीरे से हाथ छुड़ा लिया और पीछे हटकर बोली—सब तुम्हारी दया है महराज। मैं तो कहीं की न रही। घर से भी गई, यहां से भी गई। न माया मिली, न राम ही हाथ आए। दुनिया का रंग-ढंग न जानती थी। इसकी मीठी-मीठी बातें सुनकर जाल में फंस गई।

मातादीन ने गोबर की बुराई करनी शुरू की—वह तो निरा लफंगा है, घर का न घाट का। जब देखो, मां-बाप से लड़ाई। कहीं पैसा पा जाय, चट जुआ खेल डालेगा, चरस और गांजे में उसकी जान बसती थी, सोहदों के साथ घूमना, बहू-बेटियों को छेड़ना, यही उसका काम था। थानेदार साहब बदमासी में उसका चालान करने वाले थे, हम लोगों ने बहुत खुसामद की, तब जाकर छोड़ा। दूसरों के खेत-खलिहान से अनाज उड़ा लिया करता। कई बार तो खुद उसी ने पकड़ा था, पर गांव-घर का समझकर छोड़ दिया।

सोना ने बाहर आकर कहा—भाभी, अम्मां ने कहा है, अनाज निकालकर धूप में डाल दो, नहीं चोकर बहुत निकलेगा। पंडित ने जैसे बखार में पानी डाल दिया हो।

मातादीन ने अपनी सफाई दी—मालूम होता है, तेरे घर में बरसात नहीं हुई। चौमासे में लकड़ी तक गीली हो जाती है, अनाज तो अनाज ही है।

यह कहता हुआ वह बाहर चला गया। सोना ने आकर उसका खेल बिगाड़ दिया।

सोना ने झुनिया से पूछा—मातादीन क्या करने आए थे?

झुनिया ने माथा सिकोड़कर कहा—पगहिया मांग रहे थे। मैंने कह दिया, यहां पगहिया

नहीं है।

'यह सब बहाना है। बड़ा खराब आदमी है।'

'मुझे तो बड़ा भला आदमी लगता है। क्या खराबी है उसमें?'

'तुम नहीं जानतीं? सिलिया चमारिन को रखे हुए है।'

'तो इसी से खराब आदमी हो गया?'

'और काहे से आदमी खराब कहा जाता है?'

'तुम्हारे भैया भी तो मुझे लाये हैं। वह भी खराब आदमी हैं?'

सोना ने इसका जवाब न देकर कहा—मेरे घर में फिर कभी आएगा, तो दुतकार दूंगी।

'और जो उससे तुम्हारा ब्याह हो जाय?'

सोना लजा गई—तुम तो भाभी, गाली देती हो।

'क्यों, इसमें गाली की क्या बात है?'

'मुझसे बोले, तो मुंह झुलस दूं।'

'तो क्या तुम्हारा ब्याह किसी देवता से होगा। गांव में ऐसा सुंदर, सजीला जवान दूसरा कौन है?'

'तो तुम चली जाओ उसके साथ, सिलिया से लाख दर्जे अच्छी हो।'

'मैं क्यों चली जाऊं? मैं तो एक के साथ चली आई। अच्छा है या बुरा।'

'तो मैं भी जिसके साथ ब्याह होगा, उसके साथ चली जाऊंगी, अच्छा हो या बुरा।'

'और जो किसी बूढ़े के साथ ब्याह हो गया?'

सोना हंसी—मैं उसके लिए नरम-नरम रोटियां पकाऊंगी, उसकी दवाइयां कूटूंगी-छानूंगी, उसे हाथ पकड़कर उठाऊंगी, जब मर जायगा, तो मुंह ढांपकर रोऊंगी।

'और जो किसी जवान के साथ हुआ?'

'तब तुम्हारा सिर, हां नहीं तो।'

'अच्छा बताओ, तुम्हें बूढ़ा अच्छा लगता है कि जवान।'

'जो अपने को चाहे, वही जवान है, न चाहे वही बूढ़ा है।'

'दैव करे, तुम्हारा ब्याह किसी बूढ़े से हो जाय, तो देखूं, तुम उसे कैसे चाहती हो। तब मनाओगी, किसी तरह यह निगोड़ा मर जाय, तो किसी जवान को लेकर बैठ जाऊं।'

'मुझे तो उस बूढ़े पर दया आए।'

इस साल इधर एक शक्कर का मिल खुल गया था। उसके कारिंदे और दलाल गांव-गांव घूमकर किसानों की खड़ी ऊख मोल ले लेते थे। वही मिल था, जो मिस्टर खन्ना ने खोला था। एक दिन उसका कारिंदा इस गांव में भी आया। किसानों ने जो उससे भाव-ताव किया, तो मालूम हुआ, गुड़ बनाने में कोई बचत नहीं है। जब घर में ऊख पेरकर भी यही दाम मिलता है, तो पेरने की मेहनत क्यों उठाई जाय? सारा गाव खड़ी ऊख बेचने को तैयार हो गया। अगर कुछ कम भी मिले, तो परवाह नहीं। तत्काल तो मिलेगा। किसी को बैल लेना था, किसी को बाकी चुकाना था, कोई महाजन से गला छुड़ाना चाहता था। होरी को बैलों की गोई लेनी थी। अबकी ऊख की पैदावार अच्छी न थी, इसलिए यह डर भी था कि माल न पड़ेगा। और जब गुड़ के भाव मिल की चीनी मिलेगी, तो गुड़ लेगा ही कौन? सभी ने बयाने ले लिए। होरी को कम-से-कम सौ रुपये की आशा थी। इतने में एक

मामूली गोई आ जायगी, लेकिन महाजनों को क्या करे। दातादीन, मंगरू, दुलारी, झिंगुरीसिंह सभी तो प्राण खा रहे थे। अगर महाजनों को देने लगेगा, तो सौ रुपये सूद-भर को भी न होंगे। कोई ऐसी जुगत न सूझती थी कि ऊख के रुपये हाथ में आ जायं और किसी को खबर न हो। जब बैल घर आ जायंगे, तो कोई क्या कर लेगा? गाड़ी लदेगी, तो सारा गांव देखेगा ही, तौल पर जो रुपये मिलेंगे, वह सबको मालूम हो जायंगे। संभव है, मंगरू और दातादीन हमारे साथ-साथ रहें। इधर रुपये मिले, उधर उन्होंने गर्दन पकड़ी।

शाम को गिरधर ने पूछा—तुम्हारी ऊख कब तक जायगी होरी काका?

होरी ने झांसा दिया—अभी तो कुछ ठीक नहीं है भाई, तुम कब तक ले जाओगे?

गिरधर ने भी झांसा दिया—अभी तो मेरा भी कुछ ठीक नहीं है काका।

और लोग भी इसी तरह की उड़नघाइयां बताते थे, किसी को किसी पर विश्वास न था। झिंगुरीसिंह के सभी रिनियां थे, और सबकी यही इच्छा थी कि झिंगुरीसिंह के हाथ रुपये न पड़ने पाएं, नहीं वह सब-का-सब हजम कर जायगा। और जब दूसरे दिन असामी फिर रुपये मांगने जायगा, तो नया कागज, नया नजराना, नई तहरीर। दूसरे दिन शोभा आकर बोला—दादा, कोई ऐसा उपाय करो कि झिंगुरीसिंह को हैजा हो जाय। ऐसा गिरे कि फिर न उठे।

होरी ने मुस्कराकर कहा—क्यों, उसके बाल-बच्चे नहीं हैं?

'उसके बाल-बच्चों को देखें कि अपने बाल-बच्चों को देखें? वह तो दो-दो मेहरियों को आराम से रखता है, यहां तो एक को रूखी रोटी भी मयस्सर नहीं। सारी जमा ले लेगा। एक पैसा भी घर न लाने देगा।'

'मेरी तो हालत और भी खराब है भाई, अगर रुपये हाथ से निकल गये, तो तबाह हो जाऊंगा। गोई के बिना तो काम न चलेगा।'

अभी तो दो-तीन दिन ऊख ढोते लगेंगे। ज्योंही सारी ऊख पहुंच जाय, जमादार से कहें कि भैया कुछ ले ले, मगर ऊख झटपट तौल दे, दाम पीछे देना। इधर झिंगुरी से कह देंगे, अभी रुपये नहीं मिले।'

होरी ने विचार करके कहा—झिंगुरीसिंह हमसे-तुमसे कई गुना चतुर है सोभा। जाकर मुनीम से मिलेगा और उसी से रुपये ले लेगा। हम-तुम ताकते रह जायंगे। जिस खन्ना बाबू का मिल है, उन्हीं खन्ना बाबू की महाजनी कोठी भी है। दोनों एक हैं।

सोभा निराश होकर बोला—न जाने इन महाजनों से कभी गला छूटेगा कि नहीं।

होरी बोला—इस जनम में तो कोई आसा नहीं है भाई! हम राज नहीं चाहते, भोग-विलास नहीं चाहते, खाली मोटा-झोटा पहनना, और मोटा-झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं। वह भी नहीं सधता।

सोभा ने धूर्तता के साथ कहा—मैं तो दादा, इन सबों को अबकी चकमा दूंगा। जमादार को कुछ दे-दिलाकर इस बात पर राजी कर लूंगा कि रुपये के लिए हमें खूब दौड़ाएं। झिंगुरी कहां तक दौड़ेंगे।

होरी ने हंसकर कहा—यह सब कुछ न होगा भैया! कुसल इसी में है कि झिंगुरीसिंह के हाथ-पांव जोड़ो। हम जाल में फंसे हुए हैं। जितना ही फड़फड़ाओगे, उतना ही और जकड़ते जाओगे।

'तुम तो दादा, बूढ़ों की-सी बातें कर रहे हो। कठघरे में फंसे बैठे रहना तो कायरता है।

फंदा और जकड़ जाय बला से, पर गला छुड़ाने के लिए जोर तो लगाना ही पड़ेगा। यही तो होगा झिंगुरी घर-द्वार नीलाम करा लेंगे, करा लें नीलाम। मैं तो चाहता हूं कि हमें कोई रुपये न दे, हमें भूखों मरने दे, लातें खाने दे, एक पैसा भी उधार न दे, लेकिन पैसा वाले उधार न दें तो सूद कहां से पाएं? एक हमारे ऊपर दावा करता है, तो दूसरा हमें कुछ कम सूद पर रुपये उधार देकर अपने जाल में फंसा लेता है। मैं तो उसी दिन रुपये लेने जाऊंगा, जिस दिन झिंगुरी कहीं चला गया होगा।

होरी का मन भी विचलित हुआ—हां, यह ठीक है।

'ऊख तुलवा देंगे। रुपये दांव-घात देखकर ले आयंगे।'

'बस-बस, यही चाल चलो।'

दूसरे दिन प्रातःकाल गांव के कई आदमियों ने ऊख काटनी शुरू की। होरी भी अपने खेत में गंड़ासा लेकर पहुंचा। उधर से सोभा भी उसकी मदद को आ गया। पुनिया, झुनिया, धनिया, सोना सभी खेत में जा पहुंचीं। कोई ऊख काटता था, कोई छीलता था, कोई पूले बांधता था। महाजनों ने जो ऊख कटते देखी, तो पेट में चूहे दौड़े। एक तरफ से दुलारी दौड़ी, दूसरी तरफ से मंगरू साह, तीसरी ओर से मातादीन और पटेश्वरी और झिंगुरी के पियादे। दुलारी हाथ-पांव में मोटे-मोटे चांदी के कड़े पहने, कानों में सोने का झुमका, आंखों में काजल लगाए, बूढ़े यौवन को रंगे-रंगाए आकर बोली—पहले मेरे रुपये दे दो, तब ऊख काटने दूंगी। मैं जितना गम खाती हूं, उतना ही तुम शेर होते हो। दो साल से एक धेला सूद नहीं दिया, पचास तो मेरे सूद के होते हैं।

होरी ने घिघियाकर कहा—भाभी, ऊख काट लेने दो, इसके रुपये मिलते हैं, तो जितना हो सकेगा, तुमको भी दूंगा। न गांव छोड़कर भागा जाता हूं, न इतनी जल्दी मौत ही आई जाती है। खेत में खड़ी ऊख तो रुपये न देगी?

दुलारी ने उसके हाथ से गंड़ासा छीनकर कहा—नीयत इतनी खराब हो गई है तुम लोगों की, तभी तो बरक्कत नहीं होती।

आज पांच साल हुए, होरी ने दुलारी से तीस रुपये लिए थे। तीन साल में उसके सौ रुपये हो गए, तब स्टांप लिखा गया। दो साल में उस पर पचास रुपया सूद चढ़ गया था।

होरी बोला—सहुआइन, नीयत तो कभी खराब नहीं की, और भगवान् चाहेंगे, तो पाई-पाई चुका दूंगा। हां, आजकल तंग हो गया हूं, जो चाहे कह लो।

सहुआइन को जाते देर नहीं हुई कि मंगरू साह पहुंचे। काला रंग, तोंद कमर के नीचे लटकती हुई, दो बड़े-बड़े दांत सामने जैसे काट खाने को निकले हुए, सिर पर टोपी, गले में चादर, उम्र अभी पचास से ज्यादा नहीं, पर लाठी के सहारे चलते थे। गठिया का मरज हो गया था। खांसी भी आती थी। लाठी टेककर खड़े हो गए और होरी को डांट बताई—पहले हमारे रुपये दे दो होरी, तब ऊख काटो। हमने रुपये उधार दिए थे, खैरात नहीं थे। तीन-तीन साल हो गए, न सूद न ब्याज, मगर यह न समझना कि तुम मेरे रुपये हजम कर जाओगे। मैं तुम्हारे मुर्दे से भी वसूल कर लूंगा।

सोभा मसखरा था। बोला—तब काहे को घबड़ाते हो साहजी, इनके मुर्दे ही से वसूल कर लेना। नहीं, एक-दो साल के आगे-पीछे दोनों ही सरग में पहुंचोगे। वहीं भगवान् के सामने अपना हिसाब चुका लेना।

मंगरू ने सोभा को बहुत बुरा-भला कहा—जमामार, बेईमान इत्यादि। लेने की बेर तो दुम हिलाते हो, जब देने की बारी आती है, तो गुर्राते हो। घर बिकवा लूंगा, बैल-बधिये नीलाम करा लूंगा।

सोभा ने फिर छेड़ा—अच्छा, ईमान से बताओ साह, कितने रुपये दिए थे, जिसके अब तीन सौ रुपये हो गए हैं?

'जब तुम साल के साल सूद न दोगे, तो आप ही बढ़ेंगे।'

'पहले-पहल कितने रुपये दिये थे तुमने? पचास ही तो।'

'कितने दिन हुए, यह भी तो देख।'

'पांच-छ: साल हुए होंगे?'

'दस साल हो गए पूरे, ग्यारहवां जा रहा है।'

'पचास रुपये के तीन सौ रुपये लेते तुम्हें जरा भी सरम नहीं आती।'

'सरम कैसी, रुपये दिये हैं कि खैरात मांगते हैं।'

होरी ने इन्हें भी चिरौरी-विनती करके विदा किया। दातादीन ने होरी के साझे में खेती की थी। बीज देकर आधी फसल ले लेंगे। इस वक्त कुछ छेड़-छाड़ करना नीति-विरुद्ध था। झिंगुरीसिंह ने मिल के मैनेजर से पहले ही सब कुछ कह-सुन रखा था। उनके प्यादे गाड़ियों पर ऊख लदवाकर नाव पर पहुंचा रहे थे। नदी गांव से आध मील पर थी। एक गाड़ी दिन-भर में सात-आठ चक्कर कर लेती थी। और नाव एक खेवे में पचास गाड़ियों का बोझ लाद लेती थी। इस तरह किफायत पड़ती थी। इस सुविधा का इंतजाम करके झिंगुरीसिंह ने सारे इलाके को एहसान से दबा दिया था।

तौल शुरू होते ही झिंगुरीसिंह ने मिल के फाटक पर आसन जमा लिया। हर एक की ऊख तौलाते थे, दाम का पुरजा लेते थे। खजांची से रुपये वसूल करते थे और अपना पावना काटकर असामी को देते थे। असामी कितना ही रोये, चीखे, किसी की न सुनते थे। मालिक का यही हुक्म था। उनका क्या बस।

होरी को एक सौ बीस रुपये मिले। उसमें से झिंगुरीसिंह ने अपने पूरे रुपये सूद समेत काटकर कोई पचीस रुपये होरी के हवाले किए।

होरी ने रुपये की ओर उदासीन भाव से देखकर कहा—यह लेकर मैं क्या करूंगा ठाकुर, यह भी तुम्हीं ले लो। मेरी लिए मजूरी बहुत मिलेगी।

झिंगुरी ने पचीसों रुपये जमीन पर फेंककर कहा—लो या फेंक दो, तुम्हारी खुसी। तुम्हारे कारन मालिक की घुड़कियां खाईं और अभी रायसाहब सिर पर सवार हैं कि डांड़ के रुपये अदा करो। तुम्हारी गरीबी पर दया करके इतने रुपये दिए देता हूं, नहीं एक धेला भी न देता। अगर रायसाहब ने सख्ती की तो उल्टे और घर से देने पड़ेंगे।

होरी ने धीरे से रुपये उठा लिए और बाहर निकला कि नोखेराम ने ललकारा। होरी ने जाकर पचीसों रुपये उनके हाथ पर रख दिए, और बिना कुछ कहे जल्दी से भाग गया। उसका सिर चक्कर खा रहा था।

सोभा को इतने ही रुपये मिले थे। वह बाहर निकला, तो पटेश्वरी ने घेरा।

सोभा बरस पड़ा। बोला—मेरे पास रुपये नहीं हैं, तुम्हें जो कुछ करना हो, कर लो।

पटेश्वरी ने गरम होकर कहा—ऊख बेची है कि नहीं?

'हां, बेची है।'

'तुम्हारा यही वादा तो था कि ऊख बेचकर रुपया दूंगा।'

'हां, था तो।'

'फिर क्यों नहीं देते ! और सब लोगों को दिए हैं कि नहीं?'

'हां, दिए हैं।'

'तो मुझे क्यों नहीं देते?'

'मेरे पास अब जो कुछ बचा है, वह बाल-बच्चों के लिए है।'

पटेश्वरी ने बिगड़कर कहा—तुम रुपये दोगे, सोभा और हाथ जोड़कर और आज ही। हां, अभी जितना चाहो, बहक लो। एक रपट में जाओगे छ: महीने को, पूरे छ: महीने को, न एक दिन बेस, न एक दिन कम। यह जो नित्य जुआ खेलते हो, वह एक रपट में निकल जायगा। मैं जमींदार या महाजन का नौकर नहीं हूं, सरकार बहादुर का नौकर हूं, जिसका दुनिया-भर में राज है और जो तुम्हारे महाजन और जमींदार दोनों का मालिक है।

पटेश्वरीलाल आगे बढ़ गए। सोभा और होरी कुछ दूर चुपचाप चले। मानो इस धिक्कार ने उन्हें संज्ञाहीन कर दिया हो। तब होरी ने कहा—सोभा, इसके रुपये दे दो। समझ लो, ऊख में आग लग गई थी। मैंने भी यही सोचकर, मन को समझाया है।

सोभा ने आहत कंठ से कहा—हां, दे दूंगा दादा ! न दूंगा तो जाऊंगा कहां?

सामने से गिरधर ताड़ी पिए झूमता चला आ रहा था। दोनों को देखकर बोला—झिंगुरिया ने सारे का सारा ले लिया होरी काका ! चबेना को भी एक पैसा न छोड़ा। हत्यारा कहीं का ! रोया, गिड़गिड़ाया, पर इस पापी को दया न आई।

शोभा ने कहा—ताड़ी तो पिए हुए हो, उस पर कहते हो, एक पैसा भी न छोड़ा।

गिरधर ने पेट दिखाकर कहा—सांझ हो गई, जो पानी की बूंद भी कंठ तले गई हो, तो गो-मांस बराबर। एक इकन्नी मुंह में दबा ली थी। उसकी ताड़ी पी ली। सोचा, साल-भर पसीना गारा है, तो एक दिन ताड़ी तो पी लूं, मगर सच कहता हूं, नसा नहीं है। एक आने में क्या नसा होगा? हां, झूम रहा हूं जिसमें लोग समझें, खूब पिए हुए है। बड़ा अच्छा हुआ काका, बेबाकी हो गई। बीस लिए, उसके एक सौ साठ भरे, कुछ हद है।

होरी घर पहुंचा, तो रूपा पानी लेकर दौड़ी, सोना चिलम भर लाई, धनिया ने चबेना और नमक लाकर रख दिया और सभी आशा-भरी आंखों से उसकी ओर ताकने लगीं। झुनिया भी चौखट पर आ खड़ी हुई थी। होरी उदास बैठा था। कैसे मुंह-हाथ धोए, कैसे चबेना खाए। ऐसा लज्जित और ग्लानित था, मानो हत्या करके आया हो।

धनिया ने पूछा—कितने की तौल हुई?

'एक सौ बीस मिले, पर सब वहीं लुट गए, धेला भी न बचा।'

धनिया सिर से पांव तक भस्म हो उठी। मन में ऐसा उद्वेग उठा कि अपना मुंह नोंच ले। बोली—तुम जैसा घामड़ आदमी भगवान् ने क्यों रचा, कहीं मिलते तो उनसे पूछती। तुम्हारे साथ सारी जिंदगी तलख हो गई, भगवान् मौत भी नहीं देते कि जंजाल से जान छूटे। उठाकर सारे रुपये बहनोइयों को दे दिए। अब और कौन आमदनी है, जिससे गोई आएगी? हल में क्या मुझे जोतोगे, या आप जुतोगे? मैं कहती हूं, तुम बूढ़े हुए, तुम्हें इतनी अक्ल भी नहीं आई कि गोई-भर के रुपये तो निकाल लेते ! कोई तुम्हारे हाथ से छीन थोड़े लेता। पूस की यह ठंड और

किसी की देह पर लत्ता नहीं। ले जाओ सबको नदी में डुबा दो। सिसक-सिसककर मरने से तो एक दिन मर जाना फिर भी अच्छा है। कब तक पुआल में घुसकर रात काटेंगे और पुआल में घुस भी लें, तो पुआल खाकर रहा तो न जायगा। तुम्हारी इच्छा हो, घास ही खाओ, हमसे तो घास न खाई जायगी।

यह कहते-कहते वह मुस्करा पड़ी। इतनी देर में उसकी समझ में यह बात आने लगी थी कि महाजन जब सिर पर सवार हो जाय, और अपने हाथ में रुपये हों और महाजन जानता हो कि इसके पास रुपये हैं, तो असामी कैसे अपनी जान बचा सकता है।

होरी सिर नीचा किए अपने भाग्य को रो रहा था। धनिया का मुस्कराना उसे न दिखाई दिया। बोला–मजूरी तो मिलेगी। मजूरी करके खायंगे। धनिया ने पूछा–कहां है इस गांव में मजूरी? और कौन मुंह लेकर मजूरी करोगे? महतो नहीं कहलाते।

होरी ने चिलम के कई कश लगाकर कहा–मजूरी करना कोई पाप नहीं। मजूर बन जाय, तो किसान हो जाता है। किसान बिगड़ जाय तो मजूर हो जाता है। मजूरी करना भाग्य में न होता हो यह सब विपत क्यों आती? क्यों गाय मरती? क्यों लड़का नालायक निकल जाता?

धनिया ने बहू और बेटियों की ओर देखकर कहा–तुम सब-की-सब क्यों घेरे खड़ी हो, जाकर अपना-अपना काम देखो। वह और हैं जो हाट-बाजार से आते हैं, तो बाल-बच्चों के लिए दो-चार पैसे की कोई चीज लिए आते हैं। यहां तो यह लोभ लग रहा होगा कि रुपये तुड़ाएं कैसे? एक कम न हो जायगा, इसी से इनकी कमाई में बरक्कत नहीं होती। जो खरच करते हैं, उन्हें मिलता है। जो न खा सकें, उन्हें रुपये मिलें ही क्यों? जमीन में गाड़ने के लिए?

होरी ने खिलखिलाकर कहा–कहां है वह गाड़ी हुई थाती?

'जहां रखी है, वहीं होगी। रोना तो यही है कि यह जानते हुए भी पैसे के लिए मरते हो। चार पैसे की कोई चीज लाकर बच्चों के हाथ पर रख देते तो पानी में न पड़ जाते। झिंगुरी से तुम कह देते कि एक रुपया मुझे दे दो, नहीं मैं तुम्हें एक पैसा न दूंगा, जाकर अदालत में लेना, तो वह जरूर दे देता।'

होरी लज्जित हो गया। अगर वह झल्लाकर पचीसों रुपये नोखेराम को न दे देता तो नोखे क्या कर लेते? बहुत होता बकाया पर दो-चार आना सूद ले लेते, मगर अब तो चूक हो गई।

झुनिया ने भीतर जाकर सोना से कहा–मुझे तो दादा पर बड़ी दया आती है। बेचारे दिन-भर के थके-मांदे घर आए, तो अम्मां कोसने लगीं। महाजन गला दबाए था, तो क्या करते बेचारे।

'तो बैल कहां से आयंगे?'

'महाजन अपने रुपये चाहता है। उसे तुम्हारे घर के दुखड़ों से क्या मतलब?'

'अम्मां वहां होतीं, तो महाजन को मजा चखा देतीं। अभागा रोकर रह जाता।'

झुनिया ने दिल्लगी की–तो यहां रुपये की कौन कमी है? तुम महाजन से जरा हंसकर बोल दो, देखो सारे रुपये छोड़ देता है कि नहीं। सच कहती हूं, दादा का सारा सुख-दलिद्दर दूर हो जाय।

सोना ने दोनों हाथों से उसका मुंह दबाकर कहा—बस, चुप ही रहना, नहीं कहे देती हूं। अभी जाकर अम्मां से मातादीन की सारी कलई खोल दूं तो रोने लगो।

झुनिया ने पूछा—क्या कह दोगी अम्मां से? कहने को कोई बात भी हो। जब वह किसी बहाने से घर में आ जाते हैं, तो क्या कह दूं कि निकल जाओ, फिर मुझसे कुछ ले तो नहीं जाते? कुछ अपना ही दे जाते हैं। सिवाय मीठी-मीठी बातों के वह झुनिया से कुछ नहीं पा सकते। और अपनी मीठी बातों को महंगे दामों पर बेचना भी मुझे आता है। मैं ऐसी अनाड़ी नहीं हूं कि किसी के झांसे में आ जाऊं। हां, जब जान जाऊंगी कि तुम्हारे भैया ने वहां किसी को रख लिया है, तब की नहीं चलाती। तब मेरे ऊपर किसी का कोई बंधन न रहेगा। अभी तो मुझे विस्वास है कि वह मेरे हैं और मेरे कारन उन्हें गली-गली ठोकर खाना पड़ रहा है। हंसने-बोलने की बात न्यारी है, पर मैं उनसे विस्वासघात न करूंगी। जो एक से दो का हुआ, वह किसी का नहीं रहता।

सोभा ने आकर होरी को पुकारा और पटेश्वरी के रुपये उसके हाथ में रखकर बोला—भैया, तुम जाकर ये रुपये लाला को दे दो, मुझे उस घड़ी न जाने क्या हो गया था।

होरी रुपये लेकर उठा ही था कि शंख की ध्वनि कानों में आई। गांव के उस सिरे पर ध्यानसिंह नाम के एक ठाकुर रहते थे। पल्टन में नौकर थे और कई दिन हुए, दस साल के बाद रजा लेकर आए थे। बगदाद, अदन, सिंगापुर, बर्मा—चारों तरफ घूम चुके थे। अब ब्याह करने की धुन में थे। इसीलिए पूजा-पाठ करके ब्राह्मणों को प्रसन्न रखना चाहते थे।

होरी ने कहा—जान पड़ता है, सातों अध्याय पूरे हो गए। आरती हो रही है।

सोभा बोला—हां, जान तो पड़ता है, चलो आरती ले लें।

होरी ने चिंतित भाव से कहा—तुम जाओ, मैं थोड़ी देर में आता हूं।

ध्यानसिंह जिस दिन आए थे, सबके घर सेर-सेर भर मिठाई बैना भेजी थी। होरी से जब कभी रास्ते में मिल जाते, कुशल पूछते। उनकी कथा में जाकर आरती में कुछ न देना अपमान की बात थी।

आरती का थाल उन्हीं के हाथ में होगा। उनके सामने होरी कैसे खाली हाथ आरती ले लेगा। इससे तो कहीं अच्छा है वह कथा में जाय ही नहीं। इतने आदमियों में उन्हें क्या याद आएगी कि होरी नहीं आया। कोई रजिस्टर लिए तो बैठा नहीं है कि कौन आया, कौन नहीं आया। वह जाकर खाट पर लेट रहा।

मगर उसका हृदय मसोरा-मसोसकर रह जाता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं है। तांबे का एक पैसा। आरती के पुण्य और माहात्म्य का उसे बिल्कुल ध्यान न था। बात थी केवल व्यवहार की। ठाकुरजी की आरती तो वह केवल श्रद्धा की भेंट देकर ले सकता था, लेकिन मर्यादा कैसे तोड़े, सबकी आंखों में हेठा कैसे बने।

सहसा वह उठ बैठा। क्यों मर्यादा की गुलामी करे? मर्यादा के पीछे आरती का पुण्य क्यों छोड़े? लोग हंसेंगे, हंस लें। उसे परवा नहीं है। भगवान् उसे कुकर्म से बचाए रखें, और वह कुछ नहीं चाहता।

वह ठाकुर के घर की ओर चल पड़ा।

अठारह

खन्ना और गोविन्दी में नहीं पटती। क्यों नहीं पटती, यह बताना कठिन है। ज्योतिष के हिसाब से उनके ग्रहों में कोई विरोध है, हालांकि विवाह के समय ग्रह और नक्षत्र खूब मिला लिए गए थे। कामशास्त्र के हिसाब से इस अनबन का और कोई रहस्य हो सकता है, और मनोविज्ञान वाले कुछ और ही कारण खोज सकते हैं। हम तो इतना ही जानते हैं कि उनमें नहीं पटती। खन्ना धनवान हैं, रसिक हैं, मिलनसार हैं, रूपवान् हैं, अच्छे खासे-पढ़े-लिखे हैं और नगर के विशिष्ट पुरुषों में हैं। गोविन्दी अप्सरा न हो, पर रूपवती अवश्य है—गेहुंआ रंग, लज्जाशील आंखें, जो एक बार सामने उठकर फिर झुक जाती हैं, कपोलों पर लाली न हो, पर चिकनापन है। गात कोमल, अंगविन्यास सुडौल, गोल बांहें, मुख पर एक प्रकार की अरुचि, जिसमें कुछ गर्व की झलक भी है, मानो संसार के व्यवहार और व्यापार को हेय समझती है। खन्ना के पास विलास के ऊपरी साधनों की कमी नहीं, अव्वल दरजे का बंगला है, अव्वल दरजे का फर्नीचर, अव्वल दरजे की कार और अपार धन। पर गोविन्दी की दृष्टि में जैसे इन चीजों का कोई मूल्य नहीं। इस खारे सागर में वह प्यासी पड़ी रहती है। बच्चों का लालन-पालन और गृहस्थी के छोटे-मोटे काम ही उसके लिए सब कुछ हैं। वह इनमें इतनी व्यस्त रहती है कि भोग की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। आकर्षण क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न हो सकता है, इसकी ओर उसने कभी विचार नहीं किया। वह पुरुष का खिलौना नहीं है, न उसके भोग की वस्तु, फिर क्यों आकर्षक बनने की चेष्टा करे? अगर पुरुष उसका असली सौंदर्य देखने के लिए आंखें नहीं रखता, कामिनियों के पीछे मारा-मारा फिरता है, तो वह उसका दुर्भाग्य है। वह उसी प्रेम और निष्ठा से पति की सेवा किए जाती है, जैसे द्वेष और मोह-जैसी भावनाओं को उसने जीत लिया है। और यह अपार संपत्ति तो जैसे उसकी आत्मा को कुचलती रहैंती है, दबाती रहती है। इन आडंबरों और पाखंडों से मुक्त होने के लिए उसका मन सदैव ललचाया करता है। अपने सरल और स्वाभाविक जीवन में वह कितनी सुखी रह सकती थी, इसका वह नित्य स्वप्न देखती रहती है। तब क्यों मालती उसके मार्ग में आकर बाधक हो जाती। क्यों वेश्याओं के मुजरे होते, क्यों यह संदेह और बनावट और अशांति उसके जीवन-पथ में कांटा बनती। बहुत पहले जब वह बालिका-विद्यालय में पढ़ती थी, उसे कविता का रोग लग गया था, जहां दु:ख और वेदना ही जीवन का तत्त्व है, संपत्ति और विलास तो केवल इसलिए है कि उसकी होली जलाई जाय, जो मनुष्य को असत्य और अशांति की ओर ले जाता है। वह अब भी कभी-कभी कविता रचती थी, लेकिन सुनाए किसे? उसकी कविता केवल मन की तरंग या भावना की उड़ान न थी, उसके एक-एक शब्द में उसके जीवन की व्यथा और उसके आंसुओं की ठंडी जलन भरी होती थी—किसी ऐसे प्रदेश में जा बसने की लालसा, जहां वह पाखंडों और वासनाओं से दूर अपनी शांत कुटिया में सरल आनंद का उपभोग करे। खन्ना उसकी कविताएं देखते, तो उनका मजाक उड़ाते और कभी-कभी फाड़कर फेंक देते। और संपत्ति की यह दीवार दिन-दिन ऊंची होती जाती थी और दंपति को एक दूसरे से दूर और पृथक् करती जाती थी। खन्ना अपने ग्राहकों के साथ जितना ही मीठा और नम्र था, घर में उतना ही कटु और उद्दंड। अक्सर क्रोध में गोविन्दी को अपशब्द कह बैठता। शिष्टता उसके लिए दुनिया को ठगने का एक साधन थी, मन का संस्कार नहीं। ऐसे अवसरों पर गोविन्दी अपने एकांत कमरे में जा बैठती और रात की रात रोया

करती और खन्ना दीवानखाने में मुजरे सुनता या क्लब में जाकर शराबें उड़ाता। लेकिन यह सब कुछ होने पर भी खन्ना उसके सर्वस्व थे। वह दलित और अपमानित होकर भी खन्ना की लौंडी थी। उनसे लड़ेगी, जलेगी, रोएगी, पर रहेगी उन्हीं की। उनसे पृथक् जीवन की वह कोई कल्पना ही न कर सकती थी।

आज मिस्टर खन्ना किसी बुरे आदमी का मुंह देखकर उठे थे। सवेरे ही प्त्र खोला, तो उनके कई स्टाकों का दर गिर गया था, जिसमें उन्हें कई हजार की हानि होगी थी। शक्कर मिल के मजदूरों ने हड़ताल कर दी थी और दंगा-फसाद करने पर आमादा थे। नफे की आशा से चांदी खरीदी थी, मगर उसका दर आज और भी ज्यादा गिर गया था। रायसाहब से जो सौदा हो रहा था और जिसमें उन्हें खासे नफे की आशा थी, वह कुछ दिनों के लिए टलता हुआ जान पड़ता था। फिर रात को बहुत पी जाने के कारण इस वक्त सिर भारी था और देह टूट रही थी। उधर शोफर ने कार के इंजन में कुछ खराबी पैदा हो जाने की बात कही थी और लाहौर में उनके बैंक पर एक दीवानी मुकदमा दायर हो जाने का समाचार भी मिला था। बैठे मन में झुंझला रहे थे कि उसी वक्त गोविन्दी ने आकर कहा– भीष्म का ज्वर आज भी नहीं उतरा, किसी डाक्टर को बुला दो।

भीष्म उनका सबसे छोटा पुत्र था, और जन्म से ही दुर्बल होने के कारण उसे रोज एक-न-एक शिकायत बनी रहती थी। आज खांसी है, तो कल बुखार, कभी पसली चल रही है, कभी हरे-पीले दस्त आ रहे हैं। दस महीने का हो गया था, पर लगता था, पांच-छ: महीने का। खन्ना की धारणा हो गई थी कि यह लड़का बचेगा नहीं, इसलिए उसकी ओर से उदासीन रहते थे, पर गोविन्दी इसी कारण उसे और सब बच्चों से ज्यादा चाहती थी।

खन्ना ने पिता के स्नेह का भाव दिखाते हुए कहा– बच्चों को दवाओं का आदी बना देना ठीक नहीं, और तुम्हें दवा पिलाने का मरज है। जरा कुछ हुआ और डाक्टर बुलाओ। एक रोज देखो, आज तीसरा ही दिन तो है। शायद आज आप-ही-आप उतर जाय।

गोविन्दी ने आग्रह किया–तीन दिन से नहीं उतरा। घरेलू दवाएं करके हार गई।

खन्ना ने पूछा–अच्छी बात है, बुला देता हूं, किसे बुलाऊं?

'बुला लो डाक्टर नाग को।'

'अच्छी बात है, उन्हीं को बुलाती हूं, मगर यह समझ लो नाम हो जाने से ही कोई अच्छा डाक्टर नहीं हो जाता। नाग फीस चाहे जितनी चाहे ले लें, उनकी दवा से किसी को अच्छा होते नहीं देखा। वह तो मरीजों को स्वर्ग भेजने के लिए मशहूर हैं।'

'तो जिसे चाहो बुला लो, मैंने तो नाग को इसलिए कहा था कि वह कई बार आ चुके हैं।'

'मिस मालती को क्यों न बुला लूं? फीस भी कम और बच्चों का हाल लेडी डाक्टर जैसा समझेगी, कोई मर्द डाक्टर नहीं समझ सकता।'

गोविन्दी ने जलकर कहा–मैं मिस मालती को डाक्टर नहीं समझती।

खन्ना ने भी तेज आंखों से देखकर कहा–तो वह इंग्लैंड घास खोदने गई थी, और हजारों आदमियों को आज जीवनदान दे रही है, यह सब कुछ नहीं है?

'होगा, मुझे उन पर भरोसा नहीं है। वह मरदों के दिल का इलाज कर लें। और किसी की दवा उनके पास नहीं है।'

बस ट । गई। खन्ना गरजने लगे। गोविन्दी बरसने लगी। उनके बीच में मालती का नाम आ जाना मानो लड़ाई का अल्टिमेटम था।

खन्ना ने सारे कागजों को जमीन पर फेंककर कहा—तुम्हारे साथ जिंदगी तलख हो गई।

गोविन्दी ने नुकीले स्वर में कहा—तो मालती से ब्याह कर लो न! अभी क्या बिगड़ा है, अगर वहां दाल गले।

'तुम मुझे क्या समझती हो?'

'यही कि मालती तुम-जैसों को अपना गुलाम बनाकर रखना चाहती है, पति बनाकर नहीं।'

'तुम्हारी निगाह में मैं इतना जलील हूं?'

और उन्होंने इसके विरुद्ध प्रमाण देना शुरू किया। मालती जितना उनका आदर करती है, उतना शायद ही किसी का करती हो। रायसाहब और राजा साहब को मुंह तक नहीं लगाती, लेकिन उनसे एक दिन भी मुलाकात न हो, तो शिकायत करती है...

गोविन्दी ने इन प्रमाणों को एक फूंक में उड़ा दिया—इसीलिए कि वह तुम्हें सबसे बड़ा आंखों का अंधा समझती है, दूसरों को इतनी आसानी से बेवकूफ नहीं बना सकती।

खन्ना ने डींग मारी—वह चाहें तो आज मालती से विवाह कर सकते हैं। आज, अभी...

मगर गोविन्दी को बिल्कुल विश्वास नहीं—तुम सात जन्म नाक रगड़ो, तो भी वह तुमसे विवाह न करेगी। तुम उसके टट्टू हो, तुम्हें घास खिलाएगी, कभी-कभी तुम्हारा मुंह सहलाएगी, तुम्हारे पुट्ठों पर हाथ फेरेगी, लेकिन इसीलिए कि तुम्हारे ऊपर सवारी गांठे। तुम्हारे जैसे एक हजार बुद्धू उसकी जेब में हैं।

गोविन्दी आज बहुत बढ़ी जाती थी। मालूम होता है, आज वह उनसे लड़ने पर तैयार होकर आई है। डाक्टर के बुलाने का तो केवल बहाना था। खन्ना अपनी योग्यता और दक्षता और पुरुषत्व पर इतना बड़ा आक्षेप कैसे सह सकते थे।

'तुम्हारे खयाल में मैं बुद्धू और मूर्ख हूं, तो ये हजारों क्यों मेरे द्वार पर नाक रगड़ते हैं? कौन राजा या ताल्लुकेदार है, जो मुझे दंडवत नहीं करता? सैकड़ों को उल्लू बनाकर छोड़ दिया।'

'यही तो मालती की विशेषता है कि जो औरों को सीधे उस्तरे से मूंड़ता है, उसे वह उल्टे छुरे से मूंडती है।'

'तुम मालती की चाहे जितनी बुराई करो, तुम उसकी पांव की धूल भी नहीं हो।'

'मेरी दृष्टि में यह वेश्याओं से भी गई-बीती है, क्योंकि वह परदे की आड़ से शिकार खेलती है।'

दोनों ने अपने-अपने अग्निबाण छोड दिए। खन्ना न गोविन्दी को चाहे कोई दूसरी कठोर से कठोर बात कही होती, उसे इतनी बुरी न लगती, पर मालती से उसकी यह घृणित तुलना उसकी सहिष्णुता के लिए भी असह्य थी। गोविन्दी ने भी खन्ना को चाहे जो कुछ कहा होता, वह इतने गर्म न होते, लेकिन मालती का यह अपमान वह नहीं सह सकते। दोनों एक-दूसरे के कोमल स्थलों से परिचित थे। दोनों के निशाने ठीक बैठे और दोनों तिलमिला उठे। खन्ना की आंखें लाल हो गईं। गोविन्दी का मुंह लाल हो गया। खन्ना आवेश में उठे और उसके दोनों कान पकड़कर जोर से ऐंठे और तीन तमाचे लगा दिए। गोविन्दी रोती हुई अंदर चली

गई।

जरा देर में डाक्टर नाग आए और सिविल सर्जन मि॰ टाड आए और भिषगाचार्य नीलकण्ठ शास्त्री आए, पर गोविन्दी बच्चे को लिए अपने कमरे में बैठी रही। किसने क्या कहा, क्या तशखीस की, उसे कुछ मालूम नहीं। जिस विपत्ति की कल्पना वह कर रही थी, वह आज उसके सिर पर आ गई। खन्ना ने आज जैसे उससे नाता तोड़ लिया, जैसे उसे घर से खदेड़कर द्वार बंद कर लिया। जो रूप का बाजार लगाकर बैठती है, जिसकी परछाईं भी वह अपने ऊपर पड़ने नहीं देना चाहती...वह उस पर परोक्ष रूप से शासन करे? यह न होगा। खन्ना उसके पति हैं, उन्हें उसको समझाने-बुझाने का अधिकार है, उनकी मार को भी वह शिरोधार्य कर सकती है, पर मालती का शासन? असंभव । मगर बच्चे का ज्वर जब तक शांत न हो जाय, वह हिल नहीं सकती। आत्माभिमान को भी कर्त्तव्य के सामने सिर झुकाना पड़ेगा।

दूसरे दिन बच्चे का ज्वर उतर गया था। गोविन्दी ने एक तांगा मंगवाया और घर से निकली। जहां उसका इतना अनादर है, वहां अब वह नहीं रह सकती। आघात इतना कठोर था कि बच्चों का मोह भी टूट गया था। उनके प्रति उसका जो धर्म था, उसे वह पूरा कर चुकी है। शेष जो कुछ है, वह खन्ना का धर्म है। हां, गोद के बालक को वह किसी तरह नहीं छोड़ सकती। वह उसकी जान के साथ है। और इस घर से वह केवल अपने प्राण लेकर निकलेगी। और कोई चीज उसकी नहीं है। इन्हें यह दावा है कि वह उसका पालन करते हैं। गोविन्दी दिखा देगी कि वह उनके आश्रय से निकलकर भी जिंदा रह सकती है। तीनों बच्चे उस समय खेलने गए थे। गोविन्दी का मन हुआ, एक बार उन्हें प्यार कर ले, मगर वह कहीं भागी तो नहीं जाती। बच्चों को उससे प्रेम होगा, तो उसके पास आएंगे, उसके घर में खेलेंगे। वह जब जरूरत समझेगी, खुद बच्चों को देख जाया करेगी। केवल खन्ना का आश्रय नहीं लेना चाहती।

सांझ हो गई थी। पार्क में खूब रौनक थी। लोग हरी घास पर लेटे हवा का आनंद लूट रहे थे। गोविन्दी हजरतगंज होती हुई चिड़ियाघर की तरफ मुड़ी ही थी कि कार पर मालती और खन्ना सामने से आते हुए दिखाई दिए। उसे मालूम हुआ, खन्ना ने उसकी तरफ इशारा करके कुछ कहा और मालती मुस्कराई। नहीं, शायद यह उसका भ्रम हो। खन्ना मालती से उसकी निंदा न करेंगे, मगर कितनी बेशर्म है। सुना है, इसकी अच्छी प्रैक्टिस है, घर की भी संपन्न है, फिर भी यों अपने को बेचती फिरती है। न जाने क्यों ब्याह नहीं कर लेती, लेकिन उससे ब्याह करेगा ही कौन? नहीं, यह बात नहीं। पुरुषों में ऐसे बहुत से गधे हैं, जो उसे पाकर अपने को धन्य मानेंगे। लेकिन मालती खुद तो किसी को पसंद करे? और ब्याह में कौन-सा सुख रखा हुआ है? बहुत अच्छा करती है, जो ब्याह नहीं करती। अभी सब उसके गुलाम हैं। तब वह एक की लौंड़ी होकर रह जायगी। बहुत अच्छा करती है, जो ब्याह नहीं करती। अभी सब उसके गुलाम हैं। तब वह एक की लौंडी होकर रह जायगी। बहुत अच्छा कर रही है। अभी तो यह महाशय भी उसके तलवे चाटते हैं, कहीं इनसे ब्याह कर ले, तो उस पर शासन करने लगें, मगर इनसे वह क्यों ब्याह करेगी? और समाज में दो-चार ऐसी स्त्रियां बनी रहें, तो अच्छा, पुरुषों के कान तो गर्म करती रहें।

आज गोविन्दी के मन में मालती के प्रति बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हुई। वह मालती पर

आक्षेप करके उसके साथ अन्याय कर रही है। क्या मेरी दशा को देखकर उसकी आंखें न खुलती होंगी? विवाहित जीवन की दुर्दशा आंखों देखकर अगर वह इस जाल में नहीं फंसती, तो क्या बुरा करती है!

चिड़ियाघर में चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। गोविन्दी ने तांगा रोक दिया और बच्चे को लिए हरी दूब की तरफ चली, मगर दो ही तीन कदम चली थी कि चप्पल पानी में डूब गए। अभी थोड़ी देर पहले लॉन सींचा गया था और घास के नीचे पानी बह रहा था। उस उतावली में उसने पीछे न फिरकर एक कदम और आगे रखा तो पांव कीचड़ में सन गए। उसने पांव की ओर देखा। अब यहां पांव धोने के लिए पानी कहां से मिलेगा? उसकी सारी मनोव्यथा लुप्त हो गई। पांव धोकर साफ करने की नई चिंता हुई। उसकी विचारधारा रुक गई। जब तक पांव साफ न हो जायं, वह कुछ नहीं सोच सकती।

सहसा उसे एक लंबा पाइप घास में छिपा नजर आया, जिसमें से पानी बह रहा था। उसने जाकर पांव धोए, चप्पल धोए, हाथ-मुंह धोया, थोड़ा-सा पानी चुल्लू में लेकर पिया और पाइप के उस पार सूखी जमीन पर जा बैठी। उदासी में मौत की याद तुरंत आती है। कहीं वह यहीं बैठे-बैठे मर जाय, तो क्या हो? तांगे वाला तुरंत जाकर खन्ना को खबर देगा। खन्ना सुनते ही खिल उठेंगे, लेकिन दुनिया को दिखाने के लिए आंखों पर रूमाल रख लेंगे। बच्चों के लिए खिलौने और तमाशे मां से प्यारे हैं। यह है उसका जीवन, जिसके लिए कोई चार बूंद आंसू बहाने वाला भी नहीं। तब उसे वह दिन याद आया, जब उसकी सास जीती थी और खन्ना उड़ंकू न हुए थे। तब उसे सास का बात-बात पर बिगड़ना बुरा लगता था, आज उसे सास के उस क्रोध में स्नेह का रस घुला हुआ जान पड़ रहा था। तब वह सास से रूठ जाती थी और सास उसे दुलारकर मनाती थी। आज वह महीनों रूठी पड़ी रहे, किसे परवा है? एकाएक उसका मन उड़कर माता के चरणों में जा पहुंचा। हाय! आज अम्मां होती, तो क्यों उसकी यह दुर्दशा होती! उसके पास और कुछ न था, स्नेह-भरी गोद तो थी, प्रेम-भरा अंचल तो था, जिसमें मुंह डालकर वह रो लेती। लेकिन नहीं, वह रोएगी नहीं, उस देवी को स्वर्ग में दु:खी न बनाएगी। मेरे लिए वह जो कुछ ज्यादा से ज्यादा कर सकती थी, वह कर गई? मेरे कर्मों की साथिन होना तो उनके वश की बात न थी। और वह क्यों रोए? वह अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने गुजर-भर को कमा सकती है। वह कल ही गांधी-आश्रम से चीजें लेकर बेचना शुरू कर देगी। शर्म किस बात की? यही तो होगा, लोग उंगली दिखाकर कहेंगे—वह जा रही है खन्ना की बीवी। लेकिन इस शहर में रहूं ही क्यों? किसी दूसरे शहर में क्यों न चली जाऊं, जहां मुझे कोई जानता ही न हो। दस-बीस रुपये कमा लेना ऐसा क्या मुश्किल है। अपने पसीने की कमाई तो खाऊंगी, फिर तो कोई मुझ पर रोब न जमाएगा। यह महाशय इसीलिए तो इतना मिजाज करते हैं कि वह मेरा पालन करते हैं। मैं अब खुद अपना पालन करूंगी।

सहसा उसने मेहता को अपनी तरफ आते देखा। उसे उलझन हुई। इस वक्त वह संपूर्ण एकांत चाहती थी। किसी से बोलने की इच्छा न थी, मगर यहां भी एक महाशय आ ही गए। उस पर बच्चा रोने लगा।

मेहता ने समीप आकर विस्मय से पूछा—आप इस वक्त यहां कैसे आ गईं?

गोविन्दी ने बालक को चुप कराते हुए कहा—उसी तरह जैसे आप आ गए?

मेहता ने मुस्कराकर कहा—मेरी बात न चलाइए। धोबी का कुत्ता, न घर का न घाट का। लाइए, मैं बच्चे को चुप करा दूं।

'आपने यह कला कब सीखी?'

'अभ्यास करना चाहता हूं। इसकी परीक्षा जो होगी।'

'अच्छा ! परीक्षा के दिन करीब आ गए?'

'यह तो मेरी तैयारी पर है। जब तैयार हो जाऊंगा, बैठ जाऊंगा। छोटी-छोटी उपाधियों के लिए हम पढ़-पढ़कर आंखें फोड़ लिया करते हैं। यह तो जीवन-व्यापार की परीक्षा है।'

'अच्छी बात है, मैं भी देखूंगी, आप किस ग्रेड में पास होते हैं।'

यह कहते हुए उसने बच्चे को उनकी गोद में दे दिया। उन्होंने बच्चे को कई बार उछाला, तो वह चुप हो गया। बालकों की तरह डींग मारकर बोले—देखा आपने, कैसा मंतर के जोर से चुप कर दिया। अब मैं भी कहीं से एक बच्चा लाऊंगा।

गोविन्दी ने विनोद किया—बच्चा ही लाइएगा, या उसकी मां भी।

मेहता ने विनोद-भरी निराशा से सिर हिलाकर कहा—ऐसी औरत तो कहीं मिलती ही नहीं।

'क्यों, मिस मालती नहीं हैं? सुंदरी, शिक्षिता, गुणवती, मनोहारिणी, और आप क्या चाहते हैं?'

'मिस मालती में वह एक बात नहीं है, जो मैं अपनी स्त्री में देखना चाहता हूं।'

गोविन्दी ने इस कुत्सा का आनंद लेते हुए कहा—उसमें क्या बुराई है, सुनूं। भौंरे तो हमेशा घेरे रहते हैं। मैंने सुना है, आजकल पुरुषों को ऐसी ही औरतें पसंद आती हैं।

मेहता ने बच्चे के हाथों से अपनी मूंछों की रक्षा करते हुए कहा—मेरी स्त्री कुछ और ही ढंग की होगी। वह ऐसी होगी, जिसकी मैं पूजा कर सकूंगा।

गोविन्दी अपनी हंसी न रोक सकी—तो आप स्त्री नहीं, कोई प्रतिमा चाहते हैं। स्त्री तो ऐसी शायद ही कहीं मिले।

'जी नहीं, ऐसी एक देवी इसी शहर में है।'

'सच ! मैं भी उसके दर्शन करती, और उसी तरह बनने की चेष्टा करती।'

'आप उसे खूब जानती हैं। यह एक लखपती की पत्नी है, पर विलास को तुच्छ समझती है, जो उपेक्षा और अनादर सहकर भी अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होती, जो मातृत्व की वेदी पर अपने को बलिदान करती है, जिसके लिए त्याग ही सबसे बड़ा अधिकार है, और जो इस योग्य है कि उसकी प्रतिमा बनाकर पूजी जाय।'

गोविन्दी के हृदय में आनंद का कंपन हुआ। समझकर भी न समझने का अभिनय करते हुए बोली—ऐसी स्त्री की आप तारीफ करते हैं। मेरी समझ में तो वह दया के योग्य है।

मेहता ने आश्चर्य से कहा—दया के योग्य ! आप उसका अपमान करती हैं। वह आदर्श नारी है और जो आदर्श नारी हो सकती है, वही आदर्श पत्नी भी हो सकती है।

'लेकिन वह आदर्श इस युग के लिए नहीं है।'

'वह आदर्श सनातन है और अमर है। मनुष्य उसे विकृत करके अपना सर्वनाश कर रहा है।

गोविन्दी का अंत:करण खिला जा रहा था। ऐसी फुरेरियां वहां कभी न उठीं थीं। जितने आदमियों से उसका परिचय था, उनमें मेहता का स्थान सबसे ऊंचा था। उनके मुख से यह

प्रोत्साहन पाकर वह मतवाली हुई जा रही थी।

उसी नशे में बोली—तो चलिए, मुझे उनके दर्शन करा दीजिए।

मेहता ने बालक के कपोलों में मुंह छिपाकर कहा—वह तो यहीं बैठी हुई हैं।

'कहां, मैं तो नहीं देख रही हूं।'

'मैं उसी देवी से बोल रहा हूं।'

गोविन्दी ने जोर से कहकहा मारा—आपने आज मुझे बनाने की ठान ली, क्यों?

मेहता ने श्रद्धानत होकर कहा—देवीजी, आप मेरे साथ अन्याय कर रही हैं, और मुझसे ज्यादा अपने साथ। संसार में ऐसे बहुत कम प्राणी हैं, जिनके प्रति मेरे मन में श्रद्धा हो। उन्हीं में एक आप हैं। आपका धैर्य और त्याग और शील और प्रेम अनुपम है। मैं अपने जीवन में सबसे बड़े सुख की जो कल्पना कर सकता हूं, वह आप जैसी किसी देवी के चरणों की सेवा है। जिस नारीत्व को मैं आदर्श मानता हूं, आप उसकी सजीव प्रतिमा हैं।

गोविन्दी की आंखों से आनंद के आंसू निकल पड़े। इस श्रद्धा-कवच को धारण करके वह किस विपत्ति का सामना न करेगी? उसके रोम-रोम में जैसे मृदु-संगीत की ध्वनि निकल पड़ी। उसने अपने रमणीत्व का उल्लास मन में दबाकर कहा—आप दार्शनिक क्यों हुए मेहताजी? आपको तो कवि होना चाहिए था।

मेहता सरलता से हंसकर बोले—क्या आप समझती हैं, बिना दार्शनिक हुए ही कोई कवि हो सकता है? दर्शन तो केवल बीच की मंजिल है।

'तो अभी आप कवित्व के रास्ते में हैं, लेकिन आप यह भी जानते हैं, कवि का संसार में कभी सुख नहीं मिलता?'

'जिसे संसार दुःख कहता है, वही कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और बल, विद्या और बुद्धि, ये विभूतियां संसार को चाहे कितना ही मोहित कर लें, कवि के लिए यहां जरा भी आकर्षण नहीं है, उसके मोद और आकर्षण की वस्तु तो बुझी हुई आशाएं और मिटी हुई स्मृतियां और टूटे हुए हृदय के आंसू हैं। जिस दिन इन विभूतियों में उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है, कवि इनमें लय हो जाता है। मैंने आपकी दो-चार कविताएं पढ़ी हैं और उनमें जितनी पुलक, जितना कंपन, जितनी मधुर व्यथा, जितना रुलाने वाला उन्माद पाया है, वह मैं ही जानता हूं। प्रकृति ने हमारे साथ कितना बड़ा अन्याय किया है कि आप-जैसी कोई दूसरी देवी नहीं बनाई।

गोविन्दी ने हसरत-भरे स्वर में कहा—नहीं मेहताजी, यह आपका भ्रम है। ऐसी नारियां यहां आपको गली-गली में मिलेंगी और मैं तो उन सबसे गई-बीती हूं। जो स्त्री अपने पुरुष को प्रसन्न न रख सके, अपने को उसके मन की न बना सके, वह भी कोई स्त्री है? मैं तो कभी-कभी सोचती हूं कि मालती से यह कला सीखूं। जहां मैं असफल हूं, वहां वह सफल है। मैं अपनों को भी अपना नहीं बना सकती, वह दूसरों को भी अपना बना लेती है। क्या यह उसके लिए श्रेय की बात नहीं?

मेहता ने मुंह बनाकर कहा—शराब अगर लोगों को पागल कर देती है, तो इसीलिए उसे क्या पानी से अच्छा समझा जाय, जो प्यास बुझाता है, जिलाता है, और शांत करता है?

गोविन्दी ने विनोद की शरण लेकर कहा—कुछ भी हो, मैं तो यह देखती हूं कि पानी

मारा-मारा फिरता है और शराब के लिए घर-द्वार बिक जाते हैं, और शराब जितनी ही तेज और नशीली हो, उतनी ही अच्छी। मैं तो सुनती हूं, आप भी शराब के उपासक हैं?

गोविन्दी निराशा की उस दशा में पहुंच गई थी, जब आदमी को सत्य और धर्म में भी संदेह होने लगता है, लेकिन मेहता का ध्यान उधर न गया। उनका ध्यान तो वाक्य के अंतिम भाग पर ही चिमटकर रह गया। अपने मद-सेवन पर उन्हें जितनी लज्जा और क्षोभ आज हुआ, उतना बड़े-बड़े उपदेश सुनकर भी न हुआ था। तर्कों का उनके पास जवाब था और मुंह-तोड़, लेकिन इस मीठी चुटकी का उन्हें कोई जवाब न सूझा। वह पछताए कि कहां उन्हें शराब की युक्ति सूझी। उन्होंने खुद मालती की शराब से उपमा दी थी। उनका वार अपने ही सिर पर पड़ा।

लज्जित होकर बोले-हां देवीजी, मैं स्वीकार करता हूं कि मुझमें यह आसक्ति है। मैं अपने लिए उसकी जरूरत बतलाकर और उसके विचारोत्तेजक गुणों के प्रमाण देकर गुनाह का उज्र न करूंगा, जो गुनाह से भी बदतर है। आज आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि शराब की एक बूंद भी कंठ के नीचे न जाने दूंगा।

गोविन्दी ने सन्नाटे में आकर कहा-यह आपने क्या किया मेहताजी! मैं ईश्वर से कहती हूं, मेरा यह आशय न था, मुझे इसका दु:ख है।

'नहीं, आपको प्रसन्न होना चाहिए कि आपने एक व्यक्ति का उद्धार कर दिया।'

'मैंने आपका उद्धार कर दिया। मैं तो खुद आपसे अपने उद्धार की याचना करने जा रही हूं।'

'मुझसे? धन्य भाग।'

गोविन्दी ने करुण स्वर में कहा-हां, आपके सिवा मुझे कोई ऐसा नहीं नजर आता, जिसे मैं अपनी कथा सुनाऊं। देखिए, यह बात अपने ही तक रखिएगा, हालांकि आपको यह याद दिलाने की जरूरत नहीं। मुझे अब अपना जीवन असह्य हो गया है। मुझसे अब तक जितनी तपस्या हो सकी, मैंने की, लेकिन अब नहीं सहा जाता। मालती मेरा सर्वनाश किए डालती है। मैं अपने किसी शस्त्र से उस पर विजय नहीं पा सकती। आपका उस पर प्रभाव है। वह जितना आपका आदर करती है, शायद और किसी मर्द का नहीं करती। अगर आप किसी तरह मुझे उसके पंजे से छुड़ा दें, तो मैं जन्म-भर आपकी ऋणी रहूंगी। उसके हाथों मेरा सौभाग्य लुटा जा रहा है। आप अगर मेरी रक्षा कर सकते हैं, तो कीजिए। मैं आज घर से यह इरादा करके चली थी कि फिर लौटकर न आऊंगी। मैंने बड़ा जोर मारा कि मोह के सारे बंधनों को तोड़कर फेंक दूं, लेकिन औरत का हृदय बड़ा दुर्बल है मेहताजी! मोह उसका प्राण है। जीवन रहते मोह को तोड़ना उसके लिए असंभव है। मैंने आज तक अपनी व्यथा अपने मन में रखी, लेकिन आज मैं आपसे आंचल फैलाकर भिक्षा मांगती हूं। मालती से मेरा उद्धार कीजिए। मैं इस मायाविनी के हाथों मिटी जा रही हूं।...

उसका स्वर आंसुओं में डूब गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी।

मेहता अपनी नजरों में कभी इतने ऊंचे न उठे थे, उस वक्त भी नहीं, जब उनकी रचना को फ्रांस की एकाडमी ने शताब्दी की सबसे उत्तम कृति कहकर उन्हें बधाई दी थी। जिस प्रतिमा की वह सच्चे दिल से पूजा करते थे, जिसे मन में वह अपनी इष्टदेवी समझते थे और जीवन के असूझ प्रसंगों में जिससे आदेश पाने की आशा रखते थे, वह आज उनसे भिक्षा मांग रही थी। उन्हें अपने अंदर ऐसी शक्ति का अनुभव हुआ कि वह पर्वत को भी फाड़ सकते हैं, समुद्र को तैरकर पार कर सकते हैं। उन पर नशा-सा छा गया, जैसे बालक काठ के घोड़े पर सवार

होकर समझ रहा हो, वह हवा में उड़ रहा है। काम कितना असाध्य है, इसकी सुधि न रही। अपने सिद्धांतों की कितनी हत्या करनी पड़ेगी, बिल्कुल खयाल न रहा। आश्वासन के स्वर में बोले–आप मालती की ओर से निश्चिंत रहें। वह आपके रास्ते से हट जायगी। मुझे न मालूम था कि आप उससे इतनी दु:खी हैं। मेरी बुद्धि का दोष, आंखों का दोष, कल्पना का दोष। और क्या कहूं, वरना आपको इतनी वेदना क्यों सहनी पड़ती।

गोविन्दी ने सन्नाटे में आकर कहा–यह आपने क्या किया मेहताजी! मैं ईश्वर से कहती हूं, मेरा यह आशय न था, मुझे इसका दु:ख है।

'नहीं, आपको प्रसन्न होना चाहिए कि आपने एक व्यक्ति का उद्धार कर दिया।'

'मैंने आपका उद्धार कर दिया। मैं तो खुद आपसे अपने उद्धार की याचना करने जा रही हूं।'

'मुझसे ? धन्य भाग।'

गोविन्दी ने करुण स्वर में कहा–हां, आपके सिवा मुझे कोई ऐसा नहीं नजर आता, जिसे मैं अपनी कथा सुनाऊं। देखिए, यह बात अपने ही तक रखिएगा, हालांकि आपको यह याद दिलाने की जरूरत नहीं। मुझे अब अपना जीवन असह्य हो गया है। मुझसे अब तक जितनी तपस्या हो सकी, मैंने की, लेकिन अब नहीं सहा जाता। मालती मेरा सर्वनाश किए डालती है। मैं अपने किसी शस्त्र से उस पर विजय नहीं पा सकती। आपका उस पर प्रभाव है। वह जितना आपका आदर करती है, शायद और किसी मर्द का नहीं करती। अगर आप किसी तरह मुझे उसके पंजे से छुड़ा दें, तो मैं जन्म-भर आपकी ऋणी रहूंगी। उसके हाथों मेरा सौभाग्य लुटा जा रहा है। आप अगर मेरी रक्षा कर सकते हैं, तो कीजिए। मैं आज घर से यह इरादा करके चली थी कि फिर लौटकर न आऊंगी। मैंने बड़ा जोर मारा कि मोह के सारे बंधनों को तोड़कर फेंक दूं, लेकिन औरत का हृदय बड़ा दुर्बल है मेहताजी! मोह उसका प्राण है। जीवन रहते मोह को तोड़ना उसके लिए असंभव है। मैंने आज तक अपनी व्यथा अपने मन में रखी, लेकिन आज मैं आपसे आंचल फैलाकर भिक्षा मांगती हूं। मालती से मेरा उद्धार कीजिए। मैं इस मायाविनी के हाथों मिटी जा रही हूं।...

उसका स्वर आंसुओं में डूब गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी।

मेहता अपनी नजरों में कभी इतने ऊंचे न उठे थे, उस वक्त भी नहीं, जब उनकी रचना को फ्रांस की एकाडमी ने शताब्दी की सबसे उत्तम कृति कहकर उन्हें बधाई दी थी। जिस प्रतिमा की वह सच्चे दिल से पूजा करते थे, जिसे मन में वह अपनी इष्टदेवी समझते थे और जीवन के असूझ प्रसंगों में जिससे आदेश पाने की आशा रखते थे, वह आज उनसे भिक्षा मांग रही थी। उन्हें अपने अंदर ऐसी शक्ति का अनुभव हुआ कि वह पर्वत को भी फाड़ सकते हैं, समुद्र को तैरकर पार कर सकते हैं। उन पर नशा-सा छा गया, जैसे बालक काठ के घोड़े पर सवार होकर समझ रहा हो, वह हवा में उड़ रहा है। काम कितना असाध्य है, इसकी सुधि न रही। अपने सिद्धांतों की कितनी हत्या करनी पड़ेगी, बिल्कुल खयाल न रहा। आश्वासन के स्वर में बोले–आप मालती की ओर से निश्चिंत रहें। वह आपके रास्ते से हट जायगी। मुझे न मालूम था कि आप उससे इतनी दु:खी हैं। मेरी बुद्धि का दोष, आंखों का दोष, कल्पना का दोष। और क्या कहूं, वरना आपको इतनी वेदना क्यों सहनी पड़ती।

गोविन्दी को शंका हुई। बोली–लेकिन सिंहनी से उसका शिकार छीनना आसान नहीं है, यह समझ लीजिए।

मेहता ने दृढ़ता से कहा–नारी हृदय धरती के समान है, जिससे मिठास भी मिल सकती

है, कड़वापन भी। उसके अंदर पड़ने वाले बीज में जैसी शक्ति हो।

'आप पछता रहे होंगे, कहां से आज इससे मुलाकात हो गई।'

'मैं अगर कहूं कि मुझे आज ही जीवन का वास्तविक आनंद मिला है, तो शायद आपको विश्वास न आए।'

'मैंने आपके सिर पर इतना बड़ा भार रख दिया।'

मेहता ने श्रद्धा-मधुर स्वर में कहा—आप मुझे लज्जित कर रही हैं देवीजी! मैं कह चुका, मैं आपका सेवक हूं। आपके हित में मेरे प्राण भी निकल जाएं, तो मैं अपना सौभाग्य समझूंगा। इसे कवियों का भावावेश न समझिए, यह मेरे जीवन का सत्य है। मेरे जीवन का क्या आदर्श है, आपको यह बतला देने का मोह मुझसे नहीं रुक सकता। मैं प्रकृति का पुजारी हूं और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूं, जो प्रसन्न होकर हंसता है, दुःखी होकर रोता है और क्रोध में आकर मार डालता है। जो दुःख और सुख दोनों का दमन करते हैं, जो रोने को कमजोरी और हंसने को हल्कापन समझते हैं, उनसे मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे लिए आनंदमय क्रीड़ा है, सरल, स्वच्छंद, जहां कुत्सा, ईर्ष्या और जलन के लिए कोई स्थान नहीं। मैं भूत की चिंता नहीं करता, भविष्य की परवाह नहीं करता। मेरे लिए वर्तमान ही सब कुछ है। भविष्य की चिंता हमें कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर, रूढ़ियों और विश्वासों और इतिहासों के मलबे के नीचे दबे पड़े हैं, उठने का नाम ही नहीं लेते, वह सामर्थ्य ही नहीं रही। जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानव-धर्म को पूरा करने में लगनी चाहिए थी, सहयोग में, भाई-चारे में, वह पुरानी अदावतों का बदला लेने और बाप-दादों का ऋण चुकाने की भेंट हो जाती है। और जो यह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है, इस पर तो मुझे हंसी आती है। यह मोक्ष और उपासना अहंकार की पराकाष्ठा है, जो हमारी मानवता को नष्ट किए डालती है। जहां जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है, वहीं ईश्वर है, और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना है, और मोक्ष है। ज्ञानी कहता है, होंठों पर मुस्कराहट न आए, आंखों में आंसू न आए। मैं कहता हूं, अगर तुम हंस नहीं सकते और रो नहीं सकते तो तुम मनुष्य नहीं हो, पत्थर हो। वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नहीं है, कोल्हू है। मगर क्षमा कीजिए, मैं तो एक पूरी स्पीच ही दे गया। अब देर हो रही है, चलिए, मैं आपको पहुंचा दूं। बच्चा भी मेरी गोद में सो गया।

गोविन्दी ने कहा—मैं तो तांगा लाई हूं।

'तांगे को यहीं से विदा कर देता हूं।'

मेहता तांगे के पैसे चुकाकर लौटे, तो गोविन्दी ने कहा—लेकिन आप मुझे कहां ले जाएंगे?

मेहता ने चौंककर पूछा—क्यों, आपके घर पहुंचा दूंगा।

'वह मेरा घर नहीं है मेहताजी।'

'और क्या मिस्टर खन्ना का घर है?'

'यह भी क्या पूछने की बात है? अब वह घर मेरा नहीं रहा। जहां अपमान और धिक्कार मिले, उसे मैं अपना घर नहीं कह सकती, न समझ सकती हूं।'

मेहता ने दर्द-भरे स्वर में, जिसका एक-एक अक्षर उनके अंतःकरण से निकल रहा था, कहा—नहीं देवीजी, वह घर आपका है, और सदैव रहेगा। उस घर की आपने सृष्टि की

है, उसके प्राणियों की सृष्टि की है। और प्राण जैसे देह का संचालन करता है, उसी तरह आपने उसका संचालन किया है। प्राण निकल जाय, तो देह की क्या गति होगी? मातृत्व महान् गौरव का पद है देवीजी! और गौरव के पद में कहां अपमान और धिक्कार और तिरस्कार नहीं मिला? माता का काम जीवन-दान देना है। जिसके हाथों में इतनी अतुल शक्ति है, उसे इसकी क्या परवा कि कौन उससे रूठता है, कौन बिगड़ता है। प्राण के बिना जैसे देह नहीं रह सकती, उसी तरह प्राण का भी देह ही सबसे उपयुक्त स्थान है। मैं आपको धर्म और त्याग का क्या उपदेश दूं? आप तो उसकी सजीव प्रतिमा हैं। मैं तो यही कहूंगा कि....

गोविन्दी ने अधीर होकर कहा—लेकिन मैं केवल माता ही तो नहीं हूं, नारी भी तो हूं?

मेहता ने एक मिनट तक मौन रहने के बाद कहा—हां, हैं, लेकिन मैं समझता हूं कि नारी केवल माता है, और इसके उपरांत वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विजय है। एक शब्द में उसे लय कहूंगा—जीवन का, व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी। आप मिस्टर खन्ना के विषय में इतना ही समझ लें कि वह अपने होश में नहीं हैं। वह जो कुछ कहते हैं या करते हैं, वह उन्माद की दशा में करते हैं, मगर यह उन्माद शांत होने में बहुत दिन न लगेंगे, और वह समय बहुत जल्द आएगा, जब वह आपको अपनी इष्टदेवी समझेंगे।

गोविन्दी ने इसका कुछ जवाब न दिया। धीरे-धीरे कार की ओर चली। मेहता ने बढ़कर कार का द्वार खोल दिया। गोविन्दी अंदर जा बैठी। कार चली, मगर दोनों मौन थे।

गोविन्दी जब अपने द्वार पर पहुंचकर कार से उतरी, तो बिजली के प्रकाश में मेहता ने देखा, उसकी आंखें सजल हैं।

बच्चे घर में से निकल आए और 'अम्मां-अम्मां' कहते हुए माता से लिपट गए। गोविन्दी के मुख पर मातृत्व की उज्ज्वल गौरवमयी ज्योति चमक उठी।

उसने मेहता से कहा—इस कष्ट के लिए आपको बहुत धन्यवाद। और सिर नीचा कर लिया। आंसू की एक बूंद उसके कपोल पर आ गिरी थी।

मेहता की आंखें भी सजल हो गईं—इस ऐश्वर्य और विलास के बीच में भी यह नारी-हृदय कितना दुखी है।

उन्नीस

मिर्जा खुर्शेद का हाता क्लब भी है, कचहरी भी, अखाड़ा भी। दिन-भर जमघट लगा रहता है। मुहल्ले में अखाड़े के लिए कहीं जगह नहीं मिलती थी। मिर्जा ने एक छप्पर डलवाकर अखाड़ा बनवा दिया है, वहां नित्य सौ-पचास लड़ंतिये आ जुटते हैं। मिर्जाजी भी उनके साथ जोर करते हैं। मुहल्ले की पंचायतें भी यहीं होती हैं। मियां-बीवी और सास-बहू और भाई-भाई के झगड़े-टंटे यही चुकाए जाते हैं। मुहल्ले के सामाजिक जीवन का यही केंद्र है और राजनीतिक आंदोलन का भी। आए दिन सभाएं होती रहती हैं। यहीं स्वयंसेवक टिकते हैं, यहीं उनके प्रोग्राम बनते हैं, यहीं से नगर का राजनैतिक संचालन होता है। पिछले जलसे में मालती नगर-कांग्रेस-कमेटी

की सभानेत्री चुन ली गई है। तब से इस स्थान की रौनक और भी बढ़ गई।

गोबर को यहां रहते साल भर हो गया। अब वह सीधा-साधा ग्रामीण युवक नहीं है। उसने बहुत कुछ दुनिया देख ली और संसार का रंग-ढंग भी कुछ-कुछ समझने लगा है। मूल में वह अब भी देहाती है, पैसे को दांत से पकड़ता है, स्वार्थ को कभी नहीं छोड़ता, और परिश्रम से जी नहीं चुराता, न कभी हिम्मत हारता है, लेकिन शहर की हवा उसे भी लग गई है। उसने पहले महीने में तो केवल मजूरी की और आधा पेट खाकर थोड़े से रुपये बचा लिए। फिर वह कचालू और मटर और दही-बड़े के खोंचे लगाने लगा। इधर ज्यादा लाभ देखा, तो नौकरी छोड़ दी। गर्मियों में शर्बत और बरफ की दूकान भी खोल दी। लेन-देन में खरा था, इसलिए उसकी साख जम गई। जाड़े आए, तो उसने शर्बत की दुकान उठा दी और गर्म चाय पिलाने लगा। अब उसकी रोजना आमदनी ढाई-तीन रुपये से कम नहीं है। उसने अंग्रेजी फैशन के बाल कटवा लिए हैं, महीन धोती और पम्प-शू पहनता है। एक लाल ऊनी चादर खरीद ली और पान-सिगरेट का शौकीन हो गया है। सभाओं में आने-जाने से उसे कुछ-कुछ राजनीतिक ज्ञान भी हो चला है। राष्ट्र और वर्ग का अर्थ समझने लगा है। सामाजिक रूढ़ियों की प्रतिष्ठा और लोक-निंदा का भय अब उसमें बहुत कम रह गया है। आए दिन की पंचायतों ने उसे निस्संकोच बना दिया है। जिस बात के पीछे वह यहां घर से दूर, मुंह छिपाए पड़ा हुआ है, उसी तरह की, बल्कि उसमें भी कहीं निंदास्पद बातें यहां नित्य हुआ करती हैं, और कोई भागता नहीं। फिर वही क्यों इतना डरे और मुंह चुराए।

इतने दिनों में उसने एक पैसा भी घर नहीं भेजा। वह माता-पिता को रुपये-पैसे के मामले में इतना चतुर नहीं समझता। वे लोग तो रुपये पाते ही आकाश में उड़ने लगेंगे। दादा को तुरंत गया करने की और अम्मां को गहने बनवाने की धुन सवार हो जाएगी। ऐसे व्यर्थ के कामों के लिए उसके पास रुपये नहीं हैं। अब वह छोटा-मोटा महाजन है। पड़ोस के एक्केवालों, गाड़ीवानों और धोबियों को सूद पर रुपये उधार देता है। इस दस-ग्यारह महीने में ही उसने अपनी मेहनत और किफायत और पुरुषार्थ से अपना स्थान बना लिया है और अब झुनिया को यहीं लाकर रखने की बात सोच रहा है।

तीसरे पहर का समय है। वह सड़क के नल पर नहाकर आया है और शाम के लिए आलू उबाल रहा है कि मिर्जा खुर्शेद आकर द्वार पर खड़े हो गए। गोबर अब उनका नौकर नहीं है, पर अदब उसी तरह करता है और उनके लिए जान देने को तैयार रहता है। द्वार पर जाकर पूछा—क्या हुक्म है सरकार?

मिर्जा ने खड़े-खड़े कहा—तुम्हारे पास कुछ रुपये हों, तो दे दो। आज तीन दिन से बोतल खाली पड़ी हुई है, जी बहुत बेचैन हो रहा है।

गोबर ने इसके पहले भी दो-तीन बार मिर्जाजी को रुपये दिए थे, पर अब तक वसूल न सका था। तकाजा करते डरता था और मिर्जाजी रुपये लेकर देना न जानते थे। उनके हाथ में रुपये टिकते ही न थे। इधर आए, उधर गायब। यह तो न कह सका, मैं रुपये न दूंगा या मेरे पास रुपये नहीं हैं, शराब की निंदा करने लगा—आप इसे छोड़ क्यों नहीं देते सरकार? क्या इसके पीने से कुछ फायदा होता है?

मिर्जाजी ने कोठरी के अंदर आकर खाट पर बैठते हुए कहा—तुम समझते हो, मैं छोड़ना नहीं चाहता और शौक से पीता हूं। मैं इसके बगैर जिंदा नहीं रह सकता। तुम अपने रुपयों के लिए न डरो। मैं एक-एक कौड़ी अदा कर दूंगा।

गोबर अविचलित रहा—मैं सच कहता हूं मालिक। मेरे पास इस समय रुपये होते तो

आपसे इंकार करता?

'दो रुपये भी नहीं दे सकते?'

'इस समय तो नहीं हैं।'

'मेरी अंगूठी गिरो रख लो।'

गोबर का मन ललचा उठा, मगर बात कैसे बदले?

बोला—यह आप क्या कहते हैं मालिक, रुपये होते तो आपको दे देता, अंगूठी की कौन बात थी।

मिर्जा ने अपने स्वर में बड़ा दीन आग्रह भरकर कहा—मैं फिर तुमसे कभी न मांगूंगा गोबर। मुझसे खड़ा नहीं हुआ जा रहा है। इस शराब की बदौलत मैंने लाखों की हैसियत बिगाड़ दी और भिखारी हो गया। अब मुझे भी जिद पड़ गई है कि चाहे भीख ही मांगनी पड़े, इसे छोडूंगा नहीं।

जब गोबर ने अबकी बार इंकार किया, तो मिर्जा साहब निराश होकर चले गए। शहर में उनके हजारों मिलने वाले थे। कितने ही उनकी बदौलत बन गए थे। कितनों ही की गाढ़े समय पर मदद की थी, पर ऐसों से वह मिलना भी न पसंद करते थे। उन्हें ऐसे हजारों लटके मालूम थे, जिनसे वह समय-समय पर रुपयों के ढेर लगा देते थे, पर पैसे की उनकी निगाह में कोई कद्र न थी। उनके हाथ में रुपये जैसे काटते थे। किसी-न-कसी बहाने उड़ाकर ही उनका चित्त शांत होता था।

गोबर आलू छीलने लगा। साल-भर के अंदर ही वह इतना काइयां हो गया था और पैसा जोड़ने में इतना कुशल कि अचरज होता था। जिस कोठरी में रहता है, वह मिर्जा साहब ने दी है। इस कोठरी और बरामदे का किराया बड़ी आसानी से पांच रुपया मिल सकता है। गोबर लगभग साल-भर से उसमें रहता है, लेकिन मिर्जा ने न कभी किराया मांगा, न उसने दिया। उन्हें शायद खयाल भी न था कि इस कोठरी का कुछ किराया भी मिल सकता है।

थोड़ी देर में एक एक्केवाला रुपये मांगने आया। अलादीन नाम था, सिर घुटा हुआ, खिचड़ी दाढ़ी, उसकी लड़की विदा हो रही थी। पांच रुपये की उसे जरूरत थी। गोबर ने उसे एक आना रुपया सूद पर दे दिए।

अलादीन ने धन्यवाद देते हुए कहा—भैया, अब बाल-बच्चों को बुला लो। कब तक हाथ से ठोंकते रहोगे।

गोबर ने शहर के खर्च का रोना रोया—थोड़ी आमदनी में गृहस्थी कैसे चलेगी?

अलादीन बीड़ी जलाता हुआ बोला—खरच अल्लाह देगा भैया। सोचो, कितना आराम मिलेगा। मैं तो कहता हूं, जितना तुम अकेले खरच करते हो, उसी में गृहस्थी चल जाएगी। औरत के हाथ में बड़ी बरक्कत होती है। खुदा कसम, जब मैं अकेला यहां रहता था, तो चाहे कितना ही कमाऊं, खा-पी सब बराबर। बीड़ी-तमाखू को भी पैसा न रहता। उस पर हैरानी। थके-मांदे आओ, तो घोड़े को खिलाओ और टहलाओ। फिर नानबाई की दुकान पर दौड़ो। नाक में दम आ गया। जब से घरवाली आ गई है, उसी कमाई में उसकी रोटियां भी निकल आती हैं और आराम भी मिलता है। आखिर आदमी आराम के लिए ही तो कमाता है। जब जान खपाकर भी आराम न मिला, तो जिंदगी ही गारत हो गई। मैं तो कहता हूं, तुम्हारी कमाई बढ़ जायगी भैया। जितनी देर में आलू और मटर उबालते हो, उतनी देर में दो-चार प्याले चाय बेच लोगे। अब चाय बारहों मास चलती है।

रात को लेटोगे तो घरवाली पांव दबाएगी। सारी थकान मिट जाएगी।

यह बात गोबर के मन में बैठ गई। जी उचाट हो गया। अब तो वह झुनिया को लाकर ही रहेगा। आलू चूल्हे पर चढ़े रह गए और उसने घर चलने की तैयारी कर दी, मगर याद आया कि होली आ रही है, इसलिए होली का सामान भी लेता चले। कृपण लोगों में उत्सवों पर दिल खोलकर खर्च करने की जो एक प्रवृत्ति होती है, वह उसमें भी सजग हो गई। आखिर इसी दिन के लिए तो कौड़ी-कौड़ी जोड़ रहा था। वह मां, बहनों और झुनिया सबके लिए एक-एक जोड़ी साड़ी ले जाएगा। होरी के लिए एक धोती और एक चादर। सोना के लिए तेल की शीशी ले जायगा, और एक जोड़ा चप्पल। रूपा के लिए एक जापानी गुड़िया और झुनिया के लिए एक पिटारी, जिसमें तेल, सिंदूर और आइना होगा। बच्चे के लिए टोप और फ्राक, जो बाजार में बना-बनाया मिलता है। उसने रुपये निकाले और बाजार चला। दोपहर तक सारी चीजें आ गईं। बिस्तर भी बंध गया, मुहल्ले वालों को खबर हो गई, गोबर घर जा रहा है। कई मर्द-औरतें उसे विदा करने आए। गोबर ने उन्हें अपना घर सौंपते हुए कहा—तुम्हीं लोगों पर छोड़े जाता हूं। भगवान् ने चाहा तो होली के दूसरे दिन लौटूंगा।

एक युवती ने मुस्कराकर कहा—मेहरिया को बिना लिए न आना, नहीं घर में न घुसने पाओगे।

दूसरी प्रौढ़ा ने शिक्षा दी—हां, और क्या, बहुत दिनों तक चूल्हा फूंक चुके। ठिकाने से रोटी तो मिलेगी।

गोबर ने सबको राम-राम किया। हिंदू भी थे, मुसलमान भी थे, सभी में मित्रभाव था, सब एक-दूसरे के दु:ख-दर्द के साथी थे। रोजा रखने वाले रोजा रखते थे। एकादशी रखने वाले एकादशी। कभी-कभी विनोद-भाव से एक-दूसरे पर छींटे भी उड़ा लेते थे। गोबर अलादीन की नमाज को उठा-बैठी कहता, अलादीन पीपल के नीचे स्थापित सैकड़ों छोटे-बड़े शिवलिंगों को बटखरे बनाता, लेकिन सांप्रदायिक द्वेष का नाम भी न था। गोबर घर जा रहा है। सब उसे हंसी-खुशी विदा करना चाहते हैं।

इतने में भूरे इक्का लेकर आ गया। अभी दिन-भर का धावा मारकर आया था। खबर मिली, गोबर जा रहा है। वैसे ही एक्का इधर फेर दिया। घोड़े ने आपत्ति की। उसे कई चाबुक लगाए। गोबर ने एक्के पर सामान रखा, एक्का बढ़ा, पहुंचाने वाले गली के मोड़ तक पहुंचाने आए, तब गोबर ने सबको राम-राम किया और एक्के पर बैठ गया।

सड़क पर एक्का सरपट दौड़ा जा रहा था। गोबर घर जाने की खुशी में मस्त था। भूरे उसे घर पहुंचाने की खुशी में मस्त था। और घोड़ा था पानीदार। उड़ा चला जा रहा था। बात की बात में स्टेशन आ गया।

गोबर ने प्रसन्न होकर एक रुपया कमर से निकालकर भूरे की तरफ बढ़ाकर कहा—लो, घर वालों के लिए मिठाई लेते जाना।

भूरे ने कृतज्ञता-भरे तिरस्कार से उसकी ओर देखा। तुम मुझे गैर समझते हो भैया। एक दिन जरा एक्के पर बैठ गए तो मैं तुमसे इनाम लूंगा। जहां तुम्हारा पसीना गिरे, वहां खून गिराने को तैयार हूं। इतना छोटा दिल नहीं पाया है। और ले भी लूं तो घरवाली मुझे जीता न छोड़ेगी?

गोबर ने फिर कुछ न कहा। लज्जित होकर अपना असबाब उतारा और टिकट लेने चल दिया।

बीस

फागुन अपनी झोली में नवजीवन की विभूति लेकर आ पहुंचा था। आम के पेड़ दोनों हाथों से बौर के सुगंध बांट रहे थे, और कोयल आम की डालियों में छिपी हुई संगीत का गुप्त दान कर रही थी।

गांवों में ऊख की बोआई लग गई थी। अभी धूप नहीं निकली, पर होरी खेत में पहुंच गया। धनिया, सोना, रूपा, तीनों तलैया से ऊख के भीगे हुए गट्ठे निकाल-निकालकर खेत में ला रही हैं, और होरी गंड़ासे से ऊख के टुकड़े कर रहा है। अब वह दातादीन की मजूरी करने लगा है। अब वह किसान नहीं, मजूर है। दातादीन से अब उसका पुरोहित-जजमान का नाता नहीं, मालिक-मजदूर का नाता है।

दातादीन ने आकर डांटा—हाथ और फुरती से चलाओ होरी! इस तरह तो तुम दिन-भर में न काट सकोगे।

होरी ने आहत अभिमान के साथ कहा—चला ही तो रहा हूं महाराज, बैठा तो नहीं हूं।

दातादीन मजूरों से रगड़कर काम लेते थे, इसलिए उनके यहां कोई मजूर टिकता न था। होरी उनका स्वभाव जानता था, पर जाता कहां।

पंडित उसके सामने खड़े होकर बोले—चलाने-चलाने में भेद है। एक चलाना वह है कि घड़ी भर में काम तमाम, दूसरा चलाना वह है कि दिन-भर में भी एक बोझ ऊख न कटे।

होरी ने विष का घूंट पीकर और जोर से हाथ चलाना शुरू किया। इधर महीनों से उसे पेट-भर भोजन न मिलता था। प्राय: एक जून तो चबेने पर ही कटता था। दूसरे जून भी कभी आधा पेट भोजन मिला, कभी कड़ाका हो गया। कितना चाहता था कि हाथ और जल्दी-जल्दी उठे, मगर हाथ जवाब दे रहा था। इस पर दातादीन सिर पर सवार थे। क्षण-भर दम ले लेने पाता, तो ताजा हो जाता, लेकिन दम कैसे ले? घुड़कियां पड़ने का भय था।

धनियां और दोनों लड़कियां ऊख के गट्ठे लिए गीली साड़ियों से लथपथ, कीचड़ में सनी हुई आईं, और गट्ठे पटककर दम मारने लगीं कि दातादीन ने डांट बताई—यहां तमासा क्या देख रही है धनिया? जा अपना काम कर। पैसे सेंत में नहीं आते। पहर भर में तू एक खेप लाई है। इस हिसाब से तो दिन-भर में भी ऊख न ढुल पाएगी।

धनिया ने त्योरी बदलकर कहा—क्या जरा दम भी न लेने दोगे महाराज! हम भी तो आदमी हैं। तुम्हारी मजूरी करने से बैल नहीं हो गए। जरा मूड़ पर एक गट्ठा लादकर लाओ तो हाल मालूम हो।

दातादीन बिगड़ उठे—पैसे देते हैं काम करने के लिए, दम मारने के लिए नहीं। दम लेना है, तो घर जाकर लो।

धनिया कुछ कहने ही जा रही थी कि होरी ने फटकार बताई—तू जाती क्यों नहीं धनिया? क्यों हुज्जत कर रही है?

धनिया ने बीड़ा उठाते हुए कहा—जा तो रही हूं, लेकिन चलते हुए बैल को औंगी न देना चाहिए।

दातादीन ने लाल आंखें निकाल लीं—जान पड़ता है, अभी मिजाज ठंडा नहीं हुआ। जभी दाने-दाने को मोहताज हो।

धनिया भला क्यों चुप रहने लगी थी—तुम्हारे द्वार पर भीख मांगने तो नहीं जाती।

दातादीन ने पैने स्वर में कहा—अगर यही हाल रहा तो भीख भी मांगोगी।

धनिया के पास जवाब तैयार था, पर सोना उसे खींच कर तलैया की ओर ले गई, नहीं, बात बढ़ जाती, लेकिन आवाज की पहुंच के बाहर जाकर दिल की जलन निकाली—भीख मांगो तुम, जो भिखमंगों की जात हो। हम तो मजूर ठहरे, जहां काम करेंगे, वहीं चार पैसे पाएंगे।

सोना ने उसका तिरस्कार किया—अम्मां जाने भी दो। तुम तो समय नहीं देखतीं, बात-बात पर लड़ने बैठ जाती हो।

होरी उन्मत्त की भांति सिर से ऊपर गंड़ासा उठा-उठाकर ऊख के टुकड़ों के ढेर करता जाता था। उसके भीतर जैसे आग लगी हुई थी। उसमें अलौकिक शक्ति आ गई थी। उसमें जो पीढ़ियों का संचित पानी था, वह इस समय जैसे भाप बनकर उसे यंत्र की भांति अंध-शक्ति प्रदान कर रहा था। उसकी आंखों में अंधेरा छाने लगा। सिर में फिरकी-सी चल रही थी। फिर भी उसके हाथ यंत्र की गति से, बिना थके, बिना रुके, उठ रहे थे। उसकी देह से पसीने की धार निकल रही थी, मुंह से फिचकुर छूट रहा था, और सिर में धम-धम का शब्द हो रहा था, पर उस पर जैसे कोई भूत सवार हो गया हो।

सहसा उसकी आंखों में निविड़ अंधकार छा गया। मालूम हुआ, वह जमीन में धंसा जा रहा है। उसने संभल्ने की चेष्टा में शून्य में हाथ फैला दिए और अचेत हो गया। गंड़ासा हाथ से छूट गया और वह औंधे मुंह जमीन पर पड़ गया है।

उसी वक्त धनिया ऊख का गट्ठा लिए आई। देखा तो कई आदमी होरी को घेरे खड़े हैं। एक हलवाहा दातादीन से कह रहा था—मालिक, तुम्हें ऐसी बात न कहनी चाहिए, जो आदमी को लग जाय। पानी मरते ही मरते तो मरेगा।

धनिया ऊख का गट्ठा पटक पागलों की तरह दौड़ी हुई होरी के पास गई, और उसका सिर अपनी जांघ पर रखकर विलाप करने लगी—तुम मुझे छोड़कर कहां जाते हो? अरी सोना, दौड़कर पानी ला और जाकर सोभा से कह दे, दादा बेहाल हैं। हाय भगवान्! अब किसकी होकर रहूंगी, कौन मुझे धनिया कहकर पुकारेगा।...

लाला पटेश्वरी भागे हुए आए और स्नेह-भरी कठोरता से बोले—क्या करती है धनिया, होस संभाल। होरी को कुछ नहीं हुआ। गर्मी से अचेत हो गए हैं। अभी होस आया जाता है। दिल इतना कच्चा कर लेगी तो कैसे काम चलेगा?

धनिया ने पटेश्वरी के पांव पकड़ लिए और रोती हुई बोली—क्या करूं लालाजी, जी नहीं मानता। भगवान् ने सब कुछ हर लिया। मैं सबर कर गई। अब सबर नहीं होता। हाय रे, मेरा हीरा!

सोना पानी लाई। पटेश्वरी ने होरी के मुंह पर पानी के छींटे दिए। कई आदमी अपनी-अपनी अंगोछियों से हवा कर रहे थे। होरी की देह ठंडी पड़ गई थी। पटेश्वरी को भी चिंता हुई, पर धनिया को वह बराबर साहस देते जाते थे।

धनिया अधीर होकर बोली—ऐसा कभी नहीं हुआ था। लाला, कभी नहीं।

पटेश्वरी ने पूछा—रात कुछ खाया था?

धनिया बोली—हां, रात रोटियां पकाई थीं, लेकिन आजकल हमारे ऊपर जो बीत रही है, वह क्या तुमसे छिपा है? महीनों से भरपेट रोटी नसीब नहीं हुई। कितना समझाती हूं, जान

रखकर काम करो, लेकिन आराम तो हमारे भाग्य में लिखा ही नहीं।

सहसा होरी ने आंखें खोल दीं और उड़ती हुई नजरों से इधर-उधर ताका।

धनिया जैसे जी उठी। विह्वल होकर उसके गले से लिपटकर बोली—अब कैसा जी है तुम्हारा? मेरे तो परान नहों (नाखूनों) में समा गए थे।

होरी ने कातर स्वर में कहा—अच्छा हूं। न जाने कैसा जी हो गया था।

धनिया ने स्नेह में डूबी भर्त्सना से कहा—देह में दम तो है नहीं, काम करते हो जान देकर। लड़कों का भाग था, नहीं तुम तो ले ही डूबे थे।

पटेश्वरी ने हंसकर कहा—धनिया तो रो-पीट रही थी।

होरी ने आतुरता से पूछा—सचमुच तू रोती थी धनिया?

धनिया ने पटेश्वरी को पीछे ढकेलकर कहा—इन्हें बकने दो तुम। पूछो, यह क्यों कागद छोड़कर घर से दौड़े आए थे?

पटेश्वरी ने चिढ़ाया—तुम्हें हीरा-हीरा कहकर रोती थी। अब लाज के मारे मुकरती है। छाती पीट रही थी।

होरी ने धनिया को सजल नेत्रों से देखा—पगली है और क्या। अब न जाने कौन-सा सुख देखने के लिए मुझे जिलाए रखना चाहती है।

दो आदमी होरी को टिकाकर घर लाए और चारपाई पर लिटा दिया। दातादीन तो कुढ़ रहे थे कि बोआई में देर हुई जाती है, पर मातादीन इतना निर्दयी न था। दौड़कर घर से गर्म दूध लाया, और एक शीशी में गुलाबजल भी लेता आया। और दूध पीकर होरी में जैसे जान आ गई।

उसी वक्त गोबर एक मजदूर के सिर पर अपना सामान लादे आता दिखाई दिया।

गांव के कुत्ते पहले तो भूंकते हुए उसकी तरफ दौड़े। फिर दुम हिलाने लगे। रूपा ने कहा—'भैया आए, भैया आए', और तालियां बजाती हुई दौड़ी। सोना भी दो-तीन कदम आगे बढ़ी, पर अपने उछाह को भीतर ही दबा गई। एक साल में उसका यौवन कुछ और संकोचशील हो गया था। झुनिया भी घूंघट निकाले द्वार पर खड़ी हो गई।

गोबर ने मां-बाप के चरण छुए और रूपा को गोद में उठाकर प्यार किया। धनिया ने उसे आशीर्वाद दिया और उसका सिर अपनी छाती से लगाकर मानो अपने मातृत्व का पुरस्कार पा गई। उसका हृदय गर्व से उमड़ा पड़ता था। आज तो वह रानी है। इस फटे-हाल में भी रानी है। कोई उसकी आंखें देखे, उसका मुख देखे, उसका हृदय देखे, उसकी चाल देखे। रानी भी लजा जायगी। गोबर कितना बड़ा हो गया है और पहन-ओढ़कर कैसा भलामानस लगता है। धनिया के मन में कभी अमंगल की शंका न हुई थी। उसका मन कहता था, गोबर कुशल से है और प्रसन्न है। आज उसे आंखों देखकर मानो उसको जीवन के धूल-धक्कड़ में गुम हुआ रत्न मिल गया है, मगर होरी ने मुंह फेर लिया था।

गोबर ने पूछा—दादा को क्या हुआ है, अम्मां?

धनिया घर का हाल कहकर उसे दु:खी न करना चाहती थी। बोली—कुछ नहीं है बेटा जरा सिर में दर्द है। चलो, कपड़े उतारो, हाथ-मुंह धोओ? कहां थे तुम इतने दिन? भला, इस तरह कोई घर से भागता है? और कभी एक चिट्ठी तक न भेजी? आज साल-भर के बाद जाके सुधि ली है। तुम्हारी राह देखते-देखते आंखें फूट गईं। यही आसा बंधी रहती थी कि कब वह दिन आएगा और कब तुम्हें देखूंगी। कोई कहता था, मिरच भाग गया, कोई डमरा टापू बताता

था। सुन-सुनकर जान सूखी जाती थी। कहां रहे इतने दिन?

गोबर ने शरमाते हुए कहा-कहीं दूर नहीं गया था अम्मां, यहां लखनऊ में तो था।

'और इतने नियरे रहकर भी कभी एक चिट्ठी न लिखी?'

उधर सोना और रूपा भीतर गोबर का सामान खोलकर चीज का बांट-बखरा करने में लगी हुई थीं, लेकिन झुनिया दूर खड़ी थी। उसके मुख पर आज मान का शोख रंग झलक रहा है। गोबर ने उसके साथ जो व्यवहार किया है, आज वह उसका बदला लेगी। असामी को देखकर महाजन उससे वह रुपये वसूल करने को भी व्याकुल हो रहा है, जो उसने बट्टेखाते में डाल दिए थे। बच्चा उन चीजों की ओर लपक रहा था और चाहता था, सब-का-सब एक साथ मुंह में डाल ले, पर झुनिया उसे गोद से उतरने न देती थी।

सोना बोली-भैया तुम्हारे लिए ऐना-कंघी लाए हैं भाभी।

झुनिया ने उपेक्षा भाव से कहा-मुझे ऐना-कंघी न चाहिए। अपने पास रखे रहें।

रूपा ने बच्चे की चमकीली टोपी निकाली-ओ हो! यह तो चुन्नू की टोपी है। और उसे बच्चे के सिर पर रख दिया।

झुनिया ने टोपी उतारकर फेंक दी और सहसा गोबर को अंदर आते देखकर वह बालक को लिए अपनी कोठरी में चली गई। गोबर ने देखा, सारा सामान खुला पड़ा है। उसका जी तो चाहता है, पहले झुनिया से मिलकर अपना अपराध क्षमा कराए, लेकिन अंदर जाने का साहस नहीं होता। वहीं बैठ गया और चीजें निकाल-निकाल हर एक को देने लगा। मगर रूपा इसलिए फूल गई कि उसके लिए चप्पल क्यों नहीं आए, और सोना उसे चिढ़ाने लगी, तू क्या करेगी चप्पल लेकर, अपनी गुड़िया से खेल। हम तो तेरी गुड़िया देखकर नहीं रोते, तू मेरी चप्पल देखकर क्यों रोती है? मिठाई बांटने की जिम्मेदारी धनिया ने अपने ऊपर ली। इतने दिनों के बाद लड़का कुशल से घर आया है। वह गांव-भर में बैना बंटवाएगी। एक गुलाबजामुन रूपा के लिए ऊंट के मुंह में जीरे के समान था। वह चाहती थी, हांडी उसके सामने रख दी जाय, वह कूद-कूद खाय।

अब संदूक खुला और उसमें से साड़ियां निकलने लगीं। सभी किनारदारी थीं, जैसी पटेश्वरी लाला के घर में पहनी जाती हैं, मगर हैं बड़ी हल्की। ऐसी महीन साड़ियां भला कै दिन चलेंगी। बड़े आदमी जितनी महीन साड़ियां चाहे पहनें। उनकी मेहरियों को बैठने और सोने के सिवा और कौन काम है! यहां तो खेत-खलिहान सभी कुछ है। अच्छा! होरी के लिए धोती के अतिरिक्त एक दुपट्टा भी है।

धनिया प्रसन्न होकर बोली-यह तुमने बड़ा अच्छा काम किया बेटा! इनका दुपट्टा बिल्कुल तार-तार हो गया था।

गोबर को उतनी देर में घर की परिस्थिति का अंदाज हो गया था। धनिया की साड़ी में कई पैबंद लगे हुए थे। सोना की साड़ी सिर पर फटी हुई थी और उसमें से उसके बाल दिखाई दे रहे थे। रूपा की धोती में चारों तरफ झालरें-सी लटक रही थीं। सभी के चेहरे रूखे, किसी की देह पर चिकनाहट नहीं। जिधर देखो, विपन्नता का साम्राज्य था।

लड़कियां तो साड़ियों में मगन थीं। धनिया को लड़के के लिए भोजन की चिंता हुई। घर में थोड़ा-सा जौ का आटा सांझ के लिए संचकर रखा हुआ था। इस वक्त तो चबेने पर कटती थी, मगर गोबर अब वह गोबर थोड़े ही है। उससे जौ का आटा खाया भी जायगा? परदेस में

न जाने क्या-क्या खाता-पीता रहा होगा। जाकर दुलारी की दुकान से गेहूं का आटा, चावल-घी उधार लाई। इधर महीनों से सहुआइन एक पैसे की चीज उधार न देती थी, पर आज उसने एक बार भी न पूछा, पैसे कब दोगी।

उसने पूछा–गोबर तो खूब कमा के आया है न?

धनिया बोली–अभी तो कुछ नहीं खुला दीदी। अभी मैंने भी कुछ कहना उचित न समझा। हां, सबके लिए किनारदार साड़ियां लाया है। तुम्हारे आसिरबाद से कुसल से लौट आया, मेरे लिए तो यही बहुत है।

दुलारी ने असीस दिया–भगवान् करे, जहां रहे कुसल से रहे। मां-बाप को और क्या चाहिए, लड़का समझदार है। और छोकरों की तरह उड़ाऊ नहीं है। हमारे रुपये अभी न मिलें, तो ब्याज तो दे दो। दिन-दिन बोझ बढ़ ही तो रहा है।

इधर सोना चुन्नू को उसका फ्राक और टोप और जूता पहनाकर राजा बना रही थी। बालक इन चीजों को पहनने से ज्यादा हाथ में लेकर खेलना पसंद करता था। अंदर गोबर और झुनिया के मान-मनौवल का अभिनय हो रहा था।

झुनिया ने तिरस्कार-भरी आंखों से देखकर कहा–मुझे लाकर यहां बैठा दिया। आप परदेस की राह ली। फिर न खोज न खबर ली कि मरती है या जीती है। साल-भर के बाद अब जाकर तुम्हारी नींद टूटी है। कितने बड़े कपटी हो तुम। मैं तो सोचती हूं कि तुम मेरे पीछे-पीछे आ रहे हो और आप उड़े, तो साल-भर के बाद लौटे। मरदों का विस्वास ही क्या, कहीं कोई और ताक ली होगी, सोचा होगा, एक घर के लिए है ही, एक बाहर के लिए भी हो जाय।

गोबर ने सफाई दी–झुनिया, मैं भगवान् को साच्छी देकर कहता हूं, जो मैंने कभी किसी की ओर ताका भी हो। लाज और डर के मारे घर से भागा जरूर, मगर तेरी याद एक छन के लिए भी मन से न उतरती थी। अब तो मैंने तय कर लिया है कि तुझे भी लेता जाऊंगा, इसीलिए आया हूं। तेरे घर वाले तो बहुत बिगड़े होंगे?

'दादा तो मेरी जान लेने पर ही उतारू थे।'

'सच।'

'तीनों जने यहां चढ़ आए थे। अम्मां ने ऐसा डांटा कि मुंह लेकर रह गए। हां, हमारे दोनों बैल खोल ले गए।'

'इतनी बड़ी जबर्दस्ती। और दादा कुछ बोले नहीं?'

'दादा अकेले किस-किससे लड़ते। गांव वाले तो नहीं ले जाने देते थे, लेकिन दादा ही भलमनसी में आ गए, तो और लोग क्या करते?'

'तो आजकल खेती-बारी कैसे हो रही है?'

'खेती-बारी सब टूट गई। थोड़ी-सी पंडित महाराज के साझे में है। ऊख बोई ही नहीं गई।'

गोबर की कमर में इस समय दो सौ रुपये थे। उसकी गर्मी यों भी कम न थी। यह हाल सुनकर तो उसके बदन में आग ही लग गई।

बोला–तो फिर पहले मैं उन्हीं से जाकर समझता हूं। उनकी यह मजाल कि मेरे द्वार पर से बैल खोल ले जायं। यह डाका है, खुला हुआ डाका। तीन-तीन साल को चले जायंगे तीनों। यों न देंगे, तो अदालत से लूंगा। सारा घमंड तोड़ दूंगा।

वह उसी आवेश में चला था कि झुनिया ने पकड़ लिया और बोली–तो चले जाना, अभी

ऐसी क्या जल्दी है? कुछ आराम कर लो, कुछ खा-पी लो। सारा दिन तो पड़ा है। यहां बड़ी-बड़ी पंचायत हुई। पंचायत ने अस्सी रुपये डांड़ के लगाए। तीस मन अनाज ऊपर। उसी में तो और तबाही आ गई।

सोना बालक को कपड़े-जूते पहनाकर लाई। कपड़े पहनकर वह जैसे सचमुच राजा हो गया था। गोबर ने उसे गोद में ले लिया, पर इस समय बालक के प्यार में उसे आनंद न आया। उसका रक्त खौल रहा था और कमर के रुपये आंच और तेज कर रहे थे। वह एक-एक से समझेगा। पंचों को उस पर डांड़ लगाने का अधिकार क्या है? कौन होता है कोई उसके बीच में बोलने वाला? उसने एक औरत रख ली, तो पंचों के बाप का क्या बिगाड़ा? अगर इसी बात पर वह फौजदारी में दावा कर दे, तो लोगों के हाथों में हथकड़ियां पड़ जाएं। सारी गृहस्थी तहस-नहस हो गई। क्या समझ लिया है उसे इन लोगों ने।

बच्चा उसकी गोद में जरा-सा मुस्कराया, फिर जोर से चीख उठा, जैसे कोई डरावनी चीज देख ली हो।

झुनिया ने बच्चे को उसकी गोद से ले लिया और बोली—अब जाकर नहा-धो लो। किस सोच में पड़ गए? यहां सबसे लड़ने लगो, तो एक दिन निबाह न हो। जिसके पास पैसे हैं, वही बड़ा आदमी है, वही भला आदमी है। पैसे न हों, तो उस पर सभी रोब जमाते हैं।

'मेरा गधापन था कि घर से भागा, नहीं देखता, कैसे कोई एक धेला डांड़ लेता है।'

'शहर की हवा खा आए हो, तभी ये बातें सूझने लगी हैं, नहीं घर से भागते ही क्यों।'

'यही जी चाहता है कि लाठी उठाऊं और पटेश्वरी, दातादीन, झिंगुरी, सब सालों को पीटकर गिरा दूं और उनके पेट से रुपये निकाल लूं।'

'रुपये की बहुत गर्मी चढ़ी है साइत। लाओ निकालो, देखूं, इतने दिन में क्या कमा लाए हो?'

उसने गोबर की कमर में हाथ लगाया। गोबर खड़ा होकर बोला—अभी क्या कमाया, हां, अब तुम चलोगी, तो कमाऊंगा। साल-भर तो सहर का रंग-ढंग पहचानने ही में लग गया।

'अम्मां जाने देंगी, तब तो?'

'अम्मां क्यों न जाने देंगी? उनसे मतलब?'

'वाह! मैं उनकी राजी बिना न जाऊंगी। तुम तो छोड़कर चलते बने। और मेरा कौन था यहां? वह अगर घर में न घुसने देतीं तो मैं कहां जाती? जब तक जीऊंगी, उनका जस गाऊंगी और तुम भी क्या परदेस ही करते रहोगे?'

'और यहां बैठकर क्या करूंगा? कमाओ और मरो, इसके सिवा और यहां क्या रखा है? थोड़ी-सी अक्कल हो और आदमी काम करने से न डरे, तो वहां भूखों नहीं मर सकता। यहां तो अक्कल कुछ काम नहीं करती। दादा क्यों मुंह फुलाए हुए हैं?'

'अपने भाग बखानो कि मुंह फुलाकर छोड़ देते हैं। तुमने उपद्रव तो इतना बड़ा किया था कि उस क्रोध में पा जाते, तो मुंह लाल कर देते।'

'तो तुम्हें भी खूब गालियां देते होंगे?'

'कभी नहीं, भूलकर भी नहीं। अम्मां तो पहले बिगड़ी थीं, लेकिन दादा ने तो कभी कुछ नहीं कहा, जब बुलाते हैं, बड़े प्यार से। मेरा सिर भी दुखता है, तो बेचैन हो जाते हैं। अपने बाप को देखते तो मैं इन्हें देवता समझती हूं। अम्मां को समझाया करते हैं, बहू को कुछ न कहना। तुम्हारे ऊपर सैकड़ों बार बिगड़ चुके हैं कि इसे घर में बैठाकर आप न जाने कहां निकल गया।

आजकल पैसे-पैसे की तंगी है। ऊख के रुपये बाहर ही बाहर उड़ गए। अब तो मजूरी करनी पड़ती है। आज बेचारे खेत में बेहोस हो गए। रोना-पीटना मच गया। तब से पड़े हैं।'

मुंह-हाथ धोकर और खूब बाल बनाकर गोबर गांव की दिग्विजय करने निकला। दोनों चाचाओं के घर जाकर राम-राम कर आया। फिर और मित्रों से मिला। गांव में कोई विशेष परिवर्तन न था। हां, पटेश्वरी की नई बैठक बन गई थी और झिंगुरीसिंह ने दरवाजे पर नया कुआं खुदवा लिया था। गोबर के मन में विद्रोह और भी ताल ठोंकने लगा। जिससे मिला, उसने उसका आदर किया, और युवकों ने तो उसे अपना हीरो बना लिया और उसके साथ लखनऊ जाने को तैयार हो गए। साल ही भर में वह क्या से क्या हो गया था।

सहसा झिंगुरीसिंह अपने कुएं पर नहाते हुए मिल गए, गोबर निकला, मगर सलाम न किया, न बोला। वह ठाकुर को दिखा देना चाहता था, मैं तुम्हें कुछ नहीं समझता।

झिंगुरीसिंह ने खुद ही पूछा—कब आए गोबर, मजे में तो रहे? कहीं नौकर थे लखनऊ में?

गोबर ने हेकड़ी के साथ कहा—लखनऊ गुलामी करने नहीं गया था। नौकरी है तो गुलामी। मैं व्यापार करता था।

ठाकुर ने कुतूहल-भरी आंखों से उसे सिर से पांव तक देखा—कितना रोज पैदा करते थे?

गोबर ने छुरी को भाला बनाकर उनके ऊपर चलाया—यही कोई ढाई-तीन रुपये मिल जाते थे। कभी चटक गई तो चार भी मिल गए। इससे बेसी नहीं।

झिंगुरी बहुत नोच-खसोट करके भी पचीस-तीस से ज्यादा न कमा पाते थे। और यह गंवार लौंडा सौ रुपये कमाने लगा। उनका मस्तक नीचा हो गया। अब किस दावे से उस पर रोब जमा सकते थे? वर्ण में वह जरूर ऊंचे हैं, लेकिन वर्ण कौन देखता है। उससे स्पर्द्धा करने का यह अवसर नहीं, अब तो उसकी चिरौरी करके उससे कुछ काम निकाला जा सकता है। बोले—इतनी कमाई कम नहीं है बेटा, जो खरच करते बने। गांव में तो तीन आने भी नहीं मिलते। भवानिया (उनके जेठे पुत्र का नाम था) को भी कहीं कोई काम दिला दो, तो भेज दूं। न पढ़े न लिखे, एक न एक उपद्रव करता रहता है। कहीं मुनीमी खाली हो तो कहना, नहीं साथ ही लेते जाना। तुम्हारा तो मित्र है। तलब थोड़ी हो, कुछ गम नहीं। हां, चार पैसे की ऊपर की गुंजाइस हो।

गोबर ने अभिमान भरी हंसी से कहा—यह ऊपरी आमदनी की चाट आदमी को खराब कर देती है ठाकुर, लेकिन हम लोगों की आदत कुछ ऐसी बिगड़ गई है कि जब तक बेईमानी न करें, पेट ही नहीं भरता। लखनऊ में मुनीमी मिल सकती है, लेकिन हर एक महाजन ईमानदार चौकस आदमी चाहता है। मैं भवानी को किसी के गले बांध तो दूं, लेकिन पीछे इन्होंने कहीं हाथ लपकाया, तो वह तो मेरी गर्दन पकड़ेगा। संसार में इलम की कदर नहीं, ईमान की कदर है।

यह तमाचा लगाकर गोबर आगे निकल गया। झिंगुरी मन में ऐंठकर रह गए। लौंडा कितने घमंड की बातें करता है, मानो धर्म का अवतार ही तो है।

इसी तरह गोबर ने दातादीन को भी रगड़ा। भोजन करने जा रहे थे। गोबर को देखकर प्रसन्न होकर बोले—मजे में तो रहे गोबर? सुना, वहां कोई अच्छी जगह पा गए हो। मातादीन को भी किसी हीले से लगा दो न? भंग पीकर पड़े रहने के सिवा यहां और कौन काम है।

गोबर ने बनाया—तुम्हारे घर में किस बात की कमी है महाराज, जिस जजमान के द्वार पर जाकर खड़े हो जाओ, कुछ न कुछ मार ही लाओगे। जनम में लो, मरन में लो, सादी में लो, गमी में लो, खेती करते हो, लेन-देन करते हो, दलाली करते हो, किसी से कुछ भूल-चूक हो जाए, तो डांड़ लगाकर उसका घर लूट लेते हो। इतनी कमाई से पेट नहीं भरता? क्या करोगे बहुत-सा धन बटोरकर कि साथ ले जाने की कोई जुगुत निकाल ली है?

दातादीन ने देखा, गोबर कितनी ढिठाई से बोल रहा है, अदब और लिहाज जैसे भूल गया। अभी शायद नहीं जानता कि बाप मेरी गुलामी कर रहा है। सच है, छोटी नदी को उमड़ते देर नहीं लगती, मगर चेहरे पर मैल नहीं आने दिया। जैसे बड़े लोग बालकों से मूंछें उखड़वाकर भी हंसते हैं, उन्होंने भी इस फटकार को हंसी में लिया और विनोद-भाव से बोले—लखनऊ की हवा खा के तू बड़ा चंट हो गया है गोबर! ला, क्या कमा के लाया है, कुछ निकाल। सच कहता हूं गोबर, तुम्हारी बहुत याद आती थी। अब तो रहोगे कुछ दिन?

'हां, अभी तो रहूंगा कुछ दिन। उन पंचों पर दावा करना है, जिन्होंने डांड़ के बहाने मेरे डेढ़ सौ रुपये हजम किए हैं। देखूं, कौन मेरा हुक्का-पानी बंद करता है और कैसे बिरादरी मुझे जात बाहर करती है?'

यह धमकी देकर वह आगे बढ़ा। उसकी हेकड़ी ने उसके युवक भक्तों को रोब में डाल दिया था।

एक ने कहा--कर दो नालिस गोबर भैया! बुड्ढा काला सांप है—जिसके काटे का मंतर नहीं। तुमने अच्छी डांट बताई। पटवारी के कान भी जरा गरमा दो। बड़ा मुतफन्नी है दादा! बाप-बेटे में आग लगा दे, भाई-भाई में आग लगा दे। कारिंदे से मिलकर असामियों का गला काटता है। अपने खेत पीछे जोतो, पहले उसके खेत जोत दो। अपनी सिंचाई पीछे करो, पहले उसकी सिंचाई कर दो।

गोबर ने मूंछों पर ताव देकर कहा—मुझसे क्या कहते हो भाई, साल-भर में भूल थोड़े ही गया। यहां मुझे रहना ही नहीं है, नहीं एक-एक को नचाकर छोड़ता। अब की होली धूम-धाम से मनाओ और होली का स्वांग बनाकर इन सबों को खूब भिगो-भिगो कर लगाओ।

होली का प्रोग्राम बनने लगा। खूब भंग घुटे, दूधिया भी, रंगीन भी, और रंगों के साथ कालिख भी बने और मुखियों के मुंह पर कालिख ही पोती जाए। होली में कोई बोल ही क्या सकता है! फिर स्वांग निकले और पंचों की भद्द उड़ाई जाए। रुपये-पैसे की कोई चिंता नहीं। गोबर भाई कमाकर लाए हैं।

भोजन करके गोबर भोला से मिलने चला। जब तक अपनी जोड़ी लाकर अपने द्वार पर बांध न दे, उसे चैन नहीं। वह लड़ने-मरने को तैयार था।

होरी ने कातर स्वर में कहा—रार मत बढ़ाओ बेटा! भोला गोई ले गए, भगवान् उनका भला करे, लेकिन उनके रुपये तो आते ही थे।

गोबर ने उत्तेजित होकर कहा—दादा, तुम बीच में मत बोलो। उनकी गाय पचास की थी। हमारी गोई डेढ़ सौ में आई थी। तीन साल हमने जोती। फिर भी डेढ़ सौ की थी ही। वह अपने रुपये के लिए दावा करते, डिगरी कराते, या जो चाहते करते, हमारे द्वार से जोड़ी क्यों खोल ले गए? और तुम्हें क्या कहूं? इधर गोई खो बैठे, उधर डेढ़ सौ रुपये डांड़ के भरे। यह है गऊ होने का फल। मेरे सामने जोड़ी ले जाते, तो देखता। तीनों को यहीं जमीन पर सुला देता। और पंचों से तो बात

तक न करता। देखता, कौन मुझे बिरादरी से अलग करता है, लेकिन तुम बैठे ताकते रहे।

होरी ने अपराधी की भांति सिर झुका लिया, लेकिन धनिया यह अनीति कैसे देख सकती थी? बोली—बेटा, तुम भी अंधेर करते हो। हुक्का-पानी बंद हो जाता, तो गांव में निर्वाह कैसे होता, जवान लड़की बैठी है, उसका भी कहीं ठिकाना लगाना है या नहीं? मरने-जीने में आदमी बिरादरी...

गोबर ने बात काटी—हुक्का-पानी सब तो था, बिरादरी में आदर भी था, फिर मेरा ब्याह क्यों नहीं हुआ? बोलो! इसलिए कि घर में रोटी न थी। रुपये हों तो न हुक्का-पानी का काम है, न जात-बिरादरी का। दुनिया पैसे की है, हुक्का-पानी कोई नहीं पूछता।

धनिया तो बच्चे का रोना सुनकर भीतर चली गई और गोबर भी घर से निकला। होरी बैठा सोच रहा था। लड़के की अकल जैसे खुल गई है। कैसी बेलाग बात कहता है। उसकी वक्र बुद्धि ने होरी के धर्म और नीति को परास्त कर दिया था।

सहसा होरी ने उससे पूछा—मैं भी चला चलूं?

'मैं लड़ाई करने नहीं जा रहा हूं दादा, डरो मत। मेरी ओर तो कानून है, मैं क्यों लड़ाई करने लगा?'

'मैं भी चलूं तो कोई हरज है?'

'हां, बड़ा हरज है। तुम बनी बात बिगड़ दोगे।'

होरी चुप हो गया और गोबर चल दिया।

पांच मिनट भी न हुए होंगे कि धनिया बच्चे को लिए बाहर निकली और बोली—क्या गोबर चला गया, अकेले? मैं कहती हूं, तुम्हें भगवान् कभी बुद्धि देंगे या नहीं। भोला क्या सहज में गोई देगा? तीनों उस पर टूट पड़ेंगे बाज की तरह। भगवान् ही कुसल करें। अब किससे कहूं दौड़कर गोबर को पकड़ लो। तुमसे तो मैं हार गई।

होरी ने कोने से डंडा उठाया और गोबर के पीछे दौड़ा। गांव के बाहर आकर उसने निगाह दौड़ाई। एक क्षीण-सी रेखा क्षितिज से मिली हुई दिखाई दी। इतनी ही देर में गोबर इतनी दूर कैसे निकल गया। होरी की आत्मा उसे धिक्कारने लगी। उसने क्यों गोबर को रोका नहीं? अगर वह डांटकर कह देता, भोला के घर मत जाओ, तो गोबर कभी न जाता। और अब उससे दौड़ा भी तो नहीं जाता। वह हारकर वहीं बैठ गया और बोला—उसकी रच्छा करो महावीर स्वामी!

गोबर उस गांव में पहुंचा तो देखा, कुछ लोग बरगद के नीचे बैठे जुआ खेल रहे हैं। उसे देखकर लोगों ने समझा, पुलिस का सिपाही है। कौड़ियां समेटकर भागे कि सहसा जंगी ने उसे पहचानकर कहा—अरे, यह तो गोबरधन है।

गोबर ने देखा, जंगी पेड़ की आड़ में खड़ा झांक रहा है। बोला—डरो, मत जंगी भैया, मैं हूं। राम-राम आज ही आया हूं। सोचा, चलूं सबसे मिलता आऊं, फिर न जाने कब आना हो। मैं तो भैया, तुम्हारे आसिरवाद से बड़े मजे में निकल गया। जिस राजा की नौकरी में हूं उन्होंने मुझसे कहा है कि एक-दो आदमी मिल जाएं तो लेते आना। चौकीदारी के लिए चाहिए। मैंने कहा, सरकार ऐसे आदमी दूंगा कि चाहे जान चली जाय, मैदान से हटने वाले नहीं, इच्छा हो तो मेरे साथ चलो। अच्छी जगह है।

जंगी उसका ठाट-बाट देखकर रोब में आ गया। उसे कभी चमरौधे जूते भी मयस्सर न

हुए थे। और गोबर चमाचम बूट पहने था। साफ-सुथरी, धारीदार कमीज, संवारे हुए बाल, पूरा बाबू साहब बना हुआ। फटेहाल गोबर और इस परिष्कृत गोबर में बड़ा अंतर था। हिंसा-भाव तो यों ही समय के प्रभाव से शांत हो गया था और बचा-खुचा अब शांत हो गया। जुआरी था ही, उस पर गांजे की लत। और घर में बड़ी मुश्किल से पैसे मिलते थे। मुंह में पानी भर आया। बोला-चलूंगा क्यों नहीं, यहां पड़ा-पड़ा मक्खी ही तो मार रहा हूं। कै रुपये मिलेंगे?

गोबर ने बड़े आत्मविश्वास से कहा-इसकी कुछ चिंता मत करो। सब कुछ अपने ही हाथ में है। जो चाहोगे, वह हो जायगा। हमने सोचा, जब घर में ही आदमी है, तो बाहर क्यों जाएं?

जंगी ने उत्सुकता से पूछा-काम क्या करना पड़ेगा?

'काम चाहे चौकीदारी करो, चाहे तगादे पर जाओ। तगादे का काम सबसे अच्छा। असामी से गठ गए। आकर मालिक से कह दिया, घर पर मिला ही नहीं, चाहो तो रुपये-आठ आने रोज बना सकते हो।'

'रहने की जगह भी मिलती है।'

'जगह की कौन कमी? पूरा महल पड़ा है। पानी का नल, बिजली। किसी बात की कमी नहीं है। कामता हैं कि कहीं गए हैं?'

'दूध लेकर गए हैं। मुझे कोई बाजार नहीं जाने देता। कहते हैं, तुम तो गांजा पी जाते हो। मैं अब बहुत कम पीता हूं भैया, लेकिन दो पैसे रोज तो चाहिए ही। तुम कामता से कुछ न कहना। मैं तुम्हारे साथ चलूंगा।'

'हां-हां बेखटके चलो। होली के बाद।'

'तो पक्की रही।'

दोनों आदमी बातें करते भोला के द्वार पर आ पहुंचे। भोला बैठे सुतली कात रहे थे। गोबर ने लपककर उनके चरण छुए और इस वक्त उसका गला सचमुच भर आया। बोला-काका, मुझसे जो कुछ भूल-चूक हुई, उसे छमा करो।

भोला ने सुतली कातना बंद कर दिया और पथरीले स्वर में बोला-काम तो तुमने ऐसा ही किया था गोबर, कि तुम्हारा सिर काट लूं तो भी पाप न लगे, लेकिन अपने द्वार पर आए हो, अब क्या कहूं। जाओ, जैसा मेरे साथ किया, उसकी सजा भगवान् देंगे। कब आए?

गोबर ने खूब नमक-मिर्च लगाकर अपने भाग्योदय का वृत्तांत कहा, और जंगी को अपने साथ ले जाने की अनुमति मांगी। भोला को जैसे बेमांगे वरदान मिल गया। जंगी घर पर एक-न-एक उपद्रव करता रहता था। बाहर चला जाएगा, तो चार पैसे पैदा तो करेगा। न किसी को कुछ दे, अपना बोझ तो उठा लेगा।

गोबर ने कहा-नहीं काका, भगवान् ने चाहा और इनसे रहते बना तो साल-दो-साल में आदमी बन जाएंगे।

'हां, जब इनसे रहते बने।'

'सिर पर आ पड़ती है, तो आदमी आप संभल जाता है।'

'तो कब तक जाने का विचार है?'

'होली करके चला जाऊंगा। यहां खेती-बारी का सिलसिला फिर जमा दूं, तो निरिंचत हो जाऊं।'

'होरी से कहो, अब बैठ के राम-राम करें।'

'कहता तो हूं, लेकिन जब उनसे बैठा जाय।'

'वहां किसी बैद से तो तुम्हारी जान-पहचान होगी। खांसी बहुत दिक कर रही है। हो सके तो कोई दवाई भेज देना।'

'एक नामी बैद तो मेरे पड़ोस ही में रहते हैं। उनसे हाल कहके दवा बनवाकर भेज दूंगा। खांसी रात को जोर करती है कि दिन को?'

'नहीं बेटा, रात को। आंख नहीं लगती। नहीं वहां कोई डौल हो, तो मैं भी वहीं चलकर रहूं। यहां तो कुछ परता नहीं पड़ता।'

'रोजगार का जो मजा तो वहां है काका, यहां क्या होगा? यहां रुपये का दस सेर दूध भी कोई नहीं पूछता। हलवाइयों के गले लगाना पड़ता है। वहां पांच-छ: सेर के भाव से चाहो तो घड़ी में मनों दूध बेच लो।'

जंगी गोबर के लिए दूधिया शर्बत बनाने चला गया था। भोला ने एकांत देखकर कहा--और भैया, अब इस जंजाल से जी ऊब गया है। जंगी का हाल देखते ही हो। कामता दूध लेकर जाता है। सानी-पानी, खोलना-बांधना सब मुझे करना पड़ता है। अब तो यही जी चाहता है कि सुख से कहीं एक रोटी खाऊं और पड़ा रहूं। कहां तक हाय-हाय करूं। रोज लड़ाई-झगड़ा। किस-किसके पांव सहलाऊं? खांसी आती है, रात को उठा नहीं जाता, पर कोई एक लोटे पानी को भी नहीं पूछता। पगहिया टूट गई है, मुदा किसी को इसकी सुधि नहीं है। जब मैं बनाऊंगा तभी बनेगी।

गोबर ने आत्मीयता के साथ कहा--तुम चलो लखनऊ काका। पांच सेर का दूध बेचो, नगद। कितने ही बड़े-बड़े अमीरों से मेरी जान-पहचान है। मन-भर दूध की निकासी का जिम्मा मैं लेता हूं। मेरी चाय की दूकान भी है। दस सेर दूध तो मैं ही नित लेता हूं। तुम्हें किसी तरह का कष्ट न होगा।

जंगी दूधिया शर्बत ले आया। गोबर ने एक गिलास शबत पीकर कहा--तुम तो खाली सांझ-सबेरे चाय की दूकान पर बैठ जाओ काका, तो एक रुपया कहीं नहीं गया है।

भोला ने एक मिनट के बाद संकोच-भरे भाव से कहा--क्रोध में बेटा, आदमी अंधा हो जाता है। मैं तुम्हारी गोई खोल लाया था। उसे लेते जाना। यहां कौन खेती-बारी होती है।

'मैंने तो एक नई गोई ठीक कर ली है काका।'

'नहीं-नहीं, नई गोई लेकर क्या करोगे? इसे लेते जाओ।'

'तो मैं तुम्हारे रुपये भिजवा दूंगा।'

'रुपये कहीं बाहर थोड़े ही हैं बेटा, घर में ही तो हैं। बिरादरी का ढकोसला है, नहीं तुममें और हममें कौन भेद है? सच पूछो तो मुझे खुस होना चाहिए था कि झुनिया भले घर में है, और आराम से है। और मैं उसके खून का प्यासा बन गया था।'

संध्या के समय गोबर यहां से चला, तो गोई उसके साथ थी और दही की दो हाड़िया लिए जंगी पीछे-पीछे आ रहा था।

इक्कीस

देहातों में साल के छः महीने किसी न किसी उत्सव में ढोल-मजीरा बजता रहता है। होली के एक महीना पहले से एक महीना बाद तक फाग उड़ती है, असाढ़ लगते ही आल्हा शुरू हो जाता है और सावन-भादों में कजलियां होती हैं। कजलियों के बाद रामायण-गान होने लगता है। सेमरी भी अपवाद नहीं है। महाजन की धमकियां और कारिंदे की गोलियां इस समारोह में बाधा नहीं डाल सकतीं। घर में अनाज नहीं है, देह पर कपड़े नहीं हैं, गांठ में पैसे नहीं हैं, कोई परवा नहीं। जीवन की आनंदवृत्ति तो दबाई नहीं जा सकती, हंसे बिना तो जिया नहीं जा सकता।

यों होली में गाने-बजाने का मुख्य स्थान नोखेराम की चौपाल थी। वहीं भंग बनती थी, वहीं रंग उड़ता था, वहीं नाच होता था। इस उत्सव में कारिंदा साहब के दस-पांच रुपये खर्च हो जाते थे। और किसमें यह सामर्थ्य थी कि अपने द्वार पर जलसा कराता?

लेकिन अबकी गोबर ने गांव के नवयुवकों को अपने द्वार पर खींच लिया है और नोखेराम की चौपाल खाली पड़ी हुई है। गोबर के द्वार पर भंग घुट रही है, पान के बीड़े लग रहे हैं, रंग घोला जा रहा है, फर्श बिछा हुआ है, गाना हो रहा है, और चौपाल में सन्नाटा छाया हुआ है। भंग रखी हुई है, पीसे कौन? ढोल-मजीरा सब मौजूद है, पर गाए कौन? जिसे देखो, गोबर के द्वार की ओर दौड़ा चला जा रहा है, यहां भंग में गुलाबजल और केसर और बादाम की बहार है। हां-हां, सेर-भर बादाम गोबर खुद लाया। पीते ही चोला तर हो जाता है, आंखें खुल जाती हैं। खमीरा तमाखू लाया है, खास बिसवां की। रंग में भी केवड़ा छोड़ा है। रुपये कमाना भी जानता है और खरच करना भी जानता है। गाड़कर रख लो, तो कौन देखता है? धन की यही शोभा है। और केवल भंग ही नहीं है। जितने गाने वाले हैं, सबका नेतवा भी है। और गांव में न नाचने वालों की कमी है, न अभिनय करने वालों की। शोभा ही लंगड़ों की ऐसी नकल करता है कि क्या कोई करेगा और बोली की नकल करने में तो उसका सानी नहीं है। जिसकी बोली कहो, उसकी बोले--आदमी की भी, जानवर की भी। गिरधर नकल करने में बेजोड़ है। वकील की नकल वह करे, पटवारी की नकल वह करे, थानेदार की, चपरासी की, सेठ की—सभी की नकल कर सकता है। हां, बेचारे के पास वैसा सामान नहीं है, मगर अबकी गोबर ने उसके लिए सभी सामान मंगा दिया है, और उसकी नकलें देखने जोग होंगी।

यह चर्चा इतनी फैली कि सांझ से ही तमाशा देखने वाले जमा होने लगे। आसपास के गांवों से दर्शकों की टोलियां आने लगीं। दस बजते-बजते तीन-चार हजार आदमी जमा हो गए। और जब गिरधर झिंगुरीसिंह का रूप भरे अपनी मंडली के साथ खड़ा हुआ, ता लोगों को खड़े होने की जगह भी न मिलती थी। वही खल्वाट सिर, वही बड़ी मूंछें, और वही तोंद। बैठे भोजन कर रहे हैं और पहली ठकुराइन बैठी पंखा झल रही हैं।

ठाकुर ठकुराइन को रसिक नेत्रों से देखकर कहते हैं--अब भी तुम्हारे ऊपर वह जोबन है कि कोई जवान देख ले तो तड़प जाए। और ठकुराइन फूलकर कहती हैं, जभी तो नई नवेली लाए।

'उसे तो लाया हूं तुम्हारी सेवा करने के लिए। वह तुम्हारी क्या बराबरी करेगी?'

छोटी बीवी यह वाक्य सुन लेती है और मुंह फुलाकर चली जाती है।

दूसरे दृश्य में ठाकुर खाट पर लेटे हैं और छोटी बहू मुंह फेरे हुए जमीन पर बैठी है। ठाकुर बार-बार उसका मुंह अपनी ओर फेरने की विफल चेष्टा करके कहते हैं–मुझसे क्यों रूठी हो मेरी लाड़ली?

'तुम्हारी लाड़ली जहां हो, वहां जाओ। मैं तो लौंडी हूं, दूसरों की सेवा-टहल करने के लिए आई हूं।'

'तुम मेरी रानी हो। तुम्हारी सेवा-टहल करने के लिए वह बुढ़िया है।'

पहली ठकुराइन सुन लेती है और झाड़ू लेकर घर में घुसती हैं और कई झाड़ू उन पर जमाती हैं। ठाकुर साहब जान बचाकर भागते हैं।

फिर दूसरी नकल हुई, जिसमें ठाकुर ने दस रुपये का दस्तावेज लिखकर पांच रुपये दिए, शेष नजराने और तहरीर और दस्तूरी और ब्याज में काट लिए।

किसान आकर ठाकुर के चरण पकड़कर रोने लगता है। बड़ी मुश्किल से ठाकुर रुपये देने पर राजी होते हैं। जब कागज लिख जाता है और असामी के हाथ में पांच रुपये रख दिए जाते हैं तो वह चकराकर पूछता है–

'यह तो पांच ही हैं मालिक।'

'पांच नहीं, दस हैं। घर जाकर गिनना।'

'नहीं सरकार, पांच हैं।'

'एक रुपया नजराने का हुआ कि नहीं?'

'हां, सरकार।'

'एक तहरीर का?'

'हां, सरकार।'

'एक कागद का?'

'हां, सरकार।'

'एक दस्तूरी का?'

'हां, सरकार।'

'एक सूद का?'

'हां, सरकार।'

'पांच नगद, दस हुए कि नहीं?'

'हां, सरकार। अब यह पांचों मेरी ओर से रख लीजिए।'

'कैसा पागल है?'

'नहीं सरकार, एक रुपया छोटी ठकुराइन का नजराना है, एक रुपया बड़ी ठकुराइन का। एक रुपया ठकुराइन के पान खाने को, एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक, वह आपकी करिया-करम के लिए।'

इसी तरह नोखेराम और पटेश्वरी और दातादीन की--बारी-बारी से सबकी खबर ली गई। और फबतियों में चाहे कोई नयापन न हो, और नकलें पुरानी हों, लेकिन गिरधारी का ढंग ऐसा हास्यजनक था, दर्शक इतने सरल हृदय थे कि बेबात की बात में भी हंसते थे। रात-भर भंड़ैती होती रही और सताए हुए दिल, कल्पना में प्रतिशोध पाकर प्रसन्न होते रहे। आखिरी नकल समाप्त हुई, तो कौवे बोल रहे थे।

सबेरा होते ही जिसे देखो, उसी की जबान पर वही रात के गाने, वही नकल, वही फिकरे। मुखिये तमाशा बन गए। जिधर निकलते हैं, उधर ही दो-चार लड़के पीछे लग जाते हैं और वही फिकरे कसते हैं। झिंगुरीसिंह तो दिल्लगीबाज आदमी थे, इसे दिल्लगी में लिया, मगर पटेश्वरी में चिढ़ने की बुरी आदत थी। और पंडित दातादीन तो इतने तुनुक-मिजाज थे कि लड़ने पर तैयार हो जाते थे। वह सबसे सम्मान पाने के आदी थे। कारिंदा की तो बात ही क्या, रायसाहब तक उन्हें देखते ही सिर झुका देते थे। उनकी ऐसी हंसी उड़ाई जाय और अपने ही गांव में-यह उनके लिए असह्य था। अगर उनमें ब्रह्मतेज होता तो इन दुष्टों को भस्म कर देते। ऐसा शाप देते कि सब-के-सब भस्म हो जाते, लेकिन इस कलियुग में शाप का असर ही जाता रहा। इसलिए उन्होंने कलियुग वाला हथियार निकाला। होरी के द्वार पर आए और आंखें निकालकर बोले-क्या आज भी तुम काम करने न चलोगे होरी? अब तो तुम अच्छे हो गए। मेरा कितना हरज हो गया, यह तुम नहीं सोचते।

गोबर देर में सोया था। अभी-अभी उठा था और आंखें मलता हुआ बाहर आ रहा था कि दातादीन की आवाज कान में पड़ी। पालागन करना तो दूर रहा, उलटे और हेकड़ी दिखाकर बोला-अब वह तुम्हारी मजूरी न करेंगे। हमें अपनी ऊख भी तो बोनी है।

दातादीन ने सुरती फांकते हुए कहा- काम कैसे नहीं करेंगे? साल के बीच में काम नहीं छोड़ सकते। जेठ में छोड़ना हो छोड़ दें, करना हो करें। उसके पहले नहीं छोड़ सकते।

गोबर ने जम्हाई लेकर कहा -उन्होंने तुम्हारी गुलामी नहीं लिखी है। जब तक इच्छा थी, काम किया। अब नहीं इच्छा, नहीं करेंगे। इसमें कोई जबर्दस्ती नहीं कर सकता।

'तो होरी काम नहीं करेंगे?'

'ना।'

'तो हमारे रुपये सूद समेत दे दो। तीन साल का सूद होता है सौ रुपया। असल मिलाकर दो सौ होते हैं। हमने समझा था, तीन रुपये महीने सूद में कटते जाएंगे, लेकिन तुम्हारी इच्छा नहीं है, तो मत करो। मेरे रुपये दे दो। धन्ना सेठ बनते हो, तो धन्ना सेठ का काम करो।

होरी ने दातादीन से कहा -तुम्हारी चाकरी से मैं कब इंकार करता हू महाराज? लेकिन हमारी ऊख भी तो बोने को पड़ी है।

गोबर ने बाप को डांटा -कैसी चाकरी और किसकी चाकरी? यहां कोई किसी का चाकर नहीं। सभी बराबर हैं। अच्छी दिल्लगी है। किसी को सौ रुपये उधार दे दिए और उससे सूद में जिंदगी भर काम लेते रहे। मूल ज्यों का त्यों। यह महाजनी नहीं है, खून चूसना है।

'तो रुपये दे दो भैया, लड़ाई काहे की, मैं आने रुपये ब्याज लेता हूं, तुम्हें गांव-घर का समझकर आध आने रुपये पर दिया था।'

'हम तो एक रुपया सैकड़ा देंगे। एक कौड़ी बेसी नहीं। तुम्हें लेना हो तो लो, नहीं अदालत से ले लेना। एक रुपया सैकड़े ब्याज कम नहीं होता।'

'मालूम होता है, रुपये की गर्मी हो गई है।'

'गर्मी उन्हें होती है, जो एक के दस लेते हैं। हम तो मजूर हैं। हमारी गर्मी पसीने के रास्ते बह जाती है। मुझे खूब याद है, तुमने बैल के लिए तीस रुपये दिए थे। उसके सौ हुए और अब सौ के दो सौ हो गए। इसी तरह तुम लोगों ने किसानों को लूट-लूटकर मजूर बना डाला और आप उनकी जमीन के मालिक बन बैठे। तीस के दो सौ। कुछ हद है। कितने दिन हुए होंगे

दादा?'

होरी ने कातर कंठ से कहा—यही आठ-नौ साल हुए होंगे।

गोबर ने छाती पर हाथ रखकर कहा—नौ साल में तीस के दो सौ। एक रुपये के हिसाब से कितना होता है?

उसने जमीन पर एक ठीकरे से हिसाब लगाते हुए कहा—दस साल में छत्तीस रुपये होते हैं। असल मिलाकर छाछठ। उसके सत्तर रुपये ले लो। इससे बेसी मैं एक कौड़ी न दूंगा।

दातादीन ने होरी को बीच में डालकर कहा—सुनते हो होरी, गोबर का फैसला? मैं अपने दो सौ छोड़ के सत्तर ले लूं, नहीं अदालत करूं। इस तरह का व्यवहार हुआ तो कै दिन संसार चलेगा? और तुम बैठे सुन रहे हो, मगर यह समझ लो, मैं ब्राह्मण हूं, मेरे रुपये हजम करके तुम चैन न पाओगे। मैंने ये सत्तर रुपये भी छोड़े, अदालत भी न जाऊंगा, जाओ। अगर मैं ब्राह्मण हूं, तो पूरे दो सौ रुपये लेकर दिखा दूंगा, और तुम मेरे द्वार पर आवोगे और हाथ बांधकर दोगे।

दातादीन झल्लाए हुए लौट पड़े। गोबर अपनी जगह बैठा रहा। मगर होरी के पेट में धर्म की क्रांति मची हुई थी। अगर ठाकुर या बनिए के रुपये होते, तो उसे ज्यादा चिंता न होती, लेकिन ब्राह्मण के रुपये! उसकी एक पाई भी दब गई, तो हड्डी तोड़कर निकलेगी। भगवान न करें कि ब्राह्मण का कोप किसी पर गिरे। बंस में कोई चुल्लू-भर पानी देने वाला, घर में दिया जलाने वाला भी नहीं रहता। उसका धर्म-भीरू मन त्रस्त हो उठा। उसने दौड़कर पंडितजी के चरण पकड़ लिए और आर्त्त स्वर में बोला—महराज, जब तक मैं जीता हूं, तुम्हारी एक-एक पाई चुकाऊंगा। लड़के की बातों पर मत जाओ। मामला तो हमारे-तुम्हारे बीच में हुआ है। वह कौन होता है?

दातादीन जरा नरम पड़े—जरा इसकी जबर्दस्ती देखो, कहता है, दो सौ रुपये के सत्तर लो या अदालत जाओ। अभी अदालत की हवा नहीं खाई है, जभी। एक बार किसी के पाले पड़ जाएंगे, तो फिर यह ताव न रहेगा। चार दिन सहर में क्या रहे, तानासाह हो गए।

'मैं तो कहता हूं महाराज, मैं तुम्हारी एक-एक पाई चुकाऊंगा।'

'तो कल से हमारे यहां काम करने आना पड़ेगा।'

'अपनी ऊख बोना है महाराज, नहीं तुम्हारा ही काम करता।'

दातादीन चले गए तो गोबर ने तिरस्कार की आंखों से देखकर कहा—गए थे देवता को मनाने। तुम्हीं लोगों ने तो इन सबों का मिजाज बिगाड़ दिया है। तीस रुपये दिए, अब दो सौ रुपये लेगा, और डांट ऊपर से बताएगा और तुमसे मजूरी कराएगा और काम कराते-कराते मार डालेगा।

होरी ने अपने विचार में सत्य का पक्ष लेकर कहा—नीति हाथ से न छोड़ना चाहिए बेटा अपनी-अपनी करनी अपने साथ है। हमने जिस ब्याज पर रुपये लिए, वह तो देने ही पड़ेंगे। फिर ब्राह्मण ठहरे। इनका पैसा हमें पचेगा? ऐसा माल तो इन्हीं लोगों को पचता है।

गोबर ने त्योरियां चढ़ाईं—नीति छोड़ने को कौन कह रहा है? और कौन कह रहा है कि ब्राह्मण का पैसा दबा लो? मैं तो यह कहता हूं कि इतना सूद नहीं देंगे। बंक वाले बारह आने सूद लेते हैं। तुम एक रुपया ले लो। और क्या किसी को लूट लोगे?

'उनका रोयां जो दु:खी होगा?'

'हुआ करे। उनके दु:खी होने के डर से हम बिल क्यों खोदें?'

'बेटा, जब तक मैं जीता हूं, मुझे अपने रस्ते चलने दो। जब मैं मर जाऊं, तो तुम्हारी जो इच्छा हो, वह करना।'

'तो फिर तुम्हीं देना। मैं तो अपने हाथों अपने पांव में कुल्हाड़ी न मारूंगा। मेरा गधापन था कि तुम्हारे बीच में बोला—तुमने खाया है, तुम भरो। मैं क्यों अपनी जान दूं?'

यह कहता हुआ गोबर भीतर चला गया। झुनिया ने पूछा—आज सबेर-सबेरे दादा से क्यों उलझ पड़े?

गोबर ने सारा वृत्तांत कह सुनाया और अंत में बोला—इनके ऊपर रिन का बोझ इसी तरह बढ़ता जायगा। मैं कहां तक भरूंगा? उन्होंने कमा-कमाकर दूसरों का घर भरा है। मैं क्यों उनकी खोदी हुई खंदक में गिरूं? इन्होंने मुझसे पूछकर करज नहीं लिया। न मेरे लिए लिया। मैं उसका देनदार नहीं हूं।

उधर मुखियों में गोबर को नीचा दिखाने के लिए षड्यंत्र रचा जा रहा था। यह लौंडा शिकजे में न कसा गया, तो गांव में ऊधम मचा देगा। प्यादे से फर्जी हो गया है न, टेढ़े तो चलेगा ही। जाने कहां से इतना कानून सीख आया है? कहता है, रुपये सैकड़े सूद से बेसी न दूंगा। लेना हो लो, नहीं अदालत जाओ। रात इसने सारे गांव के लौंडों को बटोरकर कितना अनर्थ किया। लेकिन मुखियों में भी ईर्ष्या की कमी न थी। सभी अपने बराबर वालों के परिहास पर प्रसन्न थे। पटेश्वरी और नोखेराम में बातें हो रही थीं। पटेश्वरी ने कहा—मगर सबों को घर-घर की रत्ती रत्ती का हाल मालूम है। झिंगुरीसिंह को तो सबों ने ऐसा रगेदा कि कुछ न पूछो। दोनों ठकुराइनों की बातें सुन-सुनकर लोग हंसी के मारे लोट गए।

नोखेराम ने ठट्टा मारकर कहा—मगर नकल सच्ची थी। मैंने कई बार उनकी छोटी बेगम को द्वार पर खड़े लौंडों से हंसी करते देखा है।

'और बड़ी रानी काजल और सेंदूर और महावर लगाकर जवान बनी रहती हैं।'

'दोनों में रात-दिन छिड़ी रहती है। झिंगुरी पक्का बेहया है। कोई दूसरा होता तो पागल हो जाता।'

'सुना, तुम्हारी बड़ी भद्दी नकल की। चमरिया के घर में बंद करके पिटवाया।'

'मैं तो बचा पर बकाया लगान का दावा करके ठीक कर दूंगा। वह भी क्या याद करेंगे कि किसी से पाला पड़ा था।'

'लगान तो उसने चुका दिया है न?'

'लेकिन रसीद तो मैंने नहीं दी। सबूत क्या है कि लगान चुका दिया? और यहां कौन हिसाब-किताब देखता है? आज ही प्यादा भेजकर बुलाता हूं।'

होरी और गोबर दोनों ऊख बोने के लिए खेत सींच रहे थे। अबकी ऊख की खेती होने की आशा तो थी नहीं, इसलिए खेत परती पड़ा हुआ था। अब बैल आ गए हैं, तो ऊख क्यों न बोई जाए।

मगर दोनों जैसे छत्तीस बने हुए थे। न बोलते थे, न ताकते थे। होरी बैलों को हांक रहा था और गोबर मोट ले रहा था। सोना और रूपा दोनों खेत में पानी दौड़ा रही थीं कि उनमें झगड़ा हो गया। विवाद का विषय यह था कि झिंगुरीसिंह की छोटी ठकुराइन पहले खुद खाकर पति को खिलाती हैं या पति को खिलाकर तब खुद खाती है। सोना कहती थी, पहले वह खुद खाती है। रूपा का मत इसके प्रतिकूल था।

रूपा ने जिरह की–अगर वह पहले खाती है, तो क्यों मोटी नहीं है? ठाकुर क्यों मोटे हैं? अगर ठाकुर उन पर गिर पड़े, तो ठकुराइन पिस जायं।

सोना ने प्रतिवाद किया–तू समझती है, अच्छा खाने से लोग मोटे हो जाते हैं। अच्छा खाने से लोग बलवान होते हैं, मोटे नहीं होते। मोटे होते हैं घास-पात खाने से।

'तो ठकुराइन ठाकुर से बलवान हैं?'

'और क्या। अभी उस दिन दोनों में लड़ाई हुई, तो ठकुराइन ने ठाकुर को ऐसा ढकेला कि उनके घुटने फूट गए।'

'तो तू भी पहले आप खाकर तब जीजा को खिलाएगी?'

'और क्या।'

'अम्मां तो पहले दादा को खिलाती हैं।'

'तभी तो जब देखो तब दादा डांट देते हैं। मैं बलवान होकर अपने मरद को काबू में रखूंगी। तेरा मरद तुझे पीटेगा, तेरी हड्डी तोड़कर रख देगा।'

रूपा रुआंसी होकर बोली–क्यों पीटेगा, मैं मार खाने का काम ही न करूंगी।

'वह कुछ न सुनेगा। तूने जरा भी कुछ कहा और वह मार चलेगा। मारते-मारते तेरी खाल उधेड़ लेगा।'

रूपा ने बिगड़कर सोना की साड़ी दांतों से फाड़ने की चेष्टा की और असफल होने पर चुटकियां काटने लगी।

सोना ने और चिढ़ाया–वह तेरी नाक भी काट लेगा।

इस पर रूपा ने बहन को दांत से काट खाया। सोना की बांह लहुआ गई। उसने रूपा को जोर से ढकेल दिया। वह गिर पड़ी और उठकर रोने लगी। सोना भी दांतों के निशान देखकर रो पड़ी।

उन दोनों का चिल्लाना सुनकर गोबर गुस्से से भरा हुआ आया और दोनों को दो-दो घूंसे जड़ दिए। दोनों रोती हुई निकलकर घर चली दीं। सिंचाई का काम रुक गया। इस पर पिता-पुत्र में एक झड़प हो गई।

होरी ने पूछा–पानी कौन चलाएगा? दौड़े-दौड़े गए, दोनों को भगा आए। अब जाकर मना क्यों नहीं लाते?

'तुम्हीं ने इन सबों को बिगाड़ रखा है।'

'इस तरह मारने से और निर्लज्ज हो जायंगी।'

'दो जून खाना बंद कर दो, आप ठीक हो जायं।'

'मैं उनका बाप हूं, कसाई नहीं हूं।'

पांव में एक बार ठोकर लग जाने के बाद किसी कारण से बार-बार ठोकर लगती है और कभी-कभी अंगूठा पक जाता है और महीनों कष्ट देता है। पिता और पुत्र के सद्भाव को आज उसी तरह की चोट लग गई थी और उस पर यह तीसरी चोट पड़ी।

गोबर ने घर जाकर झुनिया को खेत में पानी देने के लिए साथ लिया। झुनिया बच्चे को लेकर खेत में आ गई। धनिया और उसकी दोनों बेटियां बैठी ताकती रहीं। मां को भी गोबर की यह उद्दंडता बुरी लगती थी। रूपा को मारता तो वह बुरा न मानती, मगर जवान लड़की को मारना, यह उसके लिए असह्य था।

आज ही रात को गोबर ने लखनऊ लौट जाने का निश्चय कर लिया। यहां अब वह नहीं

रह सकता। जब घर में उसकी कोई पूछ नहीं है, तो वह क्यों रहे। वह लेन-देन के मामले में बोल नहीं सकता। लड़कियों को जरा मार दिया तो लोग ऐसे जामे के बाहर हो गए, मानो वह बाहर का आदमी है। तो इस सराय में वह न रहेगा।

दोनों भोजन करके बाहर आए थे कि नोखेराम के प्यादे ने आकर कहा—चलो, कारिंदा साहब ने बुलाया है।

होरी ने गर्व से कहा—रात को क्यों बुलाते हैं, मैं तो बाकी दे चुका हूं।

प्यादा बोला—मुझे तो तुम्हें बुलाने का हुक्म मिला है। जो कुछ अरज करना हो, वहीं चलकर करना।

होरी की इच्छा न थी, मगर जाना पड़ा। गोबर विरक्त-सा बैठा रहा। आध घंटे में होरी लौटा और चिलम भरकर पीने लगा। अब गोबर से न रहा गया। पूछा—किस मतलब से बुलाया था?

होरी ने भर्राई हुई आवाज में कहा—मैंने पाई-पाई लगान चुका दिया। वह कहते हैं, तुम्हारे ऊपर दो साल का बाकी है। अभी उस दिन मैंने ऊख बेची, तो पचीस रुपये वहीं उनको दे दिए, और आज वह दो साल का बाकी निकालते हैं। मैंने कह दिया, मैं एक धेला न दूंगा।

गोबर ने पूछा—तुम्हारे पास रसीद होगी?

'रसीद कहां देते हैं?'

'तो तुम बिना रसीद लिए रुपये देते ही क्यों हो?'

'मैं क्या जानता था, यह लोग बेईमानी करेंगे। यह सब तुम्हारी करनी का फल है। तुमने रात को उनकी हंसी उड़ाई, यह उसी का दंड है। पानी में रहकर मगर से बैर नहीं किया जाता। सूद लगाकर सत्तर रुपये बाकी निकाल दिए। ये किसके घर से आएंगे?'

गोबर ने सफाई देते हुए कहा—तुमने रसीद ले ली होती तो मैं लाख उनकी हंसी उड़ाता, तुम्हारा बाल भी बांका न कर सकते। मेरी समझ में नहीं आता कि लेन-देन में तुम सावधानी से क्यों काम नहीं लेते। यों रसीद नहीं देते, तो डाक से रुपया भेजो। यही तो होगा, एकाध रुपया महसूल पड़ जाएगा। इस तरह की धांधली तो न होगी।'

'तुमने यह आग न लगाई होती, तो कुछ न होता। अब तो सभी मुखिया बिगड़े हुए हैं। बेदखली की धमकी दे रहे हैं। दैव जाने कैसे बेड़ा पार लगेगा।'

'मैं जाकर उनसे पूछता हूं।'

'तुम जाकर और आग लगा दोगे।'

'अगर आग लगानी पड़ेगी, तो आग लगा दूंगा। यह बेदखली करते हैं, करें। मैं उनके हाथ में गंगाजली रखकर अदालत में कसम खिलाऊंगा। तुम दुम दबाकर बैठे रहो। मैं इसके पीछे जान लड़ा दूंगा। मैं किसी का एक पैसा दबाना नहीं चाहता, न अपना एक पैसा खोना चाहता हूं।'

वह उसी वक्त उठा और नोखेराम की चौपाल में जा पहुंचा। देखा तो सभी मुखिया लोगों का केबिनेट बैठा हुआ है। गोबर को देखकर सब-के-सब सतर्क हो गए। वातावरण में षड्यंत्र की-सी कुंठा भरी हुई थी।

गोबर ने उत्तेजित कंठ से पूछा—यह क्या बात है कारिंदा साहब, कि आपको दादा ने हाल तक का लगान चुकता कर दिया और आप अभी दो साल का बाकी निकाल रहे हैं? यह कैसा गोलमाल है।

नोखेराम ने मसनद पर लेटकर रोब दिखाते हुए कहा—जब तक होरी है, मैं तुमसे लेन देन की कोई बातचीत नहीं करना चाहता।

गोबर ने आहत स्वर में कहा—तो मैं घर में कुछ नहीं हूं?

'तुम अपने घर में सब कुछ होगे। यहां तुम कुछ नहीं हो।'

'अच्छी बात है, आप बेदखली दायर कीजिए। मैं अदालत में तुमसे गंगाजली उठवाकर रुपये दूंगा, इसी गांव से एक सौ सहादतें दिलाकर साबित कर दूंगा कि तुम रसीद नहीं देते। सीधे-साधे किसान हैं, कुछ बोलते नहीं, तो तुमने समझ लिया कि सब काठ के उल्लू हैं। रायसाहब वहीं रहते हैं, जहां मैं रहता हूं। गांव के सब लोग उन्हें हौवा समझते होंगे, मैं नहीं समझता। रत्ती-रत्ती हाल कहूंगा और देखूंगा, तुम कैसे मुझसे दोबारा रुपये वसूल कर लेते हो।'

उसकी वाणी में सत्य का बल था। डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूंगा हो जाता है। वही सीमेंट, जो ईंट पर चढ़कर पत्थर हो जाता है, मिट्टी पर चढ़ा दिया जाए, तो मिट्टी हो जाएगा। गोबर की निर्भीक स्पष्टवादिता ने उस अनीति के बख्तर को बेध डाला, जिससे सज्जित होकर नोखेराम की दुर्बल आत्मा अपने को शक्तिमान समझ रही थी।

नोखेराम ने जैसे कुछ याद करने का प्रयास करके कहा—तुम इतना गर्म क्यों हो रहे हो इसमें गर्म होने की कौन बात है। अगर होरी ने रुपये दिए हैं, तो कहीं-न-कहीं तो टांके गए होंगे। मैं कल कागज निकालकर देखूंगा। अब मुझे कुछ- कुछ याद आ रहा है कि शायद होरी ने रुपये दिए थे। तुम निसाखातिर रहो, अगर रुपये यहां आ गए हैं, तो कहीं जा नहीं सकते। तुम थोड़े-से रुपयों के लिए झूठ थोड़े ही बोलोगे और न मैं ही इन रुपयों से धनी हो जाऊंगा।

गोबर ने चौपाल से आकर होरी को ऐसा लथाड़ा कि बेचारा स्वार्थ-भीरू बूढ़ा रुआंसा हो गया—तुम तो बच्चों से भी गए-बीते हो, जो बिल्ली की म्याऊं सुनकर चिल्ला उठते हैं। कहां-कहां तुम्हारी रच्छा करता फिरूंगा। मैं तुम्हें सत्तर रुपये दिए जाता हूं। दातादीन ले तो देकर भरपाई लिखा देना। इसके ऊपर तुमने एक पैसा भी दिया, तो फिर मुझसे एक पैसा भी न पाओगे। मैं परदेस में इसलिए नहीं पड़ा हूं कि तुम अपने को लुटवाते रहो और मैं कमा-कमाकर भरता रहूं। मैं कल चला जाऊंगा, लेकिन इतना कहे देता हूं, किसी से एक पैसा उधार मत लेना और किसी को कुछ मत देना। मंगरू, दुलारी, दातादीन—सभी से एक रुपया सैकड़े सूद कराना होगा।

धनिया भी खाना खाकर बाहर निकल आई थी। बोली—अभी क्यों जाते हो बेटा, दो चार दिन और रहकर ऊख की बोनी करा लो और कुछ लेन-देन का हिसाब भी ठीक कर लो तो जाना।

गोबर ने शान जमाते हुए कहा—मेरा दो-तीन रुपये रोज का घाटा हो रहा है, यह भी समझती हो। यहां मैं बहुत-बहुत दो-चार आने की मजूरी ही तो करता हूं और अबकी मैं झुनिया को भी लेता जाऊंगा। वहां मुझे खाने-पीने की बड़ी तकलीफ होती है।

धनिया ने डरते-डरते कहा—जैसे तुम्हारी इच्छा, लेकिन वहां वह कैसे अकेले घर संभालेगी, कैसे बच्चे की देखभाल करेगी?'

'अब बच्चे को देखूं कि अपना सुभीता देखूं, मुझसे चूल्हा नहीं फूंका जाता।'

'ले जाने को मैं नहीं रोकती, लेकिन परदेस में बाल-बच्चों के साथ रहना, न कोई आगे

न पीछे, सोचो कितना झंझट है।'

'परदेस में संगी-साथी निकल ही आते हैं अम्मां, और यह तो स्वारथ का संसार है। जिसके साथ चार पैसे का गम खाओ, वही अपना। खाली हाथ तो मां-बाप भी नहीं पूछते।'

धनिया कटाक्ष समझ गई। उसके सिर से पांव तक आग लग गई। बोली—मां-बाप को भी तुमने उन्हीं पैसे के यारों में समझ लिया?

'आंखों देख रहा हूं।'

'नहीं देख रहे हो, मां-बाप का मन इतना निठुर नहीं होता। हां, लड़के अलबत्ता जहां चार पैसे कमाने लगे कि मां-बाप से आंखें फेर लीं। इसी गांव में एक-दो नहीं, दस-बीस परताख दे दूं। मां-बाप करज-कवाम लेते हैं किसके लिए? लड़के-लड़कियों ही के लिए कि अपने भोग-विलास के लिए?'

'क्या जाने तुमने किसके लिए करज लिया? मैंने तो एक पैसा भी नहीं जाना।'

'बिना पाले ही इतने बड़े हो गए?'

'पालने में तुम्हारा क्या लगा? जब तक बच्चा था, दूध पिला दिया। फिर लावारिस की तरह छोड़ दिया। जो सबने खाया, वही मैंने खाया। मेरे लिए दूध नहीं आता था, मक्खन नहीं बंधा था। और अब तुम भी चाहती हो, और दादा भी चाहते हैं कि मैं सारा करजा चुकाऊं, लगान दूं, लड़कियों का ब्याह करूं। जैसे मेरी जिंदगी तुम्हारा देना भरने ही के लिए है। मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं?

धनिया सन्नाटे में आ गई। एक क्षण में उसके जीवन का मृदु स्वप्न जैसे टूट गया। अब तक वह मन में प्रसन्न थी कि अब उसका दु:ख-दरिद्र सब दूर हो गया। जब से गोबर घर आया, उसके मुख पर हास की एक छटा खिली रहती थी। उसकी वाणी में मृदुता और व्यवहारों में उदारता आ गई थी। भगवान् ने उस पर दया की है, तो उसे सिर झुकाकर चलना चाहिए। भीतर की शांति बाहर सौजन्य बन गई थी। ये शब्द तपते हुए बालू की तरह हृदय पर पड़े और चने की भांति सारे अरमान झुलस गए। उसका सारा घमंड चूर-चूर हो गया। इतना सुन लेने के बाद अब जीवन में क्या रस रह गया? जिस नौका पर बैठकर इस जीवन-सागर को पार करना चाहती थी वह टूट गई थी, तो किस सुख के लिए जिए।

लेकिन नहीं! उसका गोबर इतना स्वार्थी नहीं है। उसने कभी मां की बात का जवाब नहीं दिया, कभी किसी बात के लिए जिद नहीं की। जो कुछ रूखा-सूखा मिल गया, वही खा लेता था। वही भोला-भाला, शील-स्नेह का पुतला आज क्यों ऐसी दिल तोड़ने वाली बात कर रहा है? उसकी इच्छा के विरुद्ध तो किसी ने कुछ नहीं कहा। मां-बाप दोनों ही उसका मुंह जोहते रहते हैं। उसने खुद ही लेन-देन की बात चलाई, नहीं उससे कौन कहता है कि तू मां बाप का देना चुका। मां-बाप के लिए यही क्या कम सुख है कि वह इज्जत-आबरू के साथ भलेमानसों की तरह कमाता-खाता है। उससे कुछ हो सके, तो मां-बाप की मदद कर दे। नहीं हो सकता, तो मां-बाप उसका गला न दबाएंगे। झुनिया को ले जाना चाहता है, खुसी से ले जाय। धनिया ने तो केवल उसकी भलाई के खयाल से कहा था कि झुनिया को वहां ले जाने मे उसे जितना आराम मिलेगा, उससे कहीं ज्यादा झंझट बढ़ जायगा। इसमें ऐसी कौन-सी लगने वाली बात थी कि वह इतना बिगड़ उठा। हो न हो, यह आग झुनिया की लगाई है। वही बैठे-बैठे उसे यह मंतर पढ़ा रही है। यहां सौक-सिंगार करने को नहीं मिलता, घर का कुछ न कुछ

काम भी करना ही पड़ता है। वहां रुपये-पैसे हाथ में आएंगे, मजे से चिकना खायगी, चिकना पहनेगी और टांग फैलाकर सोएगी। दो आदमियों की रोटी पकाने में क्या लगता है, वहां तो पैसा चाहिए। सुना, बाजार में पकी-पकाई रोटियां मिल जाती हैं। यह सारा उपद्रव उसी ने खड़ा किया है, सहर में कुछ दिन रह भी चुकी है। वहां का दाना-पानी मुंह लगा हुआ है। यहां कोई पूछता न था। यह भोंदू मिल गया। इसे फांस लिया। जब यहां पांच महीने का पेट लेकर आई थी, तब कैसी म्यांव-म्यांव करती थी। तब यहां सरन न मिली होती, तो आज कहीं भीख मांगती होती। यह उसी नेकी का बदला है। इसी चुड़ैल के पीछे डांड़ देना पड़ा, बिरादरी में बदनामी हुई, खेती टूट गई, सारी दुर्गत हो गई। और आज यह चुड़ैल जिस पत्तल में खाती है, उसी में छेद कर रही है। पैसे देखे, तो आंख हो गई। तभी ऐंठी-ऐंठी फिरती है, मिजाज नहीं मिलता। आज लड़का चार पैसे कमाने लगा है न। इतने दिनों बात नहीं पूछी, तो सास का पांव दबाने के लिए तेल लिए दौड़ती थी। डाइन उसके जीवन की निधि को उसके हाथ से छीन लेना चाहती है।

दुखित स्वर में बोली—यह मंतर तुम्हें कौन दे रहा है बेटा, तुम तो ऐसे न थे। मां-बाप तुम्हारे ही हैं, बहनें तुम्हारी ही हैं, घर तुम्हारा ही है। यहां बाहर का कौन है? और हम क्या बहुत दिन बैठे रहेंगे? घर की मरजाद बनाए रखोगे, तो तुम्हीं को सुख होगा। आदमी घरवालों ही के लिए धन कमाता है कि और किसी के लिए? अपना पेट तो सुअर भी पाल लेता है। मैं न जानती थी, झुनिया नागिन बनकर हमीं को डसेगी।

गोबर ने तिनककर कहा—अम्मां, मैं नादान नहीं हूं कि झुनिया मुझे मंतर पढ़ाएगी। तुम उसे नाहक कोस रही हो। तुम्हारी गिरस्ती का सारा बोझ मैं नहीं उठा सकता। मुझसे जो कुछ हो सकेगा, तुम्हारी मदद कर दूंगा, लेकिन अपने पांवों में बेड़ियां नहीं डाल सकता।

झुनिया भी कोठरी से निकलकर बोली— अम्मां, जुलाहे का गुस्सा डाढ़ी पर न उतारो। कोई बच्चा नहीं है कि मैं फोड़ लूंगी। अपना-अपना भला-बुरा सब समझते हैं। आदमी इसीलिए नहीं जनम लेता कि सारी उमर तपस्या करता रहे और एक दिन खाली हाथ मर जाए। सब जिंदगी का कुछ सुख चाहते हैं, सबकी लालसा होती है कि हाथ में चार पैसे हों।

धनिया ने दांत पीसकर कहा—अच्छा झुनिया, बहुत गियान न बघार। अब तू भी अपना भला-बुरा सोचने जोग हो गई है। जब यहां आकर मेरे पैरों पर सिर रक्खे रो रही थी, तब अपना भला-बुरा नहीं सूझा था? उस घड़ी हम भी अपना भला-बुरा सोचने लगते, तो आज तेरा कहीं पता न होता।

इसके बाद संग्राम छिड़ गया। ताने-मेहने, गाली-गलौच, थुक्का-फजीहत, कोई बात न बची। गोबर भी बीच-बीच में डंक मारता जाता था। होरी बरौठे में बैठा सब कुछ सुन रहा था। सोना और रूपा आंगन में सिर झुकाए खड़ी थीं, दुलारी, पुनिया और कई स्त्रियां बीच-बचाव करने आ पहुंची थीं। गर्जन के बीच में कभी-कभी बूंदें भी गिर जाती थीं। दोनों ही अपने-अपने भाग्य को रो रही थीं। दोनों ही ईश्वर को कोस रही थीं, और दोनों अपनी-अपनी निर्दोषिता सिद्ध कर रही थीं। झुनिया गड़े मुर्दे उखाड़ रही थी। आज उसे हीरा और सोभा से विशेष सहानुभूति हो गई थी, जिन्हें धनिया ने कहीं का न रखा था। धनिया की आज तक किसी से न पटी थी, तो झुनिया से कैसे पट सकती है? धनिया अपनी सफाई देने की चेष्टा कर रही थी, लेकिन न जाने क्या बात थी कि जनमत झुनिया की ओर था। शायद इसलिए कि झुनिया संयम हाथ से

न जाने देती थी और धनिया आपे से बाहर थी। शायद इसलिए भी कि झुनिया अब कमाऊ पुरुष की स्त्री थी और उसे प्रसन्न में रखने में ज्यादा मसलहत थी।

तब होरी ने आंगन में आकर कहा–मैं तेरे पैरों पड़ता हूं धनिया, चुप रह। मेरे मुंह में कालिख मत लगा। हां, अभी मन न भरा हो तो और सुन।

धनिया फुंकार मारकर उधर दौड़ी–तुम भी मोटी डाल पकड़ने चले। मैं ही दासी हूं। यह तो मेरे ऊपर फूल बरसा रही है?

संग्राम का क्षेत्र बदल गया।

'जो छोटों के मुंह लगे, वह छोटा।'

धनिया किस तर्क से झुनिया को छोटा मान ले?

होरी ने व्यथित कंठ से कहा–अच्छा, वह छोटी नहीं, बड़ी सही। जो आदमी नहीं रहना चाहता, क्या उसे बांधकर रखेगी? मां-बाप का धरम है, लड़के को पाल-पोसकर बड़ा कर देना। वह हम कर चुके। उनके हाथ-पांव हो गए। अब तू क्या चाहती है, वे दाना-चारा लाकर खिलाएं। मां-बाप का धरम सोलहों आना लड़कों के साथ है। लड़कों का मां-बाप के साथ एक आना भी धरम नहीं है। जो जाता है, उसे असीस देकर विदा कर दे। हमारा भगवान् मालिक है। जो कुछ भोगना बदा है, भोगेंगे, चालीस सात सैंतालीस साल इसी तरह रोते-धोते कट गए। दस-पांच साल हैं, वह भी यों ही कट जायंगे।

उधर गोबर जाने की तैयारी कर रहा था। इस घर का पानी भी उसके लिए हराम है। माता होकर जब उसे ऐसी-ऐसी बातें कहे, तो अब वह उसका मुंह भी न देखेगा।

देखते ही देखते उसका बिस्तर बंध गया। झुनिया ने भी चुंदरी पहन ली। चुन्नू भी टोप और फ्राक पहनकर राजा बन गया।

होरी ने आर्द्र कंठ से कहा–बेटा, तुमसे कुछ कहने का मुंह तो नहीं है, लेकिन कलेजा नही मानता। क्या जरा जाकर अपनी अभागिनी माता के पांव छू लोगे, तो कुछ बुरा होगा? जिस माता की कोख से जनम लिया और जिसका रकत पीकर पले हो, उसके साथ इतना भी नहीं कर सकते?

गोबर ने मुंह फेरकर कहा–मैं उसे अपनी माता नहीं समझता।

होरी ने आंखों में आंसू लाकर कहा–जैसी तुम्हारी इच्छा। जहां रहो, सुखी रहो।

झुनिया ने सास के पास जाकर उसके चरणों को आंचल से छुआ। धनिया के मुंह से आसीस का एक शब्द भी न निकला। उसने आंखें उठाकर देखा भी नहीं। गोबर बालक को गोद में लिए आगे-आगे था। झुनिया बिस्तर बगल में दबाए पीछे। एक चमार का लड़का संदूक लिए था। गांव के कई स्त्री-पुरुष गोबर को पहुंचाने गांव के बाहर तक आए।

और धनिया बैठी रो रही थी, जैसे कोई उसके हृदय को आरे से चीर रहा हो। उसका मातृत्व उस घर के समान हो रहा था, जिसमें आग लग गई हो और सब कुछ भस्म हो गया हो। बैठकर रोने के लिए भी स्थान न बचा हो।

बाईस

इधर कुछ दिनों से रायसाहब की कन्या के विवाह की बातचीत हो रही थी। उसके साथ ही एलेक्शन भी सिर पर आ पहुंचा था, मगर इन सबों से आवश्यक उन्हें दीवानी में एक मुकदमा दायर करना था, जिसकी कोर्ट-फीस ही पचास हजार होती थी, ऊपर के खर्च अलग। रायसाहब के साले जो अपनी रियासत के एकमात्र स्वामी थे, ऐन जवानी में मोटर लड़ जाने के कारण गत हो गए थे, और रायसाहब अपने कुमार पुत्र की ओर से उस रियासत पर अधिकार पाने के लिए कानून की शरण लेना चाहते थे। उनके चचेरे सालों ने रियासत पर कब्जा जमा लिया था और रायसाहब को उसमें से कोई हिस्सा देने पर तैयार न थे। रायसाहब ने बहुत चाहा कि आपस में समझौता हो जाए और उनके चचेरे साले माकूल गुजारा लेकर हट जाएं, यहां तक कि वह उस रियासत की आधी आमदनी छोड़ने पर तैयार थे, मगर सालों ने किसी तरह का समझौता स्वीकार न किया, और केवल लाठी के जोर से रियासत में तहसील-वसूल शुरू कर दी। रायसाहब को अदालत की शरण में जाने के सिवा कोई मार्ग न रहा। मुकदमे में लाखों का खर्च था, मगर रियासत भी बीस लाख से कम की जायदाद न थी। वकीलों ने निश्चय रूप से कह दिया था कि आपकी शर्तिया डिगरी होगी। ऐसा मौका कौन छोड़ सकता था? मुश्किल यही थी कि यह तीनों काम एक साथ आ पड़े थे और उन्हें किसी तरह टाला न जा सकता था। कन्या की अवस्था अठारह वर्ष की हो गई थी और केवल हाथ में रुपये न रहने के कारण अब तक उसका विवाह टलता जाता था। खर्च का अनुमान एक लाख का था। जिसके पास जाते, वही बड़ा-सा मुंह खोलता, मगर हाल में एक बड़ा अच्छा अवसर हाथ में आ गया था। कुंवर दिग्विजयसिंह की पत्नी यक्ष्मा की भेंट हो चुकी थी, और कुंवर साहब अपने उजड़े घर को जल्द से जल्द बसा लेना चाहते थे। सौदा भी वारे से तय हो गया और कहीं शिकार हाथ से निकल न जाए, इसलिए इसी लग्न में विवाह होना परमावश्यक था।

कुंवर साहब दुर्वासनाओं के भंडार थे। शराब, गांजा, अफीम, मदक, चरस, ऐसा कोई नशा न था, जो वह न करते हों। और ऐयाशी तो रईस की शोभा ही है। वह रईस ही क्या, जो एयाश न हो। धन का उपभोग और किया ही कैसे जाय? मगर इन सब दुर्गुणों के होते हुए भी वह ऐसे प्रतिभावान थे कि अच्छे-अच्छे विद्वान् उनका लोहा मानते थे। संगीत, नाट्यकला, हस्तरेखा, ज्योतिष, योग, लाठी, कुश्ती, निशानबाजी आदि कलाओं में अपना जोड़ न रखते थे। इसके साथ ही बड़े दबंग और निर्भीक थे। राष्ट्रीय आंदोलन में दिल खोलकर सहयोग देते थे, हां गुप्त रूप से। अधिकारियों से यह बात छिपी न थी, फिर भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और साल में एक-दो बार गवर्नर साहब भी उनके मेहमान हो जाते थे। और अभी अवस्था तीस बत्तीस से अधिक न थी और स्वास्थ्य तो ऐसा था कि अकेले एक बकरा खाकर हजम कर डालते थे। रायसाहब ने समझा, बिल्ली के भागों छींका टूटा। अभी कुंवर साहब षोडशी से निवृत्त भी न हुए थे कि रायसाहब ने बातचीत शुरू कर दी। कुंवर साहब के लिए विवाह केवल अपना प्रभाव और शक्ति बढ़ाने का साधन था। रायसाहब कौंसिल के मेंबर थे ही, यों भी प्रभावशाली थे। राष्ट्रीय संग्राम में अपने त्याग का परिचय देकर श्रद्धा के पात्र भी बन चुके थे। शादी तय होने में कोई बाधा न हो सकती थी। और वह तय हो गई।

रहा एलेक्शन। यह सोने की हंसिया थी, जिसे न उगलते बनता था, न निगलते। अब तक

वह दो बार निर्वाचित हो चुके थे और दोनों ही बार उन पर एक-एक लाख की चपत पड़ी थी, मगर अबकी एक राजा साहब उसी इलाके से खड़े हो गए थे और डंके की चोट ऐलान कर दिया था कि चाहे हर एक वोटर को एक-एक हजार ही क्यों न देना पड़े, चाहे पचास लाख की रियासत मिट्टी में मिल जाय, मगर राय अमरपालसिंह को कौंसिल में न जाने दूंगा। और उन्हें अधिकारियों ने अपनी सहायता का आश्वासन भी दे दिया था। रायसाहब विचारशील थे, चतुर थे, अपना नफा-नुकसान समझते थे, मगर राजपूत थे और पोतड़ों के रईस थे। वह चुनौती पाकर मैदान से कैसे हट जायं? यों इनसे राजा सूर्यप्रतापसिंह ने आकर कहा होता, भाई साहब, आप दो बार कौंसिल में जा चुके, अबकी मुझे जाने दीजिए, तो शायद रायसाहब ने उनका स्वागत किया होता। कौंसिल का मोह अब उन्हें न था, लेकिन इस चुनौती के सामने ताल ठोकने के सिवा और कोई राह ही न थी। एक मसलहत और भी थी। मिस्टर तंखा ने उन्हें विश्वास दिया था कि आप खड़े हो जायं, पीछे राजा साहब से एक लाख की थैली लेकर बैठ जाइएगा। उन्होंने यहां तक कहा था कि राजा साहब बड़ी खुशी से एक लाख दे देंगे, मेरी उनसे बातचीत हो चुकी है, पर अब मालूम हुआ, राजा साहब रायसाहब को परास्त करने का गौरव नहीं छोड़ना चाहते और इसका मुख्य कारण था, रायसाहब की लड़की की शादी कुंवर साहब से ठीक होना। दो प्रभावशाली घरानों का संयोग वह अपनी प्रतिष्ठा के लिए हानिकारक समझते थे। उधर रायसाहब का ससुराली जायदाद मिलने की भी आशा थी। राजा साहब के पहलू में यह कांटा भी बुरी तरह खटक रहा था। कहीं वह जायदाद इन्हें मिल गई--और कानून रायसाहब के पक्ष में था ही—तब तो राजा साहब का एक प्रतिद्वंद्वी खड़ा हो जायगा, इसलिए उनका धर्म था कि रायसाहब को कुचल डालें और उनकी प्रतिष्ठा धूल में मिला दें।

बेचारे रायसाहब बड़े संकट में पड़ गए थे। उन्हें यह संदेह होने लगा था कि केवल अपना मतलब निकालने के लिए मिस्टर तंखा ने उन्हें धोखा दिया। यह खबर मिली थी कि अब वह राजा साहब के पैरोकार हो गए हैं। यह रायसाहब के घाव पर नमक था। उन्होंने कई बार तंखा को बुलाया था, मगर वह या तो घर पर मिलते ही न थे, या आने का वादा करके भूल जाते थे। आखिर खुद उनसे मिलने का इरादा करके वह उनके पास जा पहुंचे। संयोग से मिस्टर तंखा घर पर मिल गए, मगर रायसाहब को पूरे घंटे-भर उनकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। यह वही मिस्टर तंखा हैं, जो रायसाहब के द्वार पर एक बार रोज हाजिरी दिया करते थे। आज इतना मिजाज हो गया है। जले बैठे थे। ज्योंही मिस्टर तंखा सजे-सजाए, मुंह में सिगार दबाए कमरे में आए और हाथ बढ़ाया कि रायसाहब ने बमगोला छोड़ दिया—मैं घंटे भर से यहां बैठा हुआ हूं और आप निकलते-निकलते अब निकले हैं। मैं इसे अपनी तौहीन समझता हूं।

मिस्टर तंखा ने एक सोफे पर बैठकर निश्चिंत भाव से धुआं उड़ाते हुए कहा—मुझे इसका खेद है। मैं एक जरूरी काम में लगा था। आपको फोन करके मुझसे समय ठीक कर लेना चाहिए था।

आग में घी पड़ गया, मगर रायसाहब ने क्रोध को दबाया। वह लड़ने न आए थे। इस अपमान को पी जाने का ही अवसर था। बोले--हां, यह गलती हुई। आजकल आपको बहुत कम फुरसत रहती है शायद।

'जी हां, बहुत कम, वरना मैं अवश्य आता।'

'मैं उसी मुआमले के बारे में आपसे पूछने आया था। समझौते की तो कोई आशा नहीं

मालूम होती। उधर तो जंग की तैयारियां बड़े जोरों से हो रही हैं।'

'राजा साहब को तो आप जानते ही हैं, झक्कड़ आदमी हैं, पूरे सनकी। कोई न कोई धुन उन पर सवार रहती है। आजकल यही धुन है कि रायसाहब को नीचा दिखाकर रहेंगे। और उन्हें जब एक धुन सवार हो जाती है, तो फिर किसी की नहीं सुनते, चाहे कितना ही नुकसान उठाना पड़े। कोई चालीस लाख का बोझ सिर पर है, फिर भी वही दम-खम है, वही अलल्ले तलल्ले खर्च हैं। पैसे को तो कुछ समझते ही नहीं। नौकरों का वेतन छ:-छ: महीने से बाकी पड़ा हुआ है, मगर हीरा-महल बन रहा है। संगमरमर का तो फर्श है। पच्चीकारी ऐसी हो रही है कि आंखें नहीं ठहरतीं। अफसरों के पास रोज डालियां जाती रहती हैं। सुना है, कोई अंग्रेज मैनेजर रखने वाले हैं।'

'फिर आपने कैसे कह दिया था कि आप कोई समझौता करा देंगे?'

'मुझसे जो कुछ हो सकता था, वह मैंने किया। इसके सिवा मैं और क्या कर सकता था? अगर कोई व्यक्ति अपने दो-चार लाख रुपये फूंकने ही पर तुला हुआ हो, तो मेरा क्या बस।'

रायसाहब अब क्रोध न संभाल सके—खासकर जब उन दो-चार लाख रुपये में से दस बीस हजार आपके हत्थे चढ़ने की भी आशा हो।

मिस्टर तंखा अब क्यों दबते? बोले—रायसाहब, साफ-साफ न कहलवाइए। यहां न मैं संन्यासी हूं, न आप। हम सभी कुछ न कुछ कमाने ही निकले हैं। आंख के अंधों और गांठ के पूरों की तलाश आपको भी उतनी ही है, जितनी मुझको। आपसे मैंने खड़े होने का प्रस्ताव किया। आप एक लाख के लोभ से खड़े हो गए, अगर गोटी लाल हो जाती, तो आज आप एक लाख के स्वामी होते और बिना एक पाई कर्ज लिए कुंवर साहब से संबंध भी हो जाता और मुकदमा भी दायर हो जाता, मगर आपके दुर्भाग्य से वह चाल पट पड़ गई। जब आप ही ठाठ पर रह गए, तो मुझे क्या मिलता। आखिर मैंने झख मारकर उनकी पूंछ पकड़ी। किसी न किसी तरह यह वैतरणी तो पार-करनी ही है।

रायसाहब को ऐसा आवेश आ रहा था कि इस दुष्ट को गोली मार दें। इसी बदमाश ने सब्ज बाग दिखाकर उन्हें खड़ा किया और अब अपनी सफाई दे रहा है। पीठ में धूल भी नहीं लगने देता, लेकिन परिस्थिति जबान बंद किए हुए थी।

'तो अब आपके किए कुछ नहीं हो सकता?'

'ऐसा ही समझिए।'

'मैं पचास हजार पर भी समझौता करने को तैयार हूं।

'राजा साहब किसी तरह न मानेंगे।'

'पच्चीस हजार पर तो मान जायंगे?'

'कोई आशा नहीं। वह साफ कह चुके हैं।'

'वह कह चुके हैं या आप कह रहे हैं?'

'आप मुझे झूठा समझते हैं?'

रायसाहब ने विनम्र स्वर में कहा—मैं आपको झूठा नहीं समझता, लेकिन इतना जरूर समझता हूं कि आप चाहते, तो मुआमला हो जाता।'

'तो आपका खयाल है, मैंने समझौता नहीं होने दिया?'

'नहीं, यह मेरा मतलब नहीं है। मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि आप चाहते तो काम

हो जाता और मैं इस झमेले में न पड़ता।'

मिस्टर तंखा ने घड़ी की तरफ देखकर कहा—तो रायसाहब, अगर आप साफ कहलाना चाहते हैं, तो सुनिए—अगर आपने दस हजार का चैक मेरे हाथ पर रख दिया होता, तो आज निश्चय एक लाख के स्वामी होते। आप शायद चाहते होंगे, जब आपको राजा साहब से रुपये मिल जाते, तो आप मुझे हजार-दो-हजार दे देते। तो मैं ऐसी कच्ची गोली नहीं खेलता। आप राजा साहब से रुपये लेकर तिजोरी में रखते और मुझे अंगूठा दिखा देते। फिर मैं आपका क्या बना लेता? बतलाइए? कही नालिश-फरियाद भी तो नहीं कर सकता था।

रायसाहब ने आहत नेत्रों से देखा—आप मुझे इतना बेईमान समझते हैं?

तंखा ने कुरसी से उठते हुए कहा—इसे बेईमानी कौन समझता है। आजकल यही चतुराई है। कैसे दूसरों को उल्लू बनाया जा सके, यही सफल नीति है, और आप इसके आचार्य हैं।

रायसाहब ने मुट्ठी बांधकर कहा—मैं?

'जी हां, आप। पहले चुनाव में मैंने जी-जान से आपकी पैरवी की। आपने बड़ी मुश्किल से रो-धोकर पांच सौ रुपये दिए, दूसरे चुनाव में आपने एक सड़ी-सी टूटी-फूटी कार देकर अपना गला छुड़ाया। दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंककर पीता है।'

वह कमरे से निकल गए और कार लाने का हुक्म दिया।

रायसाहब का खून खौल रहा था। इस अशिष्टता की भी काई हद है। एक तो घंटे-भर इंतजार कराया और अब इतनी बेमुरौवती से पेश आकर उन्हें जबरदस्ती घर से निकाल रहा है। अगर उन्हें विश्वास होता कि वह मिस्टर तंखा को पटकनी दे सकते हैं, तो कभी न चूकते, मगर तंखा डील-डौल में उनसे सवाए थे। जब मिस्टर तंखा ने हार्न बजाया, तो वह भी आकर अपनी कार पर बैठे और सीधे मिस्टर खन्ना के पास पहुचे।

नौ बज रहे थे, मगर खन्ना साहब अभी मीठी नींद का आनंद ले रहे थे। वह दो बजे रात के पहले कभी न सोते थे और नौ बजे तक सोना स्वाभाविक ही था। यहां भी रायसाहब को आधा घंटा बैठना पड़ा, इसीलिए जब कोई साढ़े नौ बजे मिस्टर खन्ना मुस्कराते हुए निकले तो रायसाहब ने डांट बताई—अच्छा! अब सरकार की नींद खुली है तो साढ़े नौ बजे। रुपये जमा कर लिए हैं न, तभी बेफिक्री है। मेरी तरह ताल्लुकेदार होते, तो अब तक आप भी किसी द्वार पर खड़े होते। बैठे-बैठे सिर में चक्कर आ जाता।

मिस्टर खन्ना ने सिगरेट-केस उनकी तरफ बढ़ाते हुए प्रसन्न मुख से कहा—रात सोने में बड़ी देर हो गई। इस वक्त किधर से आ रहे हैं।

रायसाहब ने थोड़े शब्दों में अपनी सारी कठिनाइयां बयान कर दीं। दिल में खन्ना को गालियां देते थे, जो उनका सहपाठी होकर भी सदैव उन्हें ठगने की फिक्र किया करता था, मगर मुंह पर उसकी खुशामद करते थे।

खन्ना ने ऐसा भाव बनाया, मानो उन्हें बड़ी चिंता हो गई है, बोले—मेरी तो सलाह है, आप एलेक्शन को गोली मारें, और अपने सालों पर मुकदमा दायर कर दें। रही शादी, वह तो तीन दिन का तमाशा है। उसके पीछे जेरबार होना मुनासिब नहीं। कुंवर साहब मेरे दोस्तों में हैं, लेन-देन का कोई सवाल न उठने पाएगा।

रायसाहब ने व्यंग करके कहा—आप यह भूल जाते हैं मिस्टर खन्ना कि मैं बैंकर नहीं, ताल्लुकेदार हूं। कुंवर साहब दहेज नहीं मांगते, उन्हें ईश्वर ने सब कुछ दिया है, लेकिन आप जानते

हैं, यह मेरी अकेली लड़की है और उसकी मां मर चुकी है। वह आज जिंदा होती, तो शायद सारा घर लुटाकर भी उसे संतोष न होता। तब शायद मैं उसे हाथ रोककर खर्च करने का आदेश देता, लेकिन अब तो मैं उसकी मां भी हूं और बाप भी हूं। अगर मुझे अपने हृदय का रक्त निकालकर भी देना पड़े, तो मैं खुशी से दे दूंगा। इस विधुर-जीवन में मैंने संतान-प्रेम से ही अपनी आत्मा की प्यास बुझाई है। दोनों बच्चों के प्यार में ही अपने पत्नीव्रत का पालन किया है। मेरे लिए यह असंभव है कि इस शुभ अवसर पर अपने दिल के अरमान न निकालूं। मैं अपना मन को तो समझा सकता हूं, पर जिसे मैं पत्नी का आदेश समझता हूं, उसे नहीं समझाया जा सकता। और एलेक्शन के मैदान से भागना भी मेरे लिए संभव नहीं है। मैं जानता हूं, मैं हारूंगा। राजा साहब से मेरा कोई मुकाबला नहीं, लेकिन राजा साहब को इतना जरूर दिखा देना चाहता हूं कि अमरपालसिंह नर्म चारा नहीं है।

'और मुदकमा दायर करना तो आवश्यक ही है?'

'उसी पर तो सारा दारोमदार है। अब आप बतलाइए, आप मेरी क्या मदद कर सकते हैं।'

'मेरे डाइरेक्टरों का इस विषय में जो हुक्म है, वह आप जानते ही हैं। और राजा साहब भी हमारे डाइरेक्टर हैं, यह भी आपको मालूम है। पिछला वसूल करने के लिए बार-बार ताकीद हो रही है। कोई नया मुआमला तो शायद ही हो सके।'

रायसाहब ने मुंह लटकाकर कहा--आप तो मेरा डोंगा ही डुबाए देते हैं मिस्टर खन्ना।

'मेरे पास जो कुछ निज का है, वह आपका है, लेकिन बैंक के मुआमले में तो मुझे स्वामियों के आदेशों को मानना ही पड़ेगा।'

'अगर यह जायदाद हाथ आ गई, और मुझे इसकी पूरी आशा है, तो पाई-पाई अदा कर दूंगा।'

'आप बतला सकते हैं, इस वक्त आप कितने पानी में हैं?'

रायसाहब ने हिचकते हुए कहा--पांच-छ: लाख समझिए। कुछ कम ही होंगे।

खन्ना ने अविश्वास के भाव से कहा--या तो आपको याद नहीं है, या आप छिपा रहे हैं।

रायसाहब ने जोर देकर कहा--जी नहीं, मैं न भूला हूं, और न छिपा रहा हूं। मेरी जायदाद इस वक्त कम-से-कम पचास लाख की है और ससुराल की जायदाद भी इससे कम नहीं है। इतनी जायदाद पर दस-पांच लाख का बोझ कुछ नहीं के बराबर है।

'लेकिन यह आप कैसे कह सकते हैं कि ससुराली जायदाद पर भी कर्ज नहीं है?'

'जहां तक मुझे मालूम है, वह जायदाद बे-दाग है।'

'और मुझे यह सूचना मिली है कि उस जायदाद पर दस लाख से कम का भार नहीं है। उस जायदाद पर तो अब कुछ मिलने से रहा, और आपकी जायदाद पर भी मेरे खयाल में दस लाख से कम देना नहीं है। और यह जायदाद अब पचास लाख की नहीं, मुश्किल से पचीस लाख की है। इस दशा में कोई बैंक आपको कर्ज नहीं दे सकता। यों समझ लीजिए कि आप ज्वालामुखी के मुख पर खड़े हैं। एक हल्की-सी ठोकर आपको पाताल में पहुंचा सकती है। आपको इस मौके पर बहुत संभलकर चलना चाहिए।'

रायसाहब ने उनका हाथ अपनी तरफ खींचकर कहा--यह सब मैं खूब समझता हूं,

मित्रवर! लेकिन जीवन की ट्रैजेडी और इसके सिवा क्या है कि आपकी आत्मा जो काम करना नहीं चाहती, वही आपको करना पड़े। आपको इस मौके पर मेरे लिए कम-से-कम दो लाख का इंतजाम करना पड़ेगा।

खन्ना ने लंबी सांस लेकर कहा—माई गॉड। दो लाख। असंभव, बिल्कुल असंभव।

'मैं तुम्हारे द्वार पर सर पटककर प्राण दे दूंगा खन्ना, इतना समझ लो। मैंने तुम्हारे ही भरोसे यह सारे प्रोग्राम बांधे हैं। अगर तुमने निराश कर दिया, तो शायद मुझे जहर खा लेना पड़े। मैं सूर्यप्रतापसिंह के सामने घुटने नहीं टेक सकता। कन्या का विवाह अभी दो-चार महीने टल सकता है। मुकदमा दायर करने के लिए अभी काफी वक्त है, लेकिन यह एलेक्शन सिर पर आ गया है, और मुझे सबसे बड़ी फिक्र यही है।'

खन्ना ने चकित होकर कहा—तो आप एलेक्शन में दो लाख लगा देंगे?

'एलेक्शन का सवाल नहीं है भाई, यह इज्जत का सवाल है। क्या आपकी राय में मेरी इज्जत दो लाख की भी नहीं है! मेरी सारी रियासत बिक जाय, गम नहीं, मगर सूर्यप्रतापसिंह को मैं आसानी से विजय न पाने दूंगा।'

खन्ना ने एक मिनट तक धुआं निकालने के बाद कहा—बैंक की जो स्थिति है, वह मैंने आपके सामने रख दी। बैंक ने एक तरह से लेन-देन का काम बंद कर दिया है। मैं कोशिश करूंगा कि आपके साथ खास रिआयत की जाय, लेकिन Business is Business यह आप जानते हैं। मेरा कमीशन क्या रहेगा? मुझे आपके लिए खास तौर पर सिफारिश करनी पड़ेगी। राजा साहब का अन्य डाइरेक्टरों पर कितना प्रभाव है, यह भी आप जानते हैं। मुझे उनके खिलाफ गुटबंदी करनी पड़ेगी। यों समझ लीजिए कि मेरी जिम्मेदारी पर ही मुआमला होगा।

रायसाहब का मुंह गिर गया। खन्ना उनके अंतरंग मित्रों में थे। साथ के पढ़े हुए, साथ के बैठने वाले। और वह उनसे कमीशन की आशा रखते हैं, इतनी बेमुरव्वती? आखिर वह जो इतने दिनों से खन्ना की खुशामद करते आते हैं, वह किस दिन के लिए? बाग में फल निकलें, शाक-भाजी पैदा हो, सबसे पहले खन्ना के पास डाली भेजते हैं। कोई उत्सव हो, कोई जलसा हो, सबसे पहले खन्ना को निमंत्रण देते हैं। उसका यह जवाब है? उदास मन से बोले—आपकी जो इच्छा हो, लेकिन मैं आपको भाई समझता था।

खन्ना ने कृतज्ञता के भाव से कहा—यह आपकी कृपा है। मैंने भी सदैव आपको अपना बड़ा भाई समझा है और अब भी समझता हूं। कभी आपसे कोई पर्दा नहीं रखा, लेकिन व्यापार एक दूसरा ही क्षेत्र है। यहां कोई किसी का दोस्त नहीं, कोई किसी का भाई नहीं। जिस तरह मैं भाई के नाते आपसे यह नहीं कह सकता कि मुझे दूसरों से ज्यादा कमीशन दीजिए, उसी तरह आपको भी मेरे कमीशन में रिआयत के लिए आग्रह न करना चाहिए। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं, कि मैं जितनी रिआयत आपके साथ कर सकता हूं, उतनी करूंगा। कल आप दफ्तर के वक्त आएं और लिखा-पढ़ी कर लें। बस, बिसनेज खत्म। आपने कुछ और सुना। मेहता साहब आजकल मालती पर बे-तरह रीझे हुए हैं। सारी फिलासफी निकल गई। दिन में एक-दो बार जरूर हाजिरी दे आते हैं, और शाम को अक्सर दोनों साथ-साथ सैर करने निकलते हैं। यह तो मेरी ही शान थी कि कभी मालती के द्वार पर सलामी करने न गया। शायद अब उसी की कसर निकाल रही है। कहां तो यह हाल था कि जो कुछ हैं, मिस्टर खन्ना हैं। कोई काम होता, तो खन्ना के पास दौड़ी आतीं। जब रुपयों की जरूरत पड़ती, तो खन्ना के नाम पुरजा

आता। और कहां अब मुझे देखकर मुंह फेर लेती हैं। मैंने खास उन्हीं के लिए फ्रांस से एक घड़ी मंगवाई थी। बड़े शौक से लेकर गया, मगर नहीं ली। अभी कल सेबों की डाली भेजी थी—काश्मीर से मंगवाए थे—वापस कर दी। मुझे तो आश्चर्य होता है कि आदमी कैसे इतनी जल्द बदल जाता है।

रायसाहब मन में तो उसकी बेकद्री पर खुश हुए, पर सहानुभूति दिखाकर बोले—अगर यह भी माने लें कि मेहता से उसका प्रेम हो गया है, तो भी व्यवहार तोड़ने का कोई कारण नहीं है।

खन्ना व्यथित स्वर में बोले—यही तो रंज है भाई साहब। यह तो मैं शुरू से जानता था वह मेरे हाथ नहीं आ सकती। मैं आपसे सत्य कहता हूं, मैं कभी इस धोखे में नहीं पड़ा कि मालती को मुझसे प्रेम है। प्रेम-जैसी चीज उनसे मिल सकती है, इसकी मैंने कभी आशा ही नहीं की। मैं तो केवल उनके रूप का पुजारी था। सांप में विष है, यह जानते हुए भी हम उसे दूध पिलाते हैं, तोते से ज्यादा निठुर जीव और कौन होगा, लेकिन केवल उसके रूप और वाणी पर मुग्ध होकर लोग उसे पालते हैं। और सोने के पिंजरे में रखते हैं। मेरे लिए भी मालती उसी तोते के समान थी। अफसोस यही है कि मैं पहले क्यों न चेत गया? इसके पीछे मैंने अपने हजारों रुपये बरबाद कर दिए भाई साहब। जब उसका रुक्का पहुंचा, मैंने तुरंत रुपये भेजे। मेरी कार आज भी उसकी सवारी में है। उसके पीछे मैंने अपना घर चौपट कर दिया भाई साहब। हृदय में जितना रस था, वह ऊसर की ओर इतने वेग से दौड़ा कि दूसरी तरफ का उद्यान बिल्कुल सूखा रह गया। बरसों हो गए, मैंने गोविन्दी से दिल खोलकर बात भी नहीं की। उसकी सेवा और स्नेह और त्याग से मुझे उसी तरह अरुचि हो गई थी, जैसे अजीर्ण के रोगी को मोहनभोग से हो जाती है। मालती मुझे उसी तरह नचाती थी, जैसे मदारी बंदर को नचाता है। और मैं खुशी से नाचता था। वह मेरा अपमान करती थी और मैं खुशी से हंसता था। वह मुझ पर शासन करती थी और मैं सिर झुकाता था। उसने मुझे कभी मुंह नहीं लगाया यह मैं स्वीकार करता हूं। उसने मुझे कभी प्रोत्साहन नहीं दिया, यह भी सत्य है, फिर भी मैं पतंग की भांति उसके मुख-दीप पर प्राण देता था। और अब वह मुझसे शिष्टाचार का व्यवहार भी नहीं कर सकती। लेकिन भाई साहब! मैं कहे देता हूं कि खन्ना चुप बैठने वाला आदमी नहीं है। उसके पुरजे मेरे पास सुरक्षित हैं, मैं उससे एक-एक पाई वसूल कर लूंगा, और डाक्टर मेहता को तो मैं लखनऊ से निकालकर दम लूंगा। उनका रहना यहां असंभव कर दूंगा...

उसी वक्त हार्न की आवाज आई और एक क्षण में मिस्टर मेहता आकर खड़े हो गए। गोरा चिट्टा रंग, स्वास्थ्य की लालिमा गालों पर चमकती हुई, नीची अचकन, चूड़ीदार पाजामा सुनहरी ऐनक। सौम्यता के देवता-से लगते थे।

खन्ना ने उठकर हाथ मिलाया—आइए मिस्टर मेहता, आप ही का जिक्र हो रहा था।

मेहता ने दोनों सज्जनों से हाथ मिलाकर कहा—बड़ी अच्छी साइत में घर से चला था कि आप दोनों साहबों से एक ही जगह भेंट हो गई। आपने शायद पत्रों में देखा होगा, यहां महिलाओं के लिए व्यायामशाला का आयोजन हो रहा है। मिस मालती उस कमेटी की सभानेत्री हैं। अनुमान किया गया है कि शाला में दो लाख रुपये लगेंगे। नगर में उसकी कितनी जरूरत है, यह आप लोग मुझसे ज्यादा जानते हैं। मैं चाहता हूं, आप दोनों साहबों का नाम सबसे ऊपर हो। मिस मालती खुद आने वाली थीं, पर आज उनके फादर की तबियत अच्छी नहीं है, इसलिए न आ सकीं।

उन्होंने चंदे की सूची रायसाहब के हाथ में रख दी। पहला नाम राजा सूर्यप्रतापसिंह का था, जिसके सामने पांच हजार रुपये की रकम थी। उसके बाद कुंवर दिग्विजयसिंह के तीन हजार रुपये थे। इसके बाद कई रकमें इतनी या इससे कुछ कम थीं। मालती ने पांच सौ रुपये दिए थे और डाक्टर मेहता ने एक हजार रुपये।

रायसाहब ने अप्रतिभ होकर कहा—कोई चालीस हजार तो आप लोगों ने फटकार लिए।

मेहता ने गर्व से कहा—यह सब आप लोगों की दया है। और यह केवल तीनेक घंटों का परिश्रम है। राजा सूर्यप्रतापसिंह ने शायद ही किसी सार्वजनिक कार्य में भाग लिया हो, पर आज तो उन्होंने बे-कहे-सुने चैक लिख दिया। देश में जागृति है। जनता किसी भी शुभ काम में सहयोग देने को तैयार है। केवल उसे विश्वास होना चाहिए कि उसके दान का सद्व्यय होगा। आपसे तो मुझे बड़ी आशा है, मिस्टर खन्ना।

खन्ना ने उपेक्षा-भाव से कहा—मैं ऐसे फजूल के कामों में नहीं पड़ता। न जाने आप लोग पच्छिम की गुलामी में कहां तक जायंगे। यों ही महिलाओं को घर से अरुचि हो रही है। व्यायाम की धुन सवार हो गई, तो वह कहीं की न रहेंगी। जो औरत घर का काम करती है, उसके लिए किसी व्यायाम की जरूरत नहीं। और जो घर का कोई काम नहीं करती और केवल भोग-विलास में रत है, उसके व्यायाम के लिए चंदा देना मैं अधर्म समझता हूं।

मेहत। जर। भी निरुत्साह न हुए—ऐसी दशा में मैं आपसे कुछ मांगूगा भी नहीं। जिस आयोजन में हमें विश्वास न हो, उसमें किसी तरह की मदद देना वास्तव में अधर्म है। आप तो मिस्टर खन्ना से सहमत नहीं हैं रायसाहब?

रायसाहब गहरी चिंता में डूबे हुए थे। सूर्यप्रताप के पांच हजार उन्हें हतोत्साह किए डालते थ। चौंककर बोले—आपने मुझसे कुछ कहा?

'मैंने कहा, आप तो इस आयोजन में सहयोग देना अधर्म नहीं समझते?'

'जिस काम में आप शरीक हैं, वह धर्म है या अधर्म, इसकी मैं परवाह नहीं करता।'

'मैं चाहता हूं, आप खुद विचार करें और अगर आप इस आयोजन को समाज के लिए उपयोगी समझें, तो उसमें सहयोग दें। मिस्टर खन्ना की नाति मुझे बहुत पसंद आई।'

खन्ना बोले—मैं तो साफ कहता हूं और इसीलिए बदनाम हूं।

रायसाहब ने दुर्बल मुस्कान के साथ कहा—मुझमें तो विचार करने की शक्ति ही नहीं। सज्जनों के पीछे चलना ही मैं अपना धर्म समझता हूं।

'तो लिखिए कोई अच्छी रकम।'

'जो कहिए, वह लिख दूं।'

'जो आपकी इच्छा।'

'आप जो कहिए, वह लिख दूं।'

'तो दो हजार से कम क्या लिखिएगा?'

रायसाहब ने आहत स्वर में कहा—आपकी निग। में मेरी यही हैसियत है!

उन्होंने कलम उठाया और अपना नाम लिखकर उसके सामने पांच हजार लिख दिए। मेहता ने सूची उनके हाथ से ले ली, मगर उन्हें उतनी ग्लानि हुई कि रायसाहब को धन्यवाद देना भी भूल गए। रायसाहब को चंदे की सूची दिखाकर उन्होंने बड़ा अनर्थ किया, यह शूल उन्हें व्यथित करने लगा।

मिस्टर खन्ना ने रायसाहब को दया और उपहास की दृष्टि से देखा, मानो कह रहे हो, कितने बड़े गधे हो तुम!

सहसा मेहता रायसाहब के गले लिपट गए और उन्मुक्त कंठ से बोले—थ्री चीयर्स फोर राय साहब, हिप-हिप हुर्रे!

खन्ना ने खिसियाकर कहा—यह लोग राजे-महाराजे ठहरे, यह इन कामों में दान न दें, तो कौन दे?

मेहता बोले—मैं तो आपको राजाओं का राजा समझता हूं। आप उन पर शासन करते हैं। उनकी चोटी आपके हाथ में है।

रायसाहब प्रसन्न हो गए—यह आपने बड़े मार्के की बात कही मेहताजी! हम नाम के राजा हैं। असली राजा तो हमारे बैंकर हैं।

मेहता ने खन्ना की खुशामद का पहलू अख्तियार किया—मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है खन्नाजी! आप अभी इस काम में नहीं शरीक होना चाहते, न सही, लेकिन कभी न कभी जरूर आयंगे। लक्ष्मीपतियों की बदौलत ही हमारी बड़ी-बड़ी संस्थाएं चलती हैं। राष्ट्रीय आंदोलन को दो-तीन साल तक किसने इतनी धूम-धाम से चलाया। इतनी धर्मशाले और पाठशाले कौन बनवा रहा है? आज संसार का शासन-सूत्र बैंकरों के हाथ में है। सरकारें उनके हाथ का खिलौना हैं। मैं भी आपसे निराश नहीं हूं। जो व्यक्ति राष्ट्र के लिए जेल जा सकता है, उसके लिए दो-चार हजार खर्च कर देना कोई बड़ी बात नहीं है। हमने तय किया है, इस शाला का बुनियादी पत्थर गोविन्दी देवी के हाथों रखा जाए। हम दोनों शीघ्र ही गवर्नर साहब से भी मिलेंगे और मुझे विश्वास है, हमें उनकी सहायता मिल जायगी। लेडी विलसन का महिला-आंदोलन से कितना प्रेम है, आप जानते ही हैं। राजा साहब की और अन्य सज्जनों की भी राय थी कि लेडी विल्सन से ही बुनियाद रखवाई जाए, लेकिन अंत में यह निश्चय हुआ कि यह शुभ कार्य किसी अपनी बहन के हाथों होना चाहिए। आप कम-से कम उस अवसर पर आएंगे तो जरूर?

खन्ना ने उपहास किया—हां, जब लार्ड विलसन आयंगे तो मेरा पहुंचना जरूरी ही है इस तरह आप बहुत-से रईसों को फांस लेंगे। आप लोगों को लटके खूब सूझते हैं। और हमारे रईस हैं भी इस लायक। उन्हें उल्लू बनाकर ही मूंड़ा जा सकता है।

'जब धन जरूरत से ज्यादा हो जाता है, तो अपने लिए निकास का मार्ग खोजता है। यों न निकल पाएगा तो जुए में जाएगा, घुड़दौड़ में जायगा, ईंट-पत्थर में जायगा, या ऐयाशी में जायगा।'

ग्यारह का अमल था। खन्ना साहब के दफ्तर का समय आ गया। मेहता चले गए रायसाहब भी उठे कि खन्ना ने उनका हाथ पकड़ बैठा लिया—नहीं, आप जरा बैठिए। आप देख रहे हैं, मेहता ने मुझे इस बुरी तरह फांसा है कि निकलने को कोई रास्ता ही नहीं रहा। गोविन्दी से बुनियाद का पत्थर रखवाएंगे। ऐसी दशा में मेरा अलग रहना हास्यास्पद है या नहीं? गोविन्दी कैसे राजी हो गई, मेरी समझ में नहीं आता और मालती ने कैसे उसे सहन कर लिया, यह समझना और भी कठिन है। आपका क्या खयाल है, इसमें कोई रहस्य है या नहीं?

रायसाहब ने आत्मीयता जताई—ऐसे मुआमले में स्त्री को हमेशा पुरुष से सलाह ले लेनी चाहिए।

खन्ना ने रायसाहब को धन्यवाद की आंखों से देखा—इन्हीं बातों पर गोविन्दी से मेरा जी जलता है, और उस पर मुझी को लोग बुरा कहते हैं। आप ही सोचिए, मुझे इन झगड़ों से क्या मतलब? इनमें तो वह पड़े, जिसके पास फालतू रुपये हों फालतू समय हो और नाम की हवस हो। होना यही है कि दो-चार महाशय सेक्रेटरी और अंडर सेक्रेटरी और प्रधान और उपप्रधान बनकर अफसरों को दावतें देंगे, उनके कृपापात्र बनेंगे और यूनिवर्सिटी की छोकरियों को जमा करके बिहार करेंगे। व्यायाम तो केवल दिखाने के दांत हैं। ऐसी संस्था में हमेशा यही होता है और यही होगा और उल्लू बनेंगे हम, और हमारे भाई, जो धनी कहलाते हैं और यह सब गोविन्दी के कारण।

वह एक बार कुरसी से उठे, फिर बैठ गए। गोविन्दी के प्रति उनका क्रोध प्रचंड होता जाता था। उन्होंने दोनों हाथ से सिर को संभालकर कहा—मैं नहीं समझता, मुझे क्या करना चाहिए।

रायसाहब ने ठकुरसोहाती की - कुछ नहीं, आप गोविन्दी देवी से साफ कह दें, तुम मेहता को इंकारी खत लिख दो, छुट्टी हुई। मैं तो लाग-डांट में फंस गया। आप क्यों फंसें?

खन्ना ने एक क्षण इस प्रस्ताव पर विचार करके कहा—लेकिन सोचिए, कितना मुश्किल काम है। लेडी विलसन से जिक्र आ चुका होगा, सारे शहर में खबर फैल गई होगी और शायद आज पत्रों में भी निकल जाय। यह सब मालती की शरारत है। उसी ने मुझे जिच करने का यह ढंग निकाला है।

'हां, मालूम तो यही होता है।'

'वह मुझे जलील करना चाहती है।'

'आप शिलान्यास के लिए दिन बाहर चले जाइएगा।'

'मुश्किल है रायसाहब! कहीं मुंह दिखाने की जगह न रहेगी। उस दिन तो मुझे हैजा भी हो जाए तो वहां जाना पड़ेगा।'

रायसाहब आशा बांधे हुए कल आने का वादा करके ज्योंही निकले कि खन्ना ने अंदर जाकर गोविन्दी को आड़े हाथों लिया--तुमने इस व्यायामशाला की नींव रखना क्यों स्वीकार किया?

गोविन्दी कैसे कहे कि यह सम्मान पाकर वह मन में कितनी प्रसन्न हो रही थी। उस अवसर के लिए कितने मनोयोग से अपना भाषण लिख रही थी और कितनी ओजभरी कविता रची थी। उसने दिल में समझा था, यह प्रस्ताव स्वीकार करके वह खन्ना को प्रसन्न कर देगी। उसका सम्मान तो उसके पति का ही सम्मान है। खन्ना को इसमें कोई आपत्ति हो सकती है, इसकी उसने कल्पना भी न की थी। इधर कई दिन से पति को कुछ सदय देखकर उसका मन बढ़ने लगा था। वह अपने भाषण से, और अपनी कविता से लोगों को मुग्ध कर देने का स्वप्न देख रही थी।

यह प्रश्न सुना और खन्ना की मुद्रा देखी, तो उसकी छाती धक्-धक् करने लगी। अपराधी की भांति बोली—डाक्टर मेहता ने आग्रह किया, तो मैंने स्वीकार कर लिया।

'डाक्टर मेहता तुम्हें कुएं में गिरने को कहें, तो शायद इतनी खुशी से न तैयार होगी।'

गोविन्दी की जबान बंद।

'तुम्हें जब ईश्वर ने बुद्धि नहीं दी, तो क्यों मुझसे नहीं पूछ लिया? मेहता और मालती दोनों यह चाल चलकर मुझसे दो- चार हजार ऐंठने की फिक्र में हैं। और मैंने ठान लिया है कि

कौड़ी भी न दूंगा। तुम आज ही मेहता को इंकारी खत लिख दो।'

गोविन्दी ने एक क्षण सोचकर कहा—तो तुम्हीं लिख दो न।

'मैं क्यों लिखूं? बात की तुमने, लिखूं मैं?'

'डाक्टर साहब कारण पूछेंगे, तो क्या बताऊंगी?'

'बताना अपना सिर और क्या। मैं इस व्यभिचारशाला को एक धेला भी नहीं देना चाहता।'

'तो तुम्हें देने को कौन कहता है?'

खन्ना ने होंठ चबाकर कहा—कैसी बेसमझों की-सी बातें करती हो? तुम वहां नींव रखोगी और कुछ दोगी नहीं, तो संसार क्या कहेगा?

गोविन्दी ने जैसे संगीन की नोक पर कहा—अच्छी बात है, लिख दूंगी।

'आज ही लिखना होगा।'

'कह तो दिया लिखूंगी।'

खन्ना बाहर आए और डाक देखने लगे। उन्हें दफ्तर जाने में देर हो जाती थी, तो चपरासी घर पर ही डाक दे जाता था। शक्कर तेज हो गई। खन्ना का चेहरा खिल उठा। दूसरी चिट्ठी खोली। ऊख की दर नियत करने के लिए जो कमेटी बैठी थी, उसने तय कर दिया कि ऐसा नियंत्रण नहीं किया जा सकता। धत् तेरी की। वह पहले यही बात कर रहे थे, पर इस अग्निहोत्री ने गुल मचाकर जबरदस्ती कमेटी बैठाई। आखिर बचा के मुंह पर थप्पड़ लगा। यह मिल वालों और किसानों के बीच का मुआमला है। सरकार इसमें दखल देने वाली कौन?

सहसा मिस मालती कार से उतरीं। कमल की भांति खिली, दीपक की भांति दमकती, स्फूर्ति और उल्लास की प्रतिमा-सी—निश्शंक, निर्द्वंद, मानो उसे विश्वास है कि संसार में उसके लिए आदर और सुख का द्वार खुला हुआ है। खन्ना ने बरामदे में आकर अभिवादन किया।

मालती ने पूछा—क्या यहां मेहता आए थे?

'हां, आए तो थे।'

'कुछ कहा, कहां जा रहे हैं?'

'यह तो कुछ नहीं कहा।'

'जाने कहां डुबकी लगा गए। मैं चारों तरफ घूम आई। आपने व्यायामशाला के लिए कितना दिया?'

खन्ना ने अपराधी-स्वर में कहा—मैंने अभी इस मुआमले को समझा ही नहीं।

मालती ने बड़ी-बड़ी आंखों से उन्हें तरेरा, मानों सोच रही हो कि उन पर दया करे या रोष।

'इसमें समझने की क्या बात थी, और समझ लेते आगे-पीछे, इस वक्त तो कुछ देने की बात थी। मैंने मेहता को ठेलकर यहां भेजा था। बेचारे डर रहे थे कि आप न जाने क्या जवाब दें। आपकी इस कंजूसी का क्या फल होगा, आप जानते हैं? यहां के व्यापारी समाज से कुछ न मिलेगा। आपने शायद मुझे अपमानित करने का निश्चय कर लिया है। सबकी सलाह थी कि लेडी विलसन बुनियाद रखें। मैंने गोविन्दी देवी का पक्ष लिया और लड़कर सबको राजी किया और अब आप फर्माते हैं, आपने इस मुआमले को समझा ही नहीं। आप बैंकिंग की गुत्थियां समझते हैं, पर इतनी मोटी बात आपकी समझ में न आई। इसका अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं है, कि तुम मुझे लज्जित करना चाहते हो। अच्छी बात है, यही सही।'

मालती का मुख लाल हो गया। खन्ना घबराए, हेकड़ी जाती रही, पर इसके साथ ही उन्हें यह भी मालूम हुआ कि अगर वह कांटों में फंस गए हैं, तो मालती दलदल में फंस गई है, अगर उनकी थैलियों पर संकट आ पड़ा है तो मालती की प्रतिष्ठा पर संकट आ पड़ा है, जो थैलियों से ज्यादा मूल्यवान है। तब उनका मन मालती की दुरवस्था का आनंद क्यों न उठाए? उन्होंने मालती को अरदब में डाल दिया था और यद्यपि वह उसे रुष्ट कर देने का साहस खो चुके थे, पर दो-चार खरी-खरी बातें कह सुनाने का अवसर पाकर छोड़ना न चाहते थे। यह भी दिखा देना चाहते थे कि मैं निरा भोंदू नहीं हूं। उसका रास्ता रोककर बोले–तुम मुझ पर इतनी कृपालु हो गई हो, इस पर मुझे आश्चर्य हो रहा है मालती।

मालती ने भवें सिकोड़कर कहा–मैं इसका आशय नहीं समझी।

'क्या अब मेरे साथ तुम्हारा वही बर्ताव है, जो कुछ दिन पहले था?'

'मैं तो उसमें कोई अंतर नहीं देखती।'

'लेकिन मैं तो आकाश-पाताल का अंतर देखता हूं।'

'अच्छा मान लो, तुम्हारा अनुमान ठीक है, तो फिर? मैं तुमसे एक शुभ-कार्य में सहायता मांगने आई हूं, अपने व्यवहार की परीक्षा देने नहीं आई हूं। और अगर तुम समझते हो, कुछ चंदा देकर तुम यश और धन्यवाद के सिवा और कुछ पा सकते हो, तो तुम भ्रम में हो।'

खन्ना परास्त हो गए। वह एक ऐसे संकरे कोने में फंस गए थे, जहां इधर-उधर हिलने का भी स्थान न था। क्या वह उससे यह कहने का साहस रखते हैं कि मैंने अब तक तुम्हारे ऊपर हजारों रुपये लुटा दिए, क्या उसका यही पुरस्कार है? लज्जा से उनका मुंह छोटा-सा निकल आया, जैसे सिकुड़ गया हो। झेंपते हुए बोले–मेरा आशय यह न था मालती, तुम बिल्कुल गलत समझीं।

मालती ने परिहास के स्वर में कहा–खुदा करे, मैंने गलत समझा हो, क्योंकि अगर मैं उसे सच समझ लूंगी तो तुम्हारे साये से भी भागूंगी। मैं रूपवती हूं। तुम भी मेरे अनेक चाहने वालों में से एक हो। वह मेरी कृपा थी कि जहां मैं औरों के उपहार लौटा देती थी, तुम्हारी सामान्य-से सामान्य चीजें भी धन्यवाद के साथ स्वीकार कर लेती थी, और जरूरत पड़ने पर तुमसे रुपये भी मांग लेती थी। अगर तुमने अपने धनोन्माद में इसका कोई दूसरा अर्थ निकाल लिया, तो मैं तुम्हें क्षमा करूंगी। यह पुरुष-प्रकृति है अपवाद नहीं, मगर यह समझ लो कि धन ने आज तक किसी नारी के हृदय पर विजय नहीं पाई, और न कभी पाएगा।

खन्ना एक एक शब्द पर मानो गज-गज भर नीचे धंसते जाते थे। अब और ज्यादा चोट सहने का उनमें जीवट न था। लज्जित होकर बोले–मालती, तुम्हारे पैरों पड़ता हूं, अब और जलील न करो। और न सही तो मित्र-भाव तो बना रहने दो।

यह कहते हुए उन्होंने दराज से चैकबुक निकाली और एक हजार लिखकर डरते-डरते मालती की तरफ बढ़ाया।

मालती ने चैक लेकर निर्दय व्यंग किया–यह मेरे व्यवहार का मूल्य है या व्यायामशाला का चंदा?

खन्ना सजल आंखों से बोले–अब मेरी जान बख्शो मालती, क्यों मेरे मुंह में कालिख पोत रही हो।

मालती ने जोर से कहकहा मारा–देखो, डांट बताई और एक हजार रुपये भी वसूल किए।

अब तो तुम कभी ऐसी शरारत न करोगे?

'कभी नहीं, जीते जी कभी नहीं।'

'कान पकड़ो।'

'कान पकड़ता हूं, मगर अब तुम दया करके जाओ और मुझे एकांत में बैठकर सोचने और रोने दो। तुमने आज मेरे जीवन का सारा आनंद....।'

मालती और जोर से हंसी—देखो, तुम मेरा बहुत अपमान कर रहे हो और तुम जानते हो, रूप अपमान नहीं सह सकता। मैंने तो तुम्हारे साथ भलाई की और तुम उसे बुराई समझ रहे हो।

खन्ना विद्रोह-भरी आंखों से देखकर बोले—तुमने मेरे साथ भलाई की है या उलटी छुरी से मेरा गला रेता है?

'क्यों, मैं तुम्हें लूट-लूटकर अपना घर भर रही थी। तुम उस लूट से बच गए।'

'क्यों घाव पर नमक छिड़क रही हो मालती! मैं भी आदमी हूं।'

मालती ने इस तरह खन्ना की ओर देखा, मानो निश्चय करना चाहती थी कि वह आदमी है या नहीं?

'अभी तो मुझे इसका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता।'

'तुम बिल्कुल पहेली हो, आज यह साबित हो गया।'

'हां, तुम्हारे लिए पहेली हूं और पहेली रहूंगी।'

यह कहती हुई वह पक्षी की भांति फुर्र से उड़ गई और खन्ना सिर पर हाथ रखकर सोचने लगे, यह लीला है या इसका सच्चा रूप।

तेईस

गोबर और झुनिया के जाने के बाद घर सुनसान रहने लगा। धनिया को बार-बार चुन्नू की याद आती रहती है। बच्चे की मां तो झुनिया थी, पर उसका पालन धनिया ही करती थी। वही उसे उबटन मलती, काजल लगाती, सुलाती और जब काम-काज से अवकाश मिलता, उसे प्यार करती। वात्सल्य का यह नशा ही उसकी विपत्ति को भुलाता रहता था। उसका भोला-भाला, मक्खन-सा मुंह देखकर वह अपनी सारी चिंता भूल जाती और स्नेहमय गर्व से उसका हृदय फूल उठता। वह जीवन का आधार अब न था। उसका सूना खटोला देखकर वह रो उठती। वह कवच, जो सारी चिंताओं और दुराशाओं से उसकी रक्षा करता था, उससे छिन गया था। वह बार-बार सोचती, उसने झुनिया के साथ ऐसी कौन-सी बुराई की थी, जिसका उसने यह दंड दिया। डाइन ने आकर उसका सोने-सा घर मिट्टी में मिला दिया। गोबर ने तो कभी उसकी बात का जवाब भी न दिया था। इसी रांड ने उसे फोड़ा और वहां ले जाकर न जाने कौन-कौन-सा नाच नचाएगी। यहां ही वह बच्चे की कौन बहुत परवाह करती थी। उसे तो अपनी मिस्सी-काजल, मांग-चोटी ही से छुट्टी नहीं मिलती। बच्चे की देखभाल क्या करेगी? बेचारा अकेला जमीन पर पड़ा रोता होगा। बेचारा एक दिन भी तो सुख से नहीं रहने पाता। कभी खांसी, कभी दस्त,

कभी कुछ, कभी कुछ। यह सोच-सोचकर उसे झुनिया पर क्रोध आता। गोबर के लिए अब भी उसके मन में वही ममता थी। इसी चुड़ैल ने उसे कुछ खिला-पिलाकर अपने बस में कर लिया। ऐसी मायाविनी न होती, तो यह टोना ही कैसे करती? कोई बात न पूछता था। भौजाइयों की लातें खाती थी। यह भुग्गा मिल गया तो आज रानी हो गई।

होरी ने चिढ़कर कहा--जब देखो तब झुनिया ही को दोस देती है। यह नहीं समझती कि अपना सोना खोटा तो सोनार का क्या दोष? गोबर उसे न ले जाता तो क्या आप-से-आप चली जाती? सहर का दाना-पानी लगने से लौंडे की आंखें बदल गईं, ऐसा क्यों नहीं समझ लेती।

धनिया गरज उठी--अच्छा, चुप रहो। तुम्हीं ने रांड को मूड़ पर चढ़ा रखा था, नहीं मैंने पहले ही दिन झाड़ू मारकर निकाल दिया होता।

खलिहान में डाठें जमा हो गई थीं। होरी बैलों को जुखरकर अनाज मांड़ने जा रहा था। पीछे मुंह फेरकर बोला--मान ले, बहू ने गोबर को फांड़ ही लिया, तो तू इतना कुढ़ती क्यों है? जो सारा जमाना करता है, वही गोबर ने भी किया। अब उसके बाल-बच्चे हुए। मेरे बाल-बच्चों के लिए क्यों अपनी सांसत कराए, क्यों हमारे सिर का बोझ अपने सिर रखे।

'तुम्हीं उपद्रव की जड़ हो।'

'तो मुझे भी निकाल दे! ले जा बैलों को, अनाज मांड। मैं हुक्का पीता हूं।'

'तुम चलकर चक्की पीसो, मैं अनाज मांडूंगी।'

विनोद में दुःख उड़ गया। वही उसकी दवा है। धनिया प्रसन्न होकर रूपा के बाल गूंधने बैठ गई, जो बिल्कुल उलझकर रह गए थे और होरी खलिहान चला। रसिक बसंत सुगंध और प्रमोद और जीवन की विभूति लुटा रहा था, दोनों हाथों से दिल खोलकर। कोयल आम की डालियों में छिपी अपनी रसीली, मधुर, आत्मस्पर्शी कूक से आशाओं को जगाती फिरती थी। महुए की डालियों पर मैनों की बारात-सी लगी बैठी थी। नीम और सिरस और करौंदे अपनी महक में नशा-सा घोल देते थे। होरी आमों के बाग में पहुंचा तो वृक्षों के नीचे तारे-से खिले थे। उसका व्यथित, निराश मन भी इस व्यापक शोभा और स्फूर्ति में जैसे डूब गया। तरंग में आकर गाने लगा--

'हिया जरत रहत दिन-रैन।
आम की डरिया कोयल बोले,
तनिक न आवत चैन।'

सामने से दुलारी सहुआइन, गुलाबी साड़ी पहने चली आ रही थी। पांव में मोटे चांदी के कड़े थे, गले में मोटे सोने की हंसली, चेहरा सूखा हुआ, पर दिल हरा! एक समय था, जब होरी खेत-खलिहान में उसे छेड़ा करता था। वह भाभी थी, होरी देवर था, इस नाते दोनों में विनोद होता रहता था। जब से साहजी मर गए, दुलारी ने घर से निकलना छोड़ दिया। सारे दिन दूकान पर बैठी रहती थी और वहीं से सारे गांव की खबर लगाती रहती थी। कहीं आपस में झगड़ा हो जाय, सहुआइन वहां बीच-बचाव करने के लिए अवश्य पहुंचेगी। आने रुपये सूद से कम पर रुपये उधार न देती थी। और यद्यपि सूद के लोभ में मूल भी हाथ न आता था--जो रुपये लेता, खाकर बैठ रहता--मगर उसके ब्याज का दर ज्यों-का-त्यों बना रहता था। बेचारी कैसे वसूल करे? नालिश-फरियाद करने से रही, थाना-पुलिस करने से रही, केवल जीभ का बल था, पर ज्यों-ज्यों उम्र के साथ जीभ की तेजी बढ़ती जाती थी, उसकी काट घटती जाती थी।

अब उसकी गालियों पर लोग हंस देते थे और मजाक में कहते—क्या करेगी रुपये लेकर काकी, साथ तो एक कौड़ी भी न ले जा सकेगी। गरीब को खिला-पिलाकर जितनी असीस मिल सके, ले-ले। यही परलोक में काम आएगा। और दुलारी परलोक के नाम से जलती थी।

होरी ने छेड़ा—आज तो भाभी, तुम सचमुच जवान लगती हो।

सहुआइन मगन होकर बोली—आज मंगल का दिन है, नजर न लगा देना। इसी मारे मैं कुछ पहनती-ओढ़ती नहीं। घर से निकलो तो सभी घूरने लगते हैं, जैसे कभी कोई मेहरिया देखी ही न हो। पटेश्वरी लाला की पुरानी बान अभी तक नहीं छूटी।

होरी ठिठक गया, बड़ा मनोरंजक प्रसंग छिड़ गया था। बैल आगे निकल गए।

'वह तो आजकल बड़े भगत हो गए हैं। देखती नहीं हो, हर पूरनमासी को सत्यनारायन की कथा सुनते हैं और दोनों जून मंदिर में दर्सन करने जाते हैं।'

'ऐसे लंपट जितने होते हैं, सभी बूढ़े होकर भगत बन जाते हैं। कुकर्म का परामचित तो करना ही पड़ता है। पूछो, मैं अब बुढ़िया हुई, मुझसे क्या हंसी।'

'तुम अभी बुढ़िया कैसे हो गई भाभी? मुझे तो अब भी...'

'अच्छा, चुप ही रहना, नहीं डेढ़ सौ गाली दूंगी। लड़का परदेस कमाने लगा, एक दिन नेवता भी न खिलाया, सेंत-मेत में भाभी बनाने को तैयार।'

'मुझसे कसम ले लो भाभी, जो मैंने उसकी कमाई का एक पैसा भी छुआ हो। न जाने क्या लाया, कहां खरच किया, मुझे कुछ भी पता नहीं। बस, एक जोड़ा धोती और एक पगड़ी मेरे हाथ लगी।'

'अच्छा कमाने तो लगा, आज नहीं कल घर संभालेगा ही। भगवान् उसे सुखी रखे। हमारे रुपये भी थोड़ा-थोड़ा देते चलो। सूद ही तो बढ़ रहा है।

'तुम्हारी एक-एक पाई दूंगा भाभी, हाथ में पैसे आने दो। और खा ही जायंगे, तो कोई बाहर के तो नहीं हैं, हैं तो तुम्हारे ही।'

सहुआइन ऐसी विनोद-भरी चापलूसियों से निरस्त्र हो जाती थी। मुस्कराती हुई अपनी राह चली गई। होरी लपककर बैलों के पास पहुंच गया और उन्हें पौर में डालकर चक्कर देने लगा। सारे गांव का यही एक खलिहान था। कहीं मंड़ाई हो रही थी, कोई अनाज ओसा रहा था, कोई गल्ला तौल रहा था। नाई-बारी, बढ़ई, लोहार, पुरोहित, भाट, भिखारी, सभी अपने अपने जेवरे लेने के लिए जमा हो गए थे। एक पेड़ के नीचे झिंगुरीसिंह खाट पर बैठे अपनी सवाई उगाह रहे थे। कई बनिये खड़े गल्ले का भाव-ताव कर रहे थे। सारे खलिहान में मंडी की सी रौनक थी। एक खटकिन बेर और मकोय बेच रही थी और एक खोंचे वाला तेल के सेब और जलेबियां लिए फिर रहा था। पंडित दातादीन भी होरी से अनाज बंटवाने के लिए आ पहुंचे थे और झिंगुरीसिंह के साथ खाट पर बैठे थे।

दातादीन ने सुरती मलते हुए कहा—कुछ सुना, सरकार भी महाजनों से कह रही है कि सूद का दर घटा दो, नहीं डिगरी न मिलेगी।

झिंगुरी तमाखू फांककर बोले—पंडित, मैं तो एक बात जानता हूं। तुम्हें गरज पड़ेगी तो सौ बार हमसे रुपये उधार लेने आओगे, और हम जो ब्याज चाहेंगे, लेंगे। सरकार अगर असामियों को रुपये उधार देने का कोई बंदोबस्त न करेगी, तो हमें इस कानून से कुछ न होगा। हम दर कम लिखाएंगे, लेकिन एक सौ में पचीस पहले ही काट लेंगे। इसमें सरकार क्या कर सकती

है?

'यह तो ठीक है, लेकिन सरकार भी इन बातों को खूब समझती है। इसकी भी कोई रोक निकालेगी, देख लेना।'

'इसकी कोई रोक हो ही नहीं सकती।'

'अच्छा, अगर वह सर्त कर दे, जब तक स्टांप पर गांव के मुखिया या कारिंदा के दसखत न होंगे, वह पक्का न होगा, तब क्या करोगे?'

'असामी को सौ बार गरज होगी, मुखिया को हाथ-पांव जोड़ के लाएगा और दसखत कराएगा। हम तो एक-चौथाई काट ही लेंगे।'

'और जो फंस जाओ। जाली हिसाब लिखा और गए चौदह साल को।'

झिंगुरीसिंह जोर से हंसा—तुम क्या कहते हो पंडित, क्या तब संसार बदल जाएगा? कानून और न्याय उसका है, जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे, कोई जमींदार किसी कास्तकार के साथ सख्ती न करे, मगर होता क्या है। रोज ही देखते हो। जमींदार मुसक बंधवा के पिटवाता है और महाजन लात और जूते से बात करता है। जो किसान पोढ़ा है, उससे न जमींदार बोलता है, न महाजन। ऐसे आदमियों से हम मिल जाते हैं और उनकी मदद से दूसरे आदमियों की गर्दन दबाते हैं। तुम्हारे ही ऊपर रायसाहब के पांच सौ रुपये निकलते हैं, लेकिन नोखेराम में है इतनी हिम्मत कि तुमसे कुछ बोले? वह जानते हैं, तुमसे मेल करने ही में उनका हित है। किस असामी में इतना बूता है कि रोज अदालत दौड़े? सारा कारबार इसी तरह चला जायगा, जैसे चल रहा है। कचहरी अदालत उसी के साथ है, जिसके पास पैसा है। हम लोगों को घबड़ाने की कोई बात नहीं।

यह कहकर उन्होंने खलिहान का एक चक्कर लगाया और फिर आकर खाट पर बैठते हुए बोले—हां, मतई के ब्याह का क्या हुआ? हमारी सलाह तो है कि उसका ब्याह कर डालो। अब तो बड़ी बदनामी हो रही है।

दातादीन को जैसे ततैया ने काट खाया। इस आलोचना का क्या आशय था, वह खूब समझते थे। गर्म होकर बोले—पीठ पीछे आदमी जो चाहे बके, हमारे मुंह पर कोई कुछ कहे, तो उसकी मूंछें उखाड़ लूं। कोई हमारी तरह नेमी बन तो ले। कितनों को जानता हूं, जो कभी संध्या-बंदन नहीं करते, न उन्हें धरम से मतलब, न करम से, न कथा से मतलब, न पुरान से। वह भी अपने को ब्राह्मण कहते हैं। हमारे ऊपर क्या हंसेगा कोई, जिसने अपने जीवन में एक एकादसी भी नागा नहीं की, कभी बिना स्नान-पूजन किए मुंह में पानी नहीं डाला। नेम का निभाना कठिन है। कोई बता दे कि हमने कभी बाजार की कोई चीज खाई हो, या किसी दूसरे के हाथ का पानी पिया हो, तो उसकी टांग की राह निकल जाऊं। सिलिया हमारी चौखट नहीं लांघने पाती, चौखट, बरतन- भांड़े छूना तो दूसरी बात है। मैं यह नहीं कहता कि मतई यह बहुत अच्छा काम कर रहा है, लेकिन जब एक बार बात हो गई तो यह पाजी का काम है कि औरत को छोड़ दे। मैं तो खुल्लमखुल्ला कहता हूं, इसमें छिपाने का कोई बात नहीं। स्त्री-जाति पवित्र है।

दातादीन अपनी जवानी में स्वयं बड़े रसिया रह चुके थे, लेकिन अपने नेम-धर्म से कभी नहीं चूके। मातादीन भी सुयोग्य पुत्र की भांति उन्हीं के पद-चिह्नों पर चल रहा था। धर्म का मूल तत्त्व है पूजा-पाठ, कथा-व्रत और चौका-चूल्हा। जब पिता-पुत्र दोनों ही मूल तत्त्व को

पकड़े हुए हैं, तो किसकी मजाल है कि उन्हें पथ-भ्रष्ट कह सके?

झिंगुरीसिंह ने कायल होकर कहा—मैंने तो भाई, जो सुना था, वह तुमसे कह दिया।

दातादीन ने महाभारत और पुराणों से ब्राह्मणों द्वारा अन्य जातियों की कन्याओं के ग्रहण किए जाने की एक लंबी सूची पेश की और यह सिद्ध कर दिया कि उनसे जो संतान हुई, वह ब्राह्मण कहलाई और आजकल के जो ब्राह्मण हैं, वह उन्हीं संतानों की संतान हैं। यह प्रथा आदिकाल से चली आई है और इसमें कोई लज्जा की बात नहीं।

झिंगुरीसिंह उनके पांडित्य पर मुग्ध होकर बोले—तब क्यों आजकल लोग वाजपेयी और सुकुल बने फिरते हैं?

'समय-समय की परथा है और क्या। किसी में उतना तेज तो हो। बिस खाकर उसे पचाना तो चाहिए। वह सतजुग की बात थी, सतजुग के साथ गई। अब तो अपना निबाह बिरादरी के साथ मिलकर रहने में है, मगर करूं क्या, कोई लड़की वाला आता ही नहीं। तुमसे भी कहा औरों से भी कहा, कोई नहीं सुनता तो मैं क्या लड़की बनाऊं?'

झिंगुरीसिंह ने डांटा—झूठ मत बोलो पंडित, मैं दो आदमियों को फांस-फ्रंसकर लाया मगर तुम मुंह फैलाने लगे, तो दोनों कान खड़े करके निकल भागे। आखिर किस बिरते पर हजार पांच सौ मांगते हो तुम? दस बीघे खेत और भीख के सिवा तुम्हारे पास और है क्या?

दातादीन के अभिमान को चोट लगी। दाढ़ी पर हाथ फेरकर बोले- पास कुछ न सही मैं भीख ही मांगता हूं, लेकिन मैंने अपनी लड़कियों के ब्याह में पांच-पांच सौ दिए हैं फिर लड़के के लिए पांच सौ क्यों न मांगूं? किसी ने सेंत-मेंत में मेरी लड़की ब्याह ली होती तो मैं भी सेंत में लड़का ब्याह लेता। रही हैसियत की बात। तुम जजमानी को भीख समझो मैं तो उसे जमींदारी समझता हूं, बंकघर। जमींदार मिट जाय, बंकघर टूट जाय, लेकिन जजमानी अंत तक बनी रहेगी। जब तक हिन्दू-जाति रहेगी तब तक बांमॅन भी रहेंगे और जजमानी भी रहेगी। सहालग में मजे से घर बैठे सौ-दो-सौ फटकार लेते हैं। कभी भाग लड़ गया, तो चार पांच सौ मार लिया। कपड़े, बरतन, भोजन अलग। कहीं-न-कहीं नित ही कार परोजन पड़ा ही रहता है। कुछ न मिले तब भी एक-दो थाल और दो-चार आने दक्षिणा के मिल ही जाते हैं। ऐसा चैन न जमींदारी में है, न साहूकारी में। और फिर मेरा तो सिलिया से जितना उबार होता है, उतना ब्राह्मण की कन्या से क्या होगा? वह तो बहुरिया बनी बैठी रहेगी। बहुत होगा रोटिया पका देगी। यहां सिलिया अकेली तीन आदमियों का काम करती है। और मैं उसे रोटी के सिवा और क्या देता हूं? बहुत हुआ, तो साल में एक धोती दे दी।

दूसरे पेड़ के नीचे दातादीन का निजी पैरा था। चार बैलों से मंड़ाई हो रही थी। धन्ना चमार बैलों को हांक रहा था, सिलिया पैरे में अनाज निकाल निकालकर ओसा रही थी और मातादीन दूसरी ओर बैठा अपनी लाठी में तेल मल रहा था।

सिलिया सांवली सलोनी, छरहरी बालिका थी, जो रूपवती न होकर भी आकर्षक थी। उसके हास में, चितवन में, अंगों के विलास में हर्ष का उन्माद था, जिससे उसकी बोटी बोटी नाचती रहती थी, सिर से पांव तक भूसे के अणुओं में सनी, पसीने से तर, सिर के बाल आधे खुले, वह दौड़-दौड़कर अनाज ओसा रही थी, मानो तन-मन से कोई खेल खेल रही हो।

मातादीन ने कहा- आज सांझ तक अनाज बाकी न रहे सिलिया। तू थक गई हो तो मैं आऊं?

सिलिया प्रसन्न मुख बोली—तुम काहे को आओगे पंडित। मैं संझा तक सब ओसा दूंगी।

'अच्छा, तो मैं अनाज ढो-ढोकर रख आऊं। तू अकेली क्या-क्या कर लेगी?'

'तुम घबड़ाते क्यों हो, मैं ओसा दूंगी, ढोकर रख भी आऊंगी। पहर रात तक यहां दाना भी न रहेगा।'

दुलारी सहुआइन आज अपना लेहना वसूल करती फिरती थी। सिलिया उसकी दूकान से होली के दिन दो पैसे का गुलाबी रंग लाई थी। अभी तक पैसे न दिए थे। सिलिया के पास आकर बोली– क्यों री सिलिया, महीना भर रंग लाए हो गया, अभी तक पैसे नहीं दिए? मांगती हूं तो मटककर चली जाती है। आज मैं बिना पैसे लिए न जाऊंगी।

मातादीन चुपके-से सरक गया था। सिलिया का तन और मन दोनों लेकर भी बदले में कुछ न देना चाहता था। सिलिया अब उसकी निगाह में केवल काम करने की मशीन थी, और कुछ नहीं। उसकी ममता को वह बड़े कौशल से नचाता रहता था। सिलिया ने आंख उठाकर देखा तो मातादीन वहां न था। बोली—चिल्लाओ मत सहुआइन, यह ले लो दो की जगह चार पैसे का अनाज। अब क्या जान लेगी? मैं मरी थोड़े ही जाती थी।

उसने अंदाज से कोई सेर-भर अनाज ढेर में से निकालकर सहुआइन के फैले हुए अंचल में डाल दिया। उसी वक्त मातादीन पेड़ की आड़ से झल्लाया हुआ निकला और सहुआइन का अंचल पकड़कर बोला -अनाज सीधे से रख दो सहुआइन, लूट नहीं है।

फिर उसने लाल आंखों से सिलिया को देखकर डांटा—तूने अनाज क्यों दे दिया? किससे पूछकर दिया? तू कौन होती है मेरा अनाज देने वाली?

सहुआइन ने अनाज ढेर में डाल दिया और सिलिया हक्का-बक्का होकर मातादीन का मुंह देखने लगी। ऐसा जान पड़ा, जिस डाल पर वह निश्चिंत बैठी हुई थी, वह टूट गई और अब वह निराधार नीचे गिरी जा रही है। खिसियाए हुए मुंह से, आंखों में आंसू भरकर सहुआइन से बोली - तुम्हारे पैसे मैं फिर दे दूंगी सहुआइन। आज मुझ पर दया करो।

सहुआइन ने उसे दयार्द्र नेत्रों से देखा और मातादीन को धिक्कार-भरी आंखों से देखती हुई चली गई।

तब सिलिया ने अनाज ओसाते हुए आहत गर्व से पूछा—तुम्हारी चीज में मेरा कुछ अख्तियार नहीं है?

मातादीन आंखें निकालकर बोला—नहीं, तुझे कोई अख्तियार नहीं है। काम करती है, खाती है। जो तू चाहे कि खा भी, लुटा भी, तो यह यहां न होगा। अगर तुझे यहां न परता पड़ता हो तो कहीं और जाकर काम कर। मजूरों की कमी नहीं है। सेंत में काम नहीं लेते, खाना-कपड़ा देते हैं।

सिलिया ने उस पक्षी की भांति, जिसे मालिक ने पर काटकर पिंजरे से निकाल दिया हो, मातादीन की ओर देखा। उस चितवन में वेदना अधिक थी या भर्त्सना, यह कहना कठिन है। पर उसी पक्षी की भांति उसका मन फड़फड़ा रहा था और ऊंची डाल पर उन्मुक्त वायुमंडल में उड़ने की शक्ति न पाकर उसी पिंजरे में जा बैठना चाहता था, चाहे उसे बेदाना, बेपानी, पिंजरे की तीलियों से सिर टकराकर मर ही क्यों न जाना पड़े। सिलिया सोच रही थी, अब उसके लिए दूसरा कौन-सा ठौर है। वह ब्याहता न होकर भी संस्कार में और व्यवहार में और मनोभावना में ब्याहता थी, और अब मातादीन चाहे उसे मारे या काटे, उसे दूसरा आश्रय नहीं है, दूसरा

अवलंब नहीं है। उसे वह दिन याद आए—और अभी दो साल भी तो नहीं हुए—जब यही मातादीन उसके तलवे सहलाता था, जब उसने जनेऊ हाथ में लेकर कहा था—सिलिया, जब तक दम में दम है, तुझे ब्याहता की तरह रखूंगा, जब वह प्रेमातुर होकर हार में और बाग में और नदी के तट, पर उसके पीछे-पीछे पागलों की भांति फिरा करता था। और आज उसका यह निष्ठुर व्यवहार ! मुट्ठी-भर अनाज के लिए उसका पानी उतार लिया।

उसने कोई जवाब न दिया। कंठ में नमक के एक डले का-सा अनुभव करती हुई आहत हृदय और शिथिल हाथों से फिर काम करने लगी।

उसी वक्त उसकी मां, बाप, दोनों भाई और कई अन्य चमारों ने न जाने किधर से आकर मातादीन को घेर लिया। सिलिया की मां ने आते ही उसके हाथ से अनाज की टोकरी छीनकर फेंक दी और गाली देकर बोली—रांड, जब तुझे मजूरी ही करनी थी, तो घर की मजूरी छोड़कर यहां क्या करने आई। जब बांभन के साथ रहती है, तो बांभन की तरह रह। सारी बिरादरी की नाक कटवाकर भी चमारिन ही बनना था, तो यहां क्या घी का लोंदा लेने आई थी। चुल्लू-भर पानी में डूब नहीं मरती।

झिंगरीसिंह और दातादीन दोनों दौड़े और चमारों के बदले तेवर देखकर उन्हें शांत करने की चेष्टा करने लगे। झिंगुरीसिंह ने सिलिया के बाप से पूछा—क्या बात है चौधरी, किस बात का झगड़ा है?

सिलिया का बाप हरखू साठ साल का बूढ़ा था, काला, दुबला, सूखी मिर्च की तरह पिचका हुआ, पर उतना ही तीक्ष्ण। बोला—झगड़ा कुछ नहीं है ठाकुर, हम आज या तो मातादीन को चमार बनाके छोड़ेंगे, या उनका और अपना रकत एक कर देंगे। सिलिया कन्या जात है किसी-न-किसी के घर तो जायगी ही। इस पर हमें कुछ नहीं कहना है, मगर उसे जो कोई भी रखे, हमारा होकर रहे। तुम हमें बांभन नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं। हमें बांभन बना दो, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है। जब यह समरथ नहीं है, तो फिर तुम भी चमार बनो। हमारे साथ खाओ, पिओ, हमारे साथ उठो-बैठो। हमारी इज्जत लेते हो तो अपना धरम हमें दो।

दातादीन ने लाठी फटकारकर कहा—मुंह संभालकर बातें कर हरखुआ ! तेरी बिटिया वह खड़ी है, ले जा जहां चाहे। हमने उसे बांध नहीं रक्खा है। काम करती थी, मजूरी लेती थी। यहां मजूरों की कमी नहीं है।

सिलिया की मां उंगली चमकाकर बोली—वाह-वाह पंडित ! खूब नियाव करते हो। तुम्हारी लड़की किसी चमार के साथ निकल गई होती और तुम इसी तरह की बातें करते, तो देखती। हम चमार हैं, इसलिए हमारी कोई इज्जत ही नहीं। हम सिलिया को अकेले न ले जायंगे उसके साथ मातादीन को भी ले जायंगे, जिसने उसकी इज्जत बिगाड़ी है। तुम बड़े नेमी-धरमी हो। उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पियोगे ! वही चुड़ैल है कि यह सब सहती है। मैं तो ऐसे आदमी को माहुर दे देती।

हरखू ने अपने साथियों को ललकारा—सुन ली इन लोगों की बात कि नहीं ! अब क्या खड़े मुंह ताकते हो।

इतना सुनना था कि दो चमारों ने लपककर मातादीन के हाथ पकड़ लिए, तीसरे ने झपटकर उसका जनेऊ तोड़ डाला और इसके पहले कि दातादीन और झिंगुरीसिंह अपनी-अपनी

लाठी संभाल सकें, दो चमारों ने मातादीन के मुंह में एक बड़ी-सी हड्डी का टुकड़ा डाल दिया। मातादीन ने दांत जकड़ लिए। फिर भी वह घिनौनी वस्तु उसके होंठों में तो लग ही गई। उन्हें मतली हुई और मुंह अपने-आप खुल गया और हड्डी कंठ तक जा पहुंची। इतने में खलिहान के सारे आदमी जमा हो गए, पर आश्चर्य यह कि कोई इन धर्म के लुटेरों से मुजाहिम न हुआ। मातादीन का व्यवहार सभी को नापसंद था। वह गांव की बहू-बेटियों को घूरा करता था, इसलिए मन में सभी उसकी दुर्गति से प्रसन्न थे। हां, ऊपरी मन से लोग चमारों पर रोब जमा रहे थे।

होरी ने कहा—अच्छा, अब बहुत हुआ हरखू! भला चाहते हो, तो यहां से चले जाओ।

हरखू ने निडरता से उत्तर दिया—तुम्हारे घर में लड़कियां हैं होरी महतो, इतना समझ लो। इसी तरह गांव की मरजाद बिगड़ने लगी, तो किसी की आबरू न बचेगी।

एक क्षण में शत्रु पर पूरी विजय पाकर आक्रमणकारियों ने वहां से टल जाना ही उचित समझा। जनमत बदलते देर नहीं लगती। उससे बचे रहना ही अच्छा है।

मातादीन कै कर रहा था। दातादीन ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा—एक-एक को पांच पांच साल के लिए न भेजवाया, तो कहना। पांच-पांच साल तक चक्की पिसवाऊंगा।

हरखू ने हेकड़ी के साथ जवाब दिया—इसका यहां कोई गम नहीं। कौन तुम्हारी तरह बैठे मौज करते हैं? जहां काम करेंगे, वहीं आधा पेट दाना मिल जायगा।

मातादीन कै कर चुकने के बाद निर्जीव-सा जमीन पर लेट गया, मानो कमर टूट गई हो, मानो डूब मरने के लिए चुल्लू-भर पानी खोज रहा हो। जिस मर्यादा के बल पर उसकी रसिकता और घमंड और पुरुषार्थ अकड़ता फिरता था, वह मिट चुकी थी। उस हड्डी के टुकड़े ने उसके मुंह को ही नहीं, उसकी आत्मा को भी अपवित्र कर दिया था। उसका धर्म इसी खान-पान, छूत-विचार पर टिका हुआ था। आज उस धर्म की जड़ कट गई। अब वह लाख प्रायश्चित्त करे, लाख गोबर खाए और गंगाजल पिए, लाख दान-पुण्य और तीर्थ-व्रत करे, उसका मरा हुआ धर्म जी नहीं सकता। अगर अकेले की बात होती, तो छिपा ली जाती। यहां तो सबके सामने उसका धर्म लुटा। अब उसका सिर हमेशा के लिए नीचा हो गया। आज से वह अपने ही घर में अछूत समझा जाएगा। उसकी स्नेहमयी माता भी उससे घृणा करेगी। और संसार से धर्म का ऐसा लोप हो गया कि इतने आदमी केवल खड़े तमाशा देखते रहे। किसी ने चूं तक न की। एक क्षण पहले जो लोग उसे देखते ही पालागन करते थे, अब उसे देखकर मुंह फेर लेंगे। वह किसी मंदिर में भी न जा सकेगा, न किसी के बरतन-भांडे छू सकेगा। और यह सब हुआ इस अभागिन सिलिया के कारण।

सिलिया जहां अनाज ओसा रही थी, वहीं सिर झुकाए खड़ी थी, मानो यह उसी की दुर्गति हो रही है। सहसा उसकी मां ने आकर डांटा—खड़ी ताकती क्या है? चल सीधे घर, नहीं बोटी-बोटी काट डालूंगी। बाप-दादा का नाम तो खूब उजागर कर चुकी, अब क्या करने पर लगी है?

सिलिया मूर्तिवत् खड़ी रही। माता-पिता और भाइयों पर उसे क्रोध आ रहा था। यह लोग क्यों उसके बीच में बोलते हैं? वह जैसे चाहती है, रहती है, दूसरों से क्या मतलब? कहते हैं, यहां तेरा अपमान होता है, तब क्या कोई बांभन उसका पकाया खा लेगा? उसके हाथ का पानी पी लेगा? अभी जरा देर पहले उसका मन मातादीन के निठुर व्यवहार से खिन्न हो रहा था, पर अपने घर वालों और बिरादरी के इस अत्याचार ने उस विराग को प्रचंड अनुराग का रूप दे दिया।

विद्रोह-भरे मन से बोली—मैं कहीं नहीं जाऊंगी। तू क्या यहां भी मुझे जीने न देगी?

बुढ़िया कर्कश स्वर से बोली—तू न चलेगी?

'नहीं।'

'चल सीधे से।'

'नहीं जाती।'

तुरंत दोनों भाइयों ने उसके हाथ पकड़ लिए और उसे घसीटते हुए ले चले। सिलिया जमीन पर बैठ गई। भाइयों ने इस पर भी न छोड़ा। घसीटते ही रहे। उसकी साड़ी फट गई, पीठ और कमर की खाल छिल गई, पर वह जाने पर राजी न हुई।

तब हरखू ने लड़कों से कहा—अच्छा, अब इसे छोड़ दो। समझ लेंगे मर गई, मगर अब जो कभी मेरे द्वार पर आई तो लहू पी जाऊंगा।

सिलिया जान पर खेलकर बोली—हां, जब तुम्हारे द्वार पर आऊं, तो पी लेना।

बुढ़िया ने क्रोध के उन्माद में सिलिया को कई लातें जमाईं और हरखू ने उसे हटा न दिया होता, तो शायद प्राण ही लेकर छोड़ती।

बुढ़िया फिर झपटी, तो हरखू ने उसे धक्के देकर पीछे हटाते हुए कहा—तू बड़ी हत्यारिन है कलिया! क्या उसे मार ही डालेगी?

सिलिया बाप के पैरों से लिपटकर बोली—मार डालो दादा, सब जने मिलकर मार डालो! हाय अम्मां, तुम इतनी निर्दयी हो, इसीलिए दूध पिलाकर पाला था? सौर में ही क्यों न गला घोंट दिया? हाय! मेरे पीछे पंडित को भी तुमने भिरस्ट कर दिया। उसका धरम लेकर तुम्हें क्या मिला? अब तो वह भी मुझे न पूछेगा। लेकिन पूछे न पूछे, रहूंगी तो उसी के साथ। वह मुझे चाहे भूखों रखे, चाहे मार डाले, पर उसका साथ न छोड़ूंगी। उसकी इतनी सांसत कराके कैसे छोड़ दूं? मर जाऊंगी, पर हरजाई न बनूंगी। एक बार जिसने बांह पकड़ ली, उसी की रहूंगी।

कलिया ने होंठ चबाकर कहा—जाने दो रांड को। समझती है, वह इसका निबाह करेगा, मगर आज ही मारकर भगा न दे तो मुंह न दिखाऊं।

भाइयों को भी दया आ गई। सिलिया को वहीं छोड़कर सब-के-सब चले गए। तब वह धीरे-से उठकर लंगड़ाती, कराहती, खलिहान में आकर बैठ गई और अंचल में मुंह ढांपकर रोने लगी। दातादीन ने जुलाहे का गुस्सा डाढ़ी पर उतारा—उनके साथ चली क्यों न गई सिलिया! अब क्या करवाने पर लगी हुई है? मेरा सत्यानास कराके भी न पेट नहीं भरा?

सिलिया ने आंसू-भरी आंखें ऊपर उठाई। उनमें तेज की झलक थी।

'उनके साथ क्यों जाऊं? जिसने बांह पकड़ी है, उसके साथ रहूंगी।'

पंडितजी ने धमकी दी—मेरे घर में पांव रखा, तो लातों से बात करूंगा।

सिलिया ने उद्दंडता से कहा—मुझे जहां वह रखेंगे, वहां रहूंगी। पेड़ तले रखें, चाहे महल में रखें।

मातादीन संज्ञाहीन-सा बैठा था। दोपहर होने को आ रहा था। धूप पत्तियों से छन-छनकर उसके चेहरे पर पड़ रही थी। माथे से पसीना टपक रहा था। पर वह मौन, निस्पंद बैठा हुआ था।

सहसा जैसे उसने होश में आकर कहा—मेरे लिए अब क्या कहते हो दादा?

दातादीन ने उसके सिर पर हाथ रखकर ढाढस देते हुए कहा–तुम्हारे लिए अभी मैं क्या कहूं बेटा? चलकर नहाओ, खाओ, फिर पंडितों की जैसी व्यवस्था हागी, वैसा किया जाएगा। हां, एक बात है, सिलिया को त्यागना पड़ेगा।

मातादीन ने सिलिया की ओर रक्त-भरे नेत्रों से देखा–मैं अब उसका कभी मुंह न देखूंगा, लेकिन परासचित हो जाने पर फिर तो कोई दोस न रहेगा?

'परासचित हो जाने पर कोई दोस-पाप नहीं रहता।'

'तो आज ही पंडितों के पास जाओ।'

'आज ही जाऊंगा बेटा।'

'लेकिन पंडित लोग कहें कि इसका परासचित नहीं हो सकता, तब?'

'उनकी जैसी इच्छा।'

'तो तुम मुझे घर से निकाल दोगे?'

दातादीन ने पुत्र-स्नेह से विह्वल होकर कहा–ऐसा कहीं हो सकता है, बेटा! धन जाय, धरम जाय, लोक-मरजाद जाय, पर तुम्हें नहीं छोड़ सकता।

मातादीन ने लकड़ी उठाई और बाप के पीछे-पीछे घर चला। सिलिया भी उठी और लंगड़ाती हुई उसके पीछे हो ली।

मातादीन ने पीछे फिरकर निर्मम स्वर में कहा–मेरे साथ मत आ। मेरा तुझसे कोई वास्ता नहीं। इतनी [illegible] करवा के भी तेरा पेट नहीं भरता।

सिलिया ने धृष्टता के साथ उसका हाथ पकड़कर कहा–वास्ता कैसे नहीं है? इसी गांव में तुमसे धनी, तुमसे सुंदर, तुमसे इज्जतदार लोग हैं। मैं उनका हाथ क्यों नहीं पकड़ती? तुम्हारी यह दुरदसा ही आज क्यों हुई? जो रस्सी तुम्हारे गले पड़ गई है, उसे तुम लाख चाहो, नहीं तोड़ सकते। और न मैं तुम्हें छोड़कर कहीं जाऊंगी। मजूरी करूंगी, भीख मांगूंगी, लेकिन तुम्हें न छोडूंगी।

यह कहते हुए उसने मातादीन का हाथ छोड़ दिया और फिर खलिहान में जाकर अनाज ओसाने लगी। होरी अभी तक वहां अनाज मांड़ रहा था। धनिया उसे भोजन करने के लिए बुलाने आई थी। होरी ने बैलों को पैरे से बाहर निकालकर एक पेड़ में बांध दिया और सिलिया से बोला–तू भी जा, खा-पी आ सिलिया! धनिया यहां बैठी है। तेरी पीठ पर की साड़ी तो लहू से रंग गई है रे! कहीं घाव पक न जाय। तेरे घर वाले बड़े निरदयी हैं।

सिलिया ने उसकी ओर करुण नेत्रों से देखा–यहां निरदयी कौन नहीं है, दादा! मैंने तो किसी को दयावान् नहीं पाया।

'क्या कहा पंडित ने?'

'कहते हैं, मेरा तुमसे कोई वास्ता नहीं।'

'अच्छा! ऐसा कहते हैं!'

'समझते होंगे, इस तरह अपने मुंह की लाली रख लेंगे, लेकिन जिस बात को दुनिया जानती है, उसे कैसे छिपा लेंगे? मेरी रोटियां भारी हैं, न दें। मेरे लिए क्या? मजूरी अब भी करती हूं, तब भी करूंगी। सोने को हाथ-भर जगह तुम्हीं से मागूंगी तो क्या तुम न दोगे?'

धनिया दयार्द्र होकर बोली–जगह की कौन कमी है बेटी? तू चल मेरे घर रह।

होरी ने कातर स्वर में कहा–बुलाती तो है, लेकिन पंडित को जानती नहीं?

धनिया ने निर्भीक स्वर में कहा—बिगड़ेंगे तो एक रोटी बेसी खा लेंगे, और क्या करेंगे। कोई उसकी दबैल हूं? उसकी इज्जत ली, बिरादरी से निकलवाया, अब कहते हैं, मेरा तुझसे कोई वास्ता नहीं। आदमी है कि कसाई! यह उसकी नीयत का आज फल मिला है। पहले नहा सोच लिया था। तब तो बिहार करते रहे। अब कहते हैं, मुझसे कोई वास्ता नहीं!'

होरी के विचार में धनिया गलत कर रही थी। सिलिया के घर वालों ने मतई को कितना बेधरम कर दिया, यह कोई अच्छा काम नहीं किया। सिलिया को चाहे मारकर ले जाते, चाहे दुलारकर ले जाते। वह उनकी लड़की है। मतई को क्यों बेधरम किया?

धनिया ने फटकार बताई—अच्छा रहने दो, बड़े न्यायी बनते हो। मरद-मरद सब एक होते हैं। इसको मतई ने बेधरम किया, तब तो किसी को बुरा न लगा। अब जो मतई बेधरम हो गए तो क्यों बुरा लगता है! क्या सिलिया का धरम, धरम ही नहीं? रखी तो चमारिन, उस पर नेक धरमी बनते हैं। बड़ा अच्छा किया हरखू चौधरी ने। ऐसे गुंडों की यही सजा है। तू चल सिलिया मेरे घर। न-जाने कैसे बेदरद मां-बाप हैं कि बेचारी की सारी पीठ लहूलुहान कर दी। तुम जाकर सोना को भेज दो। मैं इसे लेकर आती हूं।

होरी घर चला गया और सिलिया धनिया के पैरों पर गिरकर रोने लगी।

चौबीस

सोना सत्रहवें साल में थी और इस साल उसका विवाह करना आवश्यक था। होरी तो दो साल से इसी फिक्र में था, पर हाथ खाली होने से कोई काबू न चलता था। मगर इस साल जैसे भी हो, उसका विवाह कर देना ही चाहिए, चाहे कर्ज लेना पड़े, चाहे खेत गिरों रखने पड़ें। और अकेले होरी की बात चलती, तो दो साल पहले ही विवाह हो गया होता। वह किफायत से काम करना चाहता था। पर धनिया कहती थी, कितना ही हाथ बांधकर खर्च करो, दो-ढाई सौ लग जायंगे। झुनिया के आ जाने से बिरादरी में इन लोगों का स्थान कुछ हेठा हो गया था और बिना सौ-दो सौ दिये कोई कुलीन वर न मिल सकता था। पिछले साल चैती में कुछ मिला था तो पंडित दातादीन का आधा साझा, मगर पंडितजी ने बीज और मजूरी का कुछ ऐसा ब्यौरा बताया कि होरी के हाथ एक-चौथाई से ज्यादा अनाज न लगा। और लगान देना पड़ गया पूरा। ऊख और सन की फसल नष्ट हो गई, सन तो वर्षा अधिक होने और ऊख दीमक लग जाने के कारण। हां, इस साल चैती अच्छी थी और ऊख भी खूब लगी हुई थी। विवाह के लिए गल्ला तो मौजूद था, दो सौ रुपये भी हाथ आ जायं, तो कन्या-ऋण से उसका उद्धार हो जाय। अगर गोबर सौ रुपये की मदद कर दे, तो बाकी सौ रुपये होरी को आसानी से मिल जायंगे। झिंगुरीसिंह और मंगरू साह दोनों ही अब कुछ नर्म पड़ गए थे। जब गोबर परदेश में कमा रहा है, तो उनके रुपये मारे न जा सकते थे।

एक दिन होरी ने गोबर के पास दो-तीन दिन के लिए जाने का प्रस्ताव किया।

मगर धनिया अभी तक गोबर के वह कठोर शब्द न भूली थी। वह गोबर से एक पैसा भी न लेना चाहती थी, किसी तरह नहीं।

होरी ने झुंझलाकर कहा—लेकिन काम कैसे चलेगा, यह बता?

धनिया सिर हिलाकर बोली—मान लो, गोबर परदेस न गया होता, तब तुम क्या करते? वही अब करो।

होरी की जबान बंद हो गई। एक क्षण बाद बोला—मैं तो तुझसे पूछता हूं।

धनिया ने जान बचाई—यह सोचना मरदों का काम है।

होरी के पास जवाब तैयार था—मान ले, मैं न होता, तू ही अकेली रहती, तब तू क्या करती? वह कर।

धनिया ने तिरस्कार-भरी आंखों से देखा—तब मैं कुस-कन्या भी दे देती तो कोई हंसने वाला न था।

कुश-कन्या होरी भी दे सकता था। इसी में उसका मंगल था, लेकिन कुल-मर्यादा कैसे छोड़ दे? उसकी बहनों के विवाह में तीन-तीन सौ बराती द्वार पर आए थे। दहेज भी अच्छा ही दिया गया था। नाच-तमाशा, बाजा-गाजा, हाथी-घोड़े, सभी आए थे। आज भी बिरादरी में उसका नाम है। दस गांव के आदमियों से उसका हेल-मेल है। कुश-कन्या देकर वह किसे मुंह दिखाएगा? इससे तो मर जाना अच्छा है। और वह क्यों कुश-कन्या दे? पेड़-पालो हैं, जमीन है और थोड़ी-सी साख भी है, अगर वह एक बीघा भी बेच दे, तो सौ मिल जायं, लेकिन किसान के लिए जमीन जान से भी प्यारी है, कुल-मर्यादा से भी प्यारी है। और कुल तीन ही बीघे तो उसके पास हैं, अगर एक बीघा बेच दे, तो फिर खेती कैसे करेगा?

कई दिन इसी हैस-बैस में गुजरे। होरी कुछ फैसला न कर सका।

दशहरे की छुट्टियों के दिन थे। झिंगुरीसिंह, पटेश्वरी और नोखेराम तीनों ही सज्जनों के लड़के छुट्टियों में घर आए थे। तीनों अंग्रेजी पढ़ते थे और यद्यपि तीनों बीस-बीस साल के हो गए थे, पर अभी तक यूनिवर्सिटी में जाने का नाम न लेते थे। एक-एक क्लास में दो-दो, तीन-तीन साल पड़े रहते। तीनों की शादियां हो चुकी थीं। पटेश्वरी के सपूत बिंदेसरी तो एक पुत्र के पिता भी हो चुके थे। तीनों दिन भर ताश खेलते, भंग पीते और छैला बने घूमते। वे दिन में कई कई बार होरी के द्वार की ओर ताकते हुए निकलते और कुछ ऐसा संयोग था कि जिस वक्त वे निकलते, उसी वक्त सोना भी किसी-न-किसी काम से द्वार पर आ खड़ी होती। इन दिनों वह वही साड़ी पहनती थी, जो गोबर उसके लिए लाया था। यह सब तमाशा देख-देखकर होरी का खून सूखता जाता था, मानों उसकी खेती चौपट करने के लिए आकाश में ओले वाले पीले बादल उठे चले आते हों।

एक दिन तीनों उसी कुएं पर नहाने जा पहुंचे, जहां होरी ऊख सींचने के लिए पुर चला रहा था। सोना मोट ले रही थी। होरी का खून खौल उठा।

उसी सांझ को वह दुलारी सहुआइन के पास गया। सोचा, औरतों मे दया होती है, शायद इसका दिल पसीज जाय और कम सूद पर रुपये दे दे। मगर दुलारी अपना ही रोना ले बैठी। गांव में ऐसा कोई घर न था, जिस पर उसके कुछ रुपये न आते हों, यहां तक कि झिंगुरीसिंह पर भी उसके बीस रुपये आते थे, लेकिन कोई देने का नाम न लेता था। बेचारी कहां से रुपये लाए?

होरी ने गिड़गिड़ाकर कहा-भाभी, बड़ा पुन्न होगा। तुम रुपये न दोगी, मेरे गले की फांसी खोल दोगी, झिंगुरी और पटेसरी मेरे खेतों पर दांत लगाए हुए हैं। मैं सोचता हूं,

बाप-दादा की यही तो निसानी है, यह निकल गई, तो जाऊंगा कहां? एक सपूत वह होता है कि घर की संपत बढ़ाता है, मैं ऐसा कपूत हो जाऊं कि बाप-दादों की कमाई पर झाड़ू फेर दूं?

दुलारी ने कसम खाई—होरी, मैं ठाकुरजी के चरन छूकर कहती हूं कि इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। जिसने लिया, वह देता नहीं, तो मैं क्या करूं? तुम कोई गैर तो नहीं हो। सोना भी मेरी ही लड़की है, लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं? तुम्हारा ही भाई हीरा है। बैल के लिए पचास रुपये लिए। उसका तो कहीं पता-ठिकाना नहीं, उसकी घरवाली से मांगो तो लड़ने के लिए तैयार। सोभा भी देखने में बड़ा सीधा-सादा है, लेकिन पैसा देना नहीं जानता। और असल बात तो यह है कि किसी के पास है ही नहीं, दें कहां से। सबकी दशा देखती हूं, इसी मारे सबर कर जाती हूं। लोग किसी तरह पेट पाल रहे हैं, और क्या? खेती-बारी बेचने की मैं सलाह न दूंगी। कुछ नहीं है, मरजाद तो है।

फिर कनफुसकियों में बोली—पटेसरी लाला का लौंडा तुम्हारे घर की ओर बहुत चक्कर लगाया करता है। तीनों का वही हाल है। इनसे चौकस रहना। यह सहरी हो गए, गांव का भाई-चारा क्या समझें? लड़के गांव में भी हैं, मगर उनमें कुछ लिहाज है, कुछ अदब है, कुछ डर है। ये सब तो छूटे सांड हैं। मेरी कौसल्या ससुराल से आई थी, मैंने इन सबों के ढंग देखकर उसके ससुर को बुलाकर विदा कर दिया। कोई कहां तक पहरा दे।

होरी को मुस्कराते देखकर उसने सरस ताड़ना के भाव से कहा—हंसोगे होरी, तो मैं भी कुछ कह दूंगी। तुम क्या किसी से कम नटखट थे? दिन में पचीसों बार किसी-न-किसी बहाने मेरी दुकान पर आया करते थे, मगर मैंने कभी ताका तक नहीं।

होरी ने मीठे प्रतिवाद के साथ कहा—यह तो तुम झूठ बोलती हो भाभी। मैं बिना कुछ रस पाए थोड़े ही आता था। चिड़िया एक बार परच जाती है, तभी दूसरी बार आंगन में आती है।

'चल झूठे।'

'आंखों से न ताकती रही हो, लेकिन तुम्हारा मन तो ताकता ही था, बल्कि बुलाता था।'

'अच्छा रहने दो, बड़े आए अंतरजामी बनके। तुम्हें बार-बार मंड़राते देखके मुझे दया आ जाती थी, नहीं तुम कोई ऐसे बांके जवान न थे।'

हुसेनी एक पैसे का नमक लेने आ गया और यह परिहास बंद हो गया। हुसेनी नमक लेकर चला गया, तो दुलारी ने कहा—गोबर के पास क्यों नहीं चले जाते? देखते भी आओगे और साइत कुछ मिल भी जाय।

होरी निराश मन से बोला—वह कुछ न देगा। लड़के चार पैसे कमाने लगते हैं, तो उनकी आंखें फिर जाती हैं। मैं तो बेहयाई करने को तैयार था, लेकिन धनिया नहीं मानती। उसकी मरजी बिना चला जाऊं, तो घर में रहना अपाढ़ कर दे। उसका सुभाव तो जानती हो।

दुलारी ने कटाक्ष करके कहा—तुम तो मेहरिया के जैसे गुलाम हो गए।

'तुमने पूछा ही नहीं तो क्या करता?'

'मेरी गुलामी करने को कहते तो मैंने लिखा लिया होता, सच।'

'तो अब से क्या बिगड़ा है, लिखा लो न। दो सौ में लिखता हूं, इन दामों मंहगा नहीं हूं।'

'तब धनिया से तो न बोलोगे?'

'नहीं, कहो कसम खाऊं।'

'और जो बोले?'

'तो मेरी जीभ काट लेना।'

'अच्छा तो जाओ, बर ठीक-ठाक करो, मैं रुपये दे दूंगी।'

होरी ने सजल नेत्रों से दुलारी के पांव पकड़ लिए। भावावेश से मुंह बंद हो गया।

सहुआइन ने पांव खींचकर कहा—अब यही सरारत मुझे अच्छी नहीं लगती। मैं साल-भर के भीतर अपने रुपये सूद-समेत कान पकड़कर लूंगी। तुम तो व्यवहार के ऐसे सच्चे नहीं हो, लेकिन धनिया पर मुझे विश्वास है। सुना पंडित तुमसे बहुत बिगड़े हुए हैं। कहते हैं इसे गांव से निकालकर नहीं छोड़ा तो बांभन नहीं। तुम सिलिया को निकाल बाहर क्यों नहीं करते? बैठे-बैठाए झगड़ा मोल ले लिया।

'धनिया उसे रखे हुए है, मैं क्या करूं?'

'सुना है, पंडित कासी गए थे। वहां एक बड़ा नामी विद्वान् पंडित है। वह पांच सौ मांगता है। तब परासचित कराएगा। भला, पूछो ऐसा अंधेर कहीं हुआ है। जब धरम नस्ट हो गया तो एक नहीं, हजार परासचित करो, इससे क्या होता है। तुम्हारे हाथ का छुआ पानी कोई न पिएगा। चाहे जितना परासचित करो।'

होरी यहां से घर चला, तो उसका दिल उछल रहा था। जीवन में ऐसा सुखद अनुभव उसे न हुआ था। रास्ते में सोभा के घर गया और सगाई लेकर चलने के लिए नेवता दे आया। फिर दोनों दातादीन के पास सगाई की सायत पूछने गए। वहां से आकर द्वार पर सगाई की तैयारियों की सलाह करने लगे।

धनिया ने बाहर आकर कहा— पहर रात गई, अभी रोटी खाने की बेला नहीं आई? खाकर बैठो। गपड़चौथ करने को तो सारी रात पड़ी है।

होरी ने उसे भी परामर्श में शरीक होने का अनुरोध करते हुए कहा—इसी सहालग में लगन ठीक हुआ है। बता, क्या-क्या सामान लाना चाहिए? मुझे तो कुछ मालूम नहीं।

'जब कुछ मालूम ही नहीं, तो सलाह करने क्या बैठे हो? रुपये-पैसे का डौल भी हुआ कि मन में मिठाई खा रहे हो?'

होरी ने गर्व से कहा—तुझे इससे क्या मतलब? तू इतना बता दे, क्या-क्या सामान लाना होगा?

'तो मैं ऐसी मन की मिठाई नहीं खाती।'

'तू इतना बता दे कि हमारी बहनों के ब्याह में क्या-क्या सामान आया था?'

'पहले यह बता दो, रुपये मिल गए।'

'हां मिल गये, और नहीं क्या भंग खायी है।'

'तो पहले चलकर खा लो। फिर सलाह करेंगे।'

मगर जब उसने सुना कि दुलारी से बातचीत हुई है, तो नाक सिकोड़कर बोली—उससे रुपये लेकर आज तक कोई उरिन हुआ है? चुड़ैल कितना कसकर सूद लेती है।

'लेकिन करता क्या? दूसरा देता कौन है?'

'यह क्यों नहीं कहते कि इसी बहाने दो गाल हंसने-बोलने गया था। बूढ़े हो गए, पर यह बान न गई।'

'तू तो धनिया, कभी-कभी बच्चों की-सी बातें करने लगती है। मेरे-जैसे फटेहालों से

वह हंसे-बोलेगी? सीधे मुंह बात तो करती नहीं।'

'तुम-जैसों को छोड़कर उसके पास और जायगा ही कौन?'

'उसके द्वार पर अच्छे-अच्छे नाक रगड़ते हैं, धनिया, तू क्या जाने। उसके पास लच्छमी है।'

'उसने जरा-सी हामी भर दी, तुम चारों ओर खुसखबरी लेकर दौड़े।'

'हामी नहीं भर दी, पक्का वादा किया है।'

होरी रोटी खाने गया और सोभा अपने घर चला गया तो सोना सिलिया के साथ बाहर निकली। वह द्वार पर खड़ी सारी बातें सुन रही थी। उसकी सगाई के लिए दो सौ रुपये दुलारी से उधार लिए जा रहे हैं, यह बात उसके पेट में इस तरह खलबली मचा रही थी, जैसे ताजा चूना पानी में पड़ गया हो। द्वार पर एक कुप्पी जल रही थी, जिससे ताक के ऊपर की दीवार काली पड़ गई थी। दोनों बैल नांद में सानी खा रहे थे और कुत्ता जमीन पर टुकड़े के इंतजार में बैठा हुआ था। दोनों युवतियां बैलों की चरनी के पास आकर खड़ी हो गईं।

सोना बोली—तूने कुछ सुना? दादा सहुआइन से मेरी सगाई के लिए दो सौ रुपये उधार ले रहे हैं।

सिलिया घर का रत्ती-रत्ती हाल जानती थी। बोली—घर में पैसा नहीं है, तो क्या करें?

सोना ने सामने के काले वृक्षों की ओर ताकते हुए कहा—मैं ऐसा ब्याह नहीं करना चाहती जिससे मां-बाप को कर्जा लेना पड़े। कहां से देंगे बेचारे, बता! पहले ही कर्ज के बोझ से दबे हुए हैं। दो सौ और ले लेंगे, तो बोझा और भारी होगा कि नहीं?

'बिना दान-दहेज के बड़े आदमियों का कहीं ब्याह होता है पगली? बिना दहेज के तो कोई बूढ़ा-ठेला ही मिलेगा। जायगी बूढ़े के साथ?'

'बूढ़े के साथ क्यों जाऊं? भैया बूढ़े थे जो झुनिया को ले आए? उन्हें किसने कै पैसे दहेज में दिए थे?'

'उसमें बाप-दादा का नाम डूबता है।'

'मैं तो सोनारी वालों से कह दूंगी, अगर तुमने एक पैसा भी दहेज लिया, तो मैं तुमसे ब्याह न करूंगी।'

सोना का विवाह सोनारी के एक धनी किसान के लड़के से ठीक हुआ था।

'और जो वह कह दे, कि मैं क्या करूं, तुम्हारे बाप देते हैं, मेरे बाप लेते हैं, इसमें मेरा क्या अख्तियार है?'

सोना ने जिस अस्त्र को रामबाण समझा था, अब मालूम हुआ कि वह बांस की कैन है। हताश होकर बोली—मैं एक बार उससे कहके देख लेना चाहती हूं, अगर उसने कह दिया, मेरा कोई अख्तियार नहीं है, तो क्या गोमती यहां से बहुत दूर है? डूब मरूंगी। मां-बाप ने मर-मरके पाला-पोसा। उसका बदला क्या यही है कि उनके घर से जाने लगूं, तो उन्हें करजे से और लादता जाऊं? मां-बाप को भगवान् ने दिया हो, तो खुसी से जितना चाहें लड़की को दें, मैं मना नहीं करती, लेकिन जब वह पैसे-पैसे को तंग हो रहे हैं, आज महाजन नालिस करके लिल्लाम करा ले, तो कल मजूरी करनी पड़ेगी, तो कन्या का धरम यही है कि डूब मरे। घर की जमीन-जैजात तो बच जायगी, रोटी का सहारा तो रह जायगा। मां-बाप चार दिन मेरे नाम को रोकर संतोष कर लेंगे। यह तो न होगा कि मेरा ब्याह करके उन्हें जनम-भर रोना पड़े। तीन-चार साल में दो सौ के दूने हो जाएंगे, दादा कहां से लाकर देंगे?

सिलिया को जान पड़ा, जैसे उसकी आंख में नई ज्योति आ गई है। आवेश में सोना को छाती से लगाकर बोली–तूने इतनी अक्कल कहां से सीख ली सोना? देखने में तो तू बड़ी भोली-भाली है।

'इसमें अक्कल की कौन बात है चुड़ैल। क्या मेरे आंखें नहीं हैं कि मैं पागल हूं? दो सौ मेरे ब्याह में लें। तीन-चार साल में वह दूना हो जाय। तब रुपिया के ब्याह में दो सौ और लें। जो कुछ खेती-बारी है, सब लिलाम-तिलाम हो जाय, और द्वार-द्वार पर भीख मांगते फिरें। यही न? इससे तो कहीं अच्छा है कि मैं अपनी जान दे दूं। मुंह अंधेरे सोनारी चली जाना और उसे बुला लाना। मगर नहीं, बुलाने का काम नहीं। मुझे उससे बोलते लाज आएगी। तू ही मेरा यह संदेसा कह देना। देख क्या जवाब देते हैं। कौन दूर है? नदी के उस पार ही तो है। कभी-कभी ढोर लेकर इधर आ जाता है। एक बार उसकी भैंस मेरे खेत में पड़ गई थी, तो मैंने उसे बहुत गालियां दी थीं, हाथ जोड़ने लगा। हां, यह तो बता, इधर मतई से तेरी भेंट नहीं हुई? सुना, बांभन लोग उन्हें बिरादरी में नहीं ले रहे हैं।

सिलिया ने हिकारत के साथ कहा–बिरादरी में क्यों न लेंगे, हां, बूढ़ा रुपये नहीं खरच करना चाहता। इसको पैसा मिल जाय, तो झूठी गंगा उठा ले। लड़का आजकल बाहर ओसारे में टिक्कड़ लगाता है।

'तू उसे छोड़ क्यों नहीं देती? अपनी बिरादरी में किसी के साथ बैठ जा और आराम से रह। वह तेरा अपमान तो न करेगा।'

'हां रे, क्यों नहीं, मेरे पीछे उस बेचारे की इतनी दुरदसा हुई, अब मैं उसे छोड़ दूं? अब वह चाहे पंडित बन जाय, चाहे देवता बन जाय, मेरे लिए तो वही मतई है, जो मेरे पैरों पर सिर रगड़ा करता था, और बांभन भी हो जाय और बांभनी से ब्याह भी कर ले, फिर भी जितनी उसकी सेवा मैंने की है, वह कोई बांभनी क्या करेगी। अभी मान मरजाद के मोह में वह चाहे मुझे छोड़ दे, लेकिन देख लेना, फिर दौड़ा आएगा।'

'आ चुका अब। तुझे पा जाय तो कच्चा ही खा जाय।'

'तो उसे बुलाने ही कौन जाता है? अपना-अपना धरम अपने-अपने साथ है। वह अपना धरम तोड़ रहा है, तो मैं अपना धरम क्यों तोड़ूं?'

प्रातःकाल सिलिया सोनारी की ओर चली, लेकिन होरी ने रोक लिया। धनिया के सिर में दर्द था। उसकी जगह क्यारियों को बराना था। सिलिया इंकार न कर सकी। यहां से जब दोपहर को छुट्टी मिली तो वह सोनारी चली।

इधर तीसरे पहर होरी फिर कुएं पर चला तो सिलिया का पता न था। बिगड़कर बोला - सिलिया कहां उड़ गई? रहती है, रहती है, न जाने किधर चल देती है, जैसे किसी काम में जी ही नहीं लगता। तू जानती है सोना, कहां गई है?

सोना ने बहाना किया - मुझे तो कुछ मालूम नहीं। कहती थी, धोबिन के घर कपड़े लेने जाना है, वहीं चली गई होगी।

धनिया ने खाट से उठकर कहा– चलो, मैं क्यारी बराए देती हूं। कौन उसे मजूरी देते हो जो बिगड़ रहे हो?

'हमारे घर में रहती नहीं है? उसके पीछे सारे गांव में बदनाम नहीं हो रहे हैं?'

'अच्छा, रहने दो, एक कोने में पड़ी हुई है, तो उससे किराया लोगे?'

'एक कोने में नहीं पड़ी हुई है, एक पूरी कोठरी लिए हुए है।'

'तो उस कोठरी का किराया होगा कोई पचास रुपये महीना।'

'उसका किराया एक पैसा नहीं। हमारे घर में रहती है, जहां जाय पूछकर जाय। आज आती है तो खबर लेता हूं।'

पुर चलने लगा। धनिया को होरी ने न आने दिया। रूपा क्यारी बराती थी और सोना मोट ले रही थी। रूपा गीली मिट्टी के चूल्हे और बरतन बना रही थी, और सोना सशंक आंखो मे सोनारी की ओर ताक रही थी। शंका भी थी, आशा भी थी, शंका अधिक थी, आशा कम। सोचती थी, उन लोगों को रुपये मिल रहे हैं, तो क्यों छोड़ने लगे? जिनके पास पैसे हैं, वे तो पैसे पर और भी जान देते हैं। और गौरी महतो तो एक ही लालची हैं। मथुरा में दया है, धरम है, लेकिन बाप की जो इच्छा होगी, वही उसे माननी पड़ेगी, मगर सोना भी बचा को ऐसा फटकारेगी कि याद करेंगे। वह साफ कहेगी, जाकर किसी धनी की लड़की से ब्याह कर, तुझ-जैसे पुरुष के साथ मेरा निबाह न होगा। कहीं गौरी महतो मान गए, तो वह उनके चरन धो-धोकर पिएगी। उनकी ऐसी सेवा करेगी कि अपने बाप की भी न की होगी। और सिलिया को भर-पेट मिठाइ खिलाएगी। गोबर ने उसे जो रुपया दिया था, उसे वह अभी तक संचे हुए थी। इस मृदु कल्पना से उसकी आंखें चमक उठीं और कपोलों पर हल्की-सी लाली दौड़ गई।

मगर सिलिया अभी तक आई क्यों नहीं? कौन बड़ी दूर है। न आने दिया होगा उन लोगो ने। अहा! वह आ रही है, लेकिन बहुत धीरे-धीरे आती है। सोना का दिल बैठ गया। अभागे नहीं माने साइत, नहीं सिलिया दौड़ती आती। तो सोना से हो चुका ब्याह। मुंह धो रखो।

सिलिया आई जरूर, पर कुएं पर न आकर खेत में क्यारी बराने लगी। डर रही थी हार पूछेंगे कहां थी अब तक, तो क्या जवाब देगी। सोना ने यह दो घंटे का समय बड़ी मुश्किल मे काटा। पर छूटते ही वह भागी हुई सिलिया के पास पहुंची।

'वहां जाकर तू मर गई थी क्या! ताकते-ताकते आंखें फूट गईं।'

सिलिया को बुरा लगा—तो क्या मैं वहां सोती थी? इस तरह की बातचीत राह चलते यो ही हो जाती है। अवसर देखना पड़ता है। मथुरा नदी की ओर ढोर चराने गए थे। खोजती-खोजती उसके पास गई और तेरा संदेसा कहा। ऐसा परसन हुआ कि तुझसे क्या कहूं। मेरे पांव पर गिर पड़ा और बोला—सिल्लो, मैंने जब से सुना है कि सोना मेरे घर में आ रही है, तब से आंखों की नींद हर गई है। उसकी वह गालियां मुझे फल गई, लेकिन काका को क्या करूं? वह किसी की नहीं सुनते।

सोना ने टोका—तो न सुनें। सोना भी जिद्दिन है। जो कहा है, वह कर दिखाएगी। फिर हाथ मलते रह जायंगे।

'बस, उसी छन ढोरों को वहीं छोड़, मुझे लिए हुए गौरी महतो के पास गया। महतो के चार पुर चलते हैं। कुआं भी उन्हीं का है। दस बीघे का ऊख है। महतो को देखके मुझे हंसी आ गई, जैसे कोई घसियारा हो। हां, भाग का बली है। बाप-बेटे में खूब कहा-सुनी हुई। गौरी महतो कहते थे, तुझसे क्या मतलब, मैं चाहे कुछ लूं या न लूं, तू कौन होता है बोलने वाला? मथुरा कहता था, तुमको लेना-देना है, तो मेरा ब्याह मत करो, मैं अपना ब्याह जैसे चाहूंगा, कर लूंगा। बात बढ़ गई और गौरी महतो ने पनहियां उतारकर मथुरा को खूब पीटा। कोई दूसरा लड़का इतनी मार खाकर बिगड़ खड़ा होता। मथुरा एक घूंसा भी जमा देता, तो महतो फिर न

उठते, मगर बेचारा पचासों जूते खाकर भी कुछ न बोला। आंखों में आंसू भरे, मेरी ओर गरीबों की तरह ताकता हुआ चला गया। तब महतो मुझ पर बिगड़ने लगे। सैकड़ों गालियां दीं, मगर मैं क्यों सुनने लगी थी? मुझे उनका क्या डर था? मैंने सफा कह दिया–महतो, दो-तीन सौ कोई भारी रकम नहीं है, और होरी महतो इतने में बिक न जायंगे, न तुम्हीं धनवान हो जाओगे, वह सब धन नाच-तमासे में ही उड़ जायगा। हां, ऐसी बहू न पाओगे।

सोना ने सजल नेत्रों से पूछा–महतो इतनी ही बात पर उन्हें मारने लगे?

सिलिया ने यह बात छिपा रक्खी थी। ऐसी अपमान की बात सोना के कानों में न डालना चाहती थी, पर यह प्रश्न सुनकर संयम न रख सकी। बोली–वही गोबर भैया वाली बात थी। महतो ने कहा–आदमी जूठा तभी खाता है, जब मीठा हो। कलंक चांदी से ही धुलता है। इस पर मथुरा बोला–काका, कौन घर कलंक से बचा हुआ है? हां, किसी का खुल गया, किसी का छिपा हुआ है। गौरी महतो भी पहले एक चमारिन मे फंसे थे। उससे दो लड़के भी हैं। मथुरा के मुंह से इतना निकलना था कि डोकरे पर जैसे भूत सवार हो गया। जितना लालची है, उतना ही क्रोधी भी है। बिना लिए न मानेगा।

दोनों घर चलीं। सोना के सिर पर चरसा, रस्सा और जुए का भारी बोझ था, पर इस समय वह उसे फूल से भी हल्का लग रहा था। उसके अंतस्तल में जैसे आनंद और स्फूर्ति का सोता खुल गया हो। मथुरा की वह वीर मूर्ति सामने खड़ी थी, और वह जैसे उसे अपने हृदय में बैठाकर उसके चरण आसुंओं से पखार रही थी। जैसे आकाश की देविया उसे गोद में उठाए, आकाश में छाई हुई लालिमा में लिए चली जा रही हों।

उसी रात को सोना को बड़े जोर का ज्वर चढ़ आया।

तीसरे दिन गौरी महतो ने नाई के हाथ एक पत्र भेजा–

'स्वस्ती श्री सर्वोपमा जोग श्री होरी महतो को गौरीराम का राम-राम बांचना। आगे जो हम लोगों में दहेज की बातचीत हुई थी, उस पर हमने सांत मन से विचार किया, समझ में आया कि लेन-देन से वर और कन्या दोनों ही के घरवाले जेरबार होते हैं। जब हमारा-तुम्हारा संबध हो गया, तो हमें ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि किसी को न अखरे। तुम दान-दहेज की कोई फिकर मत करना, हम तुमको सौगंध देते हैं। जो कुछ मोटा-महीन जुरे, बरातिया को खिला देना। हम वह भी न मांगेंगे। रसद का इंतजाम हमने कर लिया है। हां, तुम खुसी-खुर्रमी से हमारी जो खातिर करोगे। वह सिर झुकाकर स्वीकार करेंगे।'

होरी ने पत्र पढ़ा और दौड़े हुए भीतर जाकर धनिया को सुनाया। हर्ष के मारे उछला पड़ता था, मगर धनिया किसी विचार में डूबी बैठी रही। एक क्षण के बाद बोली–यह गौरी महतो की भलमनसी है, लेकिन हमें भी तो अपने मरजाद का निबाह करना है। संसार क्या कहेगा। रुपया हाथ का मैल है। उसके लिए कुल-मरजाद नहीं छोड़ा जाता। जो कुछ हमसे हो सकेगा, देंगे और गौरी महतो को लेना पड़ेगा। तुम यही जवाब लिख दो। मां-बाप की कमाई में क्या लड़की का कोई हक नहीं है? नहीं, लिखना क्या है, चलो, मैं नाई से संदेसा कहलाए देती हूं।

होरी हतबुद्धि-सा आंगन में खड़ा था और धनिया उस उदारता की प्रतिक्रिया में, जो गौरी महतो की सज्जनता ने जगा दी थी, संदेशा कह रही थी। फिर उसने नाई को रस पिलाया और बिदाई देकर विदा किया।

वह चला गया तो होरी ने कहा–यह तूने क्या कर डाला धनिया? तेरा मिजाज आज तक

मेरी समझ में न आया। तू आगे भी चलती है, पीछे भी चलती है। पहले तो इस बात पर लड़ रही थी कि किसी से एक पैसा करज मत लो, कुछ देने-दिलाने का काम नहीं है और जब भगवान् ने गौरी के भीतर बैठकर यह पत्र लिखवाया, तो तूने कुल-मरजाद का राग छेड़ दिया। तेरा मरम भगवान् ही जाने।

धनिया बोली--मुंह देखकर बीड़ा दिया जाता है, जानते हो कि नहीं? तब गौरी अपनी सान दिखाते थे, अब वह भलमनसी दिखा रहे हैं। ईंट का जवाब चाहे पत्थर हो, लेकिन सलाम का जवाब तो गाली नहीं है।

होरी ने नाक सिकोड़कर कहा -तो दिखा अपनी भलमनसी। देखें, कहां से रुपये लाती है।

धनिया आंखें चमकाकर बोली- रुपये लाना मेरा काम नहीं, तुम्हारा काम है।

'मैं तो दुलारी से ही लूंगा।'

'ले लो उसी से। सूद तो सभी लेंगे। जब डूबना ही है, तो क्या तालाब और क्या गंगा?'

होरी बाहर आकर चिलम पीने लगा। कितने मजे से गला छूटा जाता था, लेकिन धनिया जब जान छोड़े तब तो। जब देखो, उल्टी ही चलती है। इसे जैसे कोई भूत सवार हो जाता है। घर की दसा देखकर भी इसकी आंखें नहीं खुलतीं।

पच्चीस

भोला इधर दूसरी सगाई लाए थे। औरत के बगैर उनका जीवन नीरस था। जब तक झुनिया थी उन्हें हुक्का-पानी दे देती थी। समय से खाने को बुला ले जाती थी। अब बेचारे अनाथ से हो गए थे। बहुओं को घर के काम-धाम से छुट्टी न मिलती थी। उनकी क्या सेवा-सत्कार करतीं। इसलिए अब सगाई परमावश्यक हो गई थी। संयोग से एक जवान विधवा मिल गई, जिसके पति का देहांत हुए केवल तीन महीने हुए थे। एक लड़का भी था। भोला की लार टपक पड़ी। झटपट शिकार मार लाए। जब तक सगाई न हुई, उसका घर खोद डाला।

अभी तक उसके घर में जो कुछ था, बहुओं का था। जो चाहती थीं, करती थीं, जैसे चाहती थीं, रहती थीं। जंगी जब से अपनी स्त्री को लेकर लखनऊ चला गया था, कामता की बहू ही घर की स्वामिनी थी। पांच छः महीनों में ही उसने तीस- चालीस रुपये अपने हाथ में कर लिए थे। सेर-आध सेर दूध-दही चोरी से बेच लेती थी। अब स्वामिनी हुई उसकी सौतेली सास। उसका नियंत्रण बहू को बुरा लगता था और आए दिन दोनों में तकरार होती रहती थी। यहां तक कि औरतों के पीछे भोला और कामता में भी कहा-सुनी हो गई। झगड़ा इतना बढ़ा कि अलग्योझे की नौबत आ गई और यह रीति सनातन से चली आई है कि अलग्योझे के समय मार-पीट अवश्य हो। यहां भी उस रीति का पालन किया गया। कामता जवान आदमी था। भोला का उस पर जो कुछ दबाव था, वह पिता के नाते था, मगर नई स्त्री लाकर बेटे से आदर पाने का अब उसे कोई हक न रहा था। कम-से कम कामता इसे स्वीकार न करता था। उसने भोला को पटककर कई लातें जमाई और घर से निकाल दिया। घर की चीजें न छूने दीं। गांव वालों में भी किसी ने भोला का पक्ष न लिया। नई सगाई ने उन्हें नक्कू बना दिया था। रात तो उन्होंने

किसी तरह एक पेड़ के नीचे काटी, सुबह होते ही नोखेराम के पास जा पहुंचे और अपनी फरियाद सुनाई। भोला का गांव उन्हीं के इलाके में था और इलाके-भर के मालिक-मुखिया जो कुछ थे, वही थे। नोखेराम को भोला पर तो क्या दया आती, पर उनके साथ एक चटपटी, रंगीली स्त्री देखी तो चटपट आश्रय देने पर राजी हो गए। जहां उनकी गाएं बंधती थी, वहीं एक कोठरी रहने को दे दी। अपने जानवरों की देखभाल, सानी-भूसे के लिए उन्हें एकाएक एक जानकार आदमी की जरूरत महसूस होने लगी। भोला को तीन रुपया महीना और सेर-भर रोजाना अनाज पर नौकर रख लिया।

नोखेराम नाटे, मोटे, खल्वाट, लंबी नाक और छोटी-छोटी आंखों वाले सांवले आदमी थे। बड़ा-सा पग्गड़ बांधते, नीचा कुरता पहनते और जाड़ों में लिहाफ ओढ़कर बाहर आते-जाते थे। उन्हें तेल की मालिश कराने में बड़ा आनंद आता था, इसलिए उनके कपड़े हमेशा मैले, चीकट रहते थे। उनका परिवार बहुत बड़ा था। सात भाई और उनके बाल-बच्चे सभी उन्हीं पर आश्रित थे। उस पर स्वयं उनका लड़का नवें दरजे में अंग्रेजी पढ़ता था और उसका बनुआई ठाट निभाना कोई आसान काम न था। रायसाहब से उन्हें केवल बारह रुपये वेतन मिलता था, मगर खर्च सौ रुपये से कौड़ी कम न था। इसलिए असामी किसी तरह उनके चंगुल में फंस जाए, तो बिना उसे अच्छी तरह चूसे न छोड़ते थे। पहले छ: रुपये वेतन मिलता था, तब असामियों से इतनी नोच-खसोट न करते थे, जब से बारह रुपये हो गए थे, तब से उनकी तृष्णा और भी बढ़ गई थी, इसलिए रायसाहब उनकी तरक्की न करते थे।

गांव में और तो सभी किसी-न-किसी रूप में उनका दबाव मानते थे, यहां तक कि दातादीन और झिंगुरीसिंह भी उनकी खुशामद करते थे, केवल पटेश्वरी उनसे ताल ठोकने को हमेशा तैयार रहते थे। नोखेराम को अगर यह जोम था कि हम ब्राह्मण हैं और कायस्थों को उंगली पर नचाते हैं, तो पटेश्वरी को भी घमंड था कि हम कायस्थ हैं, कलम के बादशाह, इस मैदान में कोई हमसे क्या बाजी ले जाएगा? फिर वह जमींदार के नौकर नहीं, सरकार के नौकर हैं, जिसके राज में सूरज कभी नहीं डूबता। नोखेराम अगर एकादशी का व्रत रखते हैं और पांच ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं, तो पटेश्वरी हर पूर्णमासी को सत्यनारायण की कथा सुनेंगे और दस ब्राह्मणों को भोजन कराएंगे। जब से उनका जेठा लड़का सजावल हो गया था, नोखेराम इस ताक में रहते थे कि उनका लड़का किसी तरह दसवां पास कर ले, तो उसे भी कहीं नकलनवीसी दिला दें। इसलिए हुक्काम के पास फसली सौगातें लेकर बराबर सलामी करते रहते थे। एक और बात में पटेश्वरी उनसे बढ़े हुए थे। लोगों का खयाल था कि वह अपनी विधवा कहारिन को रखे हुए हैं। अब नोखेराम को भी अपनी शान में यह कसर पूरी करने का अवसर मिलता हुआ जान पड़ा।

भोला को ढाढ़स देते हुए बोले—तुम यहां आराम से रहो भोला, किसी बात का खटका नहीं। जिस चीज की जरूरत हो, हमसे आकर कहो। तुम्हारी घरवाली है, उसके लिए भी कोई न कोई काम निकल आएगा। बखारों में अनाज रखना, निकालना, पछोरना, फटकना क्या थोड़ा काम है?

भोला ने अरज की—सरकार, एक बार कामता को बुलाकर पूछ लो, क्या बाप के साथ बेटे का यही सलूक होना चाहिए? घर हमने बनवाया, गायें-भैंसें हमने लीं। अब उसने सब कुछ हथिया लिया और हमें निकाल बाहर किया। यह अन्याय नहीं तो क्या है? हमारे मालिक तो

तुम्हीं हो। तुम्हारे दरबार में इसका फैसला होना चाहिए।

नोखेराम ने समझाया–भोला, तुम उससे लड़कर पेश न पाओगे, उसने जैसा किया है, उसकी सजा उसे भगवान् देंगे। बेईमानी करके कोई आज तक फलीभूत हुआ है? संसार में अन्याय न होता, तो इसे नरक क्यों कहा जाता? यहां न्याय और धर्म को कौन पूछता है? भगवान सब देखते हैं। संसार का रत्ती-रत्ती हाल जानते हैं। तुम्हारे मन में इस समय क्या बात है, यह उनसे क्या छिपा है? इसी से तो अंतरजामी कहलाते हैं। उनसे बचकर कोई कहां जाएगा? तुम चुप होके बैठो। भगवान् की इच्छा हुई तो यहां तुम उससे बुरे न रहोगे।

यहां से उठकर भोला ने होरी के पास जाकर अपना दुखड़ा रोया। होरी ने अपनी बीती सुनाई–लड़कों को आजकल कुछ न पूछो भोला भाई। मर-मरकर पालो, जवान हों, तो दुसमन हो जायं। मेरे ही गोबर को देखो। मां से लड़कर गया, और सालों हो गए। न चिट्ठी न पत्तर। उसके लेखे तो मां-बाप मर गए। बिटिया का विवाह सिर पर है, लेकिन उसमें कोई मतलब नहीं। खेत रेहन रखकर दो सौ रुपये लिए हैं। इज्जत-आबरू का निबाह तो करना ही होगा।

कामता ने बाप को निकाल बाहर तो किया, लेकिन अब उसे मालूम होने लगा कि बुड्ढा कितना कामकाजी आदमी था। सबेरे उठकर सानी-पानी करना, दूध दुहना, फिर दूध लेकर बाजार जाना, वहां से आकर फिर सानी-पानी करना, फिर दूध दुहना, एक पखवारे में उसका हुलिया बिगड़ गया। स्त्री-पुरुष में लड़ाई हुई। स्त्री ने कहा--मैं जान देने के लिए तुम्हारे घर नहीं आई हूं। मेरी रोटी तुम्हें भारी हों, तो मैं अपने घर चली जाऊं। कामता डरा, यह कहीं चली जाए तो रोटी का ठिकाना भी न रहे, अपने हाथ से ठोकना पड़े। आखिर एक नौकर रखा, लेकिन उससे काम न चला। नौकर खली-भूसा चुरा-चुराकर बेचने लगा। उसे अलग किया। फिर स्त्री पुरुष में लड़ाई हुई। स्त्री रूठकर मैके चली गई। कामता के हाथ-पांव फूल गए। हारकर भोला के पास आया और चिरौरी करने लगा–दादा, मुझसे जो कुछ भूल-चूक हुई हो, क्षमा करो। अब चलकर घर संभालो, जैसे तुम रखोगे, वैसे ही रहूंगा।

भोला को यहां मजूरों की तरह रहना अखर रहा था। पहले महीने-दो-महीने उसकी जो खातिर हुई, वह अब न थी। नोखेराम कभी-कभी उससे चिलम भरने या चारपाई बिछाने को भी कहते थे। तब बेचारा भोला जहर का घूंट पीकर रह जाता था। अपने घर में लड़ाई-दंगा भी हो, तो किसी की टहल तो न करनी पड़ेगी।

उसकी स्त्री नोहरी ने यह प्रस्ताव सुना तो, ऐंठकर बोली--जहां से लात खाकर आए वहां फिर जाओगे? तुम्हें लाज नहीं आती।

भोला ने कहा–तो यहीं कौन सिंहासन पर बैठा हुआ हूं?

नोहरी ने मटककर कहा–तुम्हें जाना हो तो जाओ, मैं नहीं जाती।

भोला जानता था, नोहरी विरोध करेगी। इसका कारण भी वह कुछ-कुछ समझता था, कुछ देखता भी था, उसके यहां से भागने का एक कारण यह भी था। यहां उसकी कोई बात न पूछता था, पर नोहरी की बड़ी खातिर होती थी। प्यादे और शहने तक उसका दबाव मानते थे। उसका जवाब सुनकर भोला को क्रोध आया, लेकिन करता क्या? नोहरी को छोड़कर चले जाने का साहस उसमें होता, तो नोहरी भी झख मारकर उसके पीछे-पीछे चली जाती। अकेले उसे यहां अपने आश्रय में रखने की हिम्मत नोखेराम में न थी। वह टट्टी की आड़ से शिकार

खेलने वाले जीव थे, मगर नोहरी भोला के स्वभाव से परिचित हो चुकी थी।

भोला मिन्नत करके बोला–देख नोहरी, दिक मत कर। अब तो वहां बहुएं भी नहीं हैं। तेरे ही हाथ में सब कुछ रहेगा। यहां मजूरी करने से बिरादरी में कितनी बदनामी हो रही है, यह सोच।

नोहरी ने ठेंगा दिखाकर कहा–तुम्हें जाना है जाओ, मैं तुम्हें रोक तो नहीं रही हूं। तुम्हें बेटे की लातें प्यारी लगती होंगी, मुझे नहीं लगतीं। मैं अपनी मजदूरी में मगन हूं।

भोला को रहना पड़ा और कामता अपनी स्त्री की खुशामद करके उसे मना लाया। इधर नोहरी के विषय में कनबतियां होती रहीं–नोहरी ने आज गुलाबी साड़ी पहनी है। अब क्या पूछना है, चाहे रोज एक साड़ी पहने। सैयां भये कोतवाल, अब डर काहे का। भोला की आंखें फूट गईं हैं क्या?

सोभा बड़ा हंसोड़ था। सारे गांव का विदूषक, बल्कि नारद। हर एक बात की टोह लगाता रहता था। एक दिन नोहरी उसे घर में मिल गई। कुछ हंसी कर बैठा। नोहरी ने नोखेराम से जड़ दिया। सोभा की चौपाल में तलबी हुई और ऐसी डांट पड़ी कि उम्र-भर न भूलेगा।

एक दिन लाला पटेश्वरीप्रसाद की शामत आ गई। गर्मियों के दिन थे। लाला बगीचे में आम तुड़वा रहे थे। नोहरी बनी-ठनी उधर से निकली। लाला ने पुकारा- नोहरी रानी, इधर आओ, थोड़े से आम लेती जाओ, बड़े मीठे हैं।

नोहरी को भ्रम हुआ, लाला मेरा उपहास कर रहे हैं। उसे अब घमंड होने लगा था। वह चाहती थी, लोग उसे जमींदारिन समझें और उसका सम्मान करें। घमंडी आदमी प्राय: शक्की हुआ करता है। और जब मन में चोर हो, तो शक्कीपन और भी बढ़ जाता है। वह मेरी ओर देखकर क्यों हंसा? सब लोग मुझे देखकर जलते क्यों हैं? मैं किसी से कुछ मांगने नहीं जाती। कौन बड़ी सतवंती है। जरा मेरे सामने आए, तो देखूं। इतने दिनों में नोहरी गांव के गुप्त रहस्यों से परिचित हो चुकी थी। यही लाला कहारिन को रखे हुए हैं और मुझे हंसते हैं। इन्हें कोई कुछ नहीं कहता। बड़े आदमी हैं न! नोहरी गरीब है, जात की हेठी है, इसलिए सभी उसका उपहास करते हैं। और जैसा बाप है, वैसा ही बेटा। इन्हीं का रमेसरी तो सिलिया के पीछे पागल बना फिरता है। चमारियों पर तो गिद्ध की तरह टूटते हैं, उस पर दावा है कि हम ऊंचे हैं।

उसने वहीं खड़े होकर कहा –तुम दानी कब से हो गए लाला! पाओ तो दूसरों की थाली की रोटी उड़ा जाओ। आज बड़े आमवाले हुए हैं। मुझसे छेड़ की तो अच्छा न होगा, कहे देती

ओ हो! इस अहीरिन का इतना मिजाज। नोखेराम को क्या फांस लिया, समझती है, सारी दुनिया पर उसका राज है। बोले–तू तो ऐसी तिनक रही है नोहरी, जैसे अब किसी को गांव में रहने न देगी। जरा जबान संभालकर बातें किया कर, इतनी जल्द अपने को न भूल जा।

'तो क्या तुम्हारे द्वार कभी भीख मांगने आई थी?'

'नोखेराम ने छांह न दी होती, तो भीख भी मांगती।'

नोहरी को लाल मिर्च-सा लगा। जो कुछ मुंह में आया, बका–दाढ़ीजार, लंपट, मुंह-झौंसा और जाने क्या-क्या कहा और उसी क्रोध में भरी हुई कोठरी में गई और अपने बरतन-भांड़े निकाल-निकालकर बाहर रखने लगी।

नोखेराम ने सुना तो घबराए हुए आए और पूछा–यह क्या कर रही है नोहरी, कपड़े-लत्ते क्यों निकाल रही है? किसी ने कुछ कहा है क्या?

नोहरी मर्दों को नचाने की कला जानती थी। अपने जीवन में उसने यही विद्या सीखी थी। नोखेराम पढ़े-लिखे आदमी थे। कानून भी जानते थे। धर्म की पुस्तकें भी बहुत पढ़ी थीं। बड़े-बड़े वकीलों, बैरिस्टरों की जूतियां सीधी की थीं, पर इस मूर्ख नोहरी के हाथ का खिलौना बने हुए थे। भौंहें सिकोड़कर बोली—समय का फेर है, यहां आ गई, लेकिन अपनी आबरू न गवांऊंगी।

ब्राह्मण सतेज हो उठा। मूंछें खड़ी करके बोला—तेरी ओर जो ताके, उसकी आंखें निकाल लूं।

नोहरी ने लोहे को लाल करके घन जमाया—लाला पटेसरी जब देखो मुझसे बेबात की बात किया करते हैं। मैं हरजाई थोड़े ही हूं कि कोई मुझे पैसे दिखाए। गांव-भर में सभी औरतें तो हैं, कोई उनसे नहीं बोलता। जिसे देखो, मुझी को छेड़ता है।

नोखेराम के सिर पर भूत सवार हो गया। अपना मोटा डंडा उठाया और आंधी की तरह हरहराते हुए बाग में पहुंचकर लगे ललकारने—आ जा बड़ा मर्द है तो। मूंछें उखाड़ लूंगा, खोदकर गाड़ दूंगा ! निकल आ सामने। अगर फिर कभी नोहरी को छेड़ा तो खून पी जाऊंगा। सारी पटवारगिरी निकाल दूंगा। जैसा खुद है, वैसा ही दूसरों को समझता है। तू है किस घमंड में?

लाला पटेश्वरी सिर झुकाए, दम साधे जड़वत् खड़े थे। जरा भी जबान खोली और शामत आ गई। उनका इतना अपमान जीवन में कभी न हुआ था। एक बार लोगों ने उन्हें ताल के किनारे रात को घेरकर खूब पीटा था, लेकिन गांव में उसकी किसी को खबर न हुई थी। किसी के पास कोई प्रमाण न था। लेकिन आज तो सारे गांव के सामने उनकी इज्जत उतर गई। कल जो औरत गांव में आश्रय मांगती आई थी, आज सारे गांव पर उसका आतंक था। अब किसकी हिम्मत है, जो उसे छेड़ सके? जब पटेश्वरी कुछ नहीं कर सके, तो दूसरों की बिसात ही क्या !

अब नोहरी गांव की रानी थी। उसे आते देखकर किसान लोग उसके रास्ते से हट जाते थे। यह खुला हुआ रहस्य था कि उसकी थोड़ी-सी पूजा करके नोखेराम से बहुत काम निकल सकता है। किसी को बंटवारा कराना हो, लगान के लिए मुहलत मांगनी हो, मकान बनाने के लिए जमीन की जरूरत हो, नोहरी की पूजा किए बगैर उसका काम सिद्ध नहीं हो सकता। कभी कभी वह अच्छे-अच्छे असामियों को डांट देती थी। असामी ही नहीं अब कारकुन साहब पर भी रोब जमाने लगी थी।

भोला उसका आश्रित बनकर न रहना चाहता था। औरत की कमाई खाने से ज्यादा अधम उसकी दृष्टि में दूसरा न था। उसे कुल तीन रुपये माहवार मिलते थे, वह भी उसके हाथ न लगते। नोहरी ऊपर ही ऊपर उड़ा लेती। उसे तमाखू पीने को धेला मयस्सर नहीं, और नोहरी दो आने रोज के पान खा जाती थी। जिसे देखो, वही उन पर रोब जमाता था। प्यादे उससे चिलम भरवाते, लकड़ी कटवाते, बेचारा दिन-भर का हारा-थका आता और द्वार पर पेड़ के नीचे झिलंगी खाट पर पड़ा रहता। कोई एक लुटिया पानी देने वाला भी नहीं। दोपहर की बासी रोटियां रात को खानी पड़तीं और वह भी नमक या पानी के साथ।

आखिर हारकर उसने घर जाकर कामता के साथ रहने का निश्चय किया। कुछ न होगा, एक टुकड़ा रोटी तो मिल ही जायगी, अपना घर तो है।

नोहरी बोली—मैं वहां किसी की गुलामी करने नहीं जाऊंगी।

भोला ने जी कड़ा करके कहा—तुम्हें जाने को तो मैं नहीं कहता। मैं तो अपने को कहता

हूं।

'तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे? कहते लाज नहीं आती?'

'लाज तो घोलकर पी गया।'

'लेकिन मैंने तो अपनी लाज नहीं पी। तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते।'

'तू अपने मन की है, तो मैं तेरी गुलामी क्यों करूं?'

'पंचायत करके मुंह में कालिख लगा दूंगी, इतना समझ लेना।'

'क्या अभी कुछ कम कालिख लगी है? क्या अब भी मुझे धोखे में रखना चाहती है?'

'तुम तो ऐसा ताव दिखा रहे हो, जैसे मुझे रोज गहने ही तो गढ़वाते हो। तो यहां नोहरी किसी का ताव सहने वाली नहीं है।'

भोला झल्लाकर उठे और सिरहाने से लकड़ी उठाकर चले कि नोहरी ने लपककर उनका पहुंचा पकड़ लिया। उसके बलिष्ठ पंजों से निकलना भोला के लिए मुश्किल था। चुपके से कैदी की तरह बैठ गए। एक जमाना था, जब वह औरतों को अंगुलियों पर नचाया करते थे, आज वह एक औरत के करपाश में बंधे हुए हैं और किसी तरह निकल नहीं सकते। हाथ छुड़ाने की कोशिश करके वह परदा नहीं खोलना चाहते। अपनी सीमा का अनुमान उन्हें हो गया है। मगर वह क्यों उसमें निडर होकर नहीं कह देते कि तू मेरे काम की नहीं है, मैं तुझे त्यागता हूं। पंचायत की धमकी देती है। पंचायत क्या कोई हौवा है, अगर तुझे पंचायत का डर नहीं, तो मैं क्यों पंचायत से डरूं?

लेकिन यह भाव शब्दों में आने का साहस न कर सकता था। नोहरी ने जैसे उन पर कोई वशीकरण डाल दिया हो।

छब्बीस

लाला पटेश्वरी पटवारी-समुदाय के सद्‌गुणों के साक्षात् अवतार थे। वह यह न देख सकते थे कि कोई असामी अपने दूसरे भाई की इंच भर भी जमीन दबा ले। न वह यही देख सकते थे कि असामी किसी महाजन के रुपये दबा ले। गांव के समस्त प्राणियों के हितों की रक्षा करना उनका परम धर्म था। समझौते या मेल-जोल में उनका विश्वास न था, यह तो निर्जीविता के लक्षण हैं। वह तो संघर्ष के उपासक थे, जो जीवन का लक्षण है। आए दिन इस जीवन को उत्तेजना देने का प्रयास करते रहते थे। एक-न-एक फुलझड़ी छोड़ते रहते थे। मंगरू साह पर इन दिनों उनकी विशेष कृपा-दृष्टि थी। मंगरू साह गांव का सबसे धनी आदमी था, पर स्थानीय राजनीति में बिल्कुल भाग न लेता था। रोब या अधिकार की लालसा उसे न थी। मकान भी उसका गांव के बाहर था, जहां उसने एक बाग, एक और कुआं और एक छोटा-सा शिव-मंदिर बनवा लिया था। बाल-बच्चा कोई न था, इसलिए लेन-देन भी कम कर दिया था और अधिकतर पूजा-पाठ में ही लगा रहता था। कितने ही असामियों ने उसके रुपये हजम कर लिए थे, पर उसने किसी पर न नालिश-फरियाद न की। होरी पर भी उसके सूद-ब्याज मिलाकर कोई डेढ़ सौ हो गए थे, मगर न होरी को ऋण चुकाने की कोई चिंता थी और न उसे वसूल करने की। दो-

चार बार उसने तकाजा किया, घुड़का-डांटा भी, मगर होरी की दशा देखकर चुप हो बैठा। अबकी संयोग से होरी की ऊख गांव भर के ऊपर थी। कुछ नहीं तो उसके दो-ढाई सौ सीधे हो जाएंगे, ऐसा लोगों का अनुमान था। पटेश्वरीप्रसाद ने मंगरू को सुझाया कि अगर इस वक्त होरी पर दावा कर दिया जाय, तो सब रुपये वसूल हो जायं। मंगरू इतना दयालु नहीं, जितना आलसी था। झंझट में पड़ना न चाहता था, मगर जब पटेश्वरी ने जिम्मा लिया कि उसे एक दिन भी कचहरी न जाना पड़ेगा, न कोई दूसरा कष्ट होगा, बैठे-बिठाए उसकी डिगरी हो जाएगी, तो उसने नालिश करने की अनुमति दे दी, और अदालत-खर्च के लिए रुपये भी दे दिए।

होरी को खबर न थी कि क्या खिचड़ी पक रही है। कब दावा दायर हुआ, कब डिगरी हुई, उसे बिल्कुल पता न चला। कुर्कअमीन उसकी ऊख नीलाम करने आया, तब उसे मालूम हुआ। सारा गांव खेत के किनारे जमा हो गया। होरी मंगरू साह के पास दौड़ा और धनिया पटेश्वरी को गालियां देने लगी। उसकी सहज बुद्धि ने बता दिया कि पटेश्वरी ही की कारस्तानी है, मगर मंगरू साह पूजा पर थे, मिल न सके और धनिया गालियों की वर्षा करके भी पटेश्वरी का कुछ बिगाड़ न सकी। उध र ऊख डेढ़ सौ रुपये में नीलाम हो गई और बोली भी हो गई मंगरू साह ही के नाम। कोई दूसरा आदमी न बोल सका। दातादीन में भी धनिया की गालियां सुनने का साहस न था।

धनिया ने होरी को उत्तेजित करके कहा—बैठे क्या हो, जाकर पटवारी से पूछते क्यों नहीं. यही धरम है तुम्हारा गांव-घर के आदमियों के साथ?

होरी ने दीनता से कहा—पूछने के लिए तूने मुंह भी रखा हो। तेरी गालियां क्या उन्होंने न सुनी होंगी?

'जो गाली खाने का काम करेगा, उसे गालियां मिलेंगी ही।'

'तू गालियां भी देगी और भाई-चारा भी निभाएगी।'

'देखूंगी, मेरे खेत के नगीच कौन जाता है?'

'मिल वाले आकर काट ले जायंगे, तू क्या करेगी, और मैं क्या करूंगा? गालियां देकर अपनी जीभ की खुजली चाहे मिटा ले।'

'मेरे जीते-जी कोई मेरा खेत काट ले जायगा?'

'हां, तेरे और मेरे जीते-जी। सारा गांव मिलकर भी उसे नहीं रोक सकता। अब वह चीज मेरी नहीं, मंगरू साह की है।'

'मंगरू साह ने मर-मरकर जेठ की दुपहरी में सिंचाई और गोड़ाई की थी?'

'वह सब तूने किया, मगर अब वह चीज, मंगरू साह की है। हम उनके करजदार नहीं हैं?'

ऊख तो गई, लेकिन उसके साथ ही एक नई समस्या आ पड़ी। दुलारी इसी ऊख पर रुपये देने को तैयार हुई थी। अब वह किस जमानत पर रुपये दे? अभी उसके पहले ही के दो सौ रुपये पड़े हुए थे। सोचा था, ऊख से पुराने रुपये मिल जाएंगे, तो नया हिसाब चलने लगेगा। उसकी नजर में होरी की साख दो सौ तक थी। इससे ज्यादा देना जोखिम था। सहालग सिर पर था। तिथि निश्चित हो चुकी थी। गौरी महतो ने सारी तैयारियां कर ली होंगी। अब विवाह का टलना असंभव था। होरी को ऐसा क्रोध आता था कि जाकर दुलारी का गला दबा दे। जितनी चिरौरी-बिनती हो सकती थी, वह कर चुका, मगर वह पत्थर की देवी जरा भी न पसीजी। उसने चलते-चलते हाथ बांधकर कहा—दुलारी, मैं तुम्हारे रुपये लेकर भाग न जाऊंगा। न इतनी जल्द

मरा ही जाता हूं। खेत हैं, पेड़-पालो हैं, घर है, जवान बेटा है। तुम्हारे रुपये मारे न जायंगे, मेरी इज्जत जा रही है, इसे संभालो। मगर दुलारी ने दया को व्यापार में मिलाना स्वीकार न किया। अगर व्यापार को वह दया का रूप दे सकती, तो उसे कोई आपत्ति न होती। पर दया को व्यापार का रूप देना उसने न सीखा था।

होरी ने घर आकर धनिया से कहा–अब?

धनिया ने उसी पर दिल का गुबार निकाला -यही तो तुम चाहते थे।

होरी ने जख्मी आंखों से देखा–मेरा ही दोस है?

'किसी का दोस हो, हुई तुम्हारे मन की।'

'तेरी इच्छा है कि जमीन रेहन रख दूं?'

'जमीन रेहन रख दोगे, तो करोगे क्या?'

'मजूरी।'

मगर जमीन दोनों को एक-सी प्यारी थी। उसी पर तो उनकी इज्जत और आबरू अवलंबित थी। जिसके पास जमीन नहीं, वह गृहस्थ नहीं, मजूर है।

होरी ने कुछ जवाब न पाकर पूछा–तो क्या कहती है?

धनिया ने आहत कंठ से कहा- कहना क्या है। गौरी बारात लेकर आएंगे। एक जून खिला देना। सबेरे बेटी विदा कर देना। दुनिया हंसेगी, हंस ले। भगवान् की यही इच्छा है, कि हमारी नाक कटे, मुंह में कालिख लगे तो हम क्या करेंगे।

सहसा नोहरी चुंदरी पहने सामने से जाती हुई दिखाई दी। होरी को देखते ही उसने जरा-सा घूंघट सा निकाल लिया। उससे समधी का नाता मानती थी।

धनिया से उसका परिचय हो चुका था। उसने पुकारा–आज किधर चलीं समधिन? आओ, बैठो।

नोहरी ने दिग्विजय कर लिया था और अब जनमत को अपने पक्ष में बटोर लेने का प्रयास कर रही थी। आकर खड़ी हो गई।

धनिया ने उसे सिर से पांव तक आलोचना की आंखों से देखकर कहा–आज इधर कैसे भूल पड़ीं?

नोहरी ने कातर स्वर में कहा -ऐसे ही तुम लोगों से मिलने चली आई। बिटिया का ब्याह कब तक है?

धनिया संदिग्ध भाव से बोली–भगवान् के अधीन है, जब हो जाय।

'मैंने तो सुना, इसी सहालग में होगा। तिथि ठीक हो गई है?'

'हां, तिथि तो ठीक हो गई है।'

'मुझे भी नेवता देना।'

'तुम्हारी तो लड़की है, नेवता कैसा?'

'दहेज का सामान तो मंगवा लिया होगा? जरा मैं भी देखूं।'

धनिया असमंजस में पड़ी, क्या कहे। होरी ने उसे संभाला– अभी तो कोई सामान नहीं मंगवाया है, और सामान क्या करना है, कुस-कन्या तो देना है।

नोहरी ने अविश्वास भरी आंखों से देखा - कुस-कन्या क्यों दोगे महतो, पहली बेटी है, दिल खोलकर करो।

होरी हंसा, मानो कह रहा हो, तुम्हें चारों ओर हरा दिखाई देता होगा, यहां तो सूखा ही पड़ा हुआ है।

'रुपये-पैसे की तंगी है, क्या दिल खोलकर करूं। तुमसे कौन परदा है?'

'बेटा कमाता है, तुम कमाते हो, फिर भी रुपये-पैसे की तंगी? किसे बिस्वास आएगा?'

'बेटा ही लायक होता, तो फिर काहे का रोना था। चिट्ठी-पत्तर तक भेजता नहीं, रुपये क्या भेजेगा? यह दूसरा साल है, एक चिट्ठी नहीं।'

इतने में सोना बैलों के चारे के लिए हरियाली का एक गट्ठर सिर पर लिए, यौवन को अपने अंचल से चुराती, बालिका-सी सरल, आई और गट्ठा वहीं पटककर अंदर चली गई।

नोहरी ने कहा—लड़की तो खूब सयानी हो गई है।

धनिया बोली—लड़की की बाढ़ रेंड़ की बाढ़ है। है अभी कै दिन की।

'बर तो ठीक हो गया है न?'

'हां, बर तो ठीक है। रुपये का बंदोबस्त हो गया, तो इसी महीने में ब्याह कर देंगे।'

नोहरी दिल की ओछी थी। इधर उसने जो थोड़े-से रुपये जोड़े थे, वे उसके पेट में उछल रहे थे। अगर वह सोना के ब्याह के लिए कुछ रुपये दे दे, तो कितना यश मिलेगा। सारे गांव में उसकी चर्चा हो जायगी। लोग चकित होकर कहेंगे, नोहरी ने इतने रुपये दिए। बड़ी देवी है। होरी और धनिया दोनों घर-घर उसका बखान करते फिरेंगे। गांव में उसका मान-सम्मान कितना बढ़ जायगा। वह ऊंगली दिखाने वालों का मुंह सी देगी। फिर किसकी हिम्मत है, जो उस पर हंसे, या उस पर आवाजें कसे? अभी सारा गांव उसका दुश्मन है। तब सारा गांव उसका हितैषी हो जाएगा। इस कल्पना से उसकी मुद्रा खिल गई।

'थोड़े-बहुत से काम चलता हो, तो मुझसे ले लो, जब हाथ में रुपये आ जायं तो दे देना।'

होरी और धनिया दोनों ही ने उसकी ओर देखा। नहीं, नोहरी दिल्लगी नहीं कर रही है। दोनों की आंखों में विस्मय था, कृतज्ञता थी, संदेह था और लज्जा थी। नोहरी उतनी बुरी नहीं है, जितना लोग समझते हैं।

नोहरी ने फिर कहा—तुम्हारी और हमारी इज्जत एक है। तुम्हारी हंसी हो तो क्या मेरी हंसी न होगी? कैसे भी हुआ हो, पर अब तो तुम हमारे समधी हो।

होरी ने सकुचाते हुए कहा—तुम्हारे रुपये तो घर में ही हैं, जब काम पड़ेगा, ले लेंगे। आदमी अपनों ही का भरोसा तो करता है, मगर ऊपर से इंतजाम हो जाय, तो घर के रुपये क्यों छुए।

धनिया ने अनुमोदन किया—हां, और क्या।

नोहरी ने अपनापन जताया—जब घर में रुपये हैं, तो बाहर वालों के सामने हाथ क्या फैलाओ? सूद भी देना पड़ेगा, उस पर इस्टाम लिखो, गवाही कराओ, दस्तूरी दो, खुसामद करो। हां, मेरे रुपये में छूत लगी हो, तो दूसरी बात है।

होरी ने संभाला—नहीं, नहीं नोहरी, जब घर में काम चल जायगा, तो बाहर क्यों हाथ फैलाएंगे, लेकिन आपस वाली बात है। खेती-बारी का भरोसा नहीं। तुम्हें जल्दी कोई काम पड़ा और हम रुपये न जुटा सके, तो तुम्हें भी बुरा लगेगा और हमारी जान भी संकट में पड़ेगी। इससे कहता था। नहीं, लड़की तो तुम्हारी है।

'मुझे अभी रुपये की ऐसी जल्दी नहीं है।'

'तो तुम्हीं से ले लेंगे। कन्यादान का फल भी क्यों बाहर जाए?'

'कितने रुपये चाहिए?'

'तुम कितने दे सकोगी?'

'सौ में काम चल जायगा?'

होरी को लालच आया। भगवान् ने छप्पर फाड़कर रुपये दिए हैं, तो जितना ले सके, उतना क्यों न ले।

'सौ में भी चल जाएगा। पांच सौ में भी चल जाएगा। जैसा हौसला हो।'

'मेरे पास कुल दो सौ रुपये हैं, वह मैं दे दूंगी।'

'तो इतने में बड़ी खुसफेली से काम चल जायगा। अनाज घर में है, मगर ठकुराइन, आज तुमसे कहता हूं, मैं तुम्हें ऐसी लच्छमी न समझता था। इस जमाने में कौन किसकी मदद करता है, और किसके पास है। तुमने मुझे डूबने से बचा लिया।'

दिया-बत्ती का समय आ गया था। ठंडक पड़ने लगी थी। जमीन ने नीली चादर ओढ़ ली थी। धनिया अंदर जाकर अंगीठी लाई। सब तापने लगे। पुआल के प्रकाश में छबीली, रंगीली, कुलटा नोहरी उनके सामने वरदान-सी बैठी थी। इस समय उसकी उन आंखों में कितनी सहृदयता थी, कपोलों पर कितनी लज्जा, होंठों पर कितनी सत्प्रेरणा।

कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करके नोहरी उठ खड़ी हुई और यह कहती हुई घर चली-अब देर हो रही है। कल तुम आकर रुपये ले लेना महतो।

'चलो, म तुम्हें पहुंचा दूं।'

'नहीं-नहीं, तुम बैठो, मैं चली जाऊंगी।'

'जी तो चाहता है, तुम्हें कंधे पर बैठाकर पहुंचाऊं।'

नोखेराम की चौपाल गांव के दूसरे सिरे पर थी, और बाहर-बाहर जाने का रास्ता साफ था। दोनों उसी रास्ते से चले। अब चारों ओर सन्नाटा था।

नोहरी ने कहा-तनिक समझा देते रावत को। क्यों सबसे लड़ाई किया करते हैं। जब इन्हीं लोगों के बीच में रहना है, तो ऐसे रहना चाहिए न कि चार आदमी अपने हो जायं। और इनका हाल यह है कि सबसे लड़ाई, सबसे झगड़ा। जब तुम मुझे परदे में नहीं रख सकते मुझे दूसरों की मजूरी करनी पड़ती है, तो यह कैसे निभ सकता है कि मैं न किसी से हंसूं, न बोलूं, न कोई मेरी ओर ताके, न हंसे। यह सब तो परदे में ही हो सकता है। पूछो, कोई मेरी ओर ताकता या घूरता है तो मैं क्या करूं? उसकी आंखें तो नहीं फोड़ सकतीं। फिर मेल-मुहब्बत से आदमी के सौ काम निकलते हैं। जैसा समय दखो, वैसा व्यवहार करो। तुम्हारे घर हाथी झूमता था, तो अब वह तुम्हारे किस काम का? अब तो तुम तीन रुपये के मजूर हो। मेरे घर सौ भैंसें लगती थीं, लेकिन अब तो मजूरिन हूं, मगर उनकी समझ में कोई बात आती ही नहीं। कभी लड़कों के साथ रहने की सोचते हैं, कभी लखनऊ जाकर रहने की सोचते हैं। नाक में दम कर रखा है मेरे।

होरी ने ठकुरसुहाती की-यह भोला की सरासर नादानी है। बूढ़े हुए, अब तो उन्हें समझ आनी चाहिए। मैं समझा दूंगा।

'तो सबेरे आ जाना, रुपये दे दूंगी।'

'कुछ लिखा-पढ़ी....।'

'तुम मेरे रुपये हजम न करोगे, मैं जानती हूं।'

उसका घर आ गया था। वह अंदर चली गई। होरी घर लौटा।

सत्ताईस

गोबर को शहर आने पर मालूम हुआ कि जिस अड्डे पर वह अपना खोंचा लेकर बैठता था, वहां एक दूसरा खोंचे वाला बैठने लगा है और गाहक अब गोबर को भूल गए हैं। वह घर भी अब उसे पिंजरे-सा लगता था। झुनिया उसमें अकेली बैठी रोया करती। लड़का दिन-भर आंगन में या द्वार पर खेलने का आदी था। यहां उसके खेलने को कोई जगह न थी। कहां जाय? द्वार पर मुश्किल से एक गज का रास्ता था। दुर्गंध उड़ा करती थी। गर्मी में कहीं बाहर लेटने-बैठने को जगह नहीं। लड़का मां को एक क्षण के लिए न छोड़ता था। और जब कुछ खेलने को न हो, तो कुछ खाने और दूध पीने के सिवा वह और क्या करे? घर पर भी कभी धनिया खेलाती, कभी रूपा, कभी सोना, कभी होरी, कभी पुनिया। यहां अकेली झुनिया थी और उसे घर का सारा काम करना पड़ता था।

और गोबर जवानी के नशे में मस्त था। उसकी अतृप्त लालसाएं विषय-भोग के सागर में डूब जाना चाहती थीं। किसी काम में उसका मन न लगता। खोंचा लेकर जाता, तो घंटे-भर ही में लौट आता। मनोरंजन का कोई दूसरा सामान न था। पड़ोस के मजूर और इक्केवान रात-रात भर ताश और जुआ खेलते थे। पहले वह भी खूब खेलता था, मगर अब उसके लिए केवल मनोरंजन था, झुनिया के साथ हास-विलास। थोड़े ही दिनों में झुनिया इस जीवन से ऊब गई। वह चाहती थी, कहीं एकांत में जाकर बैठे, खूब निश्चिंत होकर लेटे- सोए, मगर वह एकांत कहीं न मिलता। उसे अब गोबर पर गुस्सा आता। उसने शहर के जीवन का कितना मोहक चित्र खींचा था, और यहां इस काल-कोठरी के सिवा और कुछ नहीं। बालक से भी उसे चिढ़ होती थी। कभी-कभी वह उसे मारकर निकाल देती और अंदर से किवाड़ बंद कर लेती। बालक रोते-रोते बेदम हो जाता।

उस पर विपत्ति यह कि उसे दूसरा बच्चा पैदा होने वाला था। कोई आगे न पीछे। अक्सर सिर में दर्द हुआ करता। खाने से अरुचि हो गई थी। ऐसी तंद्रा होती थी कि कोने में चुपचाप पड़ी रहे। कोई उससे न बोले-चाले, मगर यहां गोबर का निष्ठुर प्रेम स्वागत के लिए द्वार खटखटाता रहता था। स्तन में दूध नाम को नहीं, लेकिन लल्लू छाती पर सवार रहता था। देह के साथ उसका मन भी दुर्बल हो गया। वह जो संकल्प करती, उसे थोड़े-से आग्रह पर तोड़ देती। वह लेटी रहती और लल्लू आकर जबरदस्ती उसकी छाती पर बैठ जाता और स्तन मुंह में लेकर चबाने लगता। वह अब दो साल का हो गया था। बड़े तेज दांत निकल आए थे। मुंह में दूध न जाता, तो वह क्रोध में आकर स्तन में दांत काट लेता, लेकिन झुनिया में अब इतनी शक्ति भी न थी कि उसे छाती पर से ढकेल दे। उसे हरदम मौत सामने खड़ी नजर आती। पति और पुत्र किसी से भी उसे स्नेह न था। सभी अपने मतलब के यार हैं। बरसात के दिनों में जब लल्लू को दस्त आने लगे तो उसने दूध पीना छोड़ दिया, तो झुनिया को सिर से एक विपत्ति टल जाने का अनुभव हुआ, लेकिन जब एक सप्ताह के बाद बालक मर गया, तो उसकी स्मृति पुत्र-स्नेह से सजीव होकर उसे रुलाने लगी।

और जब गोबर बालक के मरने के एक ही सप्ताह बाद फिर आग्रह करने लगा, तो उसने क्रोध में जलकर कहा—तुम कितने पशु हो!

झुनिया को अब लल्लू की स्मृति लल्लू से भी कहीं प्रिय थी। लल्लू जब तक सामने

था, वह उससे जितना सुख पाती थी, उससे कहीं ज्यादा कष्ट पाती थी। अब लल्लू उसके मन में आ बैठा था, शांत, स्थिर, सुशील, सुहास। उसकी कल्पना में अब वेदनामय आनंद था, जिसमें प्रत्यक्ष की काली छाया न थी। बाहर वाला लल्लू उसके भीतर वाले लल्लू का प्रतिबिंब मात्र था। प्रतिबिंब सामने न था, जो असत्य था, अस्थिर था। सत्य रूप तो उसके भीतर था, उसकी आशाओं और शुभेच्छाओं से सजीव। दूध की जगह वह उसे अपना रक्त पिला-पिलाकर पाल रही थी। उसे अब वह बंद कोठरी, और वह दुर्गंधमयी वायु और वह दोनों जून धुएं में जलना, इन बातों का मानो ज्ञान ही न रहा। वह स्मृति उसके भीतर बैठी हुई जैसे उसे शक्ति प्रदान करती रहती। जीते-जी जो उसके जीवन का भार था, मरकर उसके प्राणों में समा गया था। उसकी सारी ममता अंदर जाकर बाहर से उदासीन हो गई। गोबर देर में आता है या जल्द, रुचि से भोजन करता है या नहीं, प्रसन्न है या उदास, इसकी अब उसे बिल्कुल चिंता न थी। गोबर क्या कमाता है और कैसे खर्च करता है, इसकी भी उसे परवा न थी। उसका जीवन जो कुछ था, भीतर था, बाहर वह केवल निर्जीव यंत्र थी।

उसके शोक में भाग लेकर, उसके अंतर्जीवन में पैठकर, गोबर उसके समीप जा सकता था, उसके जीवन का अंग बन सकता था, पर वह उसके बाह्य जीवन के सूखे तट पर आकर ही प्यासा लौट जाता था।

एक दिन उसने रूखे स्वर में कहा—तो लल्लू के नाम को कब तक रोए जाएगी। चार-पांच महीने तो हो गए।

झुनिया ने ठंडी सांस लेकर कहा—तुम मेरा दु:ख नहीं समझ सकते। अपना काम देखो। मैं जैसी हूं, वैसी पड़ी रहने दो।

'तेरे रोते रहने से लल्लू लौट आएगा?'

झुनिया के पास कोई जवाब न था। वह उठकर पतीली में कचालू के लिए आलू उबालने लगी। गोबर को ऐसा पाषाण-हृदय उसने न समझा था।

इस बेदर्दी ने उसके लल्लू को उसके मन में और भी सजग कर दिया। लल्लू उसी का है, उसमें किसी का साझा नहीं, किसी का हिस्सा नहीं। अभी तक लल्लू किसी अंश में उसके हृदय के बाहर भी था, गोबर के हृदय में भी उसकी कुछ ज्योति थी। अब वह संपूर्ण रूप से उसका था।

गोबर ने खोंचे से निराश होकर शक्कर के मिल में नौकरी कर ली थी। मिस्टर खन्ना ने पहले मिल से प्रोत्साहित होकर हाल में यह दूसरा मिल खोल दिया था। गोबर को वहां बड़े सबेरे जाना पड़ता, और दिन-भर के बाद जब वह दिया-जले घर लौटता, तो उसकी देह में जरा भी जान न रहती थी। घर पर भी उसे इससे कम मेहनत न करनी पड़ती थी, लेकिन वहां उसे जरा भी थकन न होती थी। बीच-बीच में वह हंस-बोल भी लेता था। फिर उस खुले मैदान में, उन्मुक्त आकाश के नीचे, जैसे उसकी क्षति पूरी हो जाती थी। वहां उसकी देह चाहे जितना काम करे, मन स्वच्छंद रहता था। यहां देह की उतनी मेहनत न होने पर भी जैसे उस कोलाहल, उस गति और तूफानी शोर का उस पर बोझ-सा लदा रहता था। यह शंका भी बनी रहती थी कि न जाने कब डांट पड़ जाय। सभी श्रमिकों की यही दशा थी। सभी ताड़ी या शराब में अपनी दैहिक थकन और मानसिक अवसाद को डुबाया करते थे। गोबर को भी शराब का चस्का पड़ा। घर आता तो नशे में चूर, और पहर रात गए। और आकर कोई-न-कोई बहाना खोजकर झुनिया को गालियां देता, घर से निकालने लगता और कभी-कभी पीट भी देता।

झुनिया को अब यह शंका होने लगी कि वह रखेली है, इसी से उसका यह अपमान हो रहा है। ब्याहता होती, तो गोबर की मजाल थी कि उसके साथ यह बर्ताव करता। बिरादरी उसे दंड देती, हुक्का-पानी बंद कर देती। उसने कितनी बड़ी भूल की कि इस कपटी के साथ घर से निकल भागी। सारी दुनिया में हंसी भी हुई और हाथ कुछ न आया। वह गोबर को अपना दुश्मन समझने लगी। न उसके खाने-पीने की परवा करती, न अपने खाने-पीने की। जब गोबर उसे मारता, तो उसे ऐसा क्रोध आता कि गोबर का गला छुरे से रेत डाले। गर्भ ज्यों-ज्यों पूरा होता जाता है, उसकी चिंता बढ़ती जाती है। इस घर में तो उसकी मरन हो जायगी। कौन उसकी देखभाल करेगा, कौन उसे संभालेगा? और जो गोबर इसी तरह मारता-पीटता रहा, तब तो उसका जीवन नरक ही हो जायगा।

एक दिन वह बंबे पर पानी भरने गई, तो पड़ोस की एक स्त्री ने पूछा–कै महीने है रे?

झुनिया ने लजाकर कहा–क्या जाने दीदी, मैंने तो गिना-गिनाया नहीं है।

दोहरी देह की, काली-कलूटी, नाटी, कुरूपा, बड़े-बड़े स्तनों वाली स्त्री थी। उसका पति एक्का हांकता था और वह खुद लकड़ी की दुकान करती थी। झुनिया कई बार उसकी दुकान से लकड़ी लाई थी। इतना ही परिचय था।

मुस्कराकर बोली–मुझे तो जान पड़ता है, दिन पूरे हो गए हैं। आज ही कल में होगा। कोई दाई-वाई ठीक कर ली है?

झुनिया ने भयातुर स्वर में कहा–मैं तो यहां किसी को नहीं जानती।

'तेरा मर्दुआ कैसा है, जो कान में तेल डाले बैठा है?'

'उन्हें मेरी क्या फिकर!'

'हां, देख तो रही हूं। तुम तो सौर में बैठोगी, कोई करने-धरने वाला चाहिए कि नहीं? सास-ननद, देवरानी-जेठानी, कोई है कि नहीं? किसी को बुला लेना था।'

'मेरे लिए सब मर गए।'

वह पानी लाकर जूठे बरतन मांजने लगी, तो प्रसव की शंका से हृदय में धड़कनें हो रही थीं। सोचने लगी–कैसे क्या होगा भगवान्? उंह! यही तो होगा, मर जाऊंगी, अच्छा है, जंजाल से छूट जाऊंगी।

शाम को उसके पेट में दर्द होने लगा। समझ गई विपत्ति की घड़ी आ पहुंची। पेट को एक हाथ से पकड़े हुए पसीने से तर उसने चूल्हा जलाया, खिचड़ी डाली और दर्द से व्याकुल होकर वहीं जमीन पर लेट रही। कोई दस बजे रात को गोबर आया, ताड़ी की दुर्गंध उड़ाता हुआ। लटपटाती हुई जबान से ऊटपटांग बक रहा था–मुझे किसी की परवा नहीं है। जिसे सौ दफे गरज हो, रहे, नहीं चला जाय। मैं किसी का ताव नहीं सह सकता। अपने मां-बाप का ताव नहीं सहा, जिनने जनम दिया। तब दूसरों का ताव क्यों सहूं? जमादार आंखें दिखाता है। यहां किसी की धौंस सहने वाले नहीं हैं। लोगों ने पकड़ न लिया होता, तो खून पी जाता, खून! कल देखूंगा बचा को। फांसी ही तो होगी। दिखा दूंगा कि मर्द कैसे मरते हैं। हंसता हुआ, अकड़ता हुआ, मूंछों पर ताव देता हुआ फांसी के तख्ते पर जाऊं, तो सही। औरत की जात! कितनी बेवफा होती है। खिचड़ी डाल दी और टांग पसारकर सो रही। कोई खाय या न खाय, उसकी बला से। आप मजे से फुलके उड़ाती है, मेरे लिए खिचड़ी! अच्छा सता ले जितना सताते बने, तुझे भगवान् सताएंगे। जो न्याय करते हैं।

उसने झुनिया को जगाया नहीं। कुछ बोला भी नहीं। चुपके से खिचड़ी थाली में निकाली और दो-चार कौर निगलकर बरामदे में लेट रहा। पिछले पहर उसे सर्दी लगी। कोठरी से कंबल लेने गया तो झुनिया के कराहने की आवाज सुनी। नशा उतर चुका था। पूछा-कैसा जी है झुनिया। कहीं दरद है क्या।

'हां, पेट में जोर से दरद हो रहा है?'

'तूने पहले क्यों नहीं कहा? अब इस बखत कहां जाऊं?'

'किससे कहती?'

'मैं मर गया था क्या?'

'तुम्हें मेरे मरने-जीने की क्या चिंता?'

गोबर घबराया, कहां दाई खोजने जाय? इस वक्त वह आने ही क्यों लगी? घर में कुछ है भी तो नहीं। चुड़ैल ने पहले बता दिया होता तो किसी से दो-चार रुपये मांग लाता। इन्हीं हाथों में सौ-पचास रुपये हरदम पड़े रहते थे, चार आदमी खुसामद करते थे। इस कुलच्छनी के आते ही जैसे लच्छमी रूठ गई। टके-टके को मुहताज हो गया।

सहसा किसी ने पुकारा-यह क्या तुम्हारी घरवाली कराह रही है? दरद तो नहीं हो रहा है?

यह वही मोटी औरत थी, जिससे आज झुनिया की बातचीत हुई थी। घोड़े को दाना खिलाने उठी थी। झुनिया का कराहना सुनकर पूछने आ गई थी।

गोबर ने बरामदे में जाकर कहा-पेट में दरद है। छटपटा रही है। यहां कोई दाई मिलेगी?

'वह तो मैं आज उसे देखकर ही समझ गई थी। दाई कच्ची सराय में रहती है। लपककर बुला लाओ। कहना, जल्दी चल। तब तक मैं यहीं बैठी हूं।'

'मैंने तो कच्ची सराय नहीं देखी, किधर है?'

'अच्छा, तुम उसे पंखा झलते रहो, मैं बुलाए लाती हूं। यही कहते हैं, अनाड़ी आदमी किसी काम का नहीं। पूरा पेट और दाई की खबर नहीं।'

यह कहती हुई वह चल दी। इसके मुंह पर तो लोग इसे चुहिया कहते हैं, यही इसका नाम था, लेकिन पीठ पीछे मोटल्ली कहा करते थे। किसी को मोटल्ली कहते सुन लेती थी, तो उसके सात पुरखों तक चढ़ जाती थी।

गोबर को बैठे दस मिनट भी न हुए होंगे कि वह लौट आई और बोली-अब संसार में गरीबों का कैसे निबाह होगा। रांड़ कहती है, पांच रुपये लूंगी-तब चलूंगी। और आठ आने रोज। बारहवें दिन एक साड़ी। मैंने कहा, तेरा मुंह झुलस दूं। तू जा चूल्हे में। मैं देख लूंगी। बारह बच्चों की मां यों ही नहीं हो गई हूं। तुम बाहर आ जाओ गोबरधन, मैं सब कर लूंगी। बखत पड़ने पर आदमी ही आदमी के काम आता है। चार बच्चे जना लिए तो दाई बन बैठी।

वह झुनिया के पास जा बैठी और उसका सिर अपनी जांघ पर रखकर उसका पेट सहलाती हुई बोली-मैं तो आज तुझे देखते ही समझ गई थी। सच पूछो, तो इसी धड़के में आज मुझे नींद नहीं आई। यहां तेरा कौन सगा बैठा है?

झुनिया ने दर्द से दांत जमाकर 'सी' करते हुए कहा-अब न बचूंगी। दीदी। हाय मैं तो भगवान् से मांगने न गई थी। एक को पाला-पोसा। उसे तुमने छीन लिया, तो फिर इसका कौन काम था? मैं मर जाऊं माता, तो तुम बच्चे पर दया करना। उसे पाल-पोस देना। भगवान् तुम्हारा भला करेंगे।

चुहिया स्नेह से उसके केश सुलझाती हुई बोली—धीरज धर बेटी, धीरज धर। अभी छन-भर में कष्ट कटा जाता है। तूने भी तो जैसे चुप्पी साध ली थी। इसमें किस बात की लाज। मुझे बता दिया होता, तो मैं मौलवी साहब के पास से ताबीज ला देती। वही मिर्जाजी जो इस हाते में रहते हैं।

इसके बाद झुनिया को कुछ होश न रहा। नौ बजे सुबह उसे होश आया, तो उसने देखा, चुहिया शिशु को लिए बैठी है और वह साफ साड़ी पहने लेटी हुई है। ऐसी कमजोरी थी, मानो देह में रक्त का नाम न हो।

चुहिया रोज सबेरे आकर झुनिया के लिए हरीरा और हलवा पका जाती और दिन में भी कई बार आकर बच्चे को उबटन मल जाती और ऊपर का दूध पिला जाती। आज चौथा दिन था, पर झुनिया के स्तनों में दूध न उतरता था। शिशु रो-रोकर गला फाड़े लेता था, क्योंकि ऊपर का दूध उसे पचता न था। एक छन को भी चुप न होता था। चुहिया अपना स्तन उसके मुंह में देती। बच्चा एक क्षण चूसता, पर जब दूध न निकलता, तो फिर चीखने लगता। जब चौथे दिन सांझ तक झुनिया के दूध न उतरा, तो चुहिया घबराई। बच्चा सूखता चला जाता था। नखास में एक पेंशनर डाक्टर रहते थे। चुहिया उन्हें ले आई। डाक्टर ने देख-भालकर कहा—इसकी देह में खून तो है ही नहीं, दूध कहां से आए? समस्या जटिल हो गई। देह में खून लाने के लिए महीनों पुष्टिकारक दवाएं खानी पड़ेंगी, तब कहीं दूध उतरेगा। तब तक तो इस मांस के लोथड़े का ही काम तमाम हो जाएगा।

पहर रात हो गई थी। गोबर ताड़ी पिए ओसारे में पड़ा हुआ था। चुहिया बच्चे को चुप कराने के लिए उसके मुंह में अपनी छाती डाले हुए थी कि सहसा उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी छाती में दूध आ गया है। प्रसन्न होकर बोली--ले झुनिया, अब तेरा बच्चा जी जाएगा, मेरे दूध आ गया।

झुनिया ने चकित होकर कहा--तुम्हें दूध आ गया?

'नहीं री, सच।'

'मैं तो नहीं पतियाती।'

'देख ले।'

उसने अपना स्तन दबाकर दिखाया। दूध की धार फूट निकली।

झुनिया ने पूछा--तुम्हारी छोटी बिटिया तो आठ साल से कम की नहीं है।

'हां आठवां है, लेकिन मुझे दूध बहुत होता था।'

'इधर तो तुम्हें कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ।'

'वही लड़की पेट-पोछनी थी। छाती बिल्कुल सूख गई थी, लेकिन भगवान् की लीला है, और क्या।'

अब से चुहिया चार-पांच बार आकर बच्चे को दूध पिला जाती। बच्चा पैदा तो हुआ था दुर्बल, लेकिन चुहिया का स्वस्थ दूध पीकर गदराया जाता था। एक दिन चुहिया नदी स्नान करने चली गई। बच्चा भूख के मारे छटपटाने लगा। चुहिया दस बजे लौटी, तो झुनिया बच्चे को कंधे से लगाए झुला रही थी और बच्चा रोए जाता था। चुहिया ने बच्चे को उसकी गोद से लेकर दूध पिला देना चाहा, पर झुनिया ने उसे झिड़ककर कहा—रहने दो। अभागा मर जाय, वही अच्छा। किसी का एहसान तो न लेना पड़े।

चुहिया गिड़गिड़ाने लगी। झुनिया ने बड़े अदरावन के बाद बच्चा उसकी गोद में दिया।

लेकिन झुनिया और गोबर में अब भी न पटती थी। झुनिया के मन में बैठ गया था कि यह पक्का मतलबी, बेदर्द आदमी है, मुझे केवल भोग की वस्तु समझता है। चाहे मैं मरूं या जिऊं, उसकी इच्छा पूरी किए जाऊं, उसे बिल्कुल गम नहीं। सोचता होगा, यह मर जायगी तो दूसरी लाऊंगा, लेकिन मुंह धो रखें बच्चू। मैं ही ऐसी अल्हड़ थी कि तुम्हारे फंदे में आ गई। तब तो पैरों पर सिर रखे देता था। यहां आते ही न जाने क्यों जैसे इसका मिजाज ही बदल गया। जाड़ा आ गया था, पर न ओढ़न, न बिछावन। रोटी-दाल से जो दो-चार रुपये बचते, ताड़ी में उड़ जाते। एक पुराना लिहाफ था। दोनों उसी में सोते थे, लेकिन फिर भी उनमें सौ कोस का अंतर था। दोनों एक ही करवट में रात काट देते।

गोबर का जी शिशु को गोद में लेकर खलाने के लिए तरसकर रह जाता था। कभी-कभी वह रात को उठकर उसका प्यारा मुखड़ा देख लिया करता था, लेकिन झुनिया की ओर से उसका मन खिंचता था। झुनिया भी उससे बात न करती, न उसकी कुछ सेवा ही करती और दोनों के बीच में यह मालिन्य समय के साथ लोहे के मोर्चे की भांति गहरा, दृढ़ और कठोर होता जाता था। दोनों एक-दूसरे की बातों का उल्टा ही अर्थ निकालते, वही जिससे आपस का द्वेष और भड़के। और कई दिनों तक एक एक वाक्य को मन में पाले रहते और उसे अपना रक्त पिला-पिलाकर एक-दूसरे पर झपट पड़ने के लिए तैयार रहते, जैसे शिकारी कुत्ते हों।

उधर गोबर के कारखाने में भी आए दिन एक-न-एक हंगामा उठता रहता था। अबकी बजट में शक्कर पर ड्यूटी लगी थी। मिल के मालिकों को मजूरी घटाने का अच्छा बहाना मिल गया। ड्यूटी से अगर पांच की हानि थी, तो मजूरी घटा देने से दस का लाभ था। इधर महीनों से इस मिल में भी यही मसला छिड़ा हुआ था। मजूरों का संघ हड़ताल करने को तैयार बैठा हुआ था। इधर मजूरी घटी और उधर हड़ताल हुई। उसे मजूरी में धेले की कटौती भी स्वीकार न थी। जब उस तेजी के दिनों में मजूरी में एक धेले की भी बढ़ती नहीं हुई, तो अब वह घाटे में क्यों साथ दे।

मिर्जा खुर्शेद संघ के सभापति और पंडित ओंकारनाथ 'बिजली' संपादक, मंत्री थे। दोनों ऐसी हड़ताल कराने पर तुले हुए थे कि मिल-मालिकों को कुछ दिन याद रहे। मजूरों को भी ऐसी हड़ताल में क्षति पहुंचेगी, यहां तक कि हजारों आदमी रोटियों को भी मोहताज हो जाएंगे, इस पहलू की ओर उनकी निगाह बिल्कुल न थी। और गोबर हड़तालियों में सबसे आगे था। उद्दंड स्वभाव का था ही, ललकारने की जरूरत थी। फिर वह मारने मरने को न डरता था। एक दिन झुनिया ने उसे जी कड़ा करके समझाया भी—तुम बाल बच्चे वाले आदमी हो, तुम्हारा इस तरह आग में कूदना अच्छा नहीं। इस पर गोबर बिगड़ उठा -तू कौन होती है मेरे बीच में बोलने वाली? मैं तुझसे सलाह नहीं पूछता। बात बढ़ गई और गोबर ने झुनिया को खूब पीटा। चुहिया ने आकर झुनिया को छुड़ाया और गोबर को डांटने लगी। गोबर के सिर पर शैतान सवार था। लाल-लाल आंखें निकालकर बोला तुम मेरे घर में मत आया करो चुहिया, तुम्हारे आने का कुछ काम नहीं।

चुहिया ने व्यंग के साथ कहा- तुम्हारे घर में न आऊंगी, तो मेरी रोटियां कैसे चलेंगी। यहीं से मांग जांचकर ले जाती हूं, तब तवा गर्म होता है। मैं न होती लाला, तो यह बीवी आज तुम्हारी लातें खाने के लिए बैठी न होती।

गोबर घूंसा तानकर बोला—मैंने कह दिया, मेरे घर में न आया करो। तुम्हीं ने इस चुड़ैल का मिजाज आसमान पर चढ़ा दिया है।

चुहिया वहीं डटी हुई निःशंक खड़ी थी, बोली—अच्छा, अब चुप रहना गोबर। बेचारी अधमरी लड़कोरी औरत को मारकर तुमने कोई बड़ी जवांमर्दी का काम नहीं किया है। तुम उसके लिए क्या करते हो कि तुम्हारी मार सहे? एक रोटी खिला देते हो इसलिए? अपने भाग बखानो कि ऐसी गऊ औरत पा गए हो। दूसरी होती, तो तुम्हारे मुंह में झाड़ू मारकर निकल गई होती।

मुहल्ले के लोग जमा हो गए और चारों ओर से गोबर पर फटकारें पड़ने लगीं। वही लोग, जो अपने घरों में अपनी स्त्रियों को रोज पीटते थे, इस वक्त न्याय और दया के पुतले बने हुए थे। चुहिया और शेर हो गई और फरियाद करने लगी—डाढ़ीजार कहता है, मेरे घर न आया करो। बीवी-बच्चा रखने चला है, यह नहीं जानता कि बीवी-बच्चों को पालना बड़े गुर्दे का काम है। इससे पूछो, मैं न होती तो आज यह बच्चा, जो बछड़े की तरह कुलेलें कर रहा है, कहां होता? औरत को मारकर जवानी दिखाता है। मैं न हुई तेरी बीवी, नहीं यहीं जूती उठाकर मुंह पर तड़ातड़ जमाती और कोठरी में ढकेलकर बाहर से किवाड़ बंद कर देती। दाने को तरस जाते।

गोबर झल्लाया हुआ अपने काम पर चला गया। चुहिया औरत न होकर मर्द होती, तो मजा चखा देता। औरत के मुंह क्या लगे।

मिल में असंतोष के बादल घने होते जा रहे थे। मजदूर 'बिजली' की प्रतियां जेब में लिए फिरते और जरा भी अवकाश पाते, तो दो-तीन मजदूर मिलकर उसे पढ़ने लगते। पत्र की बिक्री खूब बढ़ रही थी। मजदूरों के नेता 'बिजली' कार्यालय में आधी रात तक बैठे हड़ताल की स्कीमें बनाया करते और प्रातःकाल जब पत्र में यह समाचार मोटे-मोटे अक्षरों में छपता, तो जनता टूट पड़ती और पत्र की कापियां दूने-तिगुने दाम पर बिक जातीं। उधर कंपनी के डायरेक्टर भी अपनी घात में बैठे हुए थे। हड़ताल हो जाने में ही उनका हित था। आदमियों की कमी तो है नहीं। बेकारी बढ़ी हुई है, इसके आधे वेतन पर ऐसे आदमी आसानी से मिल सकते हैं। माल की तैयारी में एकदम आधी बचत हो जाएगी। दस-पांच दिन काम का हरज होगा, कुछ परवाह नहीं। आखिर यही निश्चय हो गया कि मजूरी में कमी का ऐलान कर दिया जाय। दिन और समय नियत कर लिया गया, पुलिस को सूचना दे दी गई। मजूरों को कानोंकान खबर न थी। वे अपनी घात में थे। उसी वक्त हड़ताल करना चाहते थे, जब गोदाम में बहुत थोड़ा माल रह जाय और मांग की तेजी हो।

एकाएक एक दिन जब मजूर लोग शाम को छुट्टी पाकर चलने लगे, तो डायरेक्टरों का ऐलान सुना दिया गया। उसी वक्त पुलिस आ गई। मजूरों को अपनी इच्छा के विरुद्ध उसी वक्त हड़ताल करनी पड़ी, जब गोदाम में इतना माल भरा हुआ था कि बहुत तेज मांग होने पर भी छः महीने से पहले न उठ सकता था।

मिर्जा खुर्शेद ने यह बात सुनी, तो मुस्कराए, जैसे कोई मनस्वी योद्धा अपने शत्रु के रण-कौशल पर मुग्ध हो गया हो। एक क्षण विचारों में डूबे रहने के बाद बोले—अच्छी बात है। अगर डायरेक्टरों की यही इच्छा है, तो यही सही। हालतें उनके मुआफिक हैं, लेकिन हमें न्याय का बल है। वह लोग नए आदमी रखकर अपना काम चलाना चाहते हैं। हमारी कोशिश

यह होनी चाहिए कि उन्हें एक भी नया आदमी न मिले। यही हमारी फतह होगी।

'बिजली' कार्यालय में उसी वक्त खतरे की मीटिंग हुई, कार्यकारिणी समिति का भी संगठन हुआ, पदाधिकारियों का चुनाव हुआ और आठ बजे रात को मजूरों का लंबा जुलूस निकला। दस बजे रात को कल का सारा प्रोग्राम तय किया गया और यह ताकीद कर दी गई कि किसी तरह का दंगा-फसाद न होने पाए।

मगर सारी कोशिश बेकार हुईं। हड़तालियों ने नए मजूरों का टिड्डी-दल मिल के द्वार पर खड़ा देखा, तो इनकी हिंसा-वृत्ति काबू से बाहर हो गई। सोचा था, सौ-सौ, पचास-पचास आदमी रोज भर्ती के लिए आएंगे। उन्हें समझा-बुझाकर या धमकाकर भगा देंगे। हड़तालियों की संख्या देखकर नए लोग आप ही भयभीत हो जाएंगे, मगर यहां तो नक्शा ही कुछ और था, अगर यह सारे आदमी भर्ती हो गए, तो हड़तालियों के लिए समझौते की कोई आशा ही न थी। तय हुआ कि नए आदमियों को मिल में जाने ही न दिया जाय। बल-प्रयोग के सिवा और कोई उपाय न था। नया दल भी लड़ने-मरने पर तैयार था। उनमें अधिकांश ऐसे भुखमरे थे, जो इस अवसर को किसी तरह भी न छोड़ना चाहते थे। भूखों मर जाने से या अपने बाल-बच्चों को भूखों मरते देखने से तो यह कहीं अच्छा था कि इस परिस्थिति में लड़कर मरें। दोनों दलों में फौजदारी हो गई। 'बिजली' संपादक तो भाग खड़े हुए। बेचारे मिर्जाजी पिट गए और उनकी रक्षा करते हुए गोबर भी बुरी तरह घायल हो गया। मिर्जाजी पहलवान आदमी थे और मंजे हुए फिकैत, अपने ऊपर कोई गहरा वार न पड़ने दिया। गोबर गंवार था। पूरा लट्ठ मारना जानता था, पर अपनी रक्षा करना न जानता था, जो लड़ाई में मारने से ज्यादा महत्त्व की बात है। उसके एक हाथ की हड्डी टूट गई, सिर खुल गया और अंत में वह वहीं ढेर हो गया। कंधों पर अनगिनती लाठियां पड़ी थीं, जिससे उसका एक-एक अंग चूर हो गया था। हड़तालियों ने उसे गिरते देखा, तो भाग खड़े हुए। केवल दस-बारह जंचे हुए आदमी मिर्जा को घेरकर खड़े रहे। नए आदमी विजय-पताका उड़ाते हुए मिल में दाखिल हुए और पराजित हड़ताली अपने हताहतों को उठा-उठाकर अस्पताल पहुंचाने लगे, मगर अस्पताल में इतने आदमियों के लिए जगह न थी। मिर्जाजी तो ले लिए गए। गोबर की मरहम-पट्टी करके उसके घर पहुंचा दिया गया।

झुनिया ने गोबर की वह चेष्टाहीन लोथ देखी, तो उसका नारीत्व जाग उठा। अब तक उसने उसे सबल के रूप में देखा था, जो उस पर शासन करता था, डांटता था, मारता था। आज वह अपंग था, निस्सहाय था, दयनीय था। झुनिया ने खाट पर झुककर आंसू-भरी आंखों से गोबर को देखा और घर की दशा का खयाल करके उसे गोबर पर एक ईर्ष्यामय क्रोध आया। गोबर जानता था कि घर में एक पैसा नहीं है। वह यह भी जानता था कि कहीं से एक पैसा मिलने की आशा नहीं है। यह जानते हुए भी उसके बार-बार समझाने पर भी, उसने यह विपत्ति अपने ऊपर ली। उसने कितनी बार कहा था–तुम इस झगड़े में न पड़ो। आग लगाने वाले आग लगाकर अलग हो जायंगे, जायगी गरीबों के सिर, लेकिन वह कब उसकी सुनने लगा था। वह तो उसकी बैरिन थी। मित्र तो वह लोग थे, जो अब मजे से मोटरों में घूम रहे हैं। उस क्रोध में एक प्रकार की तुष्टि थी, जैसे हम उन बच्चों को कुरसी से गिर पड़ते देखकर, जो बार-बार मना करने पर खड़े होने से बाज न आते थे, चिल्ला उठते हैं–अच्छा हुआ, बहुत अच्छा, तुम्हारा सिर क्यों न दो हो गया।

लेकिन एक ही क्षण में गोबर का करुण-क्रंदन सुनकर उसकी सारी संज्ञा सिहर उठी। व्यथा में डूबे हुए यह शब्द उसके मुंह से निकले–हाय-हाय! सारी देह भुरकुस हो गई। सबों को तनिक भी दया न आई।

वह उसी तरह बड़ी देर तक गोबर का मुंह देखती रही। वह क्षीण होती हुई आशा से जीवन का कोई लक्षण पा लेना चाहती थी। और प्रतिक्षण उसका धैर्य अस्त होने वाले सूर्य की भांति डूबता जाता था, और भविष्य में अंधकार उसे अपने अंदर समेटे लेता था।

सहसा चुहिया ने आकर पुकारा—गोबर का क्या हाल है, बहू! मैंने तो अभी सुना। दुकान से दौड़ी आई हूं।

झुनिया के रुके हुए आंसू उबल पड़े, कुछ बोल न सकी। भयभीत आंखों से चुहिया की ओर देखा।

चुहिया ने गोबर का मुंह देखा, उसकी छाती पर हाथ रखा, और आश्वासन-भरे स्वर में बोली—यह चार दिन में अच्छे हो जाएंगे। घबड़ा मत। कुशल हुई। तेरा सोहाग बलवान था। कई आदमी उसी दंगे में मर गए। घर में कुछ रुपये-पैसे हैं?

झुनिया ने लज्जा से सिर हिला दिया।

'मैं लाए देती हूं। थोड़ा-सा दूध लाकर गरम कर ले।'

झुनिया ने उसके पांव पकड़कर कहा—दीदी, तुम्हीं मेरी माता हो। मेरा दूसरा कोई नहीं है।

जाड़ों की उदास संध्या आज और भी उदास मालूम हो रही थी। झुनिया ने चूल्हा जलाया और दूध उबालने लगी। चुहिया बरामदे में बच्चे को लिए खिला रही थी।

सहसा झुनिया भारी कंठ से बोली—मैं बड़ी अभागिन हूं दीदी! मेरे मन में ऐसा आ रहा है, जैसे मेरे ही कारण इनकी यह दसा हुई है। जो कुढ़ता है तब मन दु:खी होता ही है, फिर गालियां भी निकलती हैं, सराप भी निकलता है। कौन जाने मेरी गालियां....

इसके आगे वह कुछ न कह सकी। आवाज आंसुओं के रेले में बह गई। चुहिया ने अंचल से उसके आंसू पोंछते हुए कहा—कैसी बातें सोचती है बेटी! यह तेरे सिंदूर का भाग है कि यह बच गए। मगर हां, इतना है कि आपस में लड़ाई हो, तो मुंह से चाहे जितना बक ले, मन में कीना न पाले। बीज अंदर पड़ा, तो अंखुआ निकले बिना नहीं रहता।

झुनिया ने कंपन-भरे स्वर में पूछा—अब मैं क्या करूं दीदी?

चुहिया ने ढाढस दिया—कुछ नहीं बेटी! भगवान् का नाम ले। वही गरीबों की रक्षा करते हैं।

उसी समय गोबर ने आंखें खोलीं और झुनिया को सामने देखकर याचना भाव से क्षीण स्वर में बोला—आज बहुत चोट खा गया झुनिया! मैं किसी से कुछ नहीं बोला। सबों ने अनायास मुझे मारा। कहा-सुना माफ कर! तुझे सताया था, उसी का यह फल मिला। थोड़ी देर का और मेहमान हूं। अब न बचूंगा। मारे दरद के सारी देह फटी जाती है।

चुहिया ने अंदर आकर कहा—चुपचाप पड़े रहो। बोलो-चालो नहीं। मरोगे नहीं, इसका मेरा जुम्मा।

गोबर के मुख पर आशा की रेखा झलक पड़ी। बोला—सच कहती हो, मैं मरूंगा नहीं?

'हां, नहीं मरोगे। तुम्हें हुआ क्या है? जरा सिर में चोट आ गई है और हाथ की हड्डी उतर गई है। ऐसी चोटें मरदों को रोज ही लगा करती हैं। इन चोटों से कोई नहीं मरता।'

'अब मैं झुनिया को कभी न मारूंगा।'

'डरते होगे कि कहीं झुनिया तुम्हें न मारे।'

'वह मारेगी भी, तो कुछ न बोलूंगा।'

'अच्छे होने पर भूल जाओगे।'

'नहीं दीदी, कभी न भूलूंगा।'

गोबर इस समय बच्चों-सी बातें किया करता। दस-पांच मिनट अचेत-सा पड़ा रहता। उसका मन न जाने कहां-कहां उड़ता फिरता। कभी देखता, वह नदी में डूबा जा रहा है, और झुनिया उसे बचाने के लिए नदी में चली आ रही है। कभी देखता, कोई दैत्य उसकी छाती पर सवार है और झुनिया की शक्ल में कोई देवी उसकी रक्षा कर रही है। और बार-बार चौंककर पूछता—मैं मरूंगा तो नहीं झुनिया?

तीन दिन उसकी यही दशा रही और झुनिया ने रात को जागकर और दिन को उसके सामने खड़े रहकर जैसे मौत से उसकी रक्षा की। बच्चे को चुहिया संभाले रहती। चौथे दिन झुनिया एक्का लाई और सबों ने गोबर को उस पर लादकर अस्पताल पहुंचाया। वहां से लौटकर गोबर को मालूम हुआ कि अब वह सचमुच बच जायगा। उसने आंखों में आंसू भरकर कहा—मुझे क्षमा कर दो झुन्ना।

इन तीन-चार दिनों में चुहिया के तीन-चार रुपये खर्च हो गए थे, और अब झुनिया को उससे कुछ लेते संकोच होता था। वह भी कोई मालदार तो थी नहीं। लकड़ी की बिक्री के रुपये झुनिया को दे देती। आखिर झुनिया ने कुछ काम करने का विचार किया। अभी गोबर को अच्छे होने में महीना लगेंगे। खाने-पीने को भी चाहिए, दवा दारू को भी चाहिए। वह कुछ काम करके खाने-भर को तो ले ही आएगी। बचपन में उसने गऊओं का पालना और घास छीलना सीखा था। यहां गउएं कहां थीं? हां, वह घास छील सकती थी। मुहल्ले के कितने ही स्त्री-पुरुष बराबर शहर के बाहर घास छीलने जाते थे और आठ दस आने कमा लेते थे। वह प्रातःकाल गोबर का हाथ-मुंह धुलाकर और बच्चे को उसे सौंपकर घास छीलने निकल जाती और तीसरे पहर तक भूखी-प्यासी घास छीलती रहती। फिर उसे मंडी में ले जाकर बेचती और शाम को घर आती। रात को भी वह गोबर की नींद सोती और गोबर की नींद जागती, मगर इतना कठोर श्रम करने पर भी उसका मन ऐसा प्रसन्न रहता मानो झूले पर बैठी गा रही है रास्ते-भर साथ की स्त्रियों और पुरुषों से चुहल और विनोद करती जाती। घास छीलते समय भी सबों में हंसी दिल्लगी होती रहती। न किस्मत का रोना, न मुसीबत का गिला। जीवन की सार्थकता में अपनों के लिए कठिन से कठिन त्याग में, और स्वाधीन सेवा में जो उल्लास है, उसकी ज्योति एक-एक अंग पर चमकती रहती। बच्चा अपने पैरों पर खड़ा होकर जैसे तालियां बजा-बजाकर खुश होता है, उसी आनंद का वह अनुभव कर रही थी, मानो उसके प्राणों में आनंद का कोई सोता खुल गया हो। और मन स्वस्थ हो, तो देह कैसे अस्वस्थ रहे। उस एक महीने में जैसे उसका कायाकल्प हो गया हो। उसके अंगों में अब शिथिलता नहीं, चपलता है, लचक है, सुकुमारता है। मुख पर पीलापन नहीं रहा, खून की गुलाबी चमक है। उसका यौवन जो इस बंद कोठरी में पड़े-पड़े अपमान और कलह से कुंठित हो गया था, वह मानो ताजी हवा और प्रकाश पाकर लहलहा उठा है। अब उसे किसी बात पर क्रोध नहीं आता। बच्चे के जरा-सा रोने पर जो वह झुंझला उठती थी, अब जैसे उसके धैर्य और प्रेम का अंत ही न था।

इसके खिलाफ गोबर अच्छा होते जाने पर भी कुछ उदास रहता था। जब हम अपने किसी प्रियजन पर अत्याचार करते हैं, और जब विपत्ति आ पड़ने पर हममें इतनी शक्ति आ जाती है कि उसकी तीव्र व्यथा का अनुभव करें, तो इससे हमारी आत्मा में जागृति का उदय हो जाता है, और हम उस बेजा व्यवहार का प्रायश्चित करने के लिए तैयार हो जाते हैं। गोबर उसी

प्रायश्चित के लिए व्याकुल हो रहा था। अब उसके जीवन का रूप बिलकुल दूसरा होगा, जिसमें कटुता की जगह मृदुता होगी, अभिमान की जगह नम्रता। उसे अब ज्ञात हुआ कि सेवा करने का अवसर बड़े सौभाग्य से मिलता है, और वह इस अवसर को कभी न भूलेगा।

अट्ठाईस

मिस्टर खन्ना को मजूरों की यह हड़ताल बिल्कुल बेजा मालूम होती थी। उन्होंने हमेशा जनता के साथ मिले रहने की कोशिश की थी। वह अपने को जनता का ही आदमी समझते थे। पिछले कौमी आंदोलन में उन्होंने बड़ा जोश दिखाया था। जिले के प्रमुख नेता रहे थे, दो बार जेल गए थे और कई हजार का नुकसान उठाया था। अब भी वह मजूरों की शिकायतें सुनने को तैयार रहते थे, लेकिन यह तो नहीं हो सकता कि वह शक्कर मिल के हिस्सेदारों के हित का विचार न करें। अपना स्वार्थ त्यागने को वह तैयार हो सकते थे, अगर उनकी ऊंची मनोवृत्तियों को स्पर्श किया जाता, लेकिन हिस्सेदारों के स्वार्थ की रक्षा न करना, यह तो अधर्म था। यह तो व्यापार है, कोई सदाव्रत नहीं कि सब कुछ मजूरों को ही बांट दिया जाय। हिस्सेदारों को यह विश्वास दिलाकर रुपये लिए गए थे कि इस काम में पंद्रह-बीस सैकड़े का लाभ है। अगर उन्हें दस सैकड़ा भी न मिले, तो वे डायरेक्टरों को और विशेषकर मिस्टर खन्ना को धोखेबाज ही तो समझेंगे और फिर अपना वेतन वह कैसे कम कर सकते थे? और कंपनियों को देखते उन्होंने अपना वेतन कम रखा था। केवल एक हजार रुपया महीना लेते थे। कुछ कमीशन भी मिल जाता था, मगर वह इतना लेते थे, तो मिल का संचालन भी करते थे। मजूर केवल हाथ से काम करते हैं। डायरेक्टर अपनी बुद्धि से, विद्या से, प्रतिभा से, प्रभाव से काम करता है। दोनों शक्तियों का मोल बराबर तो नहीं हो सकता। मजूरों को यह संतोष क्यों नहीं होता कि मंदी का समय है और चारों तरफ बेकारी फैली रहने के कारण आदमी सस्ते हो गए हैं। उन्हें तो एक की जगह पौन भी मिले, तो संतुष्ट रहना चाहिए था। और सच पूछो तो वे संतुष्ट हैं। उनका कोई कसूर नहीं। वे तो मूर्ख हैं, बछिया के ताऊ! शरारत तो ओंकारनाथ और मिर्जा खुर्शेद की है। यही लोग उन बेचारों को कठपुतली की तरह नचा रहे हैं, केवल थोड़े-से पैसे और यश के लोभ में पड़कर। यह नहीं सोचते कि उनकी दिल्लगी से कितने घर तबाह हो जाएंगे। ओंकारनाथ का पत्र नहीं चलता तो बेचारे खन्ना क्या करें! और आज उनके पत्र के एक लाख ग्राहक हो जायं और उससे उन्हें पांच लाख का लाभ होने लगे, तो क्या वह केवल अपने गुजारे-भर को लेकर शेष कार्यकर्ताओं में बांट देंगे? कहां की बात! और वह त्यागी मिर्जा खुर्शेद भी तो एक दिन लखपति थे। हजारों मजूर उनके नौकर थे। तो क्या वह अपने गुजारे-भर को लेकर सब कुछ मजूरों में बांट देते थे? वह उसी गुजारे की रकम में यूरोपियन छोकरियों के साथ विहार करते थे। बड़े-बड़े अफसरों के साथ दावतें उड़ाते थे, हजारों रुपये महीने की शराब पी जाते थे और हर साल फ्रांस और स्विटजरलैंड की सैर करते थे। आज मजूरों की दशा पर उनका कलेजा फटता है।

इन दोनों नेताओं की तो खन्ना को परवाह न थी। उनकी नियत की सफाई में पूरा संदेह था। न रायसाहब की ही उन्हें परवाह थी, जो हमेशा खन्ना की हां-में-हां मिलाया करते थे और

उनके हर एक कदम का समर्थन कर दिया करते थे। अपने परिचितों में केवल एक ही ऐसा व्यक्ति था, जिसके निष्पक्ष विचार पर खन्नाजी को पूरा भरोसा था और वह डाक्टर मेहता थे। जब से उन्होंने मालती से घनिष्ठता बढ़ानी शुरू की थी, खन्ना की नजरों में उनकी इज्जत बहुत कम हो गई थी। मालती बरसों खन्ना की हृदयेश्वरी रह चुकी थी, पर उसे उन्होंने सदैव खिलौना समझा था। इसमें संदेह नहीं कि वह खिलौना उन्हें बहुत प्रिय था। उसके खो जाने, या टूट जाने, या छिन जाने पर वह खूब रोते और वह रोए थे, लेकिन थी वह खिलौना ही। उन्हें कभी मालती पर विश्वास न हुआ। वह कभी उनके ऊपरी विलास-आवरण को छेदकर उनके अंतःकरण तक न पहुंच सकी थी। वह अगर खुद खन्ना से विवाह का प्रस्ताव करती, तो वह स्वीकार न करते। कोई बहाना करके टाल देते। अन्य कितने ही प्राणियों की भांति खन्ना का जीवन भी दोहरा या दो-रुखी था। एक ओर वह त्याग और जन-सेवा और उपकार के भक्त थे, तो दूसरी ओर स्वार्थ और विलास और प्रभुता के। कौन उनका असली रुख था, यह कहना कठिन है। कदाचित् उनकी आत्मा का उत्तम आधा सेवा और सहृदयता से बना हुआ था, मद्धिम आधा स्वार्थ और विलास से। पर इस उत्तम और मद्धिम में बराबर संघर्ष होता रहता था। और मद्धिम ही अपनी उद्दंडता और हठ के कारण सौम्य और शांत उत्तम पर गालिब आता था। उसे मद्धिम मालती की ओर झुकता था, उत्तम मेहता की ओर, लेकिन वह उत्तम अब मद्धिम के साथ एक हो गया था। उनकी समझ में न आता था कि मेहता-जैसा आदर्शवादी व्यक्ति मालती-जैसी चंचल, विलासिनी रमणी पर कैसे आसक्त हो गया। वह बहुत प्रयास करने पर भी मेहता को वासनाओं का शिकार न स्थिर कर सकते थे और कभी-कभी उन्हें यह संदेह भी होने लगता था कि मालती का कोई दूसरा रूप भी है, जिसे वह न देख सके या जिसे देखने की उनमें क्षमता न थी।

पक्ष और विपक्ष के सभी पहलुओं पर विचार करके उन्होंने यही नतीजा निकाला कि इस परिस्थिति में मेहता ही से उन्हें प्रकाश मिल सकता है।

डाक्टर मेहता को काम करने का नशा था। आधी रात को सोते थे और घड़ी रात रहे उठ जाते थे। कैसा भी काम हो, उसके लिए वह कहीं-न-कहीं से समय निकाल लेते थे। हाकी खेलना हो या यूनिवर्सिटी डिबेट, ग्राम्य संगठन हो या किसी शादी का नवेद, सभी कामों के लिए उनके पास लगन थी और समय था। वह पत्रों में लेख भी लिखते थे और कई साल से एक बृहत् दर्शन-ग्रंथ लिख रहे थे, जो अब समाप्त होने वाला था। इस वक्त भी वह एक वैज्ञानिक खेल ही खेल रहे थे। अपने बगीचे में बैठे हुए पौधों पर विद्युत-संचार क्रिया का परीक्षा कर रहे थे। उन्होंने हाल में एक विद्वान्-परिषद् में यह सिद्ध किया था कि फसलें बिजली के जोर से बहुत थोड़े समय में पैदा की जा सकती हैं, उनकी पैदावार बढ़ाई जा सकती है और बेफसल की चीजें भी उपजाई जा सकती हैं। आजकल सबेरे के दो-तीन घंटे वह इन्हीं परीक्षाओं में लगाया करते थे।

मिस्टर खन्ना की कथा सुनकर उन्होंने कठोर मुद्रा से उनकी ओर देखकर कहा—क्या यह जरूरी था कि ड्यूटी लग जाने से मजूरों का वेतन घटा दिया जाय? आपको सरकार से शिकायत करनी चाहिए थी। अगर सरकार ने नहीं सुना, तो उसका दंड मजूरों को क्यों दिया जाय? क्या आपका विचार है कि मजूरों को इतनी मजूरी दी जाती है कि उसमें चौथाई कम कर देने से मजूरों को कष्ट नहीं होगा? आपके मजूर बिलों में रहते हैं—गंदे बदबूदार बिलों में—जहां आप एक मिनट भी रह जायं, तो आपको कै हो जाय। कपड़े जो पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोछेंगे। खाना जो वह खाते हैं, वह आपका कुत्ता भी न खाएगा। मैंने उनके जीवन में भाग लिया है। आप उनकी रोटियां छीनकर अपने हिस्सेदारों का पेट भरना चाहते हैं....

खन्ना ने अधीर होकर कहा—लेकिन हमारे सभी हिस्सेदार तो धनी नहीं हैं। कितनों ही ने अपना सर्वस्व इसी मिल की भेंट कर दिया है और इसके नफे के सिवा उनके जीवन का कोई आधार नहीं है।

मेहता ने इस भाव से जवाब दिया, जैसे इस दलील का उनकी नजरों में कोई मूल्य नहीं है—जो आदमी किसी व्यापार में हिस्सा लेता है, वह इतना दरिद्र नहीं होता कि उसके नफे ही को जीवन का आधार समझे। हो सकता है कि नफा कम मिलने पर उसे अपना एक नौकर कम कर देना पड़े या उसके मक्खन और फलों का बिल कम हो जाय, लेकिन वह नंगा या भूखा न रहेगा। जो अपनी जान खपाते हैं, उनका हक उन लोगों से ज्यादा है, जो केवल रुपया लगाते हैं।

यही बात पंडित ओंकारनाथ ने कही थी। मिर्जा खुर्शेद ने भी यही सलाह दी थी। यहां तक कि गोविन्दी ने भी मजूरों ही का पक्ष लिया था, पर खन्नाजी ने उन लोगों की परवा न की थी, लेकिन मेहता के मुंह से वही बात सुनकर वह प्रभावित हो गए। ओंकारनाथ को वह स्वार्थी समझते थे, मिर्जा खुर्शेद को गैरजिम्मेदार और गोविन्दी को अयोग्य। मेहता की बात में चरित्र अध्ययन और सद्भाव की शक्ति थी।

सहसा मेहता ने पूछा—आपने अपनी देवीजी से भी इस विषय में राय ली?

खन्ना ने सकुचाते हुए कहा—हां पूछा था।

'उनकी क्या राय थी?'

'वही जो आपकी है।'

'मुझे यही आशा थी। और आप उस विदुषी को अयोग्य समझते हैं।'

उसी वक्त मालती आ पहुंची और खन्ना को देखकर बोली - अच्छा, आप विराजमान हैं? मैंने मेहताजी की आज दावत की है। सभी चीजें अपने हाथ से पकाई हैं। आपको भी नेवता देती हूं। गोविन्दी देवी से आपका यह अपराध क्षमा करा दूंगी।

खन्ना को कौतूहल हुआ। अब मालती अपने हाथों से खाना पकाने लगी है? मालती! वही मालती, जो खुद कभी अपने जूते न पहनती थी, जो खुद कभी बिजली का बटन तक न दबाती थी, विलास और विनोद ही जिसका जीवन था।

मुस्कराकर कहा—अगर आपने पकाया है तो जरूर खाऊंगा। मैं तो कभी सोच ही न सकता था कि आप पाक-कला में भी निपुण हैं।

मालती निःसंकोच भाव से बोली—इन्होंने मार मारकर वैद्य बना दिया। इनका हुक्म कैसे टाल देती? पुरुष देवता ठहरे।

खन्ना ने इस व्यंग्य का आनंद लेकर मेहता की ओर आंखें मारते हुए कहा—पुरुष तो आपके लिए इतने सम्मान की वस्तु न थी।

मालती झेंपी नहीं। इस संकेत का आशय समझकर जोश-भरे स्वर में बोली—लेकिन अब हो गई हूं, इसलिए कि मैंने पुरुष का जो रूप अपने परिचितों की परिधि में देखा था, उससे यह कहीं सुंदर है। पुरुष इतना सुंदर, इतना कोमल हृदय....

मेहता ने मालती की ओर दीन-भाव से देखा और बोले—नहीं मालती, मुझ पर दया करो, नहीं मैं यहां से भाग जाऊंगा।

इन दिनों जो कोई मालती से मिलता वह उससे मेहता की तारीफों के पुल बांध देती जैसे कोई नवदीक्षित अपने नए विश्वासों का ढिंढोरा पीटता फिरे। सुरुचि का ध्यान भी उसने न

रहता। और बेचारे मेहता दिल में कटकर रह जाते थे। वह कड़ी और कड़वी आलोचना तो बड़े शौक से सुनते थे, लेकिन अपनी तारीफ सुनकर जैसे बेवकूफ बन जाते थे, मुंह जरा-सा निकल आता था, जैसे कोई फबती कसी गई हो। और मालती उन औरतों में न थी, जो भीतर रह सके। वह बाहर ही रह सकती थी, पहले भी और अब भी, व्यवहार में भी, विचार में भी। मन में कुछ रखना वह न जानती थी। जैसे एक अच्छी साड़ी पाकर वह उसे पहनने के लिए अधीर हो जाती थी, उसी तरह मन में कोई सुंदर भाव आए, तो वह उसे प्रकट किए बिना चैन न पाती थी।

मालती ने और समीप आकर उनकी पीठ पर हाथ रखकर मानो उनकी रक्षा करते हुए कहा—अच्छा भागो नहीं, अब कुछ न कहूंगी। मालूम होता है, तुम्हें अपनी निंदा ज्यादा पसंद है। तो निंदा ही सुनो—खन्नाजी, यह महाशय मुझ पर अपने प्रेम का जाल....

शक्कर-मिल की चिमनी यहां से साफ नजर आती थी। खन्ना ने उसकी तरफ देखा। वह चिमनी खन्ना के कीर्ति स्तंभ की भांति आकाश में सिर उठाए खड़ी थी। खन्ना की आंखों में अभिमान चमक उठा। इसी वक्त उन्हें मिल के दफ्तर में जाना है। वहां डायरेक्टरों की एक अर्जेंट मीटिंग करनी होगी और इस परिस्थिति को उन्हें समझाना होगा और इस समस्या को हल करने का उपाय भी बतलाना होगा।

मगर चिमनी के पास यह धुआं कहां से उठ रहा है? देखते-देखते सारा आकाश बैलून की भांति धुएं से भर गया। सबों ने सशंक होकर उधर देखा। कहीं आग तो नहीं लग गई? आग ही मालूम होती है।

सहसा सामने सड़क पर हजारों आदमी मिल की तरफ दौड़े जाते नजर आए। खन्ना ने खड़े होकर जोर से पूछा—तुम लोग कहां दौड़े जा रहे हो?

एक आदमी ने रुककर कहा—अजी, शक्कर-मिल में आग लग गई। आप देख नहीं रहे हैं।

खन्ना ने मेहता की ओर देखा और मेहता ने खन्ना की ओर। मालती दौड़ी हुई बंगले में गई और अपने जूते पहन आई। अफसोस और शिकायत करने का अवसर न था। किसी के मुंह से एक बात न निकली। खतरे में हमारी चेतना अंतर्मुखी हो जाती है। खन्ना की कार खड़ी ही थी। तीनों आदमी घबराए हुए आकर बैठे और मिल की तरफ भागे। चौरास्ते पर पहुंचे तो देखा, सारा शहर मिल की ओर उमड़ा चला आ रहा है। आग में आदमियों को खींचने का जादू है, कार आगे न बढ़ सकी।

मेहता ने पूछा—आग-बीमा तो करा लिया था न।

खन्ना ने लंबी सांस खींचकर कहा—कहां भाई, अभी तो लिखा-पढ़ी हो रही थी। क्या जानता था, यह आफत आने वाली है।

कार वहीं राम-आसरे छोड़ दी गई और तीनों आदमी भीड़ चीरते हुए मिल के सामने जा पहुंचे। देखा तो अग्नि का एक सागर आकाश में उमड़ रहा था। अग्नि की उन्मत्त लहरें एक-पर-एक, दांत पीसती थीं, जीभ लपलपाती थीं, जैसे आकाश को भी निगल जायंगी। उस अग्नि समुद्र के नीचे ऐसा धुआं छाया था, मानो सावन की घटा कालिख में नहाकर नीचे उतर आई हो। उसके ऊपर जैसे आग का थरथराता हुआ, उबलता हुआ हिमाचल खड़ा था। हाते में लाखों आदमियों की भीड़ थी, पुलिस भी थी, फायर ब्रिगेड भी, सेवा समितियों के सेवक भी, पर सब-के-सब आग की भीषणता से मानो शिथिल हो गए हों। फायर ब्रिगेड के छींटे उस अग्नि-

सागर में जाकर जैसे बुझ जाते थे। ईंटें जल रही थीं, लोहे के गार्डर जल रहे थे और पिघली हुई शक्कर के परनाले चारों तरफ बह रहे थे। और तो और, जमीन से भी ज्वाला निकल रही थी।

दूर से तो मेहता और खन्ना को यह आश्चर्य हो रहा था कि इतने आदमी खड़े तमाशा क्यों देख रहे हैं, आग बुझाने में मदद क्यों नहीं करते, मगर अब इन्हें भी ज्ञात हुआ कि तमाशा देखने के सिवा और कुछ करना अपने वश से बाहर है। मिल की दीवारों से पचास गज के अंदर जाना जान-जोखिम था। ईंट और पत्थर के टुकड़े चटाक-चटाक टूटकर उछल रहे थे। कभी-कभी हवा का रुख इधर हो जाता था, तो भगदड़ पड़ जाती थी।

ये तीनों आदमी भीड़ के पीछे खड़े थे। कुछ समझ में न आता था, क्या करें। आखिर आग लगी कैसे! और इतनी जल्द फैल कैसे गई। क्या पहले किसी ने देखा ही नहीं? या देखकर भी बुझाने का प्रयास न किया? इस तरह के प्रश्न सभी के मन में उठ रहे थे, मगर वहां पूछे किससे, मिल के कर्मचारी होंगे तो जरूर, लेकिन उस भीड़ में उनका पता मिलना कठिन था।

सहसा हवा का इतना तेज झोंका आया कि आग की लपटें नीची होकर इधर लपकीं, जैसे समुद्र में ज्वार आ गया हो। लोग सिर पर पांव रखकर भागे। एक-दूसरे पर गिरते, रेलते, जैसे कोई शेर झपटा आता हो। अग्नि-ज्वालाएं जैसे सजीव हो गई थीं, सचेष्ट भी, जैसे कोई शेषनाग अपने सहस्र मुख से आग फुंकार रहा हो। कितने ही आदमी तो इस रेले में कुचल गए। खन्ना मुंह के बल गिर पड़े, मालती को मेहताजी दोनों हाथों से पकड़े हुए थे, नहीं जरूर कुचल गई होती? तीनों आदमी हाते की दीवार के पास एक इमली के पेड़ के नीचे आकर रुके। खन्ना एक प्रकार की चेतना-शून्य तन्मयता से मिल की चिमनी की ओर टकटकी लगाए खड़े थ।

मेहता ने पूछा—आपको ज्यादा चोट तो नहीं आई?

खन्ना ने कोई जवाब न दिया। उसी तरफ ताकते रहे। उनकी आंखों में वह शून्यता थी, जो विक्षिप्तता का लक्षण है।

मेहता ने उनका हाथ पकड़कर फिर पूछा—हम लोग यहां व्यर्थ खड़े हैं। मुझे भय होता है, आपको चोट ज्यादा आ गई है। आइए, लौट चलें।

खन्ना ने उनकी तरफ देखा और जैसे सनककर बोले—जिनकी यह हरकत है, उन्हें मैं खूब जानता हूं। अगर उन्हें इसी में संतोष मिलता है, तो भगवान् उनका भला करें। मुझे कुछ परवा नहीं, कुछ परवा नहीं! कुछ परवा नहीं। मैं आज चाहूं, तो ऐसी नई मिल खड़ी कर सकता हूं। जी हां, बिल्कुल नई मिल खड़ी कर सकता हूं। ये लोग मुझे क्या समझते हैं? मिल ने मुझे नहीं बनाया, मैंने मिल को बनाया। और मैं फिर बना सकता हूं, मगर जिनकी यह हरकत है, उन्हें मैं खाक में मिला दूंगा। मुझे सब मालूम है, रत्ती-रत्ती मालूम है।

मेहता ने उनका चेहरा और उनकी चेष्टा देखी और घबराकर बोले—चलिए, आपको घर पहुंचा दूं। आपकी तबीयत अच्छी नहीं है।

खन्ना ने कहकहा मारकर कहा—मेरी तबीयत अच्छी नहीं है। इसलिए कि मिल जल गई। ऐसी मिलें मैं चुटकियों में खोल सकता हूं। मेरा नाम खन्ना है, चंद्रप्रकाश खन्ना। मैंने अपना सब कुछ इस मिल में लगा दिया। पहली मिल में हमने बीस प्रतिशत नफा दिया। मैंने प्रोत्साहित होकर यह मिल खोली। इसमें आधे रुपये मेरे हैं। मैंने बैंक के दो लाख इस मिल में लगा दिए। मैं एक घंटा नहीं, आधा घंटा पहले दस लाख का आदमी था। जी हां, दस, मगर इस वक्त फाकेमस्त हूं—नहीं दिवालिया हूं। मुझे बैंक को दो लाख देना है। जिस मकान में रहता हूं, वह अब मेरा नहीं है। जिस

बर्तन में खाता हूं, वह भी अब मेरा नहीं! बैंक से मैं निकाल दिया जाऊंगा। जिस खन्ना को देखकर लोग जलते थे, वह खन्ना अब धूल में मिल गया है। समाज में अब मेरा कोई स्थान नहीं है, मेरे मित्र मुझे अपने विश्वास का पात्र नहीं, दया का पात्र समझेंगे। मेरे शत्रु मुझसे जलेंगे नहीं, मुझ पर हंसेंगे। आप नहीं जानते मिस्टर मेहता, मैंने अपने सिद्धांतों की कितनी हत्या की है। कितनी रिश्वतें दी हैं, कितनी रिश्वतें ली हैं। किसानों की ऊख तौलने के लिए कैसे आदमी रखे, कैसे नकली बाट रखे। क्या कीजिएगा, यह सब सुनकर, लेकिन खन्ना अपनी यह दुर्दशा कराने के लिए क्यों जिंदा रहे? जो कुछ होना है हो, दुनिया जितना चाहे हंसे, मित्र लोग जितना चाहें अफसोस करें, लोग जितनी गालियां देना चाहें, दें। खन्ना अपनी आंखों से देखने और अपने कानों से सुनने के लिए जीता न रहेगा। वह बेहया नहीं है, बेगैरत नहीं है।

यह कहते-कहते खन्ना दोनों हाथों से सिर पीटकर जोर-जोर से रोने लगे।

मेहता ने उन्हें छाती से लगाकर दुखित स्वर में कहा—खन्नाजी, जरा धीरज से काम लीजिए। आप समझदार होकर दिल इतना छोटा करते हैं। दौलत से आदमी को जो सम्मान मिलता है, वह उसका सम्मान नहीं, उसकी दौलत का सम्मान है। आप निर्धन रहकर भी मित्रों के विश्वासपात्र रह सकते हैं और शत्रुओं के भी, बल्कि तब कोई आपका शत्रु रहेगा ही नहीं। आइए, घर चलें। जरा आराम कर लेने से आपका चित्त शांत हो जाएगा।

खन्ना ने कोई जवाब न दिया। तीनों आदमी चौरास्ते पर आए। कार खड़ी थी। दस मिनट में खन्ना की कोठी पर पहुंच गए।

खन्ना ने उतरकर शांत स्वर में कहा—कार आप ले जायं। अब मुझे इसकी जरूरत नहीं है।

मालती और मेहता भी उतर पड़े। मालती ने कहा—तुम चलकर आराम से लेटो, हम बैठे गप-शप करेंगे। घर जाने की तो ऐसी कोई जल्दी नहीं है।

खन्ना ने कृतज्ञता से उसकी ओर देखा और करुण-कंठ से बोले—मुझसे जो अपराध, हुए हैं, उन्हें क्षमा कर देना मालती! तुम और मेहता, बस तुम्हारे सिवा संसार में मेरा कोई नहीं है। मुझे आशा है, तुम मुझे अपनी नजरों से न गिराओगी। शायद दस-पांच दिन में यह कोठी भी छोड़नी पड़े। किस्मत ने कैसा धोखा दिया!

मेहता ने कहा—मैं आपसे सच कहता हूं खन्नाजी, आज मेरी नजरों में आपकी जो इज्जत है, वह कभी न थी।

तीनों आदमी कमरे में दाखिल हुए। द्वार खुलने की आहट पाते ही गोविन्दी भीतर से आकर बोली—क्या आप लोग वहीं से आ रहे हैं? महराज तो बड़ी बुरी खबर लाया है।

खन्ना के मन में ऐसा प्रबल, न रुकने वाला, तूफानी आवेग उठा कि गोविन्दी के चरणों पर गिर पड़ें और उन्हें आंसुओं से धो दें। भारी गले से बोले—हां प्रिये, हम तबाह हो गए।

उनकी निर्जीव, निराश आहत आत्मा सांत्वना के लिए विकल हो रही थी, सच्ची स्नेह में डूबी हुई सांत्वना के लिए—उस रोगी की भांति, जो जीवन-सूत्र क्षीण हो जाने पर भी वैद्य के मुख की ओर आशा-भरी आंखों से ताक रहा हो। वही गोविन्दी जिस पर उन्होंने हमेशा जुल्म किया, जिसका हमेश अपमान किया, जिससे हमेशा बेवफाई की, जिसे सदैव जीवन का भार समझा, जिसकी मृत्यु की सदैव कामना करते रहे, वही इस समय जैसे अंचल में आशीर्वाद और मंगल और अभय लिए उन पर वार रही थी, जैसे उन चरणों में ही उसके जीवन का स्वर्ग हो, जैसे वह उनके अभागे मस्तक पर हाथ रखकर ही उनकी प्राणहीन धमनियों में फिर रक्त का संचार

कर देगी। मन की इस दुर्बल दशा में, घोर विपत्ति में, मानो वह उन्हें कंठ से लगा लेने के लिए खड़ी थी। नौका पर बैठे हुए जल-विहार करते समय हम जिन चट्टानों को घातक समझते हैं, और चाहते हैं कि कोई इन्हें खोदकर फेंक देता, उन्हीं से, नौका टूट जाने पर, हम चिमट जाते हैं।

गोविन्दी ने उन्हें एक सोफा पर बैठा दिया और स्नेह-कोमल स्वर में बोली—तो तुम इतना दिल छोटा क्यों करते हो? धन के लिए, जो सारे पापों की जड़ है! उस धन से हमें क्या सुख था? सबेरे से आधी रात तक एक-न-एक झंझट—आत्मा का सर्वनाश! लड़के तुमसे बात करने को तरस जाते थे, तुम्हें संबंधियों को पत्र लिखने तक की फुर्सत न मिलती थी। क्या बड़ी इज्जत थी? हां, थी, क्योंकि दुनिया आजकल धन की पूजा करती है और हमेशा करती चली आई है। उसे तुमसे कोई प्रयोजन नहीं। जब तक तुम्हारे पास लक्ष्मी है, तुम्हारे सामने पूंछ हिलाएगी। कल उतनी ही भक्ति से दूसरों के द्वार पर सिजदे करेगी। तुम्हारी तरफ ताकेगी भी नहीं। सत्पुरुष धन के आगे सिर नहीं झुकाते। वह देखते हैं, तुम क्या हो, अगर तुममें सच्चाई है, न्याय है, त्याग है, पुरुषार्थ है, तो वे तुम्हारी पूजा करेंगे। नहीं तुम्हें समाज का लुटेरा समझकर मुंह फेर लेंगे, बल्कि तुम्हारे दुश्मन हो जाएंगे। मैं गलत तो नहीं कहती मेहताजी?

मेहता ने मानों स्वर्ग-स्वप्न से चौंककर कहा—गलत? आप वही कह रही हैं, जो संसार के महान् पुरुषों ने जीवन का तात्विक अनुभव करने के बाद कहा है। जीवन का सच्चा आधार यही है।

गोविन्दी ने मेहता को संबोधित करके कहा—धनी कौन होता है, इसका कोई विचार नहीं करता। वही जो अपने कौशल से दूसरों को बेवकूफ बना सकता है....

खन्ना ने बात काटकर कहा—नहीं गोविन्दी, धन कमाने के लिए अपने में संस्कार चाहिए। केवल कौशल से धन नहीं मिलता। इसके लिए भी त्याग और तपस्या करनी पड़ती है। शायद इतनी साधना में ईश्वर भी मिल जाय। हमारी सारी आत्मिक और बौद्धिक और शारीरिक शक्तियों के सामंजस्य का नाम धन है।

गोविन्दी ने विपक्षी न बनकर मध्यस्थ भाव से कहा—मैं मानती हूं कि धन के लिए थोड़ी तपस्या नहीं करनी पड़ती, लेकिन फिर भी हमने उसे जीवन में जितने महत्त्व की वस्तु समझ रखा है, उतना महत्त्व उसमें नहीं है। मैं तो खुश हूं कि तुम्हारे सिर से यह बोझ टला। अब तुम्हारे लड़के आदमी होंगे, स्वार्थ और अभिमान के पुतले नहीं। जीवन का सुख दूसरों को सुखी करने में है, उनको लूटने में नहीं। बुरा न मानना, अब तक तुम्हारे जीवन का अर्थ था आत्मसेवा, भोग और विलास। दैव ने तुम्हें उस साधन से वंचित करके तुम्हारे ज्यादा ऊंचे और पवित्र जीवन का रास्ता खोल दिया है। यह सिद्धि प्राप्त करने में अगर कुछ कष्ट भी हो, तो उसका स्वागत करो। तुम इसे विपत्ति समझते ही क्यों हो? क्यों नहीं समझते, तुम्हें अन्याय से लड़ने का अवसर मिला है। मेरे विचार में तो पीड़क होने से पीड़ित होना कहीं श्रेष्ठ है। धन खोकर अगर हम अपनी आत्मा को पा सकें, तो यह कोई मंहगा सौदा नहीं है। न्याय के सैनिक बनकर लड़ने में जो गौरव, जो उल्लास है, क्या उसे इतनी जल्द भूल गए?

गोविन्दी के पीले, सूखे मुख पर तेज की ऐसी चमक थी, मानो उसमें कोई विलक्षण शक्ति आ गई हो, मानो उसकी सारी मूक साधना प्रगल्भ हो उठी हो।

मेहता उसकी ओर भक्तिपूर्ण नेत्रों से ताक रहे थे, खन्ना सिर झुकाए इसे दैवी प्रेरणा समझने की चेष्टा कर रहे थे और मालती मन में लज्जित थी। गोविन्दी के विचार इतने ऊंचे, उसका हृदय इतना विशाल और उसका जीवन इतना उज्ज्वल है।

उनतीस

नोहरी उन औरतों में न थी, जो नेकी करके दरिया में डाल देती हैं। उसने नेकी की है, तो उसका खूब ढिंढोरा पीटेगी और उससे जितना यश मिल सकता है, उससे कुछ ज्यादा ही पाने के लिए हाथ-पांव मारेगी। ऐसे आदमी को यश के बदले अपयश और बदनामी ही मिलती है। नेकी न करना बदनामी की बात नहीं। अपनी इच्छा नहीं है, या सामर्थ्य नहीं है। इसके लिए कोई हमें बुरा नहीं कह सकता। मगर जब हम नेकी करके उसका एहसान जताने लगते हैं, तो वही जिसके साथ हमने नेकी की थी, हमारा शत्रु हो जाता है, और हमारे एहसान को मिटा देना चाहता है। वही नेकी अगर करने वाले के दिल में रहे, तो नेकी है, बाहर निकल आए तो बदी है। नोहरी चारों ओर कहती फिरती थी–बेचारा होरी बड़ी मुसीबत में था। बेटी के ब्याह के लिए जमीन रेहन रख रहा था। मैंने उसकी यह दसा देखी, तो मुझे दया आई। धनिया से तो जी जलता था, वह रांड तो मारे घमंड के धरती पर पांव ही नहीं रखती। बेचारा होरी चिंता से घुला जाता था। मैंने सोचा, इस संकट में इसकी कुछ मदद कर दूं। आखिर आदमी ही तो आदमी के काम आता है। और होरी तो अब कोई गैर नहीं है, मानो चाहे न मानो, वह हमारे नातेदार हो चुके। रुपये निकालकर दे दिए, नहीं लड़की अब तक बैठी रहती।

धनिया भला यह जीट कब सुनने लगी थी। रुपये खैरात दिए थे? बड़ी खैरात देने वाली। सूद महाजन भी लेगा, तुम भी लोगी। एहसान काहे का! दूसरों को देती, सूद की जगह मूल भी गायब हो जाता, हमने लिया है, तो हाथ में रुपये आते ही नाक पर रख देंगे। हमीं थे कि तुम्हारे घर का बिस उठाके पी गए, और कभी मुंह पर नहीं लाए। कोई यहां द्वार पर नहीं खड़ा होने देता था। हमने तुम्हारा मरजाद बना लिया, तुम्हारे मुंह की लाली रख ली।

रात के दस बज गए थे। सावन की अंधेरी घटा छाई थी। सारे गांव में अंधकार था। होरी ने भोजन करके तमाखू पिया और सोने जा रहा था कि भोला आकर खड़ा हो गया।

होरी ने पूछा–कैसे चले भोला महतो! जब इसी गांव में रहना है तो क्यों अलग छोटा-सा घर नहीं बना लेते? गांव में लोग कैसी-कैसी कुत्सा उड़ाया करते हैं, क्या यह तुम्हें अच्छा लगता है? बुरा न मानना, तुमसे संबंध हो गया है, इसलिए तुम्हारी बदनामी नहीं सुनी जाती, नहीं मुझे क्या करना था।

धनिया उसी समय लोटे में पानी लेकर होरी के सिरहाने रखने आई। सुनकर बोली–दूसरा मरद होता, तो ऐसी औरत का सिर काट लेता।

होरी ने डांटा–क्यों बे-बात की बात करती है। पानी रख दे और जा सो। आज तू ही कुराह चलने लगे, तो मैं तेरा सिर काट लूंगा? काटने देगी?

धनिया उसे पानी का एक छींटा मारकर बोली–कुराह चले तुम्हारी बहन, मैं क्यों कुराह चलने लगी। मैं तो दुनिया की बात कहती हूं, तुम मुझे गालियां देने लगे। अब मुंह मीठा हो गया होगा। औरत चाहे जिस रास्ते जाय मरद टुकुर-टुकुर देखता रहे। ऐसे मरद को मैं मरद नहीं कहती।

होरी दिल में कटा जाता था। भोला उससे अपना दुख-दर्द कहने आया होगा। वह उल्टे उसी पर टूट पड़ी। जरा गर्म होकर बोला–तू जो सारे दिन अपने ही मन की किया करती है, तो मैं तेरा क्या बिगाड़ लेता हूं? कुछ कहता हूं तो काटने दौड़ती है। यही सोच।

धनिया ने लल्लो-चप्पो करना न सीखा था, बोली—औरत घी का घड़ा लुढ़का दे, घर में आग लगा दे, मरद सह लेगा, लेकिन उसका कुराह चलना कोई मरद न सहेगा।

भोला दुखित स्वर में बोला—तू बहुत ठीक कहती है धनिया। बेसक मुझे उसका सिर काट लेना चाहिए था, लेकिन अब उतना पौरुख तो नहीं रहा। तू चलकर समझा दे, मैं सब कुछ करके हार गया।

'जब औरत को बस में रखने का बूता न था, तो सगाई क्यों की थी? इसी छीछालेदर के लिए? क्या सोचते थे, वह आकर तुम्हारे पैर दबाएगी, तुम्हें चिलम भर-भर पिलाएगी और जब तुम बीमार पड़ोगे, तो तुम्हारी सेवा करेगी? तो ऐसा वही औरत कर सकती है, जिसने तुम्हारे साथ जवानी का सुख उठाया हो। मेरी समझ में यही नहीं आता कि तुम उसे देखकर लट्टू कैसे हो गए! कुछ देखभाल तो कर लिया होता कि किस स्वभाव की है, किस रंग-ढंग की है। तुम तो भूखे सियार की तरह टूट पड़े। अब तो तुम्हारा धरम यही है कि गंड़ासे से उसका सिर काट लो। फांसी ही तो पाओगे। फांसी इस छीछालेदर से अच्छी।'

भोला के खून में कुछ स्फूर्ति आई। बोला—तो तुम्हारी यही सलाह है?

धनिया बोली—हां, मेरी यही सलाह है। अब सौ-पचास बरस तो जीओगे नहीं। समझ लेना, इतनी ही उमिर थी।

होरी ने अब की जोर से फटकारा—चुप रह, बड़ी आई है वहां से सतवंती बनके। जबरदस्ती चिड़िया तक तो पिंजड़े में रहती नहीं, आदमी क्या रहेगा? तुम उसे छोड़ दो भोला और समझ लो, मर गई, और जाकर अपने बाल-बच्चों में आराम से रहो। दो रोटी खाओ और राम का नाम लो। जवानी के सुख अब गए। वह औरत चंचल है, बदनामी और जलन के सिवा तुम उसम कोई सुख न पाओगे।

भोला नोहरी को छोड़ दे, असंभव! नोहरी इस समय भी उसकी ओर रोष-भरी आंखों से तरेरती हुई जान पड़ती थी, लेकिन नहीं, भोला अब उसे छोड़ ही देगा। जैसा कर रही है, उसका फल भोगे।

आंखों में आंसू आ गए। बोला—होरी भैया, इस औरत के पीछे मेरी जितनी सांसत हो रही है, मैं ही जानता हूं। इसी के पीछे कामता से मेरी लड़ाई हुई। बुढ़ापे में यह दाग भी लगना था, वह लग गया। मुझे रोज ताना देती है कि तुम्हारी तो लड़की निकल गई। मेरी लड़की निकल गई, चाहे भाग गई, लेकिन अपने आदमी के साथ पड़ी तो है, उसके सुख-दु:ख की साथिन तो है। इसकी तरह तो मैंने औरत ही नहीं देखी। दूसरों के साथ तो हंसती है, मुझे देखा तो कुप्पे-सा मुंह फुला लिया। मैं गरीब आदमी ठहरा, तीन-चार आने रोज की मजूरी करता हूं। दूध-दही, मांस-मछली, रबड़ी-मलाई कहां से लाऊं!

भोला यहां से प्रतिज्ञा करके अपने घर गए। अब बेटों के साथ रहेंगे, बहुत धक्के खा चुके, लेकिन दूसरे दिन प्रात:काल होरी ने देखा, तो भोला दुलारी सहुआइन की दुकान से तमाखू लिए जा रहे थे।

होरी ने पुकारना उचित न समझा। आसक्ति में आदमी अपने बस में नहीं रहता। वहां से आकर धनिया से बोला—भोला तो अभी वहीं है। नोहरी ने सचमुच इन पर कोई जादू कर दिया है।

धनिया ने नाक सिकोड़कर कहा—जैसी बेहया वह है, वैसा ही बेहया यह। ऐसे मरद को तो चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए। अब वह सेखी न जाने कहां गई। झुनिया यहां आई,

तो उसके पीछे डंडा लिए फिर रहे थे। इज्जत बिगड़ी जाती थी। अब इज्जत नहीं बिगड़ती।

होरी को भोला पर दया आ रही थी। बेचारा इस कुलटा के फेर में पड़कर अपनी जिंदगी बरबाद किए डालता है। छोड़कर जाय भी, तो कैसे? स्त्री को इस तरह छोड़कर जाना क्या सहज है? यह चुड़ैल उसे वहां भी तो चैन से न बैठने देगी। कहीं पंचायत करेगी, कहीं रोटी-कपड़े का दावा करेगी। अभी तो गांव ही के लोग जानते हैं। किसी को कुछ कहते संकोच होता है। कनफुसकियां करके ही रह जाते हैं। तब तो दुनिया भी भोला ही को बुरा कहेगी। लोग यही तो कहेंगे, कि जब मर्द ने छोड़ दिया, तो बेचारी अबला क्या करे? मर्द बुरा हो, तो औरत की गर्दन काट लेगा। औरत बुरी हो, तो मर्द के मुंह में कालिख लगा देगी।

इसके दो महीने बाद एक दिन गांव में यह खबर फैली कि नोहरी ने मारे जूतों के भोला की चांद गंजी कर दी।

वर्षा समाप्त हो गई थी और रबी बोने की तैयारियां हो रही थीं। होरी की ऊख तो नीलाम हो गई थी। ऊख के बीज के लिए उसे रुपये न मिले और ऊख न बोई गई। उधर दाहिना बैल भी बैठाऊ हो गया था और एक नए बैल के बिना काम न चल सकता था। पुनिया का एक बैल नाले में गिरकर मर गया था. तब से और भी अड़चन पड़ गई थी। एक दिन पुनिया के खेत में हल जाता, एक दिन होरी के खेत में। खेतों की जुताई जैसी होनी चाहिए, वैसी न हो पाती थी।

होरी हल लेकर खेत में गया, मगर भोला की चिंता बनी हुई थी। उसने अपने जीवन में कभी यह न सुना था कि किसी स्त्री ने अपने पति को जूते से मारा हो। जूतों से क्या, थप्पड़ या घूंसे से मारने की भी कोई घटना उसे याद न आती थी, और आज नोहरी ने भोला को जूतों स पीटा और सब लोग तमाशा देखते रहे। इस औरत से कैसे उस अभागे का गला छूटे। अब तो भोला को कहीं डूब ही मरना चाहिए। जब जिंदगी में बदनामी और दुरदसा के सिवा और कुछ न हो, तो आदमी का मर जाना ही अच्छा। कौन भोला के नाम को रोने वाला बैठा है। बेटे चाहे किरिया-करम कर दें, लेकिन लोक-लाज के बस, आंसू किसी की आंख में न आएगा। तिरसना के बस में पड़कर आदमी इस तरह अपनी जिंदगी चौपट करता है। जब कोई रोने वाला ही नहीं, तो फिर जिंदगी का क्या मोह और मरने से क्या डरना।

एक यह नोहरी है और यह एक चमारिन है सिलिया। देखने-सुनने में उससे लाख दरजे अच्छी। चाहे दो को खिलाकर खाए और राधिका बनी घूमे, लेकिन मजूरी करती है, भूखों मरती है और मतई के नाम पर बैठी है, और वह निर्दयी बात भी नहीं पूछता। कौन जाने, धनिया मर गई होती, तो आज होरी की भी यही दशा होती। उसकी मौत की कल्पना ही से होरी को रोमांच हो उठा। धनिया की मूर्ति मानसिक नेत्रों के सामने आकर खड़ी हो गई–सेवा और त्याग की देवी। जबान की तेज, पर मोम-जैसा हृदय, पैसे-पैसे के पीछे प्राण देने वाली, पर मर्यादा-रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार। जवानी में वह कम रूपवती न थी। नोहरी उसके सामने क्या है? चलती थी, तो रानी-सी लगती थी। जो देखता था, देखता ही रह जाता था। यही पटेश्वरी और झिंगुरी तब जवान थे। दोनों धनिया को देखकर छाती पर हाथ रख लेते थे। द्वार के सौ-सौ चक्कर लगाते थे। होरी उनकी ताक म रहता था, मगर छेड़ने का कोई बहाना न पाता था, उन दिनों घर में खाने-पीने की बड़ी तंगी थी। पाला पड़ गया था और खेतों में भूसा तक न हुआ था। लोग झड़बेरियां खा-खाकर दिन काटते थे। होरी को कहत के कैंप में काम करने जाना पड़ता था। छः पैसे रोज मिलते थे। धनिया घर में अकेली ही रहती थी, कभी किसी

ने उसे किसी छैला की ओर ताकते नहीं देखा। पटेश्वरी ने एक बार कुछ छेड़ की थी। उसका ऐसा मुंहतोड़ जवाब दिया कि अब तक नहीं भूले।

सहसा उसने मातादीन को अपनी ओर आते देखा। कसाई कहीं का, कैसा तिलक लगाए है, मानो भगवान् का असली भगत है। रंगा हुआ सियार। ऐसे ब्राम्हन को पालागन कौन करे।

मातादीन ने समीप आकर कहा—तुम्हारा दाहिना तो बूढ़ा हो गया होरी, अबकी सिंचाई में न ठहरेगा। कोई पांच साल हुए होंगे इसे लाए?

होरी ने दायें बैल की पीठ पर हाथ रखकर कहा—कैसा पांचवां, यह आठवां चल रहा है भाई! जी तो चाहता है, इसे पिंसिन दे दूं, लेकिन किसान और किसान के बैल इनको जमराज ही पिंसिन दें, तो मिले। इसकी गर्दन पर जुआ रखते मेरा मन कचोटता है। बेचारा सोचता होगा, अब भी छुट्टी नहीं, अब क्या मेरा हाड़ जोतेगा? लेकिन अपना कोई काबू नहीं। तुम कैसे चले? अब तो जी अच्छा है?

मातादीन इधर एक महीने से मलेरिया ज्वर में पड़ा रहा था। एक दिन तो उसकी नाड़ी छूट गई थी। चारपाई से नीचे उतार दिया गया था। तब से उसके मन में यह प्रेरणा हुई थी कि सिलिया के साथ अत्याचार करने का उसे यह दंड मिला है। जब उसने सिलिया को घर से निकाला, तब वह गर्भवती थी। उसे तनिक भी दया न आई। पूरा गर्भ लेकर भी वह मजूरी करती रही। अगर धनिया ने उस पर दया न की होती तो मर गई होती। कैसी-कैसी मुसीबतें झेलकर जी रही है। मजूरी भी तो इस दशा में नहीं कर सकती। अब लज्जित और द्रवित होकर वह सिलिया को होरी के हस्त दो रुपये देने आया है, अगर होरी उसे वह रुपये दे दे, तो वह उसका बहुत उपकार मानेगा।

होरी ने कहा—तुम्हीं जाकर क्यों नहीं दे देते?

मातादीन ने दीन भाव से कहा—मुझे उसके पास मत भेजो होरी महतो। कौन-सा मुंह लेकर जाऊं? डर भी लग रहा है कि मुझे देखकर कहीं फटकार न सुनाने लगे। तुम मुझ पर इतनी दया करो। अभी मुझसे चला नहीं जाता, लेकिन इसी रुपये के लिए एक जजमान के पास कोस-भर दौड़ा गया था। अपनी करनी का फल बहुत भोग चुका। इस बम्हनई का बोझ अब नहीं उठाए उठता। लुक-छिपकर चाहे जितने कुकरम करो, कोई नहीं बोलता। परतच्छ कुछ नहीं कर सकते, नहीं कुल में कलंक लग जायगा। तुम उसे समझा देना दादा, कि मेरा अपराध क्षमा कर दे। यह धरम का बंधन बड़ा कड़ा होता है। जिस समाज में जनमे और पले, उसकी मरजादा का पालन तो करना ही पड़ता है। और किसी जाति का धरम बिगड़ जाय, उसे कोई विशेष हानि नहीं होती, बाम्हन का धरम बिगड़ जाय, तो वह कहीं का नहीं रहता। उसका धरम ही उसके पूरवजों की कमाई है। उसी की वह रोटी खाता है। इस परासचित के पीछे हमारे तीन सौ बिगड़ गए। तो जब बेधरम होकर ही रहना है, तो फिर जो कुछ करना है, परतच्छ करूंगा। समाज के नाते आदमी का अगर कुछ धरम है, तो मनुष्य के नाते भी तो उसका कुछ धरम है। समाज-धरम पालने से समाज आदर करता है, मगर मनुष्य-धरम पालने से तो ईश्वर प्रसन्न होता है।

संध्या समय जब होरी ने सिलिया को डरते-डरते रुपये दिए, तो वह जैसे अपनी तपस्या का वरदान पा गई। दुःख का भार तो वह अकेली उठा सकती थी। सुख का भार तो अकेले नहीं उठता। किसे यह खुशखबरी सुनाए? धनिया से वह अपने दिल की बातें नहीं कह सकती। गांव में और कोई प्राणी नहीं, जिससे उसकी घनिष्ठता हो। उसके पेट में चूहे दौड़ रहे थे। सोना ही उसकी सहेली थी। सिलिया उससे मिलने के लिए आतुर हो गई। रात-भर कैसे सब्र करे? मन में एक

आंधी-सी उठ रही थी। अब वह अनाथ नहीं है। मातादीन ने उसकी बांह फिर पकड़ ली। जीवन-पथ में उसके सामने अब अंधेरी, विकराल मुख वाली खाई नहीं है, लहलहाता हुआ हरा-भरा मैदान है, जिसमें झरने गा रहे हैं और हिरन कुलेलें कर रहे हैं। उसका रूठा हुआ स्नेह आज उन्मत्त हो गया है। मातादीन को उसने मन में कितना पानी पी-पीकर कोसा था। अब वह उनसे क्षमादान मांगेगी। उससे सचमुच बड़ी भूल हुई कि उसने उनको सारे गांव के सामने अपमानित किया। वह तो चमारिन है जाति की हेठी, उसका क्या बिगड़ा। आज दस-बीस लगाकर बिरादरी को रोटी दे दे, फिर बिरादरी में ले ली जायगी। उस बेचारे का तो सदा के लिए धरम नास हो गया। वह मरजाद अब उन्हें फिर नहीं मिल सकता। वह क्रोध में कितनी अंधी हो गई थी कि सबसे उनके प्रेम का ढिंढोरा पीटती फिरी। उनका तो धरम भिरष्ट हो गया था, उन्हें तो क्रोध था ही, उसके सिर पर क्यों भूत सवार हो गया? वह अपने ही घर चली जाती, तो कौन बुराई हो जाती? घर में उसे कोई बांध तो न लेता। देस मातादीन की पूजा इसीलिए तो करता है कि वह नेम-धरम से रहते हैं। वही धरम नस्ट हो गया, तो वह क्यों न उसके खून के प्यासे हो जाते?

जरा देर पहले तक उसकी नजर में सारा दोष मातादीन का था और अब सारा दोष अपना था। सहृदयता ने सहृदयता पैदा की। उसने बच्चे को छाती से लगाकर खूब प्यार किया। अब उसे देखकर लज्जा और ग्लानि नहीं होती। वह अब केवल उसकी दया का पात्र नहीं। वह अब उसके संपूर्ण मातृस्नेह और गर्व का अधिकारी है।

कातिक की रूपहली चांदनी प्रकृति पर मधुर संगीत की भांति छाई थी। सिलिया घर से निकली। वह सोना के पास जाकर यह सुख-संवाद सुनाएगी। अब उससे नहीं रहा जाता। अभी तो सांझ हुई है। डोंगी मिल जायगी। वह कदम बढ़ाती हुई चली। नदी पर आकर देखा, तो डोंगी उस पार थी। और मांझी का कहीं पता नहीं। चांद घुलकर जैसे नदी में बहा जा रहा था। वह एक क्षण खड़ी सोचती रही। फिर नदी में घुस पड़ी। नदी में कुछ ऐसा ज्यादा पानी तो क्या होगा। उस उल्लास के सागर के सामने वह नदी क्या चीज थी? पानी पहले तो घुटनों तक था, फिर कमर तक आया और फिर अंत में गर्दन तक पहुंच गया। सिलिया डरी, कहीं डूब न जाय। कहीं कोई गढ़ा न पड़ जाय, पर उसने जान पर खेलकर पांव आगे बढ़ाया। अब वह मझधार में है। मौत उसके सामने नाच रही है, मगर वह घबड़ाई नहीं है। उसे तैरना आता है। लड़कपन में इसी नदी में वह कितनी बार तैर चुकी है। खड़े-खड़े नदी को पार भी कर चुकी है। फिर भी उसका कलेजा धक-धक कर रहा है, मगर पानी कम होने लगा। अब कोई भय नहीं। उसने जल्दी-जल्दी नदी पार की और किनारे पहुंचकर अपने कपड़े का पानी निचोड़ा और शीत से कांपती आगे बढ़ी। चारों तरफ सन्नाटा था। गीदड़ों की आवाज भी न सुनाई पड़ती थी, और सोना से मिलने की मधुर कल्पना उसे उड़ाए लिए जाती थी।

मगर उस गांव में पहुंचकर उसे सोना के घर जाते संकोच होने लगा। मथुरा क्या कहेगा? उसके घरवाले क्या कहेंगे? सोना भी बिगड़ेगी कि इतनी रात गए तू क्यों आई। देहातों में दिन-भर के थके-मांदे किसान सरेशाम ही से सो जाते हैं। सारे गांव में सोता पड़ गया था। मथुरा के घर के द्वार बंद थे। सिलिया किवाड़ न खुलवा सकी। लोग उसे इस भेष में देखकर क्या कहेंगे? वहीं द्वार पर अलाव में अभी आग चमक रही थी। सिलिया अपने कपड़े सेंकने लगी। सहसा किवाड़ खुला और मथुरा ने बाहर निकलकर पुकारा—अरे। कौन बैठा है अलाव के पास?

सिलिया ने जल्दी से अंचल सिर पर खींच लिया और समीप आकर बोली—मैं हूं, सिलिया।

'सिलिया ! इतनी रात गए कैसे आई? वहां तो सब कुसल है?'

'हां, सब कुसल है। जी घबड़ा रहा था। सोचा, चलूं, सबसे भेंट करती आऊं। दिन को तो छुट्टी ही नहीं मिलती।'

'तो क्या नदी थहाकर आई है?'

'और कैसे आती ! पानी कम था।'

मथुरा उसे अंदर ले गया। बरोठे में अंधेरा था। उसने सिलिया का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा। सिलिया ने झटके से हाथ छुड़ा लिया। और रोब से बोली—देखो मथुरा, छेड़ोगे तो मैं सोना से कह दूंगी। तुम मेरे छोटे बहनोई हो, यह समझ लो। मालूम होता है, सोना से मन नहीं पटता।

मथुरा ने उसकी कमर में हाथ डालकर कहा—तुम बहुत निठुर हो सिल्लो? इस बखत कौन देखता है?

'क्या मैं सोना से सुंदर हूं? अपने भाग नहीं बखानते कि ऐसी इन्दर की परी पा गए। अब भौंरा बनने का मन चला है। उससे कह दूं तो तुम्हारा मुंह न देखे।'

मथुरा लंपट नहीं था, सोना से उसे प्रेम भी था। इस वक्त अंधेरा और एकांत और सिलिया का यौवन देखकर उसका मन चंचल हो उठा था। यह तंबीह पाकर होश में आ गया। सिलिया को छोड़ता हुए बोला—तुम्हारे पैरों में पड़ता हूं सिल्लो, उससे न कहना। अभी जो सजा चाहो, दे लो।

सिल्लो को उस पर दया आ गई। धीरे से उसके मुंह पर चपत जमाकर बोली—इसकी सजा यही है कि फिर मुझसे ऐसी सरारत न करना, न और किसी से करना, नहीं सोना तुम्हारे हाथ से निकल जायगी।

'मैं कसम खाता हूं सिल्लो, अब कभी ऐसा न होगा।'

उसकी आवाज में याचना थी। सिल्लो का मन आंदोलित होने लगा। उसकी दया सरस होने लगी।

'और जो करो?'

'तो तुम जो चाहना करना।'

सिल्लो का मुंह उसके मुंह के पास आ गया था, और दोनों की सांस और आवाज और देह में कंपन हो रहा था। सहसा सोना ने पुकारा—किससे बातें करते हो वहां?

सिल्लो पीछे हट गई। मथुरा आगे बढ़कर आंगन में आ गया और बोला—सिल्लो तुम्हारे गांव से आई है।

सिल्लो भी पीछे-पीछे आकर आंगन में खड़ी हो गई। उसने देखा, सोना यहां कितने आराम से रहती है। ओसारी में खाट है। उस पर सुजनी का नर्म बिस्तर बिछा हुआ है, बिल्कुल वैसा ही, जैसा मातादीन की चारपाई पर बिछा रहता था। तकिया भी है, लिहाफ भी है। खाट के नीचे लोटे में पानी रखा हुआ है। आंगन में ज्योत्स्ना ने आइना-सा बिछा रखा है। एक कोने में तुलसी का चबूतरा है, दूसरी ओर जुआर के ठेठों के कई बोझ दीवार से लगाकर रखे हैं। बीच में पुआलों के गट्ठे हैं। समीप ही ओखल है, जिसके पास कूटा हुआ धान पड़ा हुआ है। खपरैल पर लौकी की बेल चढ़ी हुई है और कई लौकियां ऊपर चमक रही हैं। दूसरी ओर की ओसारी में एक गाय बंधी हुई है। इस खंड में मथुरा और सोना सोते हैं। और लोग दूसरे खंड में होंगे।

सिलिया ने सोचा, सोना का जीवन कितना सुखी है।

सोना उठकर आंगन में आ गई थी, मगर सिल्लो से टूटकर गले नहीं मिली। सिल्लो ने समझा, शायद मथुरा के खड़े रहने के कारण सोना संकोच कर रही है। या कौन जाने, उसे अब अभिमान हो गया हो—सिल्लो चमारिन से गले मिलने में अपना अपमान समझती हो। उसका सारा उत्साह ठंडा हो गया। इस मिलन से हर्ष के बदले उसे ईर्ष्या हुई। सोना का रंग कितना खुल गया है, और देह कैसी कंचन की तरह निखर आई है। गठन भी सुडौल हो गया है। मुख पर गृहिणीत्व की गरिमा के साथ युवती की सहास छवि भी है। सिल्लो एक क्षण के लिए जैसे मंत्र-मुग्ध-सी खड़ी ताकती रह गई। यह वही सोना है, जो सूखी-सी देह लिए, झोंटे खोले इधर-उधर दौड़ा करती थी। महीनों सिर में तेल न पड़ता था। फटे चिथड़े लपेटे फिरती थी। आज अपने घर की रानी है। गले में हंसुली और हुमेल है, कानों में करनफूल और सोने की बालियां, हाथों में चांदी के चूड़े और कंगन। आंखों में काजल है, मांग में सेंदुर। सिलिया के जीवन का स्वर्ग यहीं था, और सोना को वहां देखकर वह प्रसन्न न हुई। इसे कितना घमंड हो गया है! कहां सिलिया के गले में बांहें डाल घास छीलने जाती थी, और आज सीधे ताकती भी नहीं। उसने सोचा था, सोना उसके गले लिपटकर जरा-सा रोएगी, उसे आदर से बैठाएगी, उसे खाना खिलाएगी, और गांव और घर की सैकड़ों बातें पूछेगी और अपने नए जीवन के अनुभव बयान करेगी— सोहागरात और मधुर मिलन की बातें होंगी। और सोना के मुंह में दही जमा हुआ है। वह यहां आकर पछताई।

आखिर सोना ने रूखे स्वर में पूछा—इतनी रात को कैसे चलीं, सिल्लो?

सिल्लो ने आंसुओं को रोकने की चेष्टा करके कहा—तुमसे मिलने को बहुत जी चाहता था। इतने दिन हो गए, भेंट करने चली आई।

सोना का स्वर और कठोर हुआ—लेकिन आदमी किसी के घर जाता है, तो दिन को कि इतनी रात गए?

वास्तव में सोना को उसका आना बुरा लग रहा था। वह समय उसकी प्रेम-क्रीड़ा और हास-विलास का था, सिल्लो ने उसमें बाधक होकर जैसे उसके सामने से परोसी हुई थाली खींच ली थी।

सिल्लो निःसंज्ञ-सी भूमि की ओर ताक रही थी। धरती क्यों नहीं फट जाती कि वह उसमें समा जाय। इतना अपमान! उसने अपने इतने ही जीवन में बहुत अपमान सहा था, बहुत दुर्दशा देखी थी, लेकिन आज यह फांस जिस तरह उसके अंतःकरण में चुभ गई, वैसी कभी कोई बात न चुभी थी। गुड़ घर के अंदर मटकों में बंद रखा हो, तो कितना ही मूसलाधार पानी बरसे, कोई हानि नहीं होती, पर जिस वक्त वह धूप में सूखने के लिए बाहर फैलाया गया हो, उस वक्त तो पानी का एक छींटा भी उसका सर्वनाश कर देगा। सिलिया के अंतःकरण की सारी कोमल भावनाएं इस वक्त मुंह खोले बैठी थीं कि आकाश से अमृत-वर्षा होगी। बरसा क्या, अमृत के बदले विष, और सिलिया के रोम-रोम में दौड़ गया। सर्प-दंश के समान लहरें आईं। घर में उपवास करे सो रहना और बात है, लेकिन पंगत से उठा दिया जाना तो डूब मरने की बात है। सिलिया को यहां एक क्षण ठहरना भी असह्य हो गया, जैसे कोई उसका गला दबाए हुए हो। वह कुछ न पूछ सकी। सोना के मन में क्या है, यह वह भांप रही थी। वह बांबी में बैठा हुआ सांप कहीं बाहर न निकल आए, इसके पहले ही वह वहां से भाग जाना चाहती थी। कैसे

भागे, क्या बहाना करे? उसके प्राण क्यों नहीं निकल जाते!

मथुरा ने भंडारे की कुंजी उठा ली थी कि सिलिया के जलपान के लिए कुछ निकाल लाए, कर्त्तव्यविमूढ़-सा खड़ा था। इधर सिल्लो की सांस टंगी हुई थी, मानो सिर पर तलवार लटक रही हो।

सोना की दृष्टि में सबसे बड़ा पाप किसी पुरुष का पर-स्त्री और स्त्री का पर-पुरुष की ओर ताकना था। इस अपराध के लिए उसके यहां कोई क्षमा न थी। चोरी, हत्या, जाल, कोई अपराध इतना भीषण न था। हंसी-दिल्लगी को वह बुरा न समझती थी, अगर खुले हुए रूप में हो, लुके-छिपे की हंसी-दिल्लगी को भी वह हेय समझती थी, छुटपन से ही वह बहुत-सी रीति की बातें जानने और समझने लगी थी। होरी को जब कभी हाट से घर आने में देर हो जाती थी और धनिया को पता लग जाता था कि वह दुलारी सहुआइन की दुकान पर गया था, चाहे तंबाखू लेने ही क्यों न गया हो, तो वह कई-कई दिन तक होरी से बोलती न थी और न घर का काम करती थी। एक बार इसी बात पर वह अपने नैहर भाग गई थी। यह भावना सोना में और तीव्र हो गई थी: जब तक उसका विवाह न हुआ था, यह भावना उतनी बलवान न थी, पर विवाह हो जाने के बाद तो उसने व्रत का रूप धारण कर लिया था। ऐसे स्त्री-पुरुषों की अगर खाल भी खींच ली जाती, तो उसे दया न आती। प्रेम के लिए दांपत्य के बाहर उसकी दृष्टि में कोई स्थान न था। स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे के साथ जो कर्त्तव्य है, इसी को वह प्रेम समझती थी। फिर सिल्लो से उसका बहन का नाता था। सिल्लो को वह प्यार करती थी, उस पर विश्वास करती थी। वही सिल्लो आज उससे विश्वासघात कर रही है। मथुरा और सिल्लो में अवश्य ही पहले से सांठ-गांठ होगी। मथुरा उससे नदी के किनारे खेतों में मिलता होगा। और आज वह इतनी रात गए नदी पार करके इसीलिए आई है। अगर उसने इन दोनों की बातें न सुन ली होतीं, तो उसे खबर तक न होती। मथुरा ने प्रेम-मिलन के लिए यही अवसर सबसे अच्छा समझा होगा। घर में सन्नाटा जो है। उसका हृदय सब कुछ जानने के लिए विकल हो रहा था। वह सारा रहस्य जान लेना चाहती थी, जिससे अपनी रक्षा के लिए कोई विधान सोच सके। और यह मथुरा यहां क्यों खड़ा है? क्या वह उसे कुछ बोलने भी न देगा?

उसने रोष से कहा—तुम बाहर क्यों नहीं जाते, या यहीं पहरा देते रहोगे?

मथुरा बिना कुछ कहे बाहर चला गया। उसके प्राण सूखे जाते थे कि कहीं सिल्लो सब कुछ न कह डाले।

और सिल्लो के प्राण सूखे जाते थे कि अब वह लटकती हुई तलवार सिर पर गिरा चाहती है।

तब सोना ने बड़े गंभीर स्वर में सिल्लो से पूछा—देखो सिल्लो, मुझसे साफ-साफ बता दो, नहीं मैं तुम्हारे सामने, यहीं अपनी गर्दन पर गंड़ासा मार लूंगी। फिर तुम मेरी सौत बनकर राज करना। देखो, गंड़ासा वह सामने पड़ा है। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।

उसने लपककर सामने आंगन में से गंड़ासा उठा लिया और उसे हाथ में लिए, फिर बोली—यह मत समझना कि मैं खाली धमकी दे रही हूं। क्रोध में मैं क्या कर बैठूं, नहीं कह सकती। साफ-साफ बता दो।

सिलिया कांप उठी। एक-एक शब्द उसके मुंह से निकल पड़ा, मानो ग्रामोफोन में भरी हुई आवाज हो। वह एक शब्द भी न छिपा सकी, सोना के चेहरे पर भीषण संकल्प खेल रहा

था, मानो खून सवार हो।

सोना ने उसकी ओर बरछी की-सी चुभने वाली आंखों से देखा और मानो कटार का आघात करती हुई बोली—ठीक-ठीक कहती हो?

'बिल्कुल ठीक। अपने बच्चे की कसम।'

'कुछ छिपाया तो नहीं?'

'अगर मैंने रत्ती-भर छिपाया हो तो आंखें फूट जाएं।'

'तुमने उस पापी को लात क्यों नहीं मारी? उसे दांत क्यों नहीं काट लिया? उसका खून क्यों नहीं पी लिया, चिल्लाई क्यों नहीं?'

सिल्लो क्या जवाब दे।

सोना ने उन्मादिनी की भांति अंगारे की-सी आंखें निकालकर कहा—बोलती क्यों नहीं? क्यों तूने उसकी नाक दांतों से नहीं काट ली? क्यों नहीं दोनों हाथों से उसका गला दबा दिया? तब मैं तेरे चरणों पर सिर झुकाती। अब तो तुम मेरी आंखों में हरजाई हो, निरी बेसवा! अगर यही करना था, तो मातादीन का नाम क्यों कलंकित कर रही है, क्यों किसी को लेकर बैठ नहीं जाती, क्यों अपने घर नहीं चली गई? यही तो तेरे घर वाले चाहते थे। तू उपले और घास लेकर बाजार जाती, वहां से रुपये लाती और तेरा बाप बैठा, उसी रुपये की ताड़ी पीता। फिर क्यों उस ब्राह्मन का अपमान कराया? क्यों उसकी आबरू में बट्टा लगाया? क्यों सतवंती बनी बैठो हो? जब अकेले नहीं रहा जाता, तो किसी से सगाई क्यों नहीं कर लेती! क्यों नदी-तालाब में डूब नहीं मरती? क्यों दूसरों के जीवन में बिस घोलती है? आज मैं तुझसे कह देती हूं कि अगर इस तरह की बात फिर हुई और मुझे पता लगा, तो तीनों में से एक भी जीते न रहेंगे। बस, अब मुंह में कालिख लगाकर जाओ। आज से मेरे और तुम्हारे बीच में कोई नाता नहीं रहा।

सिल्लो धीरे से उठी और संभलकर खड़ी हुई। जान पड़ा, उसकी कमर टूट गई है। एक क्षण साहस बटोरती रही, किंतु अपनी सफाई में कुछ सूझ न पड़ा। आंखों के सामने अंधेरा था, सिर में चक्कर, कंठ सूख रहा था, और सारी देह सुन्न हो गई थी, मानो रोम-छिद्रों से प्राण उड़े जा रहे हों। एक-एक पग इस तरह रखती हुई, मानो सामने गड्ढा है, तब बाहर आई और नदी की ओर चली।

द्वार पर मथुरा खड़ा था। बोला—इस वक्त कहां जाती हो सिल्लो?

सिल्लो ने कोई जवाब न दिया। मथुरा ने भी फिर कुछ न पूछा।

वही रुपहली चांदनी अब भी छाई हुई थी। नदी की लहरें अब भी चांद की किरणों में नहा रही थीं। और सिल्लो विक्षिप्त-सी स्वप्न-छाया की भांति नदी में चली जा रही थी।

तीस

मिल करीब-करीब पूरी जल चुकी है, लेकिन उसी मिल को फिर से खड़ा करना होगा। मिस्टर खन्ना ने अपनी सारी कोशिशें इसके लिए लगा दी हैं। मजदूरों की हड़ताल जारी है, मगर अब उससे मिल-मालिकों को कोई विशेष हानि नहीं है। नए आदमी कम वेतन पर मिल गए हैं और

जी तोड़कर काम करते हैं, क्योंकि उनमें सभी ऐसे हैं, जिन्होंने बेकारी के कष्ट भोग लिये हैं और अब अपना बस चलते ऐसा कोई काम करना नहीं चाहते जिससे उनकी जीविका में बाधा पड़े। चाहे जितना काम लो, चाहे जितनी कम छुट्टियां दो, उन्हें कोई शिकायत नहीं। सिर झुकाए बैलों की तरह काम में लगे रहते हैं। घुड़कियां, गालियां, यहां तक कि डंडों की मार भी उनमें ग्लानि नहीं पैदा करती, और अब पुराने मजदूरों के लिए इसके सिवा कोई मार्ग नहीं रह गया है कि वह इसी घटी हुई मजूरी पर काम करने आएं और खन्ना साहब की खुशामद करें। पंडित ओंकारनाथ पर तो उन्हें अब रत्ती-भर भी विश्वास नहीं है। उन्हें वे अकेले-दुकेले पाएं तो शायद उनकी बुरी गत बनाएं, पर पंडितजी बहुत बचे हुए रहते हैं। चिराग जलने के बाद अपने कार्यालय से बाहर नहीं निकलते और अफसरों की खुशामद करने लगे हैं। मिर्जा खुर्शेद की धाक अब भी ज्यों-की-त्यों हैं, लेकिन मिर्जाजी इन बेचारों का कष्ट और उसके निवारण का अपने पास कोई उपाय न देखकर दिल से चाहते हैं कि सब-के-सब बहाल हो जायं, मगर इसके साथ ही नए आदमियों के कष्ट का खयाल करके जिज्ञासुओं से यही कह दिया करते हैं कि जैसी इच्छा हो, वैसा करो।

मिस्टर खन्ना ने पुराने आदमियों को फिर नौकरी के लिए इच्छुक देखा, तो और भी अकड़ गए, हालांकि वह मन से चाहते थे कि इस वेतन पर पुराने आदमी नयों से कहीं अच्छे हैं। नए आदमी अपना सारा जोर लगाकर भी पुराने आदमियों के बराबर काम न कर सकते थे। पुराने आदमियों में अधिकांश तो बचपन से ही मिल में काम करने के अभ्यस्त थे और खूब मंजे हुए। नए आदमियों में अधिकतर देहातों के दु:खी किसान थे, जिन्हें खुली हवा और मैदान में पुराने जमाने के लकड़ी के औजारों से काम करने की आदत थी। मिल के अंदर उनका दम घुटता था और मशीनरी के तेज चलने वाले पुर्जों से उन्हें भय लगता था।

आखिर जब पुराने आदमी खूब परास्त हो गए, तब खन्ना उन्हें बहाल करने पर राजी हुए, मगर नए आदमी इससे भी कम वेतन पर भी काम करने के लिए तैयार थे और अब डायरेक्टरों के सामने यह सवाल आया कि वह पुरानों को बहाल करें या नयों को रहने दें। डायरेक्टरों में आधे तो नये आदमियों का वेतन घटाकर रखने के पक्ष में थे, आधों की यह धारणा थी कि पुराने आदमियों को हाल के वेतन पर रख लिया जाय। थोड़े-से रुपये ज्यादा खर्च होंगे जरूर, मगर काम उससे कहीं ज्यादा होगा। खन्ना मिल के प्राण थे, एक तरह से सर्वेसर्वा। डायरेक्टर तो उनके हाथ की कठपुतलियां थे। निश्चय खन्ना ही के हाथों में था और वह अपने मित्रों से नहीं, शत्रुओं से भी इस विषय में सलाह ले रहे थे। सबसे पहले तो उन्होंने गोविन्दी की सलाह ली। जब से मालती की ओर से उन्हें निराशा हो गई थी और गोविन्दी को मालूम हो गया था कि मेहता जैसा विद्वान और अनुभवी और ज्ञानी आदमी मेरा कितना सम्मान करता है और मुझसे किस प्रकार की साधना की आशा रखता है, तब से दंपति में स्नेह फिर जाग उठा था। स्नेह न कहो, मगर साहचर्य तो था ही। आपस में वह जलन और अशांति न थी। बीच की दीवार टूट गई थी।

मालती के रंग-ढंग की भी कायापलट होती जाती थी। मेहता का जीवन अब तक स्वाध्याय और चिंतन में गुजरा था, और सब कुछ पढ़ चुकने के बाद और आत्मवाद और अनात्मवाद की खूब छान-बीन कर लेने पर वह इसी तत्त्व पर पहुंच जाते थे कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों के बीच में जो सेवा-मार्ग है, चाहे उसे कर्मयोग ही कहो, वही जीवन को सार्थक कर सकता है, वही जीवन को ऊंचा और पवित्र बना सकता है। किसी सर्वज्ञ ईश्वर में उनका

विश्वास न था। यद्यपि वह अपनी नास्तिकता को प्रकट न करते थे, इसलिए कि इस विषय में निश्चित रूप से कोई मत स्थिर करना वह अपने लिए असंभव समझते थे, पर यह धारणा उनके मन में दृढ़ हो गई थी कि प्राणियों के जन्म-मरण, सुख-दुःख, पाप-पुण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है। उनका खयाल था कि मनुष्य ने अपने अहंकार में अपने को इतना महान् बना लिया है कि उसके हर एक काम की प्रेरणा ईश्वर की ओर से होती है। इसी तरह वह टिड्डियां भी ईश्वर को उत्तरदायी ठहराती होंगी, जो अपने मार्ग में समुद्र आ जाने पर अरबों की संख्या में नष्ट हो जाती हैं। मगर ईश्वर के यह विधान इतने अज्ञेय हैं कि मनुष्य की समझ में नहीं आते, तो उन्हें मानने से ही मनुष्य को क्या संतोष मिल सकता है। ईश्वर की कल्पना का एक ही उद्देश्य उनकी समझ में आता था और वह था मानव-जीवन की एकता। एकात्मवाद या सर्वात्मवाद या अहिंसा-तत्त्व को वह आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं, भौतिक दृष्टि से ही देखते थे, यद्यपि इन तत्त्वों का इतिहास के किसी काल में भी आधिपत्य नहीं रहा, फिर भी मनुष्य-जाति के सांस्कृतिक विकास में उनका स्थान बड़े महत्त्व का है। मानव-समाज की एकता में मेहता का दृढ़ विश्वास था, मगर इस विश्वास के लिए उन्हें ईश्वर-तत्त्व के मानने की जरूरत न मालूम होती थी। उनका मानव-प्रेम इस आधार पर अवलंबित न था कि प्राणि-मात्र में एक आत्मा का निवास है। द्वैत और अद्वैत व्यावहारिक महत्त्व के सिवा वह और कोई उपयोग न समझते थे, और वह व्यावहारिक महत्व उनके लिए मानव-जाति को एक दूसरे के समीप लाना, आपस के भेद-भाव को मिटाना और भ्रातृ-भाव को दृढ़ करना ही था। यह एकता, यह अभिन्नता उनकी आत्मा में इस तरह जम गई थी कि उनके लिए किसी आध्यात्मिक आधार की सृष्टि उनकी दृष्टि में व्यर्थ थी और एक बार इस तत्त्व को पाकर वह शांत न बैठ सकते थे। स्वार्थ से अलग अधिक-से-अधिक काम करना उनके लिए आवश्यक हो गया था। इसके बगैर उनका चित्त शांत न हो सकता था। यश, लाभ या कर्त्तव्यपालन के भाव उनके मन में आते ही न थे। इनकी तुच्छता ही उन्हें इनसे बचाने के लिए काफी थी। सेवा ही अब उनका स्वार्थ होती जाती थी। और उनकी इस उदार वृत्ति का असर अज्ञात रूप से मालती पर भी पड़ता जाता था। अब तक जितने मर्द उसे मिले, सभी ने उसकी विलास वृत्ति को ही उकसाया। उसकी त्याग वृत्ति दिन-दिन क्षीण होती जाती थी, पर मेहता के संसर्ग में आकर उसकी त्याग-भावना सजग हो उठी थी। सभी मनस्वी प्राणियों में यह भावना छिपी रहती है और प्रकाश पाकर चमक उठती है। आदमी अगर धन या नाम के पीछे पड़ा है, तो समझ लो कि अभी तक वह किसी परिष्कृत आत्मा के संपर्क में नहीं आया। मालती अब अक्सर गरीबों के घर बिना फीस लिए ही मरीजों को देखने चली जाती थी। मरीजों के साथ उसके व्यवहार में मृदुता आ गई थी। हां, अभी तक वह शौक-सिंगार से अपना मन न हटा सकती थी। रंग और पाउडर का त्याग उसे अपने आंतरिक परिवर्तनों से भी कहीं ज्यादा कठिन जान पड़ता था।

इधर कभी-कभी दोनों देहातों की ओर चले जाते थे और किसानों के साथ दो-चार घंटे रहकर, कभी-कभी उनके झोंपड़ों में रात काटकर, और उन्हीं का-सा भोजन करके, अपने को धन्य समझते थे। एक दिन वह सेमरी तक पहुंच गए और घूमते-घामते बेलारी जा निकले। होरी द्वार पर बैठा चिलम पी रहा था कि मालती और मेहता आकर खड़े हो गए। मेहता ने होरी को देखते ही पहचान लिया और बोला—यही तुम्हारा गांव है? याद है, हम लोग रायसाहब के यहां आए थे और तुम धनुषयज्ञ की लीला में माली बने थे।

होरी की स्मृति जाग उठी। पहचाना और पटेश्वरी के घर की ओर कुरसियां लाने चला।

मेहता ने कहा—कुरसियों का कोई काम नहीं। हम लोग इसी खाट पर बैठे जाते हैं। यहां कुरसी पर बैठने नहीं, तुमसे कुछ सीखने आए हैं।

दोनों खाट पर बैठे। होरी हतबुद्धि-सा खड़ा था। इन लोगों की क्या खातिर करे! बड़े-बड़े आदमी हैं। उनकी खातिर करने लायक उसके पास है ही क्या?

आखिर उसने पूछा—पानी लाऊं?

मेहता ने कहा—हां, प्यास तो लगी है।

'कुछ मीठा भी लेता आऊं?'

'लाओ, अगर घर में हो।'

होरी घर में मीठा और पानी लेने गया। तब तक गांव के बालकों ने आकर इन दोनों आदमियों को घेर लिया और लगे निरखने, मानो चिड़ियाघर के अनोखे जंतु आ गए हों।

सिल्लो बच्चे को लिए किसी काम से चली जा रही थी। इन दोनों आदमियों को देखकर कौतूहलवश ठिठक गई।

मालती ने आकर उसके बच्चे को गोद में ले लिया और प्यार करती हुई बोली—कितने दिनों का है?

सिल्लो को ठीक न मालूम था। एक दूसरी औरत ने बताया—कोई साल-भर का होगा, क्यों री?

सिल्लो ने समर्थन किया।

मालती ने विनोद किया—प्यारा बच्चा है। इसे हमें दे दो।

सिल्लो ने गर्व से फूलकर कहा—आप ही का तो है।

'तो मैं इसे ले जाऊं?'

'ले जाइए। आपके साथ रहकर आदमी हो जायगा।'

गांव की और महिलाएं आ गईं और मालती को होरी के घर में ले गईं। यहां मरदों के सामने मालती से वार्तालाप करने का अवसर उन्हें न मिलता। मालती ने देखा, खाट बिछी है, और उस पर एक दरी पड़ी हुई है, जो पटेश्वरी के घर से मांगकर आई थी, मालती जाकर बैठी। संतान-रक्षा और शिशु-पालन की बातें होने लगीं। औरतें मन लगाकर सुनती रहीं।

धनिया ने कहा—यहां यह सब सफाई और संजम कैसे होगा सरकार! भोजन तक का ठिकाना तो है नहीं।

मालती ने समझाया—सफाई में कुछ खर्च नहीं। केवल थोड़ी-सी मेहनत और होशियारी से काम चल सकता है।

दुलारी सहुआइन ने पूछा—यह सारी बातें तुम्हें कैसे मालूम हुईं सरकार, आपका तो अभी ब्याह ही नहीं हुआ?

मालती ने मुस्कराकर पूछा—तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मेरा ब्याह नहीं हुआ है?

सभी स्त्रियां मुंह फेरकर मुस्कराईं। पुनिया बोली—भला, यह भी छिपा रहता है, मिस साहब, मुंह देखते ही पता चल जाता है।

मालती ने झेंपते हुए कहा—इसलिए ब्याह नहीं किया कि आप लोगों की सेवा कैसे करती!

सबने एक स्वर में कहा– धन्य हो सरकार, धन्य हो।

सिलिया मालती के पांव दबाने लगी –सरकार कितनी दूर से आई हैं, थक गई होंगी।

मालती ने पांव खींचकर कहा – नहीं–नहीं, मैं थकी नहीं हूं। मैं तो हवागाड़ी पर आई हूं। मैं चाहती हूं, आप लोग अपने बच्चे लाएं, तो मैं उन्हें देखकर आप लोगों को बताऊं कि आप इन्हें कैसे तंदुरुस्त और नीरोग रख सकती हैं।

जरा देर में बीस-पच्चीस बच्चे आ गए। मालती उनकी परीक्षा करने लगी। कई बच्चों की आंखें उठी थीं, उनकी आंखों में दवा डाली। अधिकतर बच्चे दुर्बल थे, जिसका कारण था, माता -पिता को भोजन अच्छा न मिलना। मालती को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि बहुत कम घरों में दूध होता था। घी के तो मानों दर्शन नहीं होते।

मालती ने यहां भी उन्हें भोजन करने का महत्त्व समझाया, जैसा वह सभी गांवों में किया करती थी। उसका जी इसलिए जलता था कि ये लोग अच्छा भोजन क्यों नहीं करते? उसे ग्रामीणों पर क्रोध आ जाता था। क्या तुम्हारा जन्म इसीलिए हुआ है कि तुम मर मरकर कमाओ और जो कुछ पैदा हो, उसे खा न सको? जहां दो-चार बैलों के लिए भोजन है, एक-दो गाय-भैंसों के लिए चारा नहीं है? क्यों ये लोग भोजन को जीवन की मुख्य वस्तु न समझकर उसे केवल प्राण-रक्षा की वस्तु समझते हैं? क्यों सरकार से नहीं कहते कि नाम-मात्र के ब्याज पर रुपये देकर उन्हें सूदखोर महाजनों के पंजे से बचाए? उसने जिस किसी से पूछा, यही मालूम हुआ कि उनकी कमाई का बड़ा भाग महाजनों का कर्ज चुकाने में खर्च हो जाता है। बटवारे का मरज भी बढ़ता जाता था। आपस में इतना वैमनस्य था कि शायद ही कोई दो भाई एक साथ रहते हों। उनकी इस दुर्दशा का कारण बहुत कुछ उनकी संकीर्णता और स्वार्थपरता थी। मालती इन्हीं विषयों पर महिलाओं से बातें करती रही। उनकी श्रद्धा सत्य देखकर उसके मन में सेवा की प्रेरणा और भी प्रबल हो रही थी। इस त्यागमय जीवन के सामने उसका विलासी जीवन कितना तुच्छ और बनावटी था। आज उसके वह रेशमी कपड़े, जिन पर जरी का काम था, और वह गंध से महकता हुआ शरीर, और वह पाउडर से अलंकृत मुख-मंडल, उसे लज्जित करने लगा। उसकी कलाई पर बंधी सोने की घड़ी जैसे अपने अपलक नेत्रों से उसे घूर रही थी। उसके गले में चमकता हुआ जड़ाऊ नकलेस मानो उसका गला घोंट रहा था। इन त्याग और श्रद्धा की देवियों के सामने वह अपनी दृष्टि में नीची लग रही थी। वह इन ग्रामीणों से बहुत सी बातें ज्यादा जानती थी, समय की गति ज्यादा पहचानती थी, लेकिन जिन परिस्थितियों में ये गरीबिन जीवन को सार्थक कर रही हैं, उनमें क्या वह एक दिन भी रह सकती है? जिनमें अहंकार का नाम नहीं, दिन-भर काम करती हैं, उपवास करती हैं, रोती हैं, फिर भी इतनी प्रसन्न-मुख! दूसरे उनके लिए इतने अपने हो गए हैं कि अपना अस्तित्व ही नहीं रहा। उनका अपनापन अपने लड़कों में, अपने पति में, अपने संबंधियों में है। इस भावना की रक्षा करते हुए- इसी भावना का क्षेत्र और बढ़ाकर- भावी नारीत्व का आदर्श निर्माण होगा। जागृत देवियों में इसकी जगह आत्म-सेवन का जो भाव आ बैठा है– सब कुछ अपने लिए अपने भोग-विलास के लिए – उससे तो यह सुषुप्तावस्था ही अच्छी। पुरुष निर्दयी है, माना, लेकिन है तो इन्हीं माताओं का बेटा। क्यों माता ने पुत्र को ऐसी शिक्षा नहीं दी कि वह माता की स्त्री-जाति की पूजा करता? इसीलिए कि माता को यह शिक्षा देनी नहीं आती, इसीलिए कि उसने अपने को इतना मिटाया कि उसका रूप ही बिगड़ गया, उसका व्यक्तित्व ही नष्ट हो गया।

नहीं, अपने को मिटाने से काम न चलेगा। नारी को समाज-कल्याण के लिए अपने अधिकारों की रक्षा करनी पड़ेगी, उसी तरह जैसे इन किसानों को अपनी रक्षा के लिए इस देवत्व का कुछ

त्याग करना पड़ेगा।

संध्या हो गई थी। मालती को औरतें अब तक घेरे हुए थीं। उसकी बातों से जैसे उन्हें तृप्ति ही न होती थी। कई औरतों ने उससे रात को यहीं रहने का आग्रह किया। मालती को भी उसका सरल स्नेह ऐसा प्यारा लगा कि उसने उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। रात को औरतें उसे अपना गाना सुनाएंगी। मालती ने भी प्रत्येक घर में जा-जाकर उनकी दशा से परिचय प्राप्त करने में अपने समय का सदुपयोग किया। उसकी निष्कपट सद्भावना और सहानुभूति उन गंवारिनों के लिए देवी के वरदान से कम न थी।

उधर मेहता साहब खाट पर आसन जमाए किसानों की कुश्ती देख रहे थे। पछता रहे थे, मिर्जाजी को क्यों न साथ ले लिया, नहीं उनका भी एक जोड़ हो जाता। उन्हें आश्चर्य हो रहा था, ऐसे प्रौढ़ और निरीह बालकों के साथ शिक्षित कहलाने वाले लोग कैसे निर्दयी हो जाते हैं। अज्ञान की भांति ज्ञान भी सरल, निष्कपट और सुनहले स्वप्न देखने वाला होता है। मानवता में उसका विश्वास इतना दृढ़, इतना सजीव होता है कि वह इसके विरुद्ध व्यवहार को अमानुषिक समझने लगता है। वह यह भूल जाता है कि भेड़ियों ने भेड़ों की निरीहता का जवाब सदैव पंजों और दांतों मे दिया है। वह अपना एक आदर्श-संसार बनाकर उसको आदर्श मानवता से आबाद करता है और उसी में मग्न रहता है। यथार्थता कितनी अगम्य, कितनी दुर्बोध, कितनी अप्राकृतिक है, उसकी ओर विचार करना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। मेहताजी इस समय इन गंवारों के बीच में बैठे हुए इसी प्रश्न को हल कर रहे थे कि इनकी दशा इतनी दयनीय क्यों है? वह उस सत्य से आंखें मिलाने का साहस न कर सकते थे कि इनका देवत्व ही इनकी दुर्दशा का कारण है। काश, ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते, तो यों न ठुकराए जाते। देश में कुछ भी हो, क्रांति ही क्यों न आ जाय, इनसे कोई मतलब नहीं। कोई दल उनके सामने सबल के रूप में आए उसके सामने सिर झुकाने को तैयार। उनकी निरीहता जड़ता की हद तक पहुंच गई है, जिसे कठोर आघात ही कर्मण्य बना सकता है। उनकी आत्मा जैसे चारों ओर से निराश होकर अब अपने अंदर ही टांगें तानकर बैठ गई है। उनमें अपने जीवन की चेतना ही जैसे लुप्त हो गई है।

संध्या हो गई थी। जो लोग अब तक खेतों में काम कर रहे थे, वे दौड़े चले आ रहे थे। उसी समय मेहता ने मालती को गांव की कई औरतों के साथ इस तरह तल्लीन होकर एक बच्चे को गोद में लिए देखा, मानो वह भी उन्हीं में से एक है। मेहता का हृदय आनंद से गद्गद हो उठा। मालती ने एक प्रकार से अपने को मेहता पर अर्पण कर दिया था। इस विषय में मेहता को अब कोई संदेह न था, मगर अभी तक उनके हृदय में मालती के प्रति वह उत्कट भावना जागृत न हुई थी, जिसके बिना विवाह का प्रस्ताव करना उनके लिए हास्यजनक था। मालती बिना बुलाए मेहमान की भांति उनके द्वार पर आकर खड़ी हो गई थी, और मेहता ने उसका स्वागत किया था। इसमें प्रेम का भाव न था, केवल पुरुषत्व का भाव था। अगर मालती उन्हें इस योग्य समझती है कि उन पर अपनी कृपा-दृष्टि फेरे, तो मेहता उसकी इस कृपा को अस्वीकार न कर सकते थे। इसके साथ ही वह मालती को गोविन्दी के रास्ते से हटा देना चाहते थे और वह जानते थे, मालती जब तक आगे पांव न जमा लेगी, वह पिछला पांव न उठाएगी। वह जानते थे, मालती के साथ छल करके वह अपनी नीचता का परिचय दे रहे हैं। इसके लिए उनकी आत्मा उन्हें बराबर धिक्कारती रही थी, मगर ज्यों-ज्यों वह मालती को निकट से देखते थे, उनके मन में आकर्षण बढ़ता जाता था। रूप का आकर्षण तो उन पर कोई असर न कर सकता था।

यह गुण का आकर्षण था। वह यह जानते थे, जिसे सच्चा प्रेम कह सकते हैं, केवल एक बंधन में बंध जाने के बाद ही पैदा हो सकता है। इसके पहले जो प्रेम होता है, वह तो रूप की आसक्ति-मात्र है, जिसका कोई टिकाव नहीं, मगर इसके पहले यह निश्चय तो कर लेना ही था कि जो पत्थर साहचर्य के खराद पर चढ़ेगा, उसमें खरादे जाने की क्षमता है भी या नहीं। सभी पत्थर तो खराद पर चढ़कर सुंदर मूर्तियां नहीं बन जाते। इतने दिनों में मालती ने उनके हृदय के भिन्न-भिन्न भागों में अपनी रश्मियां डाली थीं, पर अभी तक वे केंद्रित होकर उस ज्वाला के रूप में न फूट पड़ी थीं, जिसमें उनका सारा अंतस्तल प्रज्ज्वलित हो जाता। आज मालती ने ग्रामीणों में मिलकर और सारे भेद-भाव मिटाकर इन रश्मियों को मानो केंद्रित कर दिया। और आज पहली बार मेहता को मालती से एकात्मता का अनुभव हुआ। ज्योंही मालती गांव का चक्कर लगाकर लौटी, उन्होंने उसे साथ लेकर नदी की ओर प्रस्थान किया। रात यहीं काटने का निश्चय हो गया। मालती का कलेजा आज न जाने क्यों धक्-धक् करने लगा। मेहता के मुख पर आज उसे एक विचित्र ज्योति और इच्छा झलकती हुई नजर आई।

नदी के किनारे चांदी का फर्श बिछा हुआ था और नदी रत्न-जटित आभूषण पहने मीठे स्वरों में गाती, चांद को और तारों को और सिर झुकाए नींद में माते वृक्षों को अपना नृत्य दिखा रही थी। मेहता प्रकृति की उस मादक शोभा से जैसे मस्त हो गए। जैसे उनका बालपन अपनी सारी क्रीड़ाओं के साथ लौट आया हो। बालू पर कई कुलाटें मारीं। फिर दौड़े हुए नदी में जाकर घुटनों तक पानी में खड़े हो गए।

मालती ने कहा—पानी में न खड़े हो। कहीं ठंड न लग जाए।

मेहता ने पानी उछालकर कहा—मेरा तो जी चाहता है, नदी के उस पार तैरकर चला जाऊं।

'नहीं-नहीं, पानी से निकल आओ। मैं न जाने दूंगी।'

'तुम मेरे साथ न चलोगी उस सूनी बस्ती में, जहां स्वप्नों का राज्य है?'

'मुझे तो तैरना नहीं आता।'

'अच्छा, आओ, एक नाव बनाएं, और उस पर बैठकर चलें।'

वह बाहर निकल आए। आस-पास बड़ी दूर तक झाऊ का जंगल खड़ा था। मेहता ने जेब से चाकू निकाला और बहुत-सी टहनियां काटकर जमा कीं। कगार पर सरपत के जूटे खड़े थे। ऊपर चढ़कर सरपत का एक गट्ठा काट लाए और वहीं बालू के फर्श पर बैठकर सरपत की रस्सी बटने लगे। ऐसे प्रसन्न थे, मानो स्वर्गारोहण की तैयारी कर रहे हैं। कई बार उंगलियां चिर गईं, खून निकला। मालती बिगड़ रही थी, बार-बार गांव लौट चलने के लिए आग्रह कर रही थी, पर उन्हें कोई परवाह न थी। वही बालकों का-सा उल्लास था, वही अल्हड़पन, वही हठ। दर्शन और विज्ञान सभी इस प्रवाह में बह गए थे।

रस्सी तैयार हो गई। झाऊ का बड़ा-सा तख्ता बन गया, टहनियां दोनों सिरों पर रस्सी से जोड़ दी गई थीं। उसके छिद्रों में झाऊ की टहनियां भर दी गईं, जिससे पानी ऊपर न आए। नौका तैयार हो गई। रात और भी स्वप्निल हो गई थी।

मेहता ने नौका को पानी में डालकर मालती का हाथ पकड़कर कहा—आओ, बैठो।

मालती ने सशंक होकर कहा—दो आदमियों का बोझ संभाल लेगी?

मेहता ने दार्शनिक मुस्कान के साथ कहा—जिस तरी पर बैठे हम लोग जीवन-यात्रा कर रहे हैं, वह तो इससे कहीं निस्सार है मालती? क्या डर रही हो?

'डर किस बात का, जब तुम साथ हो।'

'सच कहती हो?'

'अब तक मैंने बगैर किसी की सहायता के बाधाओं को जीता है। अब तो तुम्हारे संग हूं।'

दोनों उस झाऊ के तख्ते पर बैठे और मेहता ने झाऊ के एक डंडे से ही उसे खेना शुरू किया। तख्ता डगमगाता हुआ पानी में चला।

मालती ने मन को इस तख्ते से हटाने के लिए पूछा–तुम हो हमेशा शहरों में रहे, गांव के जीवन का तुम्हें कैसे अभ्यास हो गया? मैं तो ऐसा तख्ता कभी न बना सकती।

मेहता ने उसे अनुरक्त नेत्रों से देखकर कहा–शायद यह मेरे पिछले जन्म का संस्कार है। प्रकृति से स्पर्श होते ही जैसे मुझमें नया जीवन-सा आ जाता है, नस-नस में स्फूर्ति दौड़ने लगती है। एक-एक पक्षी, एक-एक पशु, जैसे मुझे आनंद का निमंत्रण देता हुआ जान पड़ता है, मानो भूले हुए सुखों की याद दिला रहा हो। यह आनंद मुझे और कहीं नहीं मिलता मालती, संगीत के रुलानेवाले स्वरों में भी नहीं, दर्शन की ऊंची उड़ानों में भी नहीं। जैसे ये सब मेरे अपने सगे हों। प्रकृति के बीच आकर मैं जैसे अपने-आपको पा जाता हूं, जैसे पक्षी अपने घोंसले में आ जाता।

तख्ता डगमगाता, कभी तिरछा, कभी सीधा, कभी चक्कर खाता हुआ चला जा रहा था।

सहसा मालती ने कातर-कंठ से पूछा– और मैं तुम्हारे जीवन में कभी नहीं आती?

मेहता ने उसका हाथ पकड़कर कहा–आती हो, बार-बार आती हो, सुगंध के एक झोंके की तरह, कल्पना की एक छाया की तरह और फिर अदृश्य हो जाती हो। दौड़ता हूं कि तुम्हें करपाश में बांध लूं, पर हाथ खुले रह जाते हैं। और तुम गायब हो जाती हो।

मालती ने उन्माद की दशा में कहा–लेकिन तुमने इसका कारण भी सोचा? समझना चाहती

'हां मालती, बहुत सोचा, बार-बार सोचा।'

'तो क्या मालूम हुआ?'

'यही कि मैं जिस आधार पर जीवन का भवन खड़ा करना चाहता हूं, वह अस्थिर है। यह कोई विशाल भवन नहीं है, केवल एक छोटी-सी शांत कुटिया है, लेकिन उसके लिए भी तो कोई स्थिर आधार चाहिए।'

मालती ने अपना हाथ छुड़ाकर जैसे मान करते हुए कहा-- यह झूठा आक्षेप है। तुमने सदा मुझे परीक्षा की आंखों से देखा, कभी प्रेम की आंखों से नहीं। क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि नारी परीक्षा नहीं चाहती, प्रेम चाहती है। परीक्षा गुणों को अवगुण, सुंदर को असुंदर बनाने वाली चीज है, प्रेम अवगुणों को गुण बनाता है, असुंदर को सुंदर। मैंने तुमसे प्रेम किया, मैं कल्पना ही नहीं कर सकती कि तुममें कोई बुराई भी है, मगर तुमने मेरी परीक्षा की और तुम मुझे अस्थिर, चंचल और जाने क्या-क्या समझकर मुझसे हमेशा दूर भागते रहे। नहीं, मैं जो कुछ कहना चाहती हूं, वह मुझे कह लेने दो। मैं क्यों अस्थिर और चंचल हूं? इसलिए कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला जो मुझे स्थिर और अचंचल बनाता। अगर तुमने मेरे सामने उसी तरह आत्मसमर्पण किया होता जैसे मैंने तुम्हारे सामने किया है, तो तुम आज मुझ पर यह आक्षेप न रखते।

मेहता ने मालती के मान का आनंद उठाते हुए कहा–तुमने मेरी परीक्षा कभी नहीं की? सच कहती हो?

'कभी नहीं।'

'तो तुमने गलती की।'

'मैं इसकी परवा नहीं करती।'

'भावुकता में न आओ मालती। प्रेम देने के पहले हम सब परीक्षा करते हैं और तुमने की, चाहे अप्रत्यक्ष रूप से ही की हो। मैं आज तुमसे स्पष्ट कहता हूं कि पहले मैंने तुम्हें उसी तरह देखा, जैसे रोज ही हजारों देवियों को देखा करता हूं, केवल विनोद के भाव से। अगर मैं गलती नहीं करता, तो तुमने भी मुझे मनोरंजन के लिए एक नया खिलौना समझा।'

मालती ने टोका--गलत कहते हो। मैंने कभी तुम्हें इस नजर से नहीं देखा। मैंने पहले ही दिन तुम्हें अपना देव बनाकर अपने हृदय....

मेहता बात काटकर बोले--फिर वही भावुकता। मुझे ऐसे महत्त्व के विषय में भावुकता पसंद नहीं, अगर तुमने पहले ही दिन से मुझे इस कृपा के योग्य समझा तो इसका यही कारण हो सकता है, कि मैं रूप भरने में तुमसे ज्यादा कुशल हूं, वरना जहां तक मैंने नारियों का स्वभाव देखा है, वह प्रेम के विषय में काफी छान-बीन करती हैं। पहले भी तो स्वयंवर में पुरुषों की परीक्षा होती थी? वह मनोवृत्ति अब भी मौजूद है, चाहे उसका रूप कुछ बदल गया हो। मैंने तब से बराबर यही कोशिश की है कि अपने को संपूर्ण रूप से तुम्हारे सामने रख दूं और उसके साथ ही तुम्हारी आत्मा तक भी पहुंच जाऊं। और मैं ज्यों-ज्यों तुम्हारे अंतस्तल की गहराई में उतरता हूं, मुझे रत्न ही मिले हैं। मैं विनोद के लिए आया और आज उपासक बना हुआ हूं। तुमने मेरे भीतर क्या पाया, यह मुझे मालूम नहीं।

नदी का दूसरा किनारा आ गया। दोनों उतरकर उसी बालू के फर्श पर जा बैठे और मेहता फिर उसी प्रवाह में बोले--और आज मैं यहां वही पूछने के लिए तुम्हें लाया हूं?

मालती ने कांपते हुए स्वर में कहा--क्या अभी तुम्हें मुझसे यह पूछने की जरूरत बाकी है?

'हां, इसीलिए कि मैं आज तुम्हें अपना वह रूप दिखाऊंगा, जो शायद अभी तक तुमने नहीं देखा और जिसे मैंने भी छिपाया है। अच्छा, मान लो, मैं तुमसे विवाह करके कल तुमसे बेवफाई करूं तो तुम मुझे क्या सजा दोगी?'

मालती ने उनकी ओर चकित होकर देखा। इसका आशय उसकी समझ में न आया।

'ऐसा प्रश्न क्यों करते हो?'

'मेरे लिए यह बड़े महत्त्व की बात है।'

'मैं इसकी संभावना नहीं समझती।'

'संसार में कुछ भी असंभव नहीं है। बड़े से-बड़ा महात्मा भी एक क्षण में पतित हो सकता

'मैं उसका कारण खोजूंगी और उसे दूर करूंगी।'

'मान लो, मेरी आदत न छूटे।'

'फिर मैं नहीं कह सकती, क्या करूंगी। शायद विष खाकर सो रहूं।'

'लेकिन यदि तुम मुझसे ही प्रश्न करो, तो मैं इसका दूसरा जवाब दूंगा।'

मालती ने सशंक होकर पूछा--बतलाओ।

मेहता ने दृढ़ता के साथ कहा--मैं पहले तुम्हारा प्राणांत कर दूंगा, फिर अपना।

मालती ने जोर से कहकहा मारा और सिर से पांव तक सिहर उठी। उसकी हंसी केवल उसकी सिहरन को छिपाने का आवरण थी।

मेहता ने पूछा—तुम हंसी क्यों?

'इसीलिए कि तुम तो ऐसे हिंसावादी नहीं जान पड़ते।'

'नहीं मालती, इस विषय में मैं पूरा पशु हूं और उस पर लज्जित होने का कोई कारण नहीं देखता। आध्यात्मिक प्रेम और त्यागमय प्रेम और निःस्वार्थ प्रेम, जिसमें आदमी अपने को मिटाकर केवल प्रेमिका के लिए जीता है, उसके आनंद से आनंदित होता है और उसके चरणों पर अपना आत्मसमर्पण कर देता है, ये मेरे लिए निरर्थक शब्द हैं। मैंने पुस्तकों में ऐसी प्रेम-कथाएं पढ़ी हैं, जहां प्रेमी ने प्रेमिका के नए प्रेमियों के लिए अपनी जान दे दी है मगर उस भावना को मैं श्रद्धा कह सकता हूं, सेवा कह सकता हूं, प्रेम कभी नहीं। प्रेम सीधी-सादी गऊ नहीं, खूंख्वार शेर है, जो अपने शिकार पर किसी की आंख भी नहीं पड़ने देता।'

मालती ने उनकी आंखों में आंखें डालकर कहा—अगर प्रेम खूंख्वार शेर है तो मैं उससे दूर ही रहूंगी। मैंने तो उसे गाय ही समझ रखा था। मैं प्रेम को संदेह से ऊपर समझती हूं। वह देह की वस्तु नहीं, आत्मा की वस्तु है। संदेह का वहां जरा भी स्थान नहीं और हिंसा तो संदेह का ही परिणाम है। वह संपूर्ण आत्म-समर्पण है। उसके मंदिर में तुम परीक्षक बनकर नहीं उपासक बनकर ही वरदान पा सकते हो।

वह उठकर खड़ी हो गई और तेजी से नदी की तरफ चली, मानो उसने अपना खोया हुआ मार्ग पा लिया हो। ऐसी स्फूर्ति का उसे कभी अनुभव न हुआ। उसने स्वतंत्र जीवन में भी अपने में एक दुर्बलता पाई थी, जो उसे सदैव आंदोलित करती रहती थी, सदैव अस्थिर रखती थी। उसका मन जैसे कोई आश्रय खोजा करता था, जिसके बल पर टिक सके, संसार का सामना कर सके। अपने में उसे यह शक्ति न मिलती थी। बुद्धि और चरित्र की शक्ति देखकर वह उसकी ओर लालायित होकर जाती थी। पानी की भांति हर एक पात्र का रूप धारण कर लेती थी। उसका अपना कोई रूप न था।

उसकी मनोवृत्ति अभी तक किसी परीक्षार्थी छात्र की-सी थी। छात्र को पुस्तकों से प्रेम हो सकता है और हो जाता है, लेकिन वह पुस्तक के उन्हीं भागों पर ज्यादा ध्यान देता है, जो परीक्षा में आ सकते हैं। उसकी पहली गरज परीक्षा में सफल होना है। ज्ञानार्जन इसके बाद है। अगर उसे मालूम हो जाय कि परीक्षक बड़ा दयालु है या अंधा है और छात्रों को यों ही पास कर दिया करता है, तो शायद वह पुस्तकों की ओर आंख उठाकर भी न देखे। मालती जो कुछ करती थी, मेहता को प्रसन्न करने के लिए। उसका मतलब था, मेहता का प्रेम और विश्वास प्राप्त करना, उसके मनोराज्य की रानी बन जाना, लेकिन उसी छात्र की तरह अपनी योग्यता का विश्वास जमाकर। लियाकत आ जाने से परीक्षक आप-ही-आप उससे संतुष्ट हो जाएगा, इतना धैर्य उसे न था।

मगर आज मेहता ने जैसे उसे ठुकराकर उसकी आत्म-शक्ति को जगा दिया। मेहता को जब से उसने पहली बार देखा था, तभी से उसका मन उनकी ओर झुका था। उसे वह अपने परिचितों में सबसे समर्थ जान पड़े। उसके परिष्कृत जीवन में बुद्धि की प्रखरता और विचार की दृढ़ता ही सबसे ऊंची वस्तु थी। धन और ऐश्वर्य को तो वह केवल खिलौना समझती थी जिसे खेलकर लड़के तोड़-फोड़ डालते हैं। रूप में भी अब उसके लिए विशेष आकर्षण न था। यद्यपि कुरूपता के लिए घृणा थी। उसको तो अब बुद्धि-शक्ति ही अपनी ओर झुका सकती थी, जिसके आश्रय में उसमें आत्म-विश्वास जगे, अपने विकास की प्रेरणा मिले, अपने में शक्ति का संचार हो, अपने

जीवन की सार्थकता का ज्ञान हो। मेहता के बुद्धिबल और तेजस्विता ने उसके ऊपर अपनी मुहर लगा दी और तब से वह अपना संस्कार करती चली जाती थी। जिस प्रेरक-शक्ति की उसे जरूरत थी, वह मिल गई थी और अज्ञात रूप से उसे गति और शक्ति दे रही थी। जीवन का नया आदर्श जो उसके सामने आ गया था, वह अपने को उसके समीप पहुंचाने की चेष्टा करती हुई और सफलता का अनुभव करती हुई उस दिन की कल्पना कर रही थी, जब वह और मेहता एकात्म हो जायंगे और यह कल्पना उसे और भी दृढ़ और निष्ठावान् बना रही थी।

मगर आज जब मेहता ने उसकी आशाओं को द्वार तक लाकर प्रेम का वह आदर्श उसके सामने रखा, जिसमें प्रेम को आत्मा और समर्पण के क्षेत्र से गिराकर भौतिक धरातल तक पहुंचा दिया गया था, जहां संदेह और ईर्ष्या और भोग का राज है, तब उसकी परिष्कृत बुद्धि आहत हो उठी। और मेहता से जो उसे श्रद्धा थी, उसे एक धक्का-सा लगा, मानो कोई शिष्य अपने गुरु को कोई नीच कर्म करते देख ले। उसने देखा, मेहता की बुद्धि-प्रखरता प्रेम तत्त्व की पशुता की ओर खींचे लिये जाती है और उसके देवत्व की ओर से आंखें बंद किए लेती है, और यह देखकर उसका दिल बैठ गया।

मेहता ने कुछ लज्जित होकर कहा—आओ, कुछ देर और बैठें।

मालती बोली—नहीं, अब लौटना चाहिए। देर हो रही है।

इकतीस

रायसाहब का सितारा बुलंद था। उनके तीनों मंसूबे पूरे हो गए थे। कन्या की शादी धूम-धाम से हो गई थी, मुकदमा जीत गए थे और निर्वाचन में सफल ही न हुए थे, होम मेंबर भी हो गए थे। चारों ओर से बधाइयां मिल रही थीं। तारों का तांता लगा हुआ था। इस मुकदमे को जीतकर उन्होंने ताल्लुकेदारों की प्रथम श्रेणी में स्थान प्राप्त कर लिया था। सम्मान तो उनका पहले भी किसी से कम न था, मगर अब तो उसकी जड़ और भी गहरी और मजबूत हो गई थी। सामयिक पत्रों में उनके चित्र और चरित्र दनादन निकल रहे थे। कर्ज की मात्रा बहुत बढ़ गई थी। मगर अब रायसाहब को इसकी परवा न थी। वह इस नई मिलकियत का एक छोटा-सा टुकड़ा बेचकर कर्ज से मुक्त हो सकते थे। सुख की जो ऊंची से ऊंची कल्पना उन्होंने की थी, उससे कहीं ऊंचे जा पहुंचे थे। अभी तक उनका बंगला केवल लखनऊ में था। अब नैनीताल, मंसूरी और शिमला तीनों स्थानों में एक-एक बंगला बनवाना लाजिम हो गया। अब उन्हें यह शोभा नहीं देता कि इन स्थानों में जायं, तो होटलों में या किसी दूसरे राजा के बंगले में ठहरें। जब सूर्यप्रतापसिंह के बंगले इन सभी स्थानों में थे, तो रायसाहब के लिए यह बड़ी लज्जा की बात थी कि उनके बंगले न हों। संयोग से बंगले बनवाने की जहमत न उठानी पड़ी। बने-बनाए बंगले सस्ते दामों में मिल गए। हर एक बंगले के लिए माली, चौकीदार, कारिंदा, खानसामा आदि भी रख लिए गए थे। और सबसे बड़े सौभाग्य की बात यह थी कि अबकी हिज मैजेस्टी के जन्मदिन के अवसर पर उन्हें राजा की पदवी भी मिल गई। अब उनकी महत्त्वाकांक्षा संपूर्ण रूप से संतुष्ट हो गई। उस दिन खूब जश्न मनाया

गया और इतनी शानदार दावत हुई कि पिछले सारे रेकार्ड टूट गए। जिस वक्त हिज एक्सेलेन्सी गवर्नर ने उन्हें पदवी प्रदान की, गर्व के साथ राज-भक्ति की ऐसी तरंग उनके मन में उठी कि उनका एक-एक रोम उससे प्लावित हो उठा। यह है जीवन! नहीं, विद्रोहियों के फेर में पड़कर व्यर्थ बदनामी ली, जेल गए और अफसरों की नजरों से गिर गए। जिस डी०एस०पी० ने उन्हें पिछली बार गिरफ्तार किया था, इस वक्त वह उनके सामने हाथ बांधे खड़ा था और शायद अपने अपराध के लिए क्षमा मांग रहा था।

मगर जीवन की सबसे बड़ी विजय उन्हें उस वक्त हुई, जब उनके पुराने, परास्त [illegible] सूर्यप्रतापसिंह ने उनके बड़े लड़के रुद्रपालसिंह से अपनी कन्या से विवाह का संदेशा [illegible] रायसाहब को न मुकदमा जीतने की इतनी खुशी हुई थी, न मिनिस्टर होने की। वह सारी [illegible] कल्पना में आती थीं, मगर यह बात तो आशातीत ही नहीं, कल्पनातीत थी। वही सूर्यप्रतापसिंह जो अभी कई महीने तक उन्हें अपने कुत्ते से भी नीचा समझता था, वह आज उनके लड़के से अपनी लड़की का विवाह करना चाहता था! कितनी असंभव बात! रुद्रपाल इस समय एम० [illegible] पढ़ता था, बड़ा निर्भीक, पक्का आदर्शवादी, अपने ऊपर भरोसा रखने वाला, अभिमानी [illegible] और आलसी युवक था, जिसे अपने पिता की यह धन और मानलिप्सा बुरी लगती थी।

रायसाहब इस समय नैनीताल में थे। यह संदेशा पाकर फूल उठे। यद्यपि वह विवाह के [illegible] में लड़के पर किसी तरह का दबाव डालना न चाहते थे, पर इसका उन्हें विश्वास था कि वह [illegible] निश्चय कर लेंगे, उसमें रुद्रपाल को कोई आपत्ति न होगी और राजा सूर्यप्रतापसिंह से नाता [illegible] एक ऐसे सौभाग्य की बात थी कि रुद्रपाल का सहमत न होना खयाल में भी न आ सकता था। [illegible] तुरंत राजा साहब को बात दे दी और उसी वक्त रुद्रपाल को फोन किया।

रुद्रपाल ने जवाब दिया- मुझे स्वीकार नहीं।

रायसाहब को अपने जीवन में न कभी इतनी निराशा हुई थी, न इतना क्रोध आया [illegible] पूछा—कोई वजह?

'समय आने पर मालूम हो जायगा।'

'मैं अभी जानना चाहता हूं।'

'मैं नहीं बतलाना चाहता।'

'तुम्हें मेरा हुक्म मानना पड़ेगा।'

'जिस बात को मेरी आत्मा स्वीकार नहीं करती, उसे मैं आपके हुक्म से नहीं मान सकता।'

रायसाहब ने बड़ी नम्रता से समझाया- बेटा, तुम आदर्शवाद के पीछे अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हो। यह संबंध समाज में तुम्हारा स्थान कितना ऊंचा कर देगा, कुछ तुमने सोचा है? इसे ईश्वर की प्रेरणा समझो। उस कुल की कोई दरिद्र कन्या भी मुझे मिलती, तो मैं [illegible] भाग्य को सराहता, यह तो राजा सूर्यप्रताप की कन्या है, जो हमारे सिरमौर हैं। मैं उसे रोज देखता हूं। तुमने भी देखा होगा। रूप, गुण, शील, स्वभाव में ऐसी युवती मैंने आज तक नहीं देखी। मैं तो चार दिन का और मेहमान हूं। तुम्हारे सामने जीवन पड़ा है। मैं तुम्हारे ऊपर दबाव नहीं डालना चाहता। तुम जानते हो, विवाह के विषय में मेरे विचार कितने उदार हैं, लेकिन मेरा यह भी तो धर्म है कि अगर तुम्हें गलती करते देखूं, तो चेतावनी दे दूं।

रुद्रपाल ने इसका जवाब दिया—मैं इस विषय में बहुत पहले निश्चय कर चुका हूं। अब कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।

रायसाहब को लड़के की जड़ता पर फिर क्रोध आ गया। गरजकर बोले--मालूम होता है, तुम्हारा सिर फिर गया है। आकर मुझसे मिलो। विलंब न करना। मैं राजा साहब को जवाब दे चुका हूं।

रुद्रपाल ने जवाब दिया--खेद है, अभी मुझे अवकाश नहीं है।

दूसरे दिन रायसाहब खुद आ गए। दोनों अपने-अपने शस्त्रों से सजे हुए तैयार खड़े थे। एक ओर संपूर्ण जीवन का मजा हुआ अनुभव था, समझौतों से भरा हुआ, दूसरी ओर कच्चा आदर्शवाद था, जिद्दी, उद्दंड और निर्मम।

रायसाहब ने सीधे मर्म पर आघात किया--मैं जानना चाहता हूं, वह कौन लड़की है।

रुद्रपाल ने अचल भाव से कहा--अगर आप इतने उत्सुक हैं, तो सुनिए। वह मालती देवी की बहन सरोज है।

रायसाहब आहत होकर गिर पड़े--अच्छा, वह!

'आपने तो सरोज को देखा होगा?'

'खूब देखा है। तुमने राजकुमारी को देखा है या नहीं?'

'जी हां, खूब देखा।'

'फिर भी....'

'मैं रूप को कोई चीज नहीं समझता।'

'तुम्हारी अक्ल पर मुझे अफसोस आता है। मालती को जानते हो, कैसी औरत है? उसकी बहन क्या कुछ और होगी?'

रुद्रपाल ने त्योरी चढ़ाकर कहा--मैं इस विषय में आपसे और कुछ नहीं कहना चाहता, अगर मेरी शादी होगी, तो सरोज से।'

'मेरे जीते जी कभी नहीं हो सकता।'

'तो आपके बाद होगी।'

'अच्छा, तुम्हारे यह इरादे हैं।'

और रायसाहब की आंखें सजल हो गईं। जैसे सारा जीवन उजड़ गया हो। मिनिस्ट्री और इलाका और पदवी, सब जैसे बासी फूलों की तरह नीरस, निरानंद हो गए हों। जीवन की सारी साधना व्यर्थ हो गई। उनकी स्त्री का जब देहांत हुआ था, तो उनकी उम्र छत्तीस साल से ज्यादा न थी। वह विवाह कर सकते थे, और भोग-विलास का आनंद उठा सकते थे। सभी उनसे विवाह करने के लिए आग्रह कर रहे थे, मगर उन्होंने इन बालकों का मुंह देखा और विधुर जीवन की साधना स्वीकार कर ली। इन्हीं लड़कों पर अपने जीवन का सारा भोग-विलास न्योछावर कर दिया। आज तक अपने हृदय का सारा स्नेह इन्हीं लड़कों को देते चले आए हैं, और आज यह लड़का इतनी निष्ठुरता से बातें कर रहा है, मानो उनसे कोई नाता नहीं। फिर वह क्यों जायदाद और सम्मान और अधिकार के लिए जान दें? इन्हीं लड़कों ही के लिए तो वह सब कुछ कर रहे थे, जब लड़कों को उनका जरा भी लिहाज नहीं, तो वह क्यों यह तपस्या करें? उन्हें कौन संसार में बहुत दिन रहना है। उन्हें भी आराम से पड़े रहना आता है। उनके और हजारों भाई मूंछों पर ताव देकर जीवन का भोग करते हैं और मस्त घूमते हैं। फिर वह भी क्यों न भोग-विलास में पड़े रहें? उन्हें इस वक्त याद न रहा कि वह जो तपस्या कर रहे हैं, वह लड़कों के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए, केवल यश के लिए

नहीं, बल्कि इसलिए कि वह कर्मशील हैं और उन्हें जीवित रहने के लिए इसकी जरूरत है। वह विलासी और अकर्मण्य बनकर अपनी आत्मा को संतुष्ट नहीं रख सकते। उन्हें मालूम नहीं, कि कुछ लोगों की प्रकृति ही ऐसी होती है कि वे विलास का अपाहिजपन स्वीकार ही नहीं कर सकते। वे अपने जिगर का खून पीने ही के लिए बने हैं और मरते दम तक पिए जाएंगे।

मगर इस चोट की प्रतिक्रिया भी तुरंत हुई। हम जिनके लिए त्याग करते हैं, उनसे किसी बदले की आशा न रखकर भी उनके मन पर शासन करना चाहते हैं, चाहे वह शासन उन्हीं के हित के लिए हो, यद्यपि उस हित को हम इतना अपना लेते हैं कि वह उनका न होकर हमारा हो जाता है। त्याग की मात्रा जितनी ही ज्यादा होती है, यह शासन-भावना भी उतनी ही प्रबल होती है और जब सहसा हमें विद्रोह का सामना करना पड़ता है, तो हम क्षुब्ध हो उठते हैं, और वह त्याग जैसे प्रतिहिंसा का रूप ले लेता है। रायसाहब को यह जिद पड़ गई कि रुद्रपाल का विवाह सरोज के साथ न होने पाए, चाहे इसके लिए उन्हें पुलिस की मदद क्यों न लेनी पड़े, नीति की हत्या क्यों न करनी पड़े।

उन्होंने जैसे तलवार खींचकर कहा- हां, मेरे बाद ही होगी और अभी उसे बहुत दिन हैं।

रुद्रपाल ने जैसे गोली चला दी--ईश्वर करे, आप अमर हों। सरोज से मेरा विवाह हो चुका।

'झूठ।'

'बिल्कुल नहीं, प्रमाण-पत्र मौजूद है।'

रायसाहब आहत होकर गिर पड़े। इतनी सतृष्ण हिंसा की आंखों से उन्होंने कभी किसी शत्रु को न देखा था। शत्रु अधिक-से अधिक उनके स्वार्थ पर आघात कर सकता था या देह पर या सम्मान पर, पर यह आघात तो उस मर्मस्थल पर था, जहां जीवन की संपूर्ण प्रेरणा संचित थी। एक आंधी थी, जिसने उनका जीवन जड़ से उखाड़ दिया। अब वह सर्वथा अपंग हैं। पुलिस की सारी शक्ति हाथ में रहते हुए भी अपंग हैं। बल प्रयोग उनका अंतिम शस्त्र था। वह शस्त्र उनके हाथ से निकल चुका था। रुद्रपाल बालिग है, सरोज भी बालिग है और रुद्रपाल अपनी रियासत का मालिक है। उनका उस पर कोई दबाव नहीं। आह! अगर जानते यह लौंडा यों विद्रोह करेगा, तो इस रियासत के लिए लड़ते ही क्यों? इस मुकदमेबाजी के पीछे दो ढाई लाख बिगड़ गए। जीवन ही नष्ट हो गया। अब तो उनकी लाज इसी तरह बचेगी कि इस लौंडे की खुशामद करते रहें, उन्होंने अंग बाधा दी और इज्जत धूल में मिला। अपने जीवन का बलिदान करके भी अब स्वामी नहीं हैं। ओह! सारा जीवन नष्ट हो गया! सारा जीवन!

रुद्रपाल चला गया था। रायसाहब ने कार मंगवाई और मेहता से मिलने चले। मेहता अगर चाहें तो मालती को समझा सकते हैं। सरोज भी उनकी अवहेलना न करेगी, अगर दस बीस हजार रुपये बल खाने से भी विवाह रुक जाए, तो वह देने को तैयार थे। उन्हें उस स्वार्थ के नशे में यह बिल्कुल खयाल न रहा कि वह मेहता के पास ऐसा प्रस्ताव लेकर जा रहे हैं, जिस पर मेहता की हमदर्दी कभी उनके साथ न होगी।

मेहता ने सारा वृत्तांत सुनकर उन्हें बनाना शुरू किया। गंभीर मुंह बनाकर बोले- यह तो आपकी प्रतिष्ठा का सवाल है।

रायसाहब भांप न सके। उछलकर बोले—जी हां, केवल प्रतिष्ठा का। राजा सूर्यप्रतापसिंह को तो आप जानते हैं?

'मैंने उनकी लड़की को भी देखा है। सरोज उसके पांव की धूल भी नहीं है।'

'मगर इस लौंडे की अक्ल पर पत्थर पड़ गया है।'

'तो मारिए गोली, आपको क्या करना है। वही पछताएगा।'

'ओह! यही तो नहीं देखा जाता मेहताजी! मिलती हुई प्रतिष्ठा नहीं छोड़ी जाती। मैं इस प्रतिष्ठा पर अपनी आधी रियासत कुर्बान करने को तैयार हूं। आप मालतीदेवी को समझा दें, तो काम बन जाय। इधर से इंकार हो जाय, तो रुद्रपाल सिर पीटकर रह जायगा और यह नशा दस-पांच दिन में आप उतर जायगा। यह प्रेम-व्रेम कुछ नहीं,केवल सनक है।

'लेकिन मालती बिना कुछ रिश्वत लिए मानेगी नहीं।'

'आप जो कुछ कहिए, मैं उसे दूंगा। वह चाहे तो मैं उसे यहीं के डफरिन हास्पिटल का इंचार्ज बना दूं।'

'मान लीजिए, वह आपको चाहे तो आप राजी होंगे। जब से आपको मिनिस्ट्री मिली है, आपके विषय में उसकी राय जरूर बदल गई होगी।'

रायसाहब ने मेहता के चेहरे की तरफ देखा। उस पर मुस्कराहट की रेखा नजर आई। समझ गए। व्यथित स्वर में बोले—आपको भी मुझसे मजाक करने का यही अवसर मिला। मैं आपके पास इसलिए आया था कि मुझे यकीन था कि आप मेरी हालत पर विचार करेंगे, मुझे उचित राय देंगे। और आप मुझे बनाने लगे। जिसके दांत नहीं दुखे, वह दांतों का दर्द क्या जाने।

मेहता ने गंभीर स्वर में कहा—क्षमा कीजिएगा, आप ऐसा प्रश्न ही लेकर आए कि उस पर गंभीर विचार करना मैं हास्यास्पद समझता हूं। आप अपनी शादी के जिम्मेदार हो सकते हैं लड़के की शादी का दायित्व आप क्यों अपने ऊपर लेते हैं, खास कर जब आपका लड़का बालिग है और अपना नफा-नुकसान समझता है। कम-से-कम मैं तो शादी जैसे महत्त्व के मुआमले में प्रतिष्ठा का कोई स्थान नहीं समझता। प्रतिष्ठा धन से होती तो राजा साहब उस नंगे बाबा के सामने घंटों गुलामों की तरह हाथ बांधे खड़े न रहते। मालूम नहीं कहां तक सही है, पर राजा साहब अपने इलाके के दारोगा तक को सलाम करते हैं, इसे आप प्रतिष्ठा कहते हैं? लखनऊ में आप किसी दूकानदार, किसी अहलकार किसी राहगीर से पूछिए, उनका नाम सुनकर गालियां ही देगा। इसी का आप प्रतिष्ठा कहते हैं? जाकर आराम से बैठिए। सरोज से अच्छी वधू आपको बड़ी मुश्किल से मिलेगी।

रायसाहब ने आपत्ति के भाव से कहा—बहन तो मालती ही की है।

मेहता ने गर्म होकर कहा—मालती की बहन होना क्या अपमान की बात है? मालती को आपने जाना नहीं, और न जानने की परवा की। मैंने भी यही समझा था, लेकिन अब मालूम हुआ कि वह आग में पड़कर चमकने वाली सच्ची धातु है। वह उन वीरों में है, जो अवसर पड़ने पर अपने जौहर दिखाते हैं, तलवार घुमाते नहीं चलते। आपको मालूम है, खन्ना की आजकल क्या दशा है?

रायसाहब ने सहानुभूति के भाव से सिर हिलाकर कहा—सुन चुका हूं, और बार-बार इच्छा हुई कि उससे मिलूं, लेकिन फुरसत न मिली। उस मिल में आग लगना उनके सर्वनाश का कारण हो गया।

'जी हां। अब वह एक तरह से दोस्तों की दया पर अपना निर्वाह कर रहे हैं। उस पर गोविन्दी महीनों से बीमार है। उसने खन्ना पर अपने को बलिदान कर दिया, उस पशु पर जिसने हमेशा उसे जलाया। अब वह मर रही है। और मालती रात की रात उसे सिरहाने बैठी रह जाती है--वही मालती, जो किसी राजा-रईस से पांच सौ फीस पाकर भी रात भर न बैठेगी। खन्ना के छोटे बच्चों को पालने का भार भी मालती पर है। यह मातृत्व उसमें कहां सोया हुआ था मालूम नहीं। मुझे तो मालती का यह स्वरूप देखकर अपने भीतर श्रद्धा का अनुभव होने लगा हालांकि आप जानते हैं, मैं घोर जड़वादी हूं। और भीतर के परिष्कार के साथ उसकी छवि में भी देवत्व की झलक आने लगी है। मानवता इतनी बहुरंगी और इतनी समर्थ है, इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। आप उनसे मिलना चाहें तो चलिए, इसी बहाने मैं भी चला चलूंगा।'

रायसाहब ने संदिग्ध भाव से कहा--जब आप ही मेरे दर्द को नहीं समझ सके, तो मालती देवी क्या समझेंगी, मुफ्त में शर्मिंदगी होगी, मगर आपको पास जाने के लिए किसी बहाने की जरूरत क्यों। मैं तो समझता था, आपने उनके ऊपर अपना जादू डाल दिया है।

मेहता ने हसरत-भरी मुस्कराहट के साथ जवाब दिया--वह बातें अब स्वप्न हो गईं। अब तो कभी उनके दर्शन भी नहीं होते। उन्हें अब फुरसत भी नहीं रहती। दो-चार बार गया, मगर मुझे मालूम हुआ, मुझसे मिलकर वह कुछ खुश नहीं हुईं। तब से जाते झेंपता हूं। हां, खूब याद आया, आज महिला-व्यायामशाला का जलसा है। आप चलेंगे?

रायसाहब ने बेदिली के साथ कहा--जी नहीं, मुझे फुरसत नहीं है। मुझे तो यह चिंता खाए जाती है कि राजा साहब को क्या जवाब दूंगा। मैं उन्हें वचन दे चुका हूं।

यह कहते हुए वह उठ खड़े हुए और मंद गति से द्वार की ओर चले। जिस गुत्थी को सुलझाने आए थे, वह और भी जटिल हो गई। अंधकार और भी असूझ हो गया। मेहता ने द्वार तक आकर उन्हें विदा किया।

रायसाहब सीधे अपने बंगले पर आए और दैनिक पत्र उठाया था कि मिस्टर तंखा का कार्ड मिला। तंखा से उन्हें घृणा थी और उनका मुंह भी न देखना चाहते थे, लेकिन इस वक्त मन की दुर्बल दशा में उन्हें किसी हमदर्द की तलाश थी, जो और कुछ न कर सके, पर उनके मनोभावों से सहानुभूति तो करे। तुरंत बुला लिया।

तंखा पांव दबाते हुए रोनी सूरत लिए कमरे में दाखिल हुए और जमीन पर झुककर सलाम करते हुए बोले--मैं तो हुजूर के दर्शन करने नैनीताल जा रहा था। सौभाग्य से यहीं दर्शन हो गए। हुजूर का मिजाज तो अच्छा है?

इसके बाद उन्होंने बड़ी लच्छेदार भाषा में और अपने पिछले व्यवहार को बिलकुल भूलकर, रायसाहब का यशोगान आरंभ किया--ऐसी हाय मचेगी कोई क्या करेगा। [illegible] हुजूर ही के चर्चे हैं। यह पद हुजूर ही को शोभा देता है।

रायसाहब मन में सोच रहे थे, यह आदमी भी कितना बड़ा धूर्त है, अपनी गरज पड़ने पर गधे को दादा कहने वाला, परले सिरे का बेवफा और निर्लज्ज, मगर उन्हें उन पर क्रोध न आया, दया आई। पूछा--आजकल आप क्या कर रहे हैं?

'कुछ नहीं हुजूर, बेकार बैठा हूं। इसी उम्मीद से आपकी खिदमत में हाजिर होने जा रहा था कि अपने पुराने खादिमों पर निगाह रहे। आजकल बड़ी मुसीबत में पड़ा हुआ हूं हुजूर। राजा सूर्यप्रतापसिंह को तो हुजूर जानते हैं, अपने सामने किसी को नहीं समझते।

दिन आपकी निंदा करने लगे। मुझसे न सुना गया। मैंने कहा, बस कीजिए महाराज, रायसाहब मेरे स्वामी हैं और मैं उनकी निंदा नहीं सुन सकता। बस इसी बात पर बिगड़ गए। मैंने भी सलाम किया और घर चला आया। साफ कह दिया, आप कितना ही ठाट-बाट दिखाएं, पर रायसाहब की जो इज्जत है, वह आपको नसीब नहीं हो सकती। इज्जत ठाट से नहीं होती, लियाकत से होती है। आपमें जो लियाकत है, वह तो दुनिया जानती है।

रायसाहब ने अभिनय किया - आपने तो सीधे घर में आग लगा दी।

तंखा ने अकड़कर कहा- मैं तो हुजूर साफ कहता हूं, किसी को अच्छा लगे या बुरा। जब हुजूर के कदमों को पकड़े हुए हूं, तो किसी से क्यों डरूं। हुजूर के तो नाम से जलते हैं। जब देखिए, हुजूर की बदगोई। जब से आप मिनिस्टर हुए हैं उनकी छाती पर सांप लोट रहा है। मेरी सारी की-सारी मजदूरी साफ डकार गए। देना तो जानते ही नहीं हुजूर। असामियों पर इतना अत्याचार करते हैं कि कुछ न पूछिए। किसी की आबरू सलामत नहीं। दिन दहाड़े औरतों को ..

कार की आवाज आई और राजा सूर्यप्रतापसिंह उतरे। रायसाहब ने कमरे से निकलकर उनका स्वागत किया और सम्मान के बोझ से नत होकर बोले- मैं तो आपकी सेवा में आने वाला ही था।

यह पहला अवसर था कि राजा सूर्यप्रतापसिंह ने इस घर को अपने चरणों से पवित्र किया। यह सौभाग्य !

मिस्टर तंखा भीगी बिल्ली बने बैठे हुए थे। राजा साहब यहां ! क्या इधर इन दोनों महोदयों में दोस्ती हो गई है ? उन्होंने रायसाहब की ईर्ष्याग्नि को उत्तेजित करके अपना हाथ सेंकना चाहा था, मगर नहीं, राजा साहब यहां मिलने के लिए आ भले ही गए हों, मगर दिलों में जो जलन है, वह तो कुम्हार के आंवे की तरह इस ऊपर की लेप-थोप से बुझने वाली नहीं।

राजा साहब ने सिगार जलाते हुए तंखा की ओर कठोर आंखों से देखकर कहा—तुमने तो सूरत ही नहीं दिखाई मिस्टर तंखा ! मुझसे उस दावत के सारे रुपये वसूल कर लिए और होटल वालों को एक पाई न दी। वह मेरा सिर खा रहे हैं। मैं इसे विश्वासघात समझता हूं। मैं चाहूं तो अभी तुम्हें पुलिस में दे सकता हूं।

यह कहते हुए उन्होंने रायसाहब को संबोधित करके कहा – ऐसा बेईमान आदमी मैंने नहीं देखा रायसाहब ! मैं सत्य कहता हूं, मैं भी आपके मुकाबले में न खड़ा होता, मगर इसी शैतान ने मुझे बहकाया और मेरे एक लाख रुपये बर्बाद कर दिए। बंगला खरीद लिया साहब, कार रख ली। एक वेश्या से आशनाई भी कर रखी है। पूरे रईस बन गए और अब दगाबाजी शुरू की है। रईसों की शान निभाने के लिए रियासत चाहिए। आपकी सियासत अपने दोस्तों की आंखों में धूल झोंकना है।

रायसाहब ने तंखा की ओर तिरस्कार की आंखों से देखा और बोले - आप चुप क्यों हैं मिस्टर तंखा, कुछ जवाब दीजिए। राजा साहब ने तो आपका सारा मेहनताना दबा लिया था। है इसका कोई जवाब आपके पास ? अब कृपा करके यहां से चले जाइए और खबरदार, फिर अपनी सूरत न दिखाइएगा। दो भले आदमियों में लड़ाई लगाकर अपना उल्लू सीधा करना बेपूंजी का रोजगार है, मगर इसका घाटा और नफा दोनों ही जान-जोखिम है, समझ लीजिए।

तंखा ने ऐसा सिर गड़ाया कि फिर न उठाया। धीरे से चले गए। जैसे कोई चोर कुत्ता मालिक के अंदर आ जाने पर दबकर निकल जाए।

जब वह चले गए, तो राजा साहब ने पूछा- मेरी बुराई करता होगा ?

'जी हां, मगर मैंने भी खूब बनाया।'

'शैतान है।'

'पूरा।'

'बाप-बेटे में लड़ाई करवा दे, मियां-बीबी में लड़ाई करवा दे। इस फन में उस्ताद है। खैर, आज बेचारे को अच्छा सबक मिल गया।'

इसके बाद रुद्रपाल के विवाह के बातचीत शुरू हुई। रायसाहब के प्राण सूखे जा रहे थे। मानो उन पर कोई निशाना बांधा जा रहा हो। कहां छिप जायं। कैसे कहें कि रुद्रपाल पर उनका कोई अधिकार नहीं रहा, मगर राजा साहब को परिस्थिति का ज्ञान हो चुका था। रायसाहब को अपनी तरफ से कुछ न कहना पड़ा। जान बच गई।

उन्होंने पूछा—आपको इसकी क्यों कर खबर हुई?

'अभी-अभी रुद्रपाल ने लड़की के नाम एक पत्र भेजा है, जो उसने मुझे दे दिया।

'आजकल के लड़कों में और तो कोई खूबी नजर नहीं आती, बस स्वच्छंदता का सनक सवार है।'

'सनक तो है ही, मगर इसकी दवा मेरे पास है। मैं उस छोकरी को ऐसा गायब कर दूंगा कि कहीं पता न लगेगा। दस-पांच दिन में यह सनक ठंडी हो जायगी। समझाने से कोई नतीजा नहीं।'

रायसाहब कांप उठे। उनके मन में भी इस तरह की बात आई थी, लेकिन उन्होंने उसे आकार न लेने दिया था। संस्कार दोनों व्यक्तियों के एक-से थे। गुफावासी मनुष्य दोनों व्यक्तियों में जीवित था। रायसाहब ने उसे ऊपरी वस्त्रों से ढक दिया था। राजा साहब में वह नग्न था। अपना बड़प्पन सिद्ध करने के उस अवसर को रायसाहब छोड़ न सके।

जैसे लज्जित होकर बोले—लेकिन यह बीसवीं सदी है, बारहवीं नहीं। रुद्रपाल के ऊपर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, मैं नहीं कह सकता, लेकिन मानवता की दृष्टि से ...

राजा साहब ने बात काटकर कहा—आप मानवता लिए फिरते हैं और यह नहीं देखते कि संसार में आज भी मनुष्य की पशुता ही उसकी मानवता पर विजय पा रही है। नहीं तो राष्ट्रों में लड़ाइयां क्यों होतीं? पंचायतों से झगड़े न तय हो जाते? जब तक मनुष्य रहेगा, उसकी पशुता भी रहेगी।

छोटी-मोटी बहस छिड़ गई और वह विवाद के रूप में आकर अंत में वितंडा बन गई और राजा साहब नाराज होकर चले गए। दूसरे दिन रायसाहब ने भी नैनीताल को प्रस्थान किया। और उसके एक दिन बाद रुद्रपाल ने सरोज के साथ इंग्लैंड की राह ली। अब उनमें पिता पुत्र का नाता न था, प्रतिद्वंद्वी हो गए थे। मिस्टर तंखा अब रुद्रपाल के सलाहकार और पैरोकार थे। उन्होंने रुद्रपाल की तरफ से रायसाहब पर हिसाब-फहमी का दावा किया। रायसाहब पर दस लाख की डिगरी हो गई। उन्हें डिगरी का इतना दु:ख न हुआ, जितना अपने अपमान का। अपमान से भी बढ़कर दु:ख था, जीवन की संचित अभिलाषाओं के धूल में मिल जाने का और सबसे बड़ा दु:ख था इस बात का कि अपने बेटे ने ही दगा दी। आज्ञाकारी पुत्र के पिता बनने का गौरव बड़ी निर्दयता के साथ उनके हाथ से छीन लिया गया था।

मगर अभी शायद उनके दु:ख का प्याला भरा न था। जो कुछ कसर थी, वह लड़की और दामाद के संबंध-विच्छेद ने पूरी कर दी। साधारण हिन्दू बालिकाओं की तरह मीनाक्षी भी बेजबान थी। बाप ने जिसके साथ ब्याह कर दिया, उसके साथ चली गई, लेकिन स्त्री-पुरुष

में प्रेम न था। दिग्विजयसिंह ऐयाश भी थे, शराबी भी। मीनाक्षी भीतर ही भीतर कुढ़ती रहती थी। पुस्तकों और पत्रिकाओं से मन बहलाया करती थी। दिग्विजय की अवस्था तो तीस से अधिक न थी। पढ़ा-लिखा भी था, मगर बड़ा मगरूर, अपनी कुल-प्रतिष्ठा की डींग मारने वाला, स्वभाव का निर्दयी और कृपण। गांव की नीच जाति की बहू-बेटियों पर डोरे डाला करता था। सोहबत भी नीचों की थी, जिनकी खुशामदों ने उसे और भी खुशामदपसंद बना दिया था। मीनाक्षी ऐसे व्यक्ति का सम्मान दिल से न कर सकती थी। फिर पत्रों में स्त्रियों के अधिकारों की चर्चा पढ़ पढ़कर उसकी आंखें खुलने लगी थीं। वह जनाना क्लब में आने-जाने लगी। वहां कितनी ही शिक्षित ऊंचे कुल की महिलाएं आती थीं। उनमें वोट और अधिकार और स्वाधीनता और नारी जागृति की खूब चर्चा होती थी, जैसे पुरुषों के विरुद्ध कोई षड्यंत्र रचा जा रहा हो। अधिकतर वही देवियां थीं, जिनकी अपने पुरुषों से न पटती थी, जो नई शिक्षा पाने के कारण पुरानी मर्यादाओं को तोड़ डालना चाहती थीं। कई युवतियां भी थीं, जो डिग्रियां ले चुकी थीं और विवाहित जीवन को आत्मसम्मान के लिए घातक समझकर नौकरियों की तलाश में थीं। उन्हीं में एक मिस सुलताना थीं, जो विलायत से बार-एट-ला होकर आई थीं और यहां परदानशीन महिलाओं को कानूनी सलाह देने का व्यवसाय करती थीं। उन्हीं की सलाह से मीनाक्षी ने पति पर गुजारे का दावा किया। वह अब उसके घर में न रहना चाहती थी। गुजारे की मीनाक्षी को जरूरत न थी। मैके में वह बड़े आराम से रह सकती थी; मगर वह दिग्विजयसिंह के मुख में कालिख लगाकर यहां से जाना चाहती थी। दिग्विजयसिंह ने उस पर उल्टा बदचलनी का आक्षेप लगाया। रायसाहब ने इस कलह को शांत करने की भरसक बहुत चेष्टा की, पर मीनाक्षी अब उसकी सूरत भी नहीं देखना चाहती थी। यद्यपि दिग्विजयसिंह का दावा खारिज हो गया और मीनाक्षी ने उस पर गुजारे की डिगरी पाई, मगर यह अपमान उसके जिगर में चुभता रहा। वह अलग एक कोठी में रहती थी, और समष्टिवादी आंदोलन में प्रमुख भाग लेती थी, पर वह जलन शांत न होती थी।

एक दिन वह क्रोध में आकर हंटर लिए दिग्विजयसिंह के बंगले पर पहुंची। शोहदे जमा थे और वेश्या का नाच हो रहा था। उसने रणचंडी की भांति पिशाचों की उस चंडाल चौकड़ी में पहुंचकर तहलका मचा दिया। हंटर खा-खाकर लोग इधर-उधर भागने लगे। उसके तेज के सामने वह नीच शोहदे क्या टिकते? जब दिग्विजयसिंह अकेले रह गए, तो उसने उन पर सड़ासड़ हंटर जमाने शुरू किए और इतना मारा कि कुंवर साहब बेदम हो गए। वेश्या अभी तक कोने में दुबकी खड़ी थी। अब उसका नंबर आया। मीनाक्षी हंटर तानकर जमाना ही चाहती थी कि वेश्या उसके पैरों पर गिर पड़ी और रोकर बोली– दुलहिनजी, आज आप मेरी जान बख्श दें। मैं फिर कभी यहां न आऊंगी। मैं निरपराध हूं।

मीनाक्षी ने उसकी ओर घृणा से देखकर कहा– हां, तू निरपराध है। जानती है न, मैं कौन हूं। चली जा, अब कभी यहां न आना। हम स्त्रियां भोग-विलास की चीजें हैं ही, तेरा कोई दोष नहीं।

वेश्या ने उसके चरणों पर सिर रखकर आवेश में कहा– परमात्मा आपको सुखी रखे। जैसा आपका नाम सुनती थी, वैसा ही पाया।

'सुखी रहने से तुम्हारा क्या आशय है?'

'आप जो समझें महारानीजी।'

'नहीं, तुम बताओ।'

वेश्या के प्राण नखों में समा गए। कहां से कहां आशीर्वाद देने चली। जान बच गई थी, चुपके अपनी राह लेनी चाहिए थी, दुआ देने की सनक सवार हुई। अब कैसे जान बचे?

डरती-डरती बोली–हुजूर का एकबाल बढ़े, मरतबा बढ़े, नाम बढ़े।

मीनाक्षी मुस्कराई–हां, ठीक है।

वह आकर अपनी कार में बैठी, हाकिम-जिला के बंगले पर पहुंचकर इस कांड की सूचना दी और अपनी कोठी में चली आई। तब से स्त्री-पुरुष दोनों एक-दूसरे के खून के प्यासे थे। दिग्विजयसिंह रिवाल्वर लिए उसकी ताक में फिरा करते थे और वह भी अपनी रक्षा के लिए दो पहलवान ठाकुरों को अपने साथ लिए रहती थी। और रायसाहब ने सुख का जो स्वप्न बनाया था, उसे अपनी जिंदगी में ही ध्वंस होते देख रहे थे। और अब संसार से निराश होकर उनका आत्मा अंतर्मुखी होती जाती थी। अब तक अभिलाषाओं से जीवन के लिए प्रेरणा मिलती रहती थी। उधर का रास्ता बंद हो जाने पर उनका मन आप ही आप भक्ति की ओर झुका, जो अभिलाषाओं से कहीं बढ़कर सत्य था। जिस नई जायदाद के आसरे पर कर्ज लिए थे, वह जायदाद कर्ज की पुरौती किए बिना ही हाथ से निकल गई थी और वह बोझ सिर पर लदा हुआ था। मिनिस्ट्री से जरूर अच्छी रकम मिलती थी, मगर वह सारी की सारी उस पद की मर्यादा का पालन करने में ही उड़ जाती थी और रायसाहब को अपना राजसी ठाट निभाने के लिए वही आसामियों पर इजाफा और बेदखली और नजराना लेना पड़ता था, जिससे उन्हें घृणा थी। वह प्रजा को कष्ट न देना चाहते थे। उनकी दशा पर उन्हें दया आती थी, लेकिन अपनी जरूरतों से हैरान थे। मुश्किल यह थी कि उपासना और भक्ति में भी उन्हें शांति न मिलती थी। वह मोह को छोड़ना चाहते थे, पर मोह उन्हें न छोड़ता था और इस खींच-तान में उन्हें अपमान, ग्लानि और अशांति से छुटकारा न मिलता था। और जब आत्मा में शांति नहीं, तो देह कैसे स्वस्थ रहे? निरोग रहने का सब उपाय करने पर भी एक न एक बाधा गले पड़ी रहती थी। रसोई में भांति-भांति तरह के पकवान बनते थे, पर उनके लिए वही मूंग की दाल और फुलके थे। अपने और भाइयों को देखते थे, जो उनसे भी ज्यादा मकरूज, अपमानित और शोकग्रस्त थे, जिनके भोग-विलास में, ठाट-बाट में किसी तरह की कमी न थी। मगर इस तरह की बेहयाई उनके बस की न थी। उनके मन के ऊंचे संस्कारों का ध्वंस न हुआ था। पर पीड़ा, मक्कारी, निर्लज्जता और अत्याचार को वह ताल्लुकेदारी की शोभा और रोब-दाब का नाम देकर अपनी आत्मा को संतुष्ट न कर सकते थे, और यही उनकी सबसे बड़ी हार थी।

बत्तास

मिर्जा खुर्शेद ने अस्पताल से निकलकर एक नया काम शुरू कर दिया था। निश्चिंत बैठना उनके स्वभाव में न था। यह काम क्या था? नगर की वेश्याओं की एक नाटक-मंडली बनाना। अपने अच्छे दिनों में उन्होंने खूब अयाशी की थी और इन दिनों अस्पताल के एकांत में घावों की पीड़ा सहते-सहते उनकी आत्मा निष्ठावान हो गई थी। उस जीवन की याद करके उन्हें गहरी मनोवेदना

होती थी, उस वक्त अगर उन्हें समझ होती, तो वह प्राणियों का कितना उपकार कर सकते थे, कितनों के शोक और दरिद्रता का भार हल्का कर सकते थे, मगर वह धन उन्होंने ऐयाशी में उड़ाया। यह कोई नया आविष्कार नहीं है कि संकटों में ही हमारी आत्मा को जागृति मिलती है। बुढ़ापे में कौन अपनी जवानी की भूलों पर दु:खी नहीं होता? काश, वह समय ज्ञान या शक्ति के संचय में लगाया होता, सुकृतियों का कोष भर लिया होता, तो आज चित्त को कितनी शांति मिलती। वहीं उन्हें इसका वेदनामय अनुभव हुआ कि संसार में कोई अपना नहीं, कोई उनकी मौत पर आंसू बहाने वाला नहीं। उन्हें रह-रहकर जीवन की एक पुरानी घटना याद आती थी। बसरे के गांव में जब वह कैंप में मलेरिया से ग्रस्त पड़े थे, एक ग्रामीण बाला ने उनकी तीमारदारी कितने आत्म-समर्पण से की थी। अच्छे हो जाने पर जब उन्होंने रुपये और आभूषणों से उसके एहसानों का बदला देना चाहा था, तो उसने किस तरह आंखों में आंसू भरकर सिर नीचा कर लिया था और उन उपहारों को लेने से इंकार कर दिया था। इन नर्सों की शुश्रूषा में नियम है, व्यवस्था है, सच्चाई है, मगर वह प्रेम कहां, वह तन्मयता कहां, जो उस बाला की अभ्यासहीन, अल्हड़ सेवाओं में थी? वह अनुरागमूर्ति कब की उनके दिल से मिट चुकी थी। वह उससे फिर आने का वादा करके कभी उसके पास न गए। विलास के उन्माद में कभी उसकी याद ही न आई। आई भी तो उसमें केवल दया थी, प्रेम न था। मालूम नहीं, उस बाला पर क्या गुजरी? मगर आजकल उसकी वह आतुर, नम्र, शांत, सरल मुद्रा बराबर उनकी आंखों के सामने फिरा करती थी। काश, उससे विवाह कर लिया होता तो आज जीवन में कितना रस होता। और उसके प्रति अन्याय के दु:ख ने उस संपूर्ण वर्ग को उनकी सेवा और सहानुभूति का पात्र बना दिया। जब तक नदी बाढ़ पर थी, उसके गंदले, तेज, फेनिल प्रवाह में प्रकाश की किरणें बिखरकर रह जाती थीं। अब प्रवाह स्थिर और शांत हो गया था और रश्मियां उसकी तह तक पहुंच रही थीं।

मिर्जा साहब बसंत की इस शीतल संध्या में अपने झोंपड़े के बरामदे में दो वारांगनाओं के साथ बैठे कुछ बातचीत कर रहे थे कि मिस्टर मेहता पहुंचे। मिर्जा ने बड़े तपाक से हाथ मिलाया और बोले–मैं तो आपकी खातिरदारी का सामान लिए आपकी राह देख रहा हूं।

दोनों सुंदरियां मुस्कराईं। मेहता कट गए।

मिर्जा ने दोनों औरतों को वहां से चले जाने का संकेत किया और मेहता को मसनद पर बैठाते हुए बोले–मैं तो खुद आपके पास आने वाला था। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि मैं जो काम करने जा रहा हूं, वह आपकी मदद के बगैर पूरा न होगा। आप सिर्फ मेरी पीठ पर हाथ रख दीजिए और ललकारते जाइए–हां मिर्जा, बढ़े चल पट्ठे।

मेहता ने हंसकर कहा–आप जिस काम में हाथ लगाएंगे, उसमें हम जैसे किताबी कीड़ों की जरूरत न होगी। आपकी उम्र मुझसे ज्यादा है। दुनिया भी आपने खूब देखी है और छोटे-छोटे आदमियों पर अपना असर डाल सकने की जो शक्ति आप में है, वह मुझमें होती, तो मैंने खुदा जाने क्या किया होता।

मिर्जा साहब ने थोड़े-से शब्दों में अपनी नई स्कीम उनसे बयान की। उनकी धारणा थी कि रूप के बाजार में वही स्त्रियां आती हैं, जिन्हें या तो अपने घर में किसी कारण से सम्मानपूर्ण आश्रय नहीं मिलता, या जो आर्थिक कष्टों से मजबूर हो जाती हैं और अगर यह दोनों प्रश्न हल कर दिए जाएं, तो बहुत कम औरतें इस भांति पतित हों।

मेहता ने अन्य विचारवान् सज्जनों की भांति इस प्रश्न पर काफी विचार किया था और

उनका खयाल था कि मुख्यत: मन के संस्कार और भोग-लालसा ही औरतों को इस ओर खींचती है। इसी बात पर दोनों मित्रों में बहस छिड़ गई। दोनों अपने-अपने पक्ष पर अड़ गए।

मेहता ने मुट्ठी बांधकर हवा में पटकते हुए कहा—आपने इस प्रश्न पर ठंडे दिल से गौर नहीं किया। रोजी के लिए और बहुत से जरिए हैं। मगर ऐश की भूख रोटियों से नहीं जाती। उसके लिए दुनिया के अच्छे-से-अच्छे पदार्थ चाहिए। जब तक समाज की व्यवस्था ऊपर से नीचे तक बदल न डाली जाय, इस तरह की मंडली से कोई फायदा न होगा।

मिर्जा ने मूंछें खड़ी कीं—और मैं कहता हूं कि यह महज रोजी का सवाल हैं। हां, यह सवाल सभी आदमियों के लिए एक-सा नहीं है। मजदूर के लिए वह महज आटे-दाल और एक फूस की झोंपड़ी का सवाल है। एक वकील के लिए वह एक कार और बंगले और खिदमतगारों का सवाल है। आदमी महज रोटी नहीं चाहता और भी बहुत-सी चीजें चाहता है। अगर औरतों के सामने भी वह प्रश्न तरह-तरह की सूरतों में आता है तो उनका क्या कसूर है?

डाक्टर मेहता अगर जरा गौर करते, तो उन्हें मालूम होता कि उनमें और मिर्जा में कोई भेद नहीं, केवल शब्दों का हेर-फेर है, पर बहस की गर्मी में गौर करने का धैर्य कहां? गर्म होकर बोले—मुआफ कीजिए, मिर्जा साहब, जब तक दुनिया में दौलत वाले रहेंगे, वेश्याएं भी रहेंगी। आपकी मंडली अगर सफल भी हो जाए, हालांकि मुझे उसमें बहुत संदेह है, तो आप दस-पांच औरतों से ज्यादा उनमें कभी न ले सकेंगे, और वह भी थोड़े दिनों के लिए। सभी औरतों में नाट्य करने की शक्ति नहीं होती, उसी तरह जैसे सभी आदमी कवि नहीं हो सकते। और यह भी मान लें कि वेश्याएं आपकी मंडली में स्थायी रूप से टिक जायंगी, तो भी बाजार में उनकी जगह खाली न रहेगी। जड़ पर जब तक कुल्हाड़े न चलेंगे, पत्तियां तोड़ने से कोई नतीजा नहीं। दौलत वालों में कभी-कभी ऐसे लोगों निकल आते हैं, जो सब कुछ त्यागकर खुदा की याद में जा बैठते हैं, मगर दौलत का राज्य बदस्तूर कायम है। उसमें जरा भी कमजोरी नहीं आने पाई।

मिर्जा को मेहता की हठधर्मी पर दु:ख हुआ। इतना पढ़ा-लिखा विचारवान् आदमी इस तरह की बातें करे! समाज की व्यवस्था क्या आसानी से बदल जाएगी? वह तो सदियों का मुआमला है। तब तक क्या यह अनर्थ होने दिया जाय? उसकी रोकथाम न की जाय, इन अबलाओं को मर्दों की लिप्सा का शिकार होने दिया जाय? क्यों न शेर को पिंजरे में बंद कर दिया जाए कि वह दांत और नाखून होते हुए भी किसी को हानि न पहुंचा सके। क्या उस वक्त तक चुपचाप बैठा रहा जाए, जब तक शेर अहिंसा का व्रत न ले ले? दौलत वाले और जिस तरह चाहें अपनी दौलत उड़ाएं मिर्जाजी को गम नहीं। शराब में डूब जाएं, कारों की माला गले में डाल लें, किले बनवाएं, धर्मशाले और मस्जिदें खड़ी करें, उन्हें कोई परवा नहीं। अबलाओं की जिंदगी न खराब करें। यह मिर्जाजी नहीं देख सकते। वह रूप के बाजार को ऐसा खाली कर देंगे कि दौलत वालों की अशर्फियों पर कोई थूकनेवाला भी न मिले। क्या जिन दिनों शराब की दूकानों की पिकेटिंग होती थी, अच्छे-अच्छे शराबी पानी पी-पीकर दिल की आग नहीं बुझाते थे?

मेहता ने मिर्जा की बेवकूफी पर हंसकर कहा—आपको मालूम होना चाहिए कि दुनिया में ऐसे मुल्क भी हैं, जहां वेश्याएं नहीं हैं। मगर अमीरों की दौलत वहां भी दिलचस्पियों के सामान पैदा कर लेती है।

मिर्जाजी भी मेहता की जड़ता पर हंसे—जानता हूं मेहरबान, जानता हूं। आपकी दुआ से दुनिया देख चुका हूं, मगर यह हिन्दुस्तान है, यूरोप नहीं है।

'इंसान का स्वभाव सारी दुनिया में एक-सा है।'

'मगर यह भी मालूम रहे कि हर एक कौम में एक ऐसी चीज है जिसे उसकी आत्मा कह सकते हैं। असमत (सतीत्व) हिन्दुस्तानी तहजीब की आत्मा है।'

'अपने मुंह मियां-मिट्ठू बन लीजिए।'

'दौलत की आप इतनी बुराई करते हैं, फिर भी खन्ना की हिमायत करते नहीं थकते। कहिएगा!'

मेहता का तेज विदा हो गया। नम्र भाव से बोले—मैंने खन्ना की हिमायत उस वक्त की है, जब वह दौलत के पंजे से छूट गए हैं, और आजकल आप उनकी हालत देखें तो आपको दया आएगी। और मैं क्या हिमायत करूंगा, जिसे अपनी किताबों और विद्यालय से छुट्टी नहीं, ज्यादा-से-ज्यादा सूखी हमदर्दी ही तो कर सकता हूं। हिमायत की है मिस मालती ने कि खन्ना को बचा लिया। इंसान के दिल की गहराइयों में त्याग और कुर्बानी में कितनी ताकत छिपी होती है, इसका मुझे अब तक तजरबा न हुआ था। आप भी एक दिन खन्ना से मिल आइए। फूला न समाएगा। इस वक्त उन्हें जिस चीज की सबसे ज्यादा जरूरत है, वह हमदर्दी है।

मिर्जा ने जैसे अपनी इच्छा के विरुद्ध कहा—आप कहते हैं, तो जाऊंगा। आपके साथ जहन्नुम में जाने में भी मुझे उज्र नहीं, मगर मिस मालती से तो आपकी शादी होने वाली थी। बड़ी गर्म खबर थी।

मेहता ने झेंपते हुए कहा—तपस्या कर रहा हूं। देखिए, कब वरदान मिले।

'अजी, वह तो आप पर मरती थी।'

'मुझे भी यही वहम हुआ था, मगर जब मैंने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ना चाहा तो देखा, वह आसमान पर जा बैठी है। उस ऊंचाई तक तो क्या मैं पहुंचूंगा, आरजू-मिन्नत कर रहा हूं कि नीचे आ जाय। आजकल तो वह मुझसे बोलती भी नहीं।'

यह कहते हुए मेहता जोर से रोती हुई हंसी हंसे और उठ खडे हुए।

मिर्जा ने पूछा—अब फिर कब मुलाकात होगी?

'अबकी आपको तकलीफ करनी पड़ेगी। खन्ना के पास जाइएगा जरूर।'

'जाऊंगा।'

मिर्जा ने खिड़की से मेहता को जाते देखा। चाल में वह तेजी न थी, जैसे किसी चिंता में डूबे हों।

तेंतीस

डाक्टर मेहता परीक्षक से परीक्षार्थी हो गए हैं। मालती से दूर-दूर रहकर उन्हें ऐसी शंका होने लगी है कि उसे खो न बैठें। कई महीनों से मालती उनके पास न आई थी और जब वह विकल होकर उसके घर गए, तो मुलाकात न हुई। जिन दिनों रुद्रपाल और सरोज का प्रेमकांड चलता

रहा, तब तो मालती उनकी सलाह लेने प्राय: एक-दो बार रोज आती थी, पर जब से दोनों इग्लैंड चले गए थे, उसका आना-जाना बंद हो गया था। घर पर भी वह मुश्किल से मिलती। ऐसा मालूम होता था, जैसे वह उनसे बचती है, जैसे बलपूर्वक अपने मन को उनकी ओर से हटा लेना चाहती है। जिस पुस्तक में वह इन दिनों लगे हुए थे, वह आगे बढ़ने से इंकार कर रही थी, जैसे उनका मनोयोग लुप्त हो गया हो। गृह-प्रबंध में तो वह कभी बहुत कुशल न थे। सब मिलाकर एक हजार रुपये से अधिक महीने में कमा लेते थे, मगर बचत एक धेले की भी न होती थी। रोटी-दाल खाने के सिवा और उनके हाथ कुछ न था। तकल्लुफ अगर कुछ था तो वह उनकी कार थी, जिसे वह खुद ड्राइव करते थे। कुछ रुपये किताबों में उड़ जाते थे, कुछ चंदों में, कुछ गरीब छात्रों की परवरिश में और अपने बाग की सजावट में, जिससे उन्हें इश्क-सा था। तरह तरह के पौधे और वनस्पतियां विदेशों से महंगे दामों मंगाना और उनको पालना-यही उनका मानसिक चटोरापन था या इसे दिमागी ऐयाशी कहें, मगर इधर कई महीनों से उस बगीचे की ओर से भी वह कुछ विरक्त-से हो रहे थे और घर का इंतजाम और भी अदतर हो गया था। खाते दो फुलके और खर्च हो जाते सौ से ऊपर। अचकन पुरानी हो गई थी, मगर इसी पर उन्होंने कड़ाके का जाड़ा काट दिया। नई अचकन सिलवाने की तौफीक न हुई। कभी-कभी बिना घी की दाल खाकर उठना पड़ता। कब घी का कनस्तर मंगाया था, इसकी उन्हें याद ही न थी, और महाराज से पूछें भी तो कैसे? वह समझेगा नहीं कि उस पर अविश्वास किया जा रहा है? आखिर एक दिन जब तीन निराशाओं के बाद चौथी बार मालती से मुलाकात हुई और उसने इनकी यह हालत देखी, तो उससे न रहा गया। बोली-तुम क्या अबकी जाड़ा यों ही काट दोगे? यह अचकन पहनते तुम्हें शर्म नहीं आती?

मालती उनकी पत्नी न होकर भी उनके इतने समीप थी कि यह प्रश्न उसने उसी सहज भाव से किया, जैसे अपने किसी आत्मीय से करती।

मेहता ने बिना झेंपे हुए कहा-क्या करूं मालती, पैसा तो बचता ही नहीं।

मालती को अचरज हुआ-तुम एक हजार से ज्यादा कमाते हो, और तुम्हारे पास अपने कपड़े बनवाने को भी पैसे नहीं? मेरी आमदनी कभी चार सौ से ज्यादा न थी, लेकिन मैं उसी में सारी गृहस्थी चलाती हूं और बचा लेती हूं। आखिर तुम क्या करते हो?

'मैं एक पैसा भी फालतू नहीं खर्च करता। मुझे कोई ऐसा शौक भी नहीं है।'

'अच्छा, मुझसे रुपये ले जाओ और एक जोड़ी अचकन बनवा लो।'

मेहता ने लज्जित होकर कहा-अबकी बनवा लूंगा। सच कहता हूं।

'अब आप यहां आएं तो आदमी बनकर आएं।'

'यह तो बड़ी कड़ी शर्त है।'

'कड़ी सही। तुम जैसों के साथ बिना कड़ाई किए काम नहीं चलता।'

मगर वहां तो संदूक खाली था और किसी दूकान पर बे-पैसे जाने का साहस न पड़ता था। मालती के घर जायं तो कौन मुंह लेकर? दिल में तड़प-तड़पकर रह जाते थे। एक दिन नई विपत्ति आ पड़ी। इधर कई महीने से मकान का किराया नहीं दिया था। पचहत्तर रुपये माहवार बढ़ते जाते थे। मकानदार ने, जब बहुत तकाजे करने पर भी रुपये वसूल न कर पाए, तो नोटिस दे दी, मगर नोटिस रुपये गढ़ने का कोई जंतर तो है नहीं। नोटिस की तारीख निकल गई और रुपये न पहुंचे। तब मकानदार ने मजबूर होकर नालिश कर दी। वह जानता था, मेहताजी बड़े

सज्जन और परोपकारी पुरुष हैं लेकिन इससे ज्यादा भलमनसी वह क्या करता कि छ: महीने सब्र किए बैठा रहा। मेहता ने किसी तरह की पैरवी न की, एकतरफा डिगरी हो गई, मकानदार ने तुरंत डिगरी जारी कराई और कुर्क अमीन मेहता साहब के पास पूर्व सूचना देने आया, क्योंकि उसका लड़का यूनिवर्सिटी में पढ़ता था और उसे मेहता कुछ वजीफा भी देते थे। संयोग से उस वक्त मालती भी बैठी थी।

बोली–कैसी कुर्की है? किस बात की?

अमीन ने कहा–वही किराए की डिगरी जो हुई थी, मैंने कहा, हुजूर को इत्तला दे दूं। चार-पांच सौ का मामला है, कौन-सी बड़ी रकम है। दस दिन में भी रुपये दे दीजिए, तो कोई हरज नहीं। मैं महाजन को दस दिन तक उलझाए रहूंगा।

जब अमीन चला गया तो मालती ने तिरस्कार-भरे स्वर में पूछा–अब यहां तक नौबत पहुंच गई। मुझे आश्चर्य होता है कि तुम इतने मोटे-मोटे ग्रंथ कैसे लिखते हो। मकान का किराया छ:-छ: महीने से बाकी पड़ा है और तुम्हें खबर नहीं?

मेहता लज्जा से सिर झुकाकर बोले– खबर क्यों नहीं है, लेकिन रुपये बचते ही नहीं। मैं एक पैसा भी व्यर्थ नहीं खर्च करता।

'कोई हिसाब-किताब भी लिखते हो?'

'हिसाब क्यों नहीं रखता। जो कुछ पाता हूं, वह सब दर्ज करता जाता हूं, नहीं इनकमटैक्स वाले जिंदा न छोड़ें।'

'और जो कुछ खर्च करते हो वह?'

'उसका तो कोई हिसाब नहीं रखता।'

'क्यों?'

'कौन लिखे? बोझ-सा लगता है।'

'और यह पोथे कैसे लिख डालते हो?'

'उसमें तो विशेष कुछ नहीं करना पड़ता। कलम लेकर बैठ जाता हूं। हर वक्त खर्च का खाता तो खोलकर नहीं बैठता।'

'तो रुपये कैसे अदा करोगे?'

'किसी से कर्ज ले लूंगा। तुम्हारे पास हो तो दे दो।'

'मैं तो एक शर्त पर दे सकती हूं। तुम्हारी आमदनी सब मेरे हाथों में आए और खर्च भी मेरे हाथों से हो।'

मेहता प्रसन्न होकर बोले–वाह, अगर यह भार ले लो, तो क्या कहना, मूसलों ढोल बजाऊं।

मालती ने डिगरी के रुपये चुका दिए और दूसरे ही दिन मेहता को वह बंगला खाली करने पर मजबूर किया। अपने बंगले में उसने उनके लिए दो बड़े-बड़े कमरे दे दिए। उनके भोजन आदि का प्रबंध भी अपनी ही गृहस्थी में कर दिया। मेहता के पास सामान तो ज्यादा न था, मगर किताबें कई गाड़ी थीं। उनके दोनों कमरे पुस्तकों से भर गए। अपना बगीचा छोड़ने का उन्हें जरूर कलक हुआ, लेकिन मालती ने अपना पूरा अहाता उनके लिए छोड़ दिया कि जो फूल-पत्तियां चाहें लगाएं।

मेहता तो निश्चिंत हो गए, लेकिन मालती को उनकी आय-व्यय पर नियंत्रण करने में

बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। उसने देखा, आय तो एक हजार से ज्यादा है, मगर वह सारी की सारी गुप्तदान में उड़ जाती है। बीस-पच्चीस लड़के उन्हीं के वजीफा पाकर विद्यालय में पढ़ रहे थे। विधवाओं की तादाद भी इससे कम न थी। इस खर्च में कैसे कमी करे, यह उसे न सूझता था। सारा दोष उसी के सिर मढ़ा जाएगा, सारा अपयश उसी के हिस्से पड़ेगा। कभी मेहता पर झुंझलाती, कभी अपने ऊपर, कभी प्रार्थियों के ऊपर जो एक सरल, उदार प्राणी पर अपना भार रखते जरा भी न सकुचाते थे। यह देखकर और झुंझलाहट होती थी कि इन दान लेने वालों में कुछ तो इसके पात्र ही न थे। एक दिन उसने मेहता को आड़े हाथों लिया।

मेहता ने उसका आक्षेप सुनकर निश्चिंत भाव से कहा—तुम्हें अख्तियार है, जिसे चाहे दो, चाहे न दो। मुझसे पूछने की कोई जरूरत नहीं। हां, जवाब भी तुम्हीं को देना पड़ेगा।

मालती ने चिढ़कर कहा—हां, और क्या, यश तो तुम लो, अपयश मेरे सिर मढ़ो। मैं नहीं समझती, तुम किस तर्क से इस दान-प्रथा का समर्थन कर सकते हो। मनुष्य-जाति को इस प्रथा ने जितना आलसी और मुफ्तखोर बनाया है और उसके आत्मगौरव पर जैसा आघात किया है, उतना अन्याय ने भी न किया होगा, बल्कि मेरे खयाल में अन्याय ने मनुष्य-जाति में विद्रोह की भावना उत्पन्न करके समाज का बड़ा उपकार किया है।

मेहता ने स्वीकार किया—मेरा भी यही खयाल है।

'तुम्हारा यह खयाल नहीं है।'

'नहीं मालती, मैं सच कहता हूं।'

'तो विचार और व्यवहार में इतना भेद क्यों?'

मालती ने तीसरे महीने बहुतों को निराश किया। किसी को साफ जवाब दिया, किसी से मजबूरी जताई, किसी की फजीहत की।

मिस्टर मेहता का बजट तो धीरे-धीरे ठीक हो गया, मगर इससे उनको एक प्रकार की ग्लानि हुई। मालती ने जब तीसरे महीने में तीन सौ बचत दिखाई, तब वह उससे कुछ बोले नहीं मगर उनकी दृष्टि में उसका गौरव कुछ कम अवश्य हो गया। नारी में दान और त्याग होना चाहिए। उसकी यही सबसे बड़ी विभूति है। इसी आधार पर समाज का भवन खड़ा है। वणिक्-बुद्धि को वह आवश्यक बुराई ही समझते थे।

जिस दिन मेहता की अचकनें बनकर आईं और नई घड़ी आई, वह संकोच के मारे कई दिन बाहर न निकले। आत्म-सेवा से बड़ा उनकी नजर में दूसरा अपराध न था।

मगर रहस्य की बात यह थी कि मालती उनको तो लेखे-ड्योढ़े में कसकर बांधना चाहती थी। उनके धन-दान के द्वार बंद कर देना चाहती थी, पर खुद जीवन-दान देने में अपने समय और सदाशयता को दोनों हाथों से लुटाती थी। अमीरों के घर तो वह बिना फीस लिए न जाती थी, लेकिन गरीबों को मुफ्त देखती थी, मुफ्त दवा भी देती थी। दोनों में अंतर इतना ही था, कि मालती घर की भी थी और बाहर की भी, मेहता केवल बाहर के थे, घर उनके लिए न था। निजत्व दोनों मिटाना चाहते थे। मेहता का रास्ता साफ था। उन पर अपनी जात के सिवा और कोई जिम्मेदारी न थी। मालती का रास्ता कठिन था, उस पर दायित्व था, बंधन था, जिसे वह तोड़ न सकती थी, न तोड़ना चाहती थी। उस बंधन में ही उसे जीवन की प्रेरणा मिलती थी। उसे अब मेहता को समीप से देखकर यह अनुभव हो रहा था कि वह खुले जंगल में विचरने

वाले जीव को पिंजरे में बंद नहीं कर सकती। और बंद कर देगी, तो वह काटने और नोचने दौड़ेगा। पिंजरे में सब तरह का सुख मिलने पर भी उसके प्राण सदैव जंगल के लिए ही तड़पते रहेंगे। मेहता के लिए घरबारी दुनिया एक अनजानी दुनिया थी, जिसकी रीति-नीति से वह परिचित न थे।

उन्होंने संसार को बाहर से देखा था और उसे मक्र और फरेब से ही भरा समझते थे। जिधर देखते थे, उधर ही बुराइयां नजर आती थीं, मगर समाज में जब गहराई में जाकर देखा, तो उन्हें मालूम हुआ कि इन बुराइयों के नीचे त्याग भी है, प्रेम भी है, साहस भी है, धैर्य भी है, मगर यह भी देखा कि वह विभूतियां हैं तो जरूर, पर दुर्लभ हैं, और इस शंका और संदेह में जब मालती का अंधकार से निकलता हुआ देवी-रूप उन्हें नजर आया, तब वह उसकी ओर उतावलेपन के साथ, सारा धैर्य खोकर टूटे और चाहा कि उसे ऐसे जतन से छिपाकर रखें कि किसी दूसरे की आंख भी उस पर न पड़े। यह ध्यान न रहा कि यह मोह ही विनाश की जड़ है। प्रेम जैसी निर्मम वस्तु क्या भय से बांधकर रखी जा सकती है? वह तो पूरा विश्वास चाहती है, पूरी स्वाधीनता चाहती है, पूरी जिम्मेदारी चाहती है। उसके पल्लवित होने की शक्ति उसके अंदर है। उसे प्रकाश और क्षेत्र मिलना चाहिए। वह कोई दीवार नहीं है, जिस पर ऊपर से ईंटें रखी जाती हैं। उसमें तो प्राण हैं, फैलने की असीम शक्ति है।

जब से मेहता इस बंगले में आए हैं, उन्हें मालती से दिन में कई बार मिलने का अवसर मिलता है। उनके मित्र समझते हैं, यह उनके विवाह की तैयारी है। केवल रस्म अदा करने की देर है। मेहता भी यही स्वप्न देखते रहते हैं। अगर मालती ने उन्हें सदा के लिए ठुकरा दिया होता, तो क्यों उन पर इतना स्नेह रखती? शायद वह उन्हें सोचने का अवसर दे रही है, और वह खूब सोचकर इसी निश्चय पर पहुंचे हैं कि मालती के बिना वह आधे हैं। वही उन्हें पूर्णता की ओर ले जा सकती है। बाहर से वह विलासिनी है, भीतर से वही मनोवृत्ति शक्ति का केंद्र है, मगर परिस्थिति बदल गई है। तब मालती प्यासी थी, अब मेहता प्यास से विकल हैं। और एक बार जवाब पा जाने के बाद उन्हें उस प्रश्न पर मालती से कुछ कहने का साहस नहीं होता, यद्यपि उनके मन में अब संदेह का लेश नहीं रहा। मालती को समीप से देखकर उनका आकर्षण बढ़ता ही जाता है। दूर से पुस्तक के जो अक्षर लिपे-पुते लगते थे, समीप से वह स्पष्ट हो गए हैं, उनमें अर्थ है, संदेश है।

इधर मालती ने अपने बाग के लिए गोबर को माली रख लिया था। एक दिन वह किसी मरीज को देखकर आ रही थी कि रास्ते में पेट्रोल न रहा। वह खुद ड्राइव कर रही थी। फिक्र हुई पेट्रोल कहां से आए? रात के नौ बज गए थे और माघ का जाड़ा पड़ रहा था। सड़कों पर सन्नाटा हो गया था। कोई ऐसा आदमी नजर न आता था, जो कार को ढकेलकर पेट्रोल की दुकान तक ले जाए। बार-बार नौकर पर झुंझला रही थी। हरामखोर कहीं का, बेखबर पड़ा रहता है।

संयोग से गोबर उधर से आ निकला। मालती को देखकर उसने हालत समझ ली और गाड़ी को दो फर्लांग ठेलकर पेट्रोल की दुकान तक लाया।

मालती ने प्रसन्न होकर पूछा—नौकरी करोगे?

गोबर ने धन्यवाद के साथ स्वीकार किया। पंद्रह रुपये वेतन तय हुआ। माली का काम उसे पसंद था। यही काम उसने किया था और उसमें मंजा हुआ था। मिल की मजदूरी में वेतन ज्यादा मिलता था, पर उस काम से उसे उलझन होती थी।

दूसरे दिन गोबर ने मालती के यहां काम करना शुरू कर दिया। उसे रहने को एक कोठरी भी मिल गई। झुनिया भी आ गई। मालती बाग में आती तो झुनिया का बालक धूल-मिट्टी में खेलता फिरता। एक दिन मालती ने उसे एक मिठाई दे दी। बच्चा उस दिन से परच गया। उसे देखते ही उसके पीछे लग जाता और जब तक मिठाई न ले लेता, उसका पीछा न छोड़ता।

एक दिन मालती बाग में आई तो बालक न दिखाई दिया। झुनिया से पूछा तो मालूम हुआ बच्चे को ज्वर आ गया है।

मालती ने घबराकर कहा–ज्वर आ गया। तो मेरे पास क्यों नहीं लाई? चल देखूं।

बालक खटोले पर ज्वर में अचेत पड़ा था। खपरैल की उस कोठरी में इतनी सील, इतना अंधेरा, और इस ठंड के दिनों में भी इतने मच्छर कि मालती एक मिनट भी वहां न ठहर सकी, तुरंत आकर थर्मामीटर लिया और फिर जाकर देखा, एक सौ चार था। मालती को भय हुआ, कहीं चेचक न हो। बच्चे को अभी तक टीका नहीं लगा था। और अगर इस सीली कोठरी में रहा, तो भय था, कहीं ज्वर और न बढ़ जाय।

सहसा बालक ने आंखें खोल दीं और मालती को खड़ी पाकर करुण नेत्रों से उसकी ओर देखा और उसकी गोद के लिए हाथ फैलाए। मालती ने उसे गोद में उठा लिया और थपकियां देने लगी।

बालक मालती की गोद में आकर जैसे किसी बड़े सुख का अनुभव करने लगा। अपनी जलती हुई उंगलियों से उसके गले की मोतियों की माला पकड़कर अपनी ओर खींचने लगा। मालती ने नेकलेस उतारकर उसके गले में डाल दी। बालक की स्वार्थी प्रकृति इस दशा में भी सजग थी। नेकलेस पाकर अब उसे मालती की गोद में रहने की कोई ऐसी जरूरत न रही। यहां उसके छिन जाने का भय था। झुनिया की गोद इस समय ज्यादा सुरक्षित थी।

मालती ने खिले हुए मन से कहा–बड़ा चालाक है। चीज लेकर कैसा भागा।

झुनिया ने कहा–दे दो बेटा, मेम साहब का है।

बालक ने हार को दोनों हाथों से पकड़ लिया और मां की ओर रोष से देखा।

मालती बोली–तुम पहने रहो बच्चा, मैं मांगती नहीं हूं।

उसी वक्त बंगले में आकर उसने अपना बैठक का कमरा खाली कर दिया और उसी वक्त झुनिया उस नए कमरे में डट गई।

मंगल ने उस स्वर्ग को कौतूहल-भरी आंखों से देखा। छत में पंखा था, रंगीन बल्ब थे, दीवारों पर तस्वीरें थीं। देर तक उन चीजों को टकटकी लगाए देखता रहा। मालती ने बड़े प्यार से पुकारा–मंगल!

मंगल ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा, जैसे कह रहा हो–आज तो हंसा नहीं जाता मेम साहब! क्या करूं। आपसे कुछ हो सके तो कीजिए।

मालती ने झुनिया को बहुत-सी बातें समझाईं और चलते-चलते पूछा–तेरे घर में कोई दूसरी औरत हो, तो गोबर से कह दे, दो-चार दिन के लिए बुला लावे। मुझे चेचक का डर है। कितनी दूर है तेरा घर?

झुनिया ने अपने गांव का नाम और घर का पता बताया। अंदाज से अट्ठारह-बीस कोस होंगे।

मालती को बेलारी याद था। बोली–वहो गांव तो नहीं, जिसके पच्छिम तरफ आध मील

पर नदी है?

'हां-हां मेम साहब, वही गांव है। आपको कैसे मालूम?'

'एक बार हम लोग उस गांव में गए थे। होरी के घर ठहरे थे। तू उसे जानती है?'

'वह तो मेरे ससुर हैं मेम साहब। मेरी सास भी मिली होंगी?'

'हां-हां, बड़ी समझदार औरत मालूम होती थी। मुझसे खूब बातें करती रही। तो गोबर को भेज दे, अपनी मां को बुला लाए।'

'वह उन्हें बुलाने नहीं जायंगे।'

'क्यों?'

'कुछ ऐसा ही कारन है।'

झुनिया को अपने घर का चौका बरतन, झाड़ू-बुहारू, रोटी-पानी सभी कुछ करना पड़ता। दिन को तो दोनों चना-चबेना खाकर रह जाते। रात को जब मालती आ जाती, तो झुनिया अपना खाना पकाती और मालती बच्चे के पास बैठती। वह बार-बार चाहती कि बच्चे के पास बैठे, लेकिन मालती उसे न आने देती। रात को बच्चे का ज्वर तेज हो जाता और वह बेचैन होकर दोनों हाथ ऊपर उठा लेता। मालती उसे गोद में लेकर घंटों कमरे में टहलती। चौथे दिन उसे चेचक निकल आई। मालती ने सारे घर को टीका लगाया, खुद को टीका लगवाया, मेहता को भी लगाया। गोबर, झुनिया, महराज, कोई न बचा। पहले दिन तो दाने छोटे थे और अलग-अलग थे। जान पड़ता था, छोटी माता है। दूसरे दिन दाने जैसे खिल उठे और अंगूर के दानों के बराबर हो गए और फिर कई-कई दाने मिलकर बड़े-बड़े आंवले जैसे हो गए। मंगल जलन और खुजली और पीड़ा से बेचैन होकर करुण स्वर में कराहता और दीन, असहाय नेत्रों से मालती की ओर देखता। उसका कराहना भी प्रौढ़ों का-सा था, और दृष्टि में भी प्रौढ़ता थी, जैसे वह एकाएक जवान हो गया हो। इस असह्य वेदना ने मानो उसके अबोध शिशुपन को मिटा डाला हो। उसकी शिशु-बुद्धि मानो सज्ञान होकर समझ रही थी कि मालती ही के जतन से वह अच्छा हो सकता है। मालती ज्योंही किसी काम से चली जाती, वह रोने लगता। मालती के आते ही चुप हो जाता। रात को उसकी बेचैनी बढ़ जाती और मालती को प्राय: सारी रात बैठना पड़ जाता, मगर वह न कभी झुंझलाती, न चिढ़ती। हां, झुनिया पर उसे कभी-कभी अवश्य क्रोध आता, क्योंकि वह अज्ञान के कारण जो न करना चाहिए, वह कर बैठती। गोबर और झुनिया दोनों की आस्था झाड़-फूंक में अधिक थी, पर यहां उसको कोई अवसर न मिलता। उस पर झुनिया दो बच्चे की मां होकर बच्चे का पालन करना न जानती थी। मंगल दिक करता, तो उसे डांटती-कोसती। जरा-सा भी अवकाश पाती, तो जमीन पर सो जाती और सबेरे से पहले न उठती, और गोबर तो उस कमरे में आते जैसे डरता था। मालती वहां बैठी है, कैसे जाय? झुनिया से बच्चे का हाल-हवाल पूछ लेता और खाकर पड़ रहता। उस चोट के बाद वह पूरा स्वस्थ न हो पाया था। थोड़ा-सा काम करके भी थक जाता था। उन दिनों जब झुनिया घास बेचती थी और वह आराम से पड़ा रहता था, तो वह कुछ हरा हो गया था, मगर इधर कई महीने बोझ ढोने और चूने-गारे का काम करने से उसकी दशा गिर गई थी। उस पर यहां काम बहुत था। सारे बाग को पानी निकालकर सींचना, क्यारियों को गोड़ना, घास छीलना, गायों को चारा-पानी देना और दुहना। और जो मालिक इतना दयालु हो, उसके काम में काम-चोरी कैसे करे? यह एहसान उसे एक क्षण भी आराम से न बैठने देता, और तब मेहता खुद खुरपी लेकर घंटों बाग में काम करते तो वह कैसे

आराम करता? वह खुद सूखता जाता था, पर बाग हरा हो रहा था।

मिस्टर मेहता को भी बालक से स्नेह हो गया था। एक दिन मालती ने उसे गोद में लेकर उनकी मूंछें उखड़वा दी थीं। दुष्ट ने मूंछों को ऐसा पकड़ा था कि समूल ही उखाड़ लेगा। मेहता की आंखों में आंसू भर आए थे।

मेहता ने बिगड़कर कहा था—बड़ा शैतान लौंडा है।

मालती ने उन्हें डांटा था—तुम मूंछें साफ क्यों नहीं कर लेते?

'मेरी मूंछें मुझे प्राणों से प्रिय हैं।'

'अबकी पकड़ लेगा, तो उखाड़कर ही छोड़ेगा।'

'तो मैं इसके कान भी उखाड़ लूंगा।'

मंगल को उनकी मूंछें उखाड़ने में कोई खास मजा आया था। वह खूब खिल-खिलाकर हंस रहा था और मूंछों को और जोर से खींचा था, मगर मेहता को भी शायद मूंछें उखड़वाने में मजा आया था, क्योंकि वह प्राय: दो-तीन बार रोज उससे अपनी मूंछों की रस्साकशी करा लिया करते थे।

इधर जब से मंगल को चेचक निकल आई थी, मेहता को भी बड़ी चिंता हो गई थी। अक्सर कमरे में जाकर मंगल को व्यथित आंखों से देखा करते। उसके कष्टों की कल्पना करके उनका कोमल हृदय हिल जाता था। उनके दौड़-धूप से वह अच्छा हो जाता, तो पृथ्वी के उस छोर तक दौड़ लगाते, रुपये खर्च करने से अच्छा होता, तो चाहे भीख ही मांगना पड़ता, वह उसे अच्छा करके ही रहते, लेकिन यहां कोई बस न था। उसे छूते भी उनके हाथ कांपते थे। कहीं उसके आंबले न टूट जायं। मालती कितने कोमल हाथों से उसे उठाती है, कंधे पर उठाकर कमरे में टहलाती है और किनने स्नेह से उसे बहलाकर दूध पिलाती है। यह वात्सल्य मालती को उनकी दृष्टि में न जाने कितना ऊंचा उठा देता है। मालती केवल रमणी नहीं है, माता भी है और ऐसी वैसी माता भी नहीं, सच्चे अर्थों में देवी और माता और जीवन देने वाली, जो पराए बालक को भी अपना सकती है, जैसे उसने मातापन का सदैव संचय किया हो और आज दोनों हाथों से उसे लुटा रही हो। उसके अंग-अंग से मातापन फूटा पड़ता था, मानो यही उसका यथार्थ रूप हो। यह हाव-भाव, यह शौक-सिंगार उसके मातापन के आवरण-मात्र हों, जिससे उस विभूति की रक्षा होती रहे।

रात का एक बज गया था। मंगल का रोना सुनकर मेहता चौंक पड़े। सोचा, बेचारी मालती आधी रात तक तो जागती रही होगी, इस वक्त उसे उठने में कितना कष्ट होगा, अगर द्वार खुला हो तो मैं ही बच्चे को चुप करा दूं। तुरंत उठकर उस कमरे के द्वार पर आए और शीशे से अंदर झांका। मालती बच्चे को गोद में लिए बैठी थी और बच्चा अनायास ही रो रहा था। शायद उसने कोई स्वप्न देखा था, या और किसी वजह से डर गया था। मालती चुमकारती थी, थपकती थी, तस्वीरें दिखाती थी, गोद में लेकर टहलती थी, पर बच्चा चुप होने का नाम न लेता था। मालती का यह अटूट वात्सल्य, यह अदम्य मातृ-भाव देखकर उनकी आंखें सजल हो गईं। मन में ऐसा पुलक उठा कि अंदर जाकर मालती के चरणों को हृदय से लगा लें। अंतस्तल से अनुराग में डूबे हुए शब्दों का एक समूह मचल पड़ा—प्रिये, मेरे स्वर्ग की देवी, मेरी रानी, डार्लिंग....

और उसी प्रेमोन्माद में उन्होंने पुकारा—मालती, जरा द्वार खोल दो।

मालती ने आकर द्वार खोल दिया और उनकी ओर जिज्ञासा की आंखों से देखा।

मेहता ने पूछा—क्या झुनिया नहीं उठी? यह तो बहुत रो रहा है।

मेहता ने संवेदना-भरे स्वर में कहा—आज आठवां दिन है, पीड़ा अधिक होगी। इसी से।

'तो लाओ, मैं कुछ देर टहला दूं, तुम थक गई होगी।'

मालती ने मुस्कराकर कहा—तुम्हें जरा ही देर में गुस्सा आ जायगा।

बात सच थी, मगर अपनी कमजोरी को कौन स्वीकार करता है? मेहता ने जिद करके कहा—तुमने मुझे इतना हल्का समझ लिया है?

मालती ने बच्चे को उनकी गोद में दे दिया। उनकी गोद में जाते ही वह एकदम चुप हो गया। बालकों में जो एक अंतर्ज्ञान होता है, उसने उसे बता दिया, अब रोने में तुम्हारा कोई फायदा नहीं। यह नया आदमी स्त्री नहीं, पुरुष है और पुरुष गुस्सेवर होता है और निर्दयी भी होता है और चारपाई पर लेटाकर, या बाहर अंधेरे में सुलाकर दूर चला जा सकता है और किसी को पास आने भी न देगा।

मेहता ने विजय-गर्व से कहा—देखा, कैसा चुप कर दिया।

मालती ने विनोद किया—हां, तुम इस कला में भी कुशल हो। कहां सीखी?

'तुमसे।'

'मैं स्त्री हूं और मुझ पर विश्वास नहीं किया जा सकता।'

मेहता ने लज्जित होकर कहा—मालती, मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूं, मेरे उन शब्दों को भूल जाओ। इन कई महीनों में कितना पछताया हूं, कितना लज्जित हुआ हूं, कितना दुःखी हुआ हूं, शायद तुम इसका अंदाज न कर सको।

मालती ने सरल भाव से कहा—मैं तो भूल गई, सच कहती हूं।

'मुझे कैसे विश्वास आए?'

'उसका प्रमाण यही है कि हम दोनों एक ही घर में रहते हैं, एक साथ खाते हैं, हंसते हैं, बोलते हैं।'

'क्या मुझे कुछ याचना करने की अनुमति न दोगी?'

उन्होंने मंगल को खाट पर लिटा दिया, जहां वह दुबककर सो रहा। और मालती की ओर प्रार्थी आंखों से देखा, जैसे उसकी अनुमति पर उनका सब कुछ टिका हुआ हो।

मालती ने आर्द्र होकर कहा—तुम जानते हो, तुमसे ज्यादा निकट संसार में मेरा कोई दूसरा नहीं है। मैंने बहुत दिन हुए, अपने को तुम्हारे चरणों पर समर्पित कर दिया। तुम मेरे पथ-प्रदर्शक हो, मेरे देवता हो, मेरे गुरु हो। तुम्हें मुझसे कुछ याचना करने की जरूरत नहीं, मुझे केवल संकेत कर देने की जरूरत है। जब तक मुझे तुम्हारे दर्शन न हुए थे और मैंने तुम्हें पहचाना न था, भोग और आत्म-सेवा ही मेरे जीवन का इष्ट था। तुमने आकर उसे प्रेरणा दी, स्थिरता दी। मैं तुम्हारे एहसान कभी नहीं भूल सकती। मैंने नदी की तट वाली तुम्हारी बातें गांठ बांध लीं। दुःख यही हुआ कि तुमने भी मुझे वही समझा, जो कोई दूसरा पुरुष समझता, जिसकी मुझे तुमसे आशा न थी। उसका दायित्व मेरे ऊपर है, यह मैं जानती हूं, लेकिन तुम्हारा अमूल्य प्रेम पाकर भी मैं वही बनी रहूंगी, ऐसा समझकर तुमने मेरे साथ अन्याय किया। मैं इस समय कितने गर्व का अनुभव कर रही हूं, यह तुम नहीं समझ सकते। तुम्हारा प्रेम और विश्वास पाकर अब मेरे लिए कुछ भी शेष नहीं रह गया है। यह वरदान मेरे जीवन को सार्थक कर देने के लिए काफी है। यह मेरी पूर्णता है।

यह कहते-कहते मालती के मन में ऐसा अनुराग उठा कि मेहता के सीने से लिपट जाय। भीतर की भावनाएं बाहर आकर मानो सत्य हो गई थीं। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। जिस आनंद को उसने दुर्लभ समझ रखा था, वह इतना सुलभ, इतना समीप है। और हृदय का वह आह्लाद मुख पर आकर उसे ऐसी शोभा देने लगा कि मेहता को उसमें देवत्व की आभा दिखी। यह नारी है, या मंगल की, पवित्रता की और त्याग की प्रतिमा।

उसी वक्त झुनिया जागकर उठ बैठी और मेहता अपने कमरे में चले गए और फिर दो सप्ताह तक मालती से कुछ बातचीत करने का अवसर उन्हें न मिला। मालती कभी उनसे एकांत में न मिलती। मालती के वह शब्द उनके हृदय में गूंजते रहते। उनमें कितनी सांत्वना थी, कितनी विनय थी, कितना नशा था।

दो सप्ताह में मंगल अच्छा हो गया। हां, मुंह पर चेचक के दाग न भर सके। उस दिन मालती ने आस-पास के लड़कों को भरपेट मिठाई खिलाई और जो मनौतियां कर रखी थीं, वह भी पूरी कीं। इस त्याग के जीवन में कितना आनंद है, इसका अब उसे अनुभव हो रहा था। झुनिया और गोबर का हर्ष मानो उसके भीतर प्रतिबिंबित हो रहा था। दूसरों के कष्ट निवारण में उसने जिस सुख और उल्लास का अनुभव किया, वह कभी भोग-विलास के जीवन में न किया था। वह लालसा अब उन फूलों की भांति क्षीण हो गई थी, जिसमें फल लग रहे हों। अब वह उस दर्जे से आगे निकल चुकी थी, जब मनुष्य स्थूल आनंद को परम सुख मानता है। यह आनंद अब उसे तुच्छ पतन की ओर ले जाने वाला, कुछ हल्का, बल्कि वीभत्स-सा लगता था। उसे बड़े बंगले में रहने का क्या आनंद, जब उसके आस-पास मिट्टी के झोंपड़े मानो विलाप कर रहे हों। कार पर चढ़कर अब उसे गर्व नहीं होता। मंगल जैसे अबोध बालक ने उसके जीवन में कितना प्रकाश डाल दिया, उसके सामने सच्चे आनंद का द्वार-सा खोल दिया।

एक दिन मेहता के सिर में जोर का दर्द हो रहा था। वह आंखें बंद किए चारपाई पर पड़े तड़प रहे थे कि मालती ने आकर उनके सिर पर हाथ रखकर पूछा—कब से यह दर्द हो रहा है?

मेहता को ऐसा जान पड़ा, उन कोमल हाथों ने जैसे सारा दर्द खींच लिया। उठकर बैठ गए और बोले—दर्द तो दोपहर से ही हो रहा था और ऐसा सिर-दर्द मुझे आज तक नहीं हुआ था, मगर तुम्हारे हाथ रखते ही सिर ऐसा हल्का हो गया है, मानो दर्द था ही नहीं। तुम्हारे हाथों में यह सिद्धि है।

मालती ने उन्हें कोई दवा लाकर खाने को दे दी और आराम से लेटे रहने की ताकीद करके तुरंत कमरे से निकल जाने को हुई।

मेहता ने आग्रह करके कहा- जरा दो मिनट बैठोगी नहीं?

मालती ने द्वार पर से पीछे फिरकर कहा—इस वक्त बातें करोगे तो शायद फिर दर्द होने लगे। आराम से लेटे रहो। आजकल मैं तुम्हें हमेशा कुछ-न-कुछ पढ़ते या लिखते देखती हूं। दो-चार दिन लिखना-पढ़ना छोड़ दो।

'तुम एक मिनट बैठोगी नहीं?'

'मुझे एक मरीज को देखने जाना है।'

'अच्छी बात है, जाओ।'

मेहता के मुख पर कुछ ऐसी उदासी छा गई कि मालती लौट पड़ी और सामने आकर

बोली–अच्छा, कहो क्या कहते हो?

मेहता ने विमन होकर कहा–कोई खास बात नहीं है। यही कह रहा था कि इतनी रात गए किस मरीज को देखने जाओगी?

'वही रायसाहब की लड़की है। उसकी हालत बहुत खराब हो गई थी। अब कुछ सभल गई है।'

उसके जाते ही मेहता फिर लेट रहे। कुछ समझ में नहीं आया कि मालती के हाथ रखते ही दर्द क्यों शांत हो गया। अवश्य ही उसमें कोई सिद्धि है और यह उसकी तपस्या का, उसकी कमण्य मानवता का ही वरदान है। मालती नारीत्व के उस ऊंचे आदर्श पर पहुंच गई थी, जहां वह प्रकाश के एक नक्षत्र-सी नजर आती थी। अब वह प्रेम की वस्तु नहीं, श्रद्धा की वस्तु थी। अब वह दुर्लभ हो गई थी और दुर्लभता मनस्वी आत्माओं के लिए उद्योग का मंत्र है। मेहता प्रेम में जिस सुख की कल्पना कर रहे थे, उसे श्रद्धा ने और भी गहरा, और भी स्फूर्तिमय बना दिया। प्रेम में कुछ मान भी होता है, कुछ ममत्व भी। श्रद्धा तो अपने को मिटा डालती है और अपने मिट जाने को ही अपना इष्ट बना लेती है। प्रेम अधिकार करना चाहता है, जो कुछ देता है, उसके बदले में कुछ चाहता भी है। श्रद्धा का चरम आनंद अपना समर्पण है, जिसमें अहम्मन्यता का ध्वंस हो जाता है।

मेहता का वह बृहत् ग्रंथ समाप्त हो गया था, जिसे वह तीन साल से लिख रहे थे और जिसमें उन्होंने संसार के सभी दर्शन-तत्त्वों का समन्वय किया था। यह ग्रंथ उन्होंने मालती को समर्पित किया, और जिस दिन उसकी प्रतियां इग्लैंड से आई और उन्होने एक प्रति मालती को भेंट की, वह उसे अपने नाम से समर्पित देखकर विस्मित भी हुई और दु:खी भी।

उसने कहा–यह तुमने क्या किया? मैं तो अपने को इस योग्य नहीं समझती।

मेहता ने गर्व के साथ कहा–लेकिन मैं तो समझता हूं। यह तो कोई चीज नहीं। मेरे तो अगर सौ प्राण होते, तो वह तुम्हारे चरणों में न्योछावर कर देता।

'मुझ पर! जिसने स्वार्थ-सेवा के सिवा कुछ जाना ही नहीं।'

'तुम्हारे त्याग का टुकड़ा भी मैं पा जाता, तो अपने को धन्य समझता। तुम देवी हो।'

'पत्थर की, इतना और क्यों नहीं कहते?'

'त्याग की, मंगल की, पवित्रता की।'

'तब तुमने मुझे खूब समझा! मैं और त्याग! मैं तुमसे सच कहती हूं, सेवा या त्याग का भाव कभी मेरे मन में नहीं आया। जो कुछ करती हूं, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष स्वार्थ के लिए करती हूं। मैं गाती इसलिए नहीं कि त्याग करती हूं, या अपने गीतों से दुखी आत्माओं को सांत्वना देती हूं, बल्कि केवल इसलिए कि उससे मेरा मन प्रसन्न होता है। इसी तरह दवा-दारू भी गरीबों को दे देती हूं, केवल अपने मन को प्रसन्न करने के लिए। शायद मन का अहंकार इसमें सुख मानता है। तुम मुझे ख्वाहमख्वाह देवी बनाए डालते हो। अब तो इतनी कसर रह गई है कि धूप-दीप लेकर मेरी पूजा करो।'

मेहता ने कातर स्वर में कहा–वह तो मैं बरसो से कर रहा हूं मालती, और उस वक्त तक करता जाऊंगा, जब तक वरदान न मिलेगा।

मालती ने चुटकी ली–तो वरदान पा जाने के बाद शायद देवी को मंदिर से निकाल फेंको।

मेहता संभलकर बोले–तब तो मेरी अलग सत्ता ही न रहेगी, उपासक उपास्य में लय

हो जायगा।

मालती ने गंभीर होकर कहा—नहीं मेहता, मैं महीनों से इस प्रश्न पर विचार कर रही हूं और अंत में मैंने यह तय किया है कि मित्र बनकर रहना स्त्री-पुरुष बनकर रहने से कहीं सुखकर है। तुम मुझसे प्रेम करते हो, मुझ पर विश्वास करते हो, और मुझे भरोसा है कि आज अवसर आ पड़े तो तुम मेरी रक्षा प्राणों से करोगे। तुममें मैंने अपना पथ-प्रदर्शक ही नहीं, अपना रक्षक भी पाया है। मैं भी तुमसे प्रेम करती हूं, तुम पर विश्वास करती हूं, और तुम्हारे लिए कोई ऐसा त्याग नहीं है, जो मैं न कर सकूं। और परमात्मा से मेरी यही विनय है कि वह जीवन-पर्यंत मुझे इसी मार्ग पर दृढ़ रखे। हमारी पूर्णता के लिए, हमारी आत्मा के विकास के लिए और क्या चाहिए? अपनी छोटी-सी गृहस्थी बनाकर, हमारी आत्माओं को छोटे-से पिंजड़े में बंद करके, अपने दु:ख-सुख को अपने ही तक रखकर, क्या हम असीम के निकट पहुंच सकते हैं? वह तो हमारे मार्ग में बाधा ही डालेगा। कुछ विरले प्राणी ऐसे भी हैं, जो पैरों में यह बेड़ियां डालकर भी विकास के पथ पर चल सकते हैं और चल रहे हैं। यह भी जानती हूं कि पूर्णता के लिए पारिवारिक प्रेम और त्याग और बलिदान का बहुत बड़ा महत्त्व है, लेकिन मैं अपनी आत्मा को उतना दृढ़ नहीं पाती। जब तक ममत्व नहीं है, अपनापन नहीं है, तब तक जीवन का मोह नहीं है, स्वार्थ का जोर नहीं है। जिस दिन मन में मोह आसक्त हुआ और हम बंधन में पड़े, उस क्षण हमारा मानवता का क्षेत्र सिकुड़ जायगा, नई-नई जिम्मेदारियां आ जायंगी और हमारी सारी शक्ति उन्हीं को पूरा करने में लगने लगेंगी। तुम्हारे जैसे विचारवान्, प्रतिभाशाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस कारागार में बंद नहीं करना चाहती। अभी तक तुम्हारा जीवन यज्ञ था, जिसमें स्वार्थ के लिए बहुत थोड़ा स्थान था। मैं उसको नीचे की ओर न ले जाऊंगी। संसार को तुम जैसे साधकों की जरूरत है, जो अपनेपन को इतना फैला दें कि सारा संसार अपना हो जाय। संसार में अन्याय की, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है। अंधविश्वास का, कपट धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त पुकार सुनी है। तुम भी न सुनोगे, तो सुनने वाले कहां से आयंगे? और असत्य प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान नहीं बंद कर सकते। तुम्हें वह जीवन भार हो जायगा। अपनी विद्या और बुद्धि को, अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और जोर के साथ उसी रास्ते पर ले जाओ। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे चलूंगी। अपने जीवन के साथ मेरा जीवन भी सार्थक कर दो। मेरा तुमसे यही आग्रह है। अगर तुम्हारा मन सांसारिकता की ओर लपकता है, तब भी मैं अपना काबू चलते तुम्हें उधर से हटाऊंगी और ईश्वर न करे कि मैं असफल हो जाऊं, लेकिन तब मैं तुम्हारा साथ दो बूंद आंसू गिराकर छोड़ दूंगी, और कह नहीं सकती, मेरा क्या अंत होगा, किस घाट लगूंगी, पर चाहे वह कोई घाट हो, इस बंधन का घाट न होगा। बोलो, मुझे क्या आदेश देते हो?

मेहता सिर झुकाए सुनते रहे। एक-एक शब्द मानो उनके भीतर की आंखें इस तरह खोले देता था, जैसी अब तक कभी न खुली थीं। वह भावनाएं जो अब तक उनके सामने स्वप्न-चित्रों की तरह आई थीं, अब जीवन सत्य बनकर स्पंदित हो गई थीं। वह अपने रोम-रोम में प्रकाश और उत्कर्ष का अनुभव कर रहे थे। जीवन के महान संकल्पों के सम्मुख हमारा बालपन हमारी आंखों में फिर जाता है। मेहता की आंखों में मधुर बाल-स्मृतियां सजीव हो उठीं, जब वह अपनी विधवा माता की गोद में बैठकर महान् सुख का अनुभव किया करते थे। कहां है वह माता, आए और देखे अपने बालक की इस सुकीर्ति को। मुझे आशीर्वाद दो। तुम्हारा वह जिद्दी बालक आज

एक नया जन्म ले रहा है।

उन्होंने मालती के चरण दोनों हाथों से पकड़ लिए और कांपते हुए स्वर में बोले–तुम्हारा आदेश स्वीकार है मालती।

और दोनों एकांत होकर प्रगाढ़ आलिंगन में बंध गए। दोनों की आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी।

चौंतीस

सिलिया का बालक अब दो साल का हो रहा था और सारे गांव में दौड़ लगाता था। अपने साथ वह एक विचित्र भाषा लाया था, और उसी में बोलता था, चाहे कोई समझे या न समझे। उसकी भाषा में ट, ल और घ की कसरत थी और स, र आदि वर्ण गायब थे। उस भाषा में रोटी का नाम था ओटी, दूध का तूत, साग का छाग और कौड़ी का तौली। जानवरों की बोलियों की ऐसी नकल करता है कि हंसते- हंसते लोगों के पेट में बल पड़ जाता है। किसी ने पूछा–रामू, कुत्ता कैसे बोलता है? रामू गंभीर भाव से कहता–भों-भों, और काटने दौड़ता। बिल्ली कैसे बोले? और रामू म्यांव- म्यांव करके आंखें निकालकर ताकता और पजों से नोचता। बड़ा मस्त लड़का था। जब देखो खेलने में मगन रहता, न खाने की सुधि थी, न पीने की। गोद से उसे चिढ़ थी। उसके सबसे सुख के क्षण वह होते, जब द्वार पर नीम के नीचे मनों धूल बटोरकर उसमें लोटता, सिर पर चढ़ाता, उसकी ढेरियां लगाता, घरौंदे बनाता। अपनी उम्र के लड़कों से उसकी एक क्षण न पटती। शायद उन्हें अपने साथ खेलने के योग्य न समझता था।

कोई पूछता–तुम्हारा नाम क्या है?

चटपट कहता–लामू।

'तुम्हारे बाप का क्या नाम है?'

'मातादीन।'

'और तुम्हारी मां का?'

'छिलिया।'

'और दातादीन कौन है?'

'वह अमाला छाला है।'

न जाने किसने दातादीन से उसका यह नाता बता दिया था।

रामू और रूपा में खूब पटती थी। वह रूपा का खिलौना था। उसे उबटन मलती, काजल लगाती, नहलाती, बाल संवारती, अपने हाथों कौर बना-बनाकर खिलाती, और कभी-कभी उसे गोद में लिए रात को सो जाती। धनिया डांटती, त सब कुछ छुआछूत किए देती है, मगर वह किसी की न सुनती। चीथड़े की गुड़ियों ने उसे माता बनना सिखाया था। वह मातृ-भावना जीता-जागता बालक पाकर अब गुड़ियों से संतुष्ट न हो सकती थी।

होरी के घर के पिछवाड़े जहां किसी जमाने में उसकी बरदौर थी, उसी के खंडहर में सिलिया अपना एक फूस का झोंपड़ा डालकर रहने लगी थी। होरी के घर में उम्र तो नहीं कट

सकती थी।

मातादीन को कई सौ रुपये खर्च करने के बाद अंत में काशी के पंडितों ने फिर से ब्राह्मण बना दिया था। उस दिन बड़ा भारी होम हुआ, बहुत-से ब्राह्मणों ने भोजन किया और बहुत से मंत्र और श्लोक पढ़े गए। मातादीन को शुद्ध गोबर और गोमूत्र खाना-पीना पड़ा। गोबर से उसका मन पवित्र हो गया। मूत्र से उसकी आत्मा में अशुचिता के कीटाणु मर गए।

लेकिन एक तरह से इस प्रायश्चित ने उसे सचमुच पवित्र कर दिया। होम के प्रचंड अग्निकुंड में उसकी मानवता निखर गई और होम की ज्वाला के प्रकाश से उसने धर्म-स्तंभों को अच्छी तरह परख लिया। उस दिन से उसे धर्म के नाम से चिढ़ हो गई। उसने जनेऊ उतार फेंका और पुरोहिती को गंगा में डुबा आया। अब वह पक्का खेतिहर था। उसने यह भी देखा कि यद्यपि विद्वानों ने उसका ब्राह्मणत्व स्वीकार कर लिया, लेकिन जनता अब भी उसके हाथ का पानी नहीं पीती, उससे मुहूर्त्त पूछती है, साइत और लग्न का विचार करवाती है, उसे पर्व के दिन दान भी दे देती है, पर उससे अपने बरतन नहीं छुलाती।

जिस दिन सिलिया के बालक का जन्म हुआ, उसने दूनी मात्रा में भंग पी, और गर्व से जैसे उसकी छाती तन गई और उंगलियां बार-बार मूंछों पर पड़ने लगीं। बच्चा कैसा होगा? उसी के जैसा? कैसे देखे? उसका मन मसोसकर रह गया।

तीसरे दिन उसे रूपा खेत में मिली। उसने पूछा—रुपिया, तूने सिलिया का लड़का देखा?

रुपिया बोली—देखा क्यों नहीं! लाल-लाल है, खूब मोटा, बड़ी-बड़ी आंखें हैं, सिर में झबराले बाल हैं, टुकुर-टुकुर ताकता है।

मातादीन के हृदय में जैसे वह बालक आ बैठा था, और हाथ-पांव फेंक रहा था। उसकी आंखों में नशा-सा छा गया। उसने उस किशोरी रूपा को गोद में उठा लिया, फिर कंधे पर बिठा लिया, फिर उतारकर उसके कपोलों को चूम लिया।

रूपा बाल संभालती हुई ढीठ होकर बोली—चलो, मैं तुमको दूर से दिखा दूं। ओसारे में ही तो है। सिलिया बहन न जाने क्यों हरदम रोती रहती है।

मातादीन ने मुंह फेर लिया। उसकी आंखें सजल हो आई थीं और होंठ कांप रहे थे।

उस रात को जब सारा गांव सो गया और पेड़ अंधकार में डूब गए, तो वह सिलिया के द्वार पर आया और संपूर्ण प्राणों से बालक का रोना सुना, जिसमें सारी दुनिया का संगीत, आनंद और माधुर्य भरा हुआ था।

सिलिया बच्चे को होरी के घर में खटोले पर सुलाकर मजूरी करने चली जाती। मातादीन किसी-न-किसी बहाने से होरी के घर आता और कनखियों से बच्चे को देखकर अपना कलेजा और आंखें और प्राण शीतल करता।

धनिया मुस्कराकर कहती—लजाते क्यों हो, गोद में ले लो, प्यार करो, कैसा काठ का कलेजा है तुम्हारा! बिल्कुल तुमको पड़ा है।

मातादीन एक-दो रुपये सिलिया के लिए फेंककर बाहर निकल आता। बालक के साथ उसकी आत्मा भी बढ़ रही थी, खिल रही थी, चमक रही थी। अब उसके जीवन का भी एक उद्देश्य था, एक व्रत था। उसमें संयम आ गया, गंभीरता आ गई, दायित्व आ गया।

एक दिन रामू खटोले पर लेटा हुआ था। धनिया कहीं गई थी। रूपा भी लड़कों का शोर सुनकर खेलने चली गई। घर अकेला था। उसी वक्त मातादीन पहुंचा। बालक नीले आकाश

की ओर देख-देख हाथ-पांव फेंक रहा था, हुमक रहा था-जीवन के उस उल्लास के साथ जो अभी उसमें ताजा था। मातादीन को देखकर वह हंस पड़ा। मातादीन स्नेह-विह्वल हो गया। उसने बालक को उठाकर छाती से लगा लिया। उसकी सारी देह और हृदय और प्राण रोमांचित हो उठे, मानो पानी की लहरों में प्रकाश की रेखाएं कांप रही हों। बच्चे की गहरी, निर्मल, अथाह, मोद-भरी आंखों में जैसे उसको जीवन का सत्य मिल गया। उसे एक प्रकार का भय-सा लगा, मानो वह दृष्टि उसके हृदय में चुभी जाती हो-वह कितना अपवित्र है, ईश्वर का वह प्रसाद कैसे छू सकता है? उसने बालक को सशंक मन के साथ फिर लिटा दिया। उसी वक्त रूपा बाहर से आ गई और वह बाहर निकल गया।

एक दिन खूब ओले गिरे। सिलिया घास लेकर बाजार गई हुई थी। रूपा अपने खेल में मगन थी। रामू अब बैठने लगा था। कुछ-कुछ बकवां चलने भी लगा था। उसने जो आंगन में बिनौले बिछे देखे, तो समझा बताशे फैले हुए हैं। कई उठाकर खाए और आंगन में खूब खेला। रात को उसे ज्वर आ गया। दूसरे दिन निमोनिया हो गया। तीसरे दिन संध्या समय सिलिया की गोद में ही बालक के प्राण निकल गए।

लेकिन बालक मरकर भी सिलिया के जीवन का केंद्र बना रहा। उसकी छाती में दूध का उबाल-सा आता और आंचल भीग जाता। उसी क्षण आंखों से आंसू भी निकल पड़ते। पहले सब कामों से छुट्टी पाकर रात को जब वह रामू को हिए से लगाकर स्तन उसके मुंह में दे देती, तो मानो उसके प्राणों में बालक की स्फूर्ति भर जाती। तब वह प्यारे-प्यारे गीत गाती, मीठे-मीठे स्वप्न देखती और नए-नए संसार रचती, जिसका राजा रामू होता। अब सब कामों से छुट्टी पाकर वह अपनी सूनी झोंपड़ी में रोती थी और उसके प्राण तड़पते थे, उड़ जाने के लिए उस लोक में, जहां उसका लाल इस समय भी खेल रहा होगा। सारा गांव उसके दु:ख में शरीक था। रामू कितना चोंचाल था, जो कोई बुलाता, उसी की गोद में चला जाता। मरकर और पहुंच से बाहर होकर वह और भी प्रिय हो गया था, उसकी छाया उससे कहीं सुंदर, कहीं चोंचाल, कहीं लुभावनी थी।

मातादीन उस दिन खुल पड़ा। परदा होता है हवा के लिए। आंधी में परदे उठाके रख दिए जाते हैं कि आंधी के साथ उड़ न जायं। उसने शव को दोनों हथेलियों पर उठा लिया और अकेला नदी के किनारे तक ले गया, जो एक मील का पाट छोड़कर पतली-सी धार में समा गई थी। आठ दिन तक उसके हाथ सीधे न हो सके। उस दिन वह जग भी नहीं लजाया, जरा भी नहीं झिझका।

और किसी ने कुछ कहा भी नहीं, बल्कि सभी ने उसके साहस और दृढ़ता की तारीफ़ की।

होरी ने कहा- यही मरद का धरम है। जिसकी बांह पकड़ी, उसे क्या छोड़ना।

धनिया ने आंखें नचाकर कहा-मत बखान करो, जी जलता है। यह मरद है? मैं ऐसे मरद को नामरद कहती हूं। जब बांह पकड़ी थी, तब क्या दूध पीता था कि सिलिया बांभनी हो गई थी?

एक महीना बीत गया। सिलिया फिर मजूरी करने लगी थी। संध्या हो गई थी। पूर्णमासी का चांद विहंसता-सा निकल आया था। सिलिया ने कटे हुए खेत में से गिरे हुए जौ के बाल चुनकर टोकरी में रख लिए थे और घर जाना चाहती थी कि चांद पर निगाह पड़ गई और दर्द-

भरी स्मृतियों का मानो स्रोत खुल गया। आंचल दूध से भीग गया और मुख आंसुओं से। उसने सिर लटका लिया और जैसे रुदन का आनंद लेने लगी।

सहसा किसी की आहट पाकर वह चौंक पड़ी। मातादीन पीछे से आकर सामने खड़ा हो गया और बोला—कब तक रोए जायगी सिलिया? रोने से वह फिर तो न आ जायगा।

और यह कहते-कहते वह खुद रो पड़ा।

सिलिया के कंठ में आए हुए भर्त्सना के शब्द पिघल गए। आवाज संभालकर बोली—तुम आज इधर कैसे आ गए?

मातादीन कातर होकर बोला—इधर से जा रहा था। तुझे बैठा देखा, चला आया।

'तुम तो उसे खेला भी न पाए।'

'नहीं सिलिया, एक दिन खेलाया था।'

'सच?'

'सच।'

'मैं कहां थी?'

'तू बाजार गई थी?'

'तुम्हारी गोद में रोया नहीं?'

'नहीं सिलिया, हसंता था।'

'सच?'

'सच।'

'बस, एक ही दिन खेलाया?'

'हां, एक ही दिन, मगर देखने रोज आता था। उसे खटोले पर खेलते देखता था और दिल थामकर चला जाता था।'

'तुम्हीं को पड़ा था।'

'मुझे तो पछतावा होता है कि नाहक उस दिन उसे गोद में लिया। यह मेरे पापों का दंड है।'

सिलिया की आंखों में क्षमा झलक रही थी। उसने टोकरी सिर पर रख ली और घर चली। मातादीन भी उसके साथ-साथ चला।

सिलिया ने कहा—मैं तो अब धनिया काकी के बरौठे में सोती हूं। अपने घर में अच्छा नहीं लगता।

'धनिया मुझे बराबर समझाती रहती थी।'

'सच?'

'हां सच। जब मिलती थी, समझाने लगती थी।'

गांव के समीप आकर सिलिया ने कहा—अच्छा, अब इधर से अपने घर जाओ। कहीं पंडित देख न लें।

मातादीन ने गर्दन उठाकर कहा—मैं अब किसी से नहीं डरता।

'घर से निकाल देंगे तो कहां जाओगे?'

'मैंने अपना घर बना लिया है।'

'सच?'

'हां, सच।'

'कहां, मैंने तो नहीं देखा।'

'चल तो दिखाता हूं।'

दोनों और आगे बढ़े। मातादीन आगे था। सिलिया पीछे। होरी का घर आ गया। मातादीन उसके पिछवाड़े जाकर सिलिया की झोंपड़ी के द्वार पर खड़ा हो गया और बोला—यही मेरा घर है।

सिलिया ने अविश्वास, क्षमा, व्यंग और दु:ख भरे स्वर में कहा—यह तो सिलिया चमारिन का घर है।

मातादीन ने द्वार की टाटी खोलते हुए कहा—यह मेरी देवी का मंदिर है।

सिलिया की आंखें चमकने लगीं। बोली—मंदिर है तो एक लोटा पानी उंड़ेलकर चले जाओगे।

मातादीन ने उसके सिर की टोकरी उतारते हुए कंपित स्वर में कहा—नहीं सिलिया, जब तक प्राण है, तेरी शरण में रहूंगा। तेरी ही पूजा करूंगा।

'झूठ कहते हो।'

'नहीं, मैं तेरे चरण छूकर कहता हूं। सुना, पटवारी का लौंडा भुनेसरी तेरे पीछे बहुत पड़ा था। तूने उसे खूब डांटा।'

'तुमसे किसने कहा?'

'भुनेसरी आप ही कहता था।'

'सच?'

'हां, सच।'

सिलिया ने दियासलाई से कुप्पी जलाई। एक किनारे मिट्टी का घड़ा था, दूसरी ओर चूल्हा था, जहां दो-तीन पीतल और लोहे के बासन मंजे-धुले रखे थे। बीच में पुआल बिछा था। वहीं सिलिया का बिस्तर था। इस बिस्तर के सिरहाने की ओर रामू की छोटी-सी खटोली जैसे रो रही थी, और उसी के पास दो-तीन मिट्टी के हाथी-घोड़े अंग-भंग दशा में पड़े हुए थे। जब स्वामी ही न रहा तो कौन उनकी देखभाल करता? मातादीन पुआल पर बैठ गया। कलेजे में हूक-सी उठ रही थी, जी चाहता था, खूब रोए।

सिलिया ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर पूछा—तुम्हें कभी मेरी याद आती थी?

मातादीन ने उसका हाथ पकड़कर हृदय से लगाकर कहा—तू हरदम मेरी आंखों के सामने फिरती रहती थी। तू भी कभी मुझे याद करती थी।

'मेरा तो तुमसे जी जलता था।'

'और दया नहीं आती थी?'

'कभी नहीं।'

'तो भुनेसरी...'

'अच्छा, गाली मत दो। मैं डर रही हूं, कि गाव वाले क्या कहेंगे।'

'जो भले आदमी हैं, वह कहेंगे, यही इसका धरम था। जो बुरे हैं, उनकी मैं परवा नहीं करता।'

'और तुम्हारा खाना कौन पकाएगा?'

'मेरी रानी, सिलिया।'

'तो बांभन कैसे रहोगे?'

'मैं बांभन नहीं, चमार ही रहना चाहता हूं। जो अपना धरम पाले, वही बांभन है, जो धरम से मुंह मोड़े, वही चमार है।'

सिलिया ने उसके गले में बांहें डाल दीं।

पैंतीस

होरी की दशा दिन-दिन गिरती ही जाती थी। जीवन के संघर्ष में उसे सदैव हार हुई, पर उसने कभी हिम्मत नहीं हारी। प्रत्येक हार जैसे उसे भाग्य से लड़ने की शक्ति दे देती थी, मगर अब वह उस अंतिम दशा को पहुंच गया था, जब उसमें आत्मविश्वास भी न रहा था। अगर वह अपने धर्म पर अटल रह सकता, तो भी कुछ आंसू पुंछते, मगर वह बात न थी। उसने नीयत भी बिगाड़ी अधर्म भी कमाया, कोई ऐसी बुराई न थी, जिसमें वह पड़ा न हो, पर जीवन की कोई अभिलाषा न पूरी हुई, और भले दिन मृगतृष्णा की भांति दूर ही होते चले गए, यहां तक कि अब उसे धोखा भी न रह गया था, झूठी आशा की हरियाली और चमक भी अब नजर न आती थी।

हारे हुए महीप की भांति उसने अपने को इस तीन बीघे के किले में बंद कर लिया था और उसे प्राणों की तरह बचा रहा था। फाके सहे, बदनाम हुआ, मजूरी की, पर किले को हाथ से न जाने दिया, मगर अब वह किला भी हाथ से निकला जाता था। तीन साल से लगान बाकी पड़ा हुआ था और अब पंडित नोखेराम ने उस पर बेदखली का दावा कर दिया था। कहीं से रुपये मिलने की आशा न थी। जमीन उसके हाथ से निकल जाएगी और उसके जीवन के बाकी दिन मजूरी करने में कटेंगे। भगवान् की इच्छा! रायसाहब को क्या दोष दे? असामियों ही से उनका भी गुजर है। इसी गांव पर आधे से ज्यादा घरों पर बेदखली आ रही है, आवे। औरों की जो दशा होगी, वही उसकी भी होगी। भाग्य में सुख बदा होता, तो लड़का यों हाथ से निकल जाता?

सांझ हो गई थी। वह इसी चिंता में डूबा बैठा था कि पंडित दातादीन ने आकर कहा -क्या हुआ होरी, तुम्हारी बेदखली के बारे में? इन दिनों नोखेराम से मेरी बोलचाल बंद है। कुछ पता नहीं। सुना, तारीख को पंद्रह दिन और रह गए हैं।

होरी ने उनके लिए खाट डालकर कहा-वह मालिक हैं, जो चाहे करें, मेरे पास रुपये होते तो यह दुर्दसा क्यों होती। खाया नहीं, उड़ाया नहीं, लेकिन उपज ही न हो और जो हो भी वह कौड़ियों के मोल बिके, तो किसान क्या करे?

'लेकिन जैजात तो बचानी ही पड़ेगी। निबाह कैसे होगा? बाप-दादों की इतनी ही निसानी बच रही है। वह निकल गई, तो कहां रहोगे?'

'भगवान् की मरजी है, मेरा क्या बस?'

'एक उपाय है, जो तुम करो।'

होरी को जैसे अभय-दान मिल गया। उनके पांव पकड़कर बोला-बड़ा धरम होगा महराज, तुम्हारे सिवा मेरा कौन है? मैं तो निरास हो गया था।

'निरास होने की कोई बात नहीं। बस, इतना ही समझ लो कि सुख में आदमी का धरम कुछ और होता है, दु:ख में कुछ और। सुख में आदमी दान देता है, मगर दु:ख में भीख तक मांगता है। उस समय आदमी का यही धरम हो जाता है। सरीर अच्छा रहता है, तो हम बिना असनान-पूजा किए मुंह में पानी भी नहीं डालते, लेकिन बीमार हो जाते हैं, तो बिना नहाए-धोए, कपड़े पहने, खाट पर बैठे पथ्य लेते हैं। उस समय का यही धरम है। यहां हममें-तुममें कितना भेद है, लेकिन जगन्नाथपुरी में कोई भेद नहीं रहता। ऊंचे-नीचे सभी एक पंगत में बैठकर खाते हैं। आपत्काल में श्रीरामचन्द्र ने सबरी के जूठे फल खाए थे, बालि का छिपकर बध किया था। जब संकट में बड़े-बड़ों की मर्जादा टूट जाती है, तो हमारी-तुम्हारी कौन बात है? रामसेवक महतो को तो जानते हो न?'

होरी ने निरुत्साह होकर कहा-हां, जानता क्यों नहीं।

'मेरा जजमान है। बड़ा अच्छा जमाना है उसका। खेती अलग, लेन-देन अलग। ऐसे रोबदाब का आदमी ही नहीं देखा। कई महीने हुए उनकी औरत मर गई है। संतान कोई नहीं। अगर रुपिया का ब्याह उससे करना चाहो, तो मैं उसे राजी कर लूं। मेरी बात वह कभी न टालेगा। लड़की सयानी हो गई है और जमाना बुरा है। कहीं कोई बात हो जाय, तो मुंह में कालिख लग जाय। यह बड़ा अच्छा औसर है। लड़की का ब्याह भ· हो जायगा और तुम्हारे खेत भी बच जायंगे। सारे खरच-बरच से बचे जाते हो।'

रामसेवक होरी से दो ही चार साल छोटा था। ऐसे आदमी से रूपा के ब्याह करने का प्रस्ताव ही अपमानजनक था। कहां फूल-सी रूपा और कहां वह बूढ़ा ठूंठ! जीवन में होरी ने बड़ी-बड़ी चोट सही थीं, मगर यह चोट सबसे गहरी थी। आज उसके ऐसे दिन आ गए हैं कि उससे लड़की बेचने की बात कही जाती है और उसमें इंकार करने का साहस नहीं है। ग्लानि से उसका सिर झुक गया।

दातादीन ने एक मिनट के बाद पूछा-तो क्या कहते हो?

होरी ने साफ जवाब न दिया। बोला--सोचकर कहूंगा।

'इसमें सोचने की क्या बात है?'

'धनिया से भी तो पूछ लूं।'

'तुम राजी हो कि नहीं?'

'जरा सोच लेने दो महाराज! आज तक कुल में कभी ऐसा नहीं हुआ। उसकी मरजाद भी तो रखना है।'

'पांच-छ: दिन के अंदर मुझे जवाब दे देना। ऐसा न हो, तुम सोचते ही रहो और बेदखली आ जाय।'

दातादीन चले गए। होरी की ओर से उन्हें कोई अंदेशा न था। अंदेशा था धनिया की ओर से। उसकी नाक बड़ी लंबी है। चाहे मिट जाय, मरजाद न छोड़ेगी। मगर होरी हां कर ले तो वह ग धोकर मान ही जायगी। खेतों के निकलने में भी तो मरजाद बिगड़ती है।

धनिया ने आकर पूछा-पंडित क्यों आए थे?

'कुछ नहीं, यही बेदखली की बातचीत थी।

'आसूं पोंछने आए होंगे। यह तो न होगा कि सौ रुपये उधार दे दें।'

'मांगने का मुंह भी तो नहीं।'

'तो यहां आते ही क्यों हैं?'

'रुपिया की सगाई की बात भी थी।'

'किससे?'

'रामसेवक को जानती है? उन्हीं से।'

'मैंने उन्हें कब देखा, हां नाम बहुत दिन से सुनती हूं। वह तो बूढ़ा होगा।'

'बूढ़ा नहीं है। हां अधेड़ है।'

'तुमने पंडित को फटकारा नहीं। मुझसे कहते तो ऐसा जवाब देती कि याद करते।'

'फटकारा नहीं, लेकिन इंकार कर दिया। कहते थे, ब्याह भी बिना खरच-बरच के हो जायगा और खेत भी बचे जायंगे।'

'साफ-साफ क्यों नहीं बोलते कि लड़की बेचने को कहते थे। कैसे इस बूढ़े का हियाव पड़ा?'

लेकिन होरी इस प्रश्न पर जितना ही विचार करता, उतना ही उसका दुराग्रह कम होता जाता था। कुल-मर्यादा की लाज उसे कम न थी, लेकिन जिसे असाध्य रोग ने ग्रस लिया हो, वह खाद्य-अखाद्य की परवाह कब करता है? दातादीन के सामने होरी ने कुछ ऐसा भाव प्रकट किया था, जिसे स्वीकृति नहीं कहा जा सकता, मगर भीतर से वह पिघल गया था। उम्र की ऐसी कोई बात नहीं। मरना-जीना तकदीर के हाथ है। बूढ़े बैठे रहते हैं, जवान चले जाते हैं। रूपा के भाग्य में सुख लिखा है, तो वहां भी सुख उठाएगी, दुःख लिखा है, तो कहीं भी सुख नहीं पा सकती। और लड़की बेचने की तो कोई बात ही नहीं। होरी उससे जो कुछ लेगा, उधार लेगा और हाथ में रुपये आते ही चुका देगा। इसमें शर्म या अपमान की कोई बात ही नहीं है। बेशक, उसमें समाई होती, तो रूपा का ब्याह किसी जवान लड़के से और अच्छे कुल में करता, दहेज भी देता, बरात के खिलाने-पिलाने में भी खूब दिल खोलकर खर्च करता, मगर जब ईश्वर ने उसे इस लायक नहीं बनाया, तो कुश-कन्या के सिवा और वह क्या कर सकता है? लोग हंसेंगे, लेकिन जो लोग ख़ाली हंसते हैं, और कोई मदद नहीं करते, उनकी हंसी की वह क्यों परवा करे। मुश्किल यही है कि धनिया न राजी होगी। गधी तो है ही। वही पुरानी लाज ढोए जायगी। यह कुल-प्रतिष्ठा के पालने का समय नहीं, अपनी जान बचाने का अवसर है। ऐसी ही बड़ी लाज वाली है, तो लाए, पांच सौ निकाले। कहां धरे हैं?

दो दिन गुजर गए और इस मामले पर उन लोगों में कोई बातचीत न हुई। हां, दोनों सांकेतिक भाषा में बातें करते थे।

धनिया कहती—वर-कन्या जोड़ के हों, तभी ब्याह का आनंद है।

होरी जवाब देता—ब्याह आनंद का नाम नहीं है पगली, यह तो तपस्या है।

'चलो तपस्या है?'

'हां, मैं कहता जो हूं। भगवान् आदमी को जिस दसा में डाल दें, उसमें सुखी रहना तपस्या नहीं, तो और क्या है?'

दूसरे दिन धनिया ने वैवाहिक आनंद का दूसरा पहलू सोच निकाला। घर में जब तक सास-ससुर, देवरानियां-जेठानियां न हों, तो ससुराल का सुख ही क्या? कुछ दिन तो लड़की बहुरिया बनने का सुख पाए।

होरी ने कहा—वह वैवाहिक-जीवन का सुख नहीं, दंड है।

धनिया तिनक उठी–तुम्हारी बातें भी निराली होती हैं। अकेली बहू घर में कैसे रहेगी, न कोई आगे न कोई पीछे।

होरी बोला–तू तो इस घर में आई तो एक नहीं, दो-दो देवर थे, सास थी, ससुर था। तूने कौन-सा सुख उठा लिया, बता?

'क्या सभी घरों में ऐसे ही प्राणी होते हैं।'

'और नहीं तो क्या आकाश की देवियां आ जाती हैं? अकेली तो बहू! उस पर हुकूमत करने वाला सारा घर। बेचारी किस-किसको खुस करे। जिसका हुक्म न माने, वही बैरी। सबसे भला अकेला।'

फिर भी बात यहीं तक रह गई, मगर धनिया का पल्ला हल्का होता जाता था। चौथे दिन रामसेवक महतो खुद आ पहुंचे। कलां-रास घोड़े पर सवार, साथ एक नाई और एक खिदमतगार, जैसे कोई बड़ा जमींदार हो। उम्र चालीस से ऊपर थी, बाल खिचड़ी हो गए थे, पर चेहरे पर तेज था, देह गठी हुई। होरी उनके सामने बिल्कुल बूढ़ा लगता था। किसी मुकदमे की पैरवी करने जा रहे थे। यहां जरा दोपहरी काट लेना चाहते हैं। धूप कितनी तेज है, और कितने जोरों की लू चल रही है। होरी सहुआइन की दुकान से गेहूं का आटा और घी लाया। पूरियां बनीं। तीनों मेहमानों ने खाया। दातादीन भी आशीर्वाद देने आ पहुंचे। बातें होने लगीं।

दातादीन ने पूछा–कैसा मुकदमा है महतो?

रामसेवक ने शान जमाते हुए कहा- मुकदमा तो एक न एक लगा ही रहता है महराज। संसार में गऊ बनने से काम नहीं चलता। जितना दबो, उतना ही लोग दबाते हैं। थाना-पुलिस, कचहरी-अदालत सब हैं हमारी रच्छा के लिए, लेकिन रच्छा कोई नहीं करता। चारों तरफ लूट है। जो गरीब है, बेकस है, उसकी गर्दन काटने के लिए सभी तैयार रहते हैं। भगवान् न करे, कोई बेईमानी करे। यह बड़ा पाप है, लेकिन अपने हक और न्याय के लिए न लड़ना उससे भी बड़ा पाप है। तुम्हीं सोचो, आदमी कहां तक दबे? यहां तो जो किसान है, वह सबका नरम चारा है। पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दे, तो गांव में रहना मुश्किल। जमींदार के चपरासी और कारिंदों का पेट न भरे तो निबाह न हो। थानेदार और कानिसटिबिल तो जैसे उसके दामाद हैं। जब उनका दौरा गांव में हो जाय, किसानों का धरम है, वह उनका आदर सत्कार करें, नजर-नयाज दें, नहीं एक रपट में गांव का गांव बंध जाय। कभी कानूनगो आते हैं, कभी तहसीलदार, कभी डिप्टी, कभी जंट, कभी कलट्टर, कभी कमिसनर। किसान को उनके सामने हाथ बांधे हाजिर रहना चाहिए। उनके लिए रसद-चारे, अंडे-मुर्गी, दूध-घी का इंतजाम करना चाहिए। तुम्हारे सिर भी तो वही बीत रही है महराज। एक-न-एक हाकिम रोज नए-नए बढ़ते जाते हैं। एक डाक्टर कुओं में दवाई डालने के लिए आने लगा है। एक दूसरा डाक्टर कभी-कभी आकर ढोरों को देखता है, लड़कों का इम्तहान लेने वाला इसपिट्टर है, न जाने किस-किस महकमे के अफसर हैं, नहर के अलग, जंगल के अलग, ताड़ी-सराब के अलग, गांव-सुधार के अलग, खेती-विभाग के अलग, कहां तक गिनाऊं? पादड़ी आ जाता है, तो उसे भी रसद देना पड़ता है, नहीं सिकायत कर दे। और जो कहो कि इतने महकमों और इतने अफसरों से किसान का कुछ उपकार होता हो, तो नाम को नहीं। अभी जमींदार ने गांव पर हल पीछे दो-दो रुपये चंदा लगाया। किसी बड़े अफसर की दावत की थी। किसानों ने देने से इंकार कर दिया। बस उसने सारे गांव पर जाफा कर दिया। हाकिम भी जमींदार ही का पच्छ करते हैं। यह नहीं सोचते कि किसान भी आदमी है, उसके भी बाल-बच्चे हैं, उसकी भी इज्जत-आबरू है। और यह सब हमारे दब्बूपन का

फल है। मैंने गांव-भर में डोंडी पिटवा दी कि कोई भी बेसी लगान न दो और न खेत छोड़ो, हमको कोई कायल कर दे, तो हम जाफा देने को तैयार हैं, लेकिन जो तुम चाहो कि बेमुंह के किसानों का पीसकर पी जायं तो यह न होगा। गांववालों ने मेरी बात मान ली, और सबने जाफा देने से इंकार कर दिया। जमींदार ने देखा, सारा गांव एक हो गया है तो लाचार हो गया। खेत बेदखल भी कर दे, तो जोते कौन? इस जमाने में जब तक कड़े न पड़ो, कोई नहीं सुनता। बिना रोए तो बालक भी मां से दूध नहीं पाता।

रामसेवक तीसरे पहर चला गया और धनिया और होरी पर न मिटने वाला असर छोड़ गया। दातादीन का मंत्र जाग गया।

उन्होंने पूछा—अब क्या कहते हो होरी?

होरी ने धनिया की ओर इशारा करके कहा—इससे पूछो।

'हम तुम दोनों से पूछते हैं।'

धनिया बोली—उमिर तो ज्यादा है, लेकिन तुम लोगों की राय है, तो मुझे भी मंजूर है। तकदीर में जो लिखा होगा, वह तो आगे आएगा ही, मगर आदमी अच्छा है।

और होरी को तो रामसेवक पर वह विश्वास हो गया था, जो दुर्बलों को जीवट वाले आदमियों पर होता है। वह शेखचिल्ली के-से मंसूबे बांधने लगा था। ऐसा आदमी उसका हाथ पकड़ ले, तो बेड़ा पार है।

विवाह का मुहूर्त ठीक हो गया। गोबर को भी बुलाना होगा। अपनी तरफ से लिख दो, आने न आने का उसे अख्तियार है। यह कहने को तो मुंह न रहे कि तुमने मुझे बुलाया कब था? सोना को भी बुलाना होगा।

धनिया ने कहा—गोबर तो ऐसा नहीं था, लेकिन जब झुनिया आने दे। परदेस जाकर ऐसा भूल गया कि न चिट्ठी न पत्री। न जानेकैसे हैं। —यह कहते-कहते उसकी आंखें सजल हो गईं।

गोबर को खत मिला, तो चलने को तैयार हो गया। झुनिया को जाना अच्छा तो न लगता था पर इस अवसर पर कुछ कह न सकी। बहन के ब्याह में भाई का न जाना कैसे संभव है। सोना के ब्याह में न जाने का कलंक क्या कम है?

गोबर आर्द्र कंठ से बोला—मां-बाप से खिंचे रहना कोई अच्छी बात नहीं है। अब हमारे हाथ-पांव हैं, उनसे खिंच लें, चाहे लड़ लें, लेकिन जन्म तो उन्हीं ने दिया, पाल पोसकर जवान तो उन्हीं ने किया, अब वह हमें चार बात भी कहें, तो हमें गम खाना चाहिए। इधर मुझे बार बार अम्मां-दादा की याद आया करती है। उस बखत मुझे न जाने क्यों उन पर गुस्सा आ गया। तेरे कारन मां-बाप को भी छोड़ना पड़ा।

झुनिया तिनक उठी—मेरे सिर पर यह पाप न लगाओ, हां! तुम्हीं को लड़ने की सूझी थी। मैं तो अम्मां के पास इतने दिन रही, कभी सांस तक न लिया।

'लड़ाई तेरे कारन हुई।'

'अच्छा, मेरे ही कारन सही। मैंने भी तो तुम्हारे लिए अपना घर-बार छोड़ दिया।'

'तेरे घर में कौन तुझे प्यार करता था? भाई बिगड़ते थे, भावजें जलाती थीं। भोला जो तुझे पा जाते, तो कच्ची ही खा जाते।'

'तुम्हारे ही कारन।'

'अबकी जब तक रहें, इस तरह रहें कि उन्हें भी जिंदगानी का कुछ सुख मिले। उनकी

मरजी के खिलाफ कोई काम न करें। दादा इतने अच्छे हैं कि कभी मुझे डांटा तक नहीं। अम्मां ने कई बार मारा है, लेकिन जब मारती थीं, तब कुछ-न-कुछ खाने को दे देती थीं। मारतीं थीं, पर जब तक मुझे हंसा न लें, उन्हें चैन न आता था।'

दोनों ने मालती से जिक्र किया। मालती ने छुट्टी ही नहीं दी, कन्या के उपहार के लिए एक चर्खा और हाथों का कंगन भी दिया। वह खुद जाना चाहती थी, लेकिन कई ऐसे मरीज उसके इलाज में थे, जिन्हें एक दिन के लिए भी न छोड़ सकती थी। हां, शादी के दिन आने का वादा किया और बच्चे के लिए खिलौनों का ढेर लगा दिया। उसे बार-बार चूमती थी और प्यार करती थी, मानो सब कुछ पेशगी ले लेना चाहती है और बच्चा उसके प्यार की बिल्कुल परवा न करके घर चलने के लिए खुश था—उस घर के लिए, जिसको उसने देखा तक न था। उसकी बाल-कल्पना में घर स्वर्ग से भी बढ़कर कोई चीज थी।

गोबर ने घर पहुंचकर उसकी दशा देखी, तो ऐसा निराश हुआ कि इसी वक्त यहां से लौट जाय। घर का एक हिस्सा गिरने-गिरने को हो गया था। द्वार पर केवल एक बैल बंधा हुआ था, वह भी नीमजान। धनिया और होरी दोनों फूले न समाए, लेकिन गोबर का जी उचाट था। अब इस घर के संभलने की क्या आशा है। वह गुलामी करता है, लेकिन भरपेट खाता तो है। केवल एक ही मालिक का तो नौकर है। यहां तो जिसे देखो, वही रोब जमाता है। गुलामी है, पर सूखी। मेहनत करके अनाज पैदा करो और जो रुपये मिलें, वह दूसरों को दे दो। आप बैठे राम-राम करो। दादा ही का कलेजा है कि यह सब सहते हैं। उससे तो एक दिन न सहा जाय। और, यह दशा कुछ होरी ही की न थी। सारे गांव पर यह विपत्ति थी। ऐसा एक आदमी भी नहीं, जिसकी रोनी सूरत न हो, मानो उनके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठपुतलियों की तरह नचा रही हो। चलते-फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे, इसलिए कि पिसना और घुटना उनकी तकदीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा है, न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गए हों और सारी हरियाली मुरझा गई हो।

जेठ के दिन हैं, अभी तक खलिहानों में अनाज मौजूद है, मगर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है। बहुत कुछ तो खलिहान में ही तुलकर महाजनों और कारिंदों की भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है, वह भी दूसरों का है। भविष्य अंधकार की भांति उनके सामने है। उसमें उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। उनकी सारी चेतनाएं शिथिल हो गई हैं। द्वार पर मनों कूड़ा जमा है, दुर्गंध उड़ रही है, मगर उनकी नाक में न गंध है, न आंखों में ज्योति। सरेशाम से द्वार पर गीदड़ रोने लगते हैं, मगर किसी को गम नहीं। सामने जो कुछ मोटा-झोटा आ जाता है, वह खा लेते हैं, उसी तरह जैसे इंजिन कोयला खा लेता है। उनके बैल चूनी-चोकर के बगैर नांद में मुंह नहीं डालते, मगर उन्हें केवल पेट में कुछ डालने को चाहिए। स्वाद से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनकी रसना मर चुकी है। उनके जीवन में स्वाद का लोप हो गया है। उनसे धेले-धेले के लिए बेईमानी करवा लो, मुट्ठी-भर अनाज के लिए लाठियां चलवा लो। पतन की वह इंतहा है, जब आदमी शर्म और इज्जत को भी भूल जाता है।

लड़कपन से गोबर ने गांवों की यही दशा देखी थी और उसका आदी हो चुका था, पर आज चार साल के बाद उसने जैसे एक नई दुनिया देखी। भले आदमियों के साथ रहने से उसकी बुद्धि कुछ जाग उठी है, उसने राजनीतिक जलसों में पीछे खड़े होकर भाषण सुने हैं और उनसे अंग-अंग में बिंधा है। उसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि

और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होगा। कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने न आएगी। और उसमें गहरी संवेदना सजग हो उठी है। अब उसमें वह पहले की उद्दंडता और गरूर नहीं है। वह नम्र और उद्योगशील हो गया है। जिस दशा में पड़े हुए हो, उसे स्वार्थ और लोभ के वश होकर और क्यों बिगाड़ते हो? दुःख ने तुम्हें एक सूत्र में बांध दिया है। बंधुत्व के इस दैवी बंधन को क्यों अपने तुच्छ स्वार्थों से तोड़े डालते हो? उस बंधन को एकता का बंधन बना लो। इस तरह के भावों ने उसकी मानवता को पंख-से लगा दिए हैं। संसार का ऊंच-नीच देख लेने के बाद निष्कपट मनुष्यों में जो उदारता आ जाती है, वह अब मानो आकाश में उड़ने के लिए पंख फड़फड़ा रही है। होरी को अब वह कोई काम करते देखता है, तो उसे हटाकर खुद करने लगता है, जैसे पिछले दुर्व्यवहार का प्रायश्चित करना चाहता हो। कहता है, दादा तुम अब कोई चिंता मत करो, सारा भार मुझ पर छोड़ दो, मैं अब हर महीने खर्च भेजूंगा। इतने दिन तो मरते-खपते रहे, कुछ दिन तो आराम कर लो। मुझे धिक्कार है कि मेरे रहते तुम्हें इतना कष्ट उठाना पड़े। और होरी के रोम-रोम से बेटे के लिए आशीर्वाद निकल जाता है। उसे अपनी जीर्ण देह में दैवी स्फूर्ति का अनुभव होता है। वह इस समय अपने कर्ज का ब्योरा कहकर उसकी उठती जवानी पर चिंता की बिजली क्यों गिराए? वह आराम से खाए-पीए, जिंदगी का सुख उठाए। मरने-खपन के लिए वह तैयार है। यही उसका जीवन है। राम-राम जपकर वह जी भी तो नहीं सकता। उसे तो फावड़ा और कुदाल चाहिए। राम-नाम की माला फेरकर उसका चित्त न शांत होगा।

गोबर ने कहा—कहो तो मैं सबसे किस्त बंधवा लूं और हर महीने-महीने देता जाऊं। सब मिलकर कितना होगा?

होरी ने सिर हिलाकर कहा—नहीं बेटा, तुम काहे को तकलीफ उठाओगे। तुम्हीं को कौन बहुत मिलते हैं। मैं सब देख लूंगा। जमाना इसी तरह थोड़े ही रहेगा। रूपा चली जाती है। अब कर्ज ही चुकाना तो है। तुम कोई चिंता मत करना। खाने-पीने का संजम रखना। अभी देह बना लोगे, तो सदा आराम से रहोगे। मेरी कौन? मुझे तो मरने-खपने की आदत पड़ गई है। अभी मैं तुम्हें खेती में नहीं जोतना चाहता बेटा? मालिक अच्छा मिल गया है। उसकी कुछ दिन सेवा कर लोगे, तो आदमी बन जाओगे। वह तो यहां आ चुकी हैं। साक्षात् देवी हैं।

'ब्याह के दिन फिर आने को कहा है।'

'हमारे सिर-आंखों पर आएं। ऐसे भले आदमियों के साथ रहने से चाहे पैसे कम भी मिलें, लेकिन ज्ञान बढ़ता है और आंखें खुलती हैं।'

उसी वक्त पंडित दातादीन ने होरी को इशारे से बुलाया और दूर ले जाकर कमर से सौ-सौ के दो नोट निकालते हुए बोले--तुमने मेरी सलाह मान ली, बड़ा अच्छा किया। दोनों काम बन गए। कन्या से भी उरिन हो गए और बाप-दादों की निशानी भी बच गई। मुझसे जो कुछ हो सका, मैंने तुम्हारे लिए कर दिया, अब तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

होरी ने रुपये लिए तो उसका हाथ कांप रहा था, उसका सिर ऊपर न उठ सका। मुह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुह पर थूक देता है। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है, भाइयो, मैं दया का पात्र हूं। मैंने नहीं जाना, जेठ की लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है, इस देह को चीरकर देखो, इसमें

कितना प्राण रह गया है—कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ? उससे पूछो, कभी तूने विश्राम के दर्शन किए, कभी तू छांह में बैठा? उस पर यह अपमान। और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी, अधम। उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अंधा हो गया था, मानो टूक-टूक उड़ गया है।

दातादीन ने कहा—तो मैं जाता हूं। न हो, तुम इसी बखत नोखेराम के पास चले जाओ।

होरी दीनता से बोला—चला जाऊंगा महराज। मगर मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ है।

छत्तीस

दो दिन तक गांव में खूब धूमधाम रही। बाजे बजे, गाना-बजाना हुआ और रूपा रो-धोकर बिदा हो गई, मगर होरी को किसी ने घर से निकलते न देखा। ऐसा छिपा बैठा था, जैसे मुंह में कालिख लगी हो। मालती के आ जाने से चहल-पहल और बढ़ गई। दूसरे गांव की स्त्रियां भी आ गईं।

गोबर ने अपने शील- स्नेह से सारे गांव को मुग्ध कर लिया है। ऐसा कोई घर न था, जहां वह अपने मीठे व्यवहार की याद न छोड़ आया हो। भोला तो उसके पैरों पर गिर पड़े। उनकी स्त्री ने उसको पान खिलाए और एक रुपया बिदाई दी और उसका लखनऊ का पता भी पूछा। कभी लखनऊ आएगी तो उससे जरूर मिलेगी। अपने रुपये की उससे कोई चर्चा न की।

तीसरे दिन जब गोबर चलने लगा, तो होरी ने धनिया के सामने आंखों में आंसू भरकर वह अपराध स्वीकार किया, जो कई दिन से उसकी आत्मा को मथ रहा था, और रोकर बोला—बेटा, मैंने इस जमीन के मोह से पाप की गठरी सिर पर लादी। न जाने भगवान् मुझे इसका क्या दंड देंगे।

गोबर जरा भी गर्म न हुआ, किसी प्रकार का रोष उसके मुंह पर न था। श्रद्धाभाव से बोला—इसमें अपराध की कोई बात नहीं है दादा। हां, रामसेवक के रुपये अदा कर देना चाहिए। आखिर तुम क्या करते? मैं किसी लायक नहीं, तुम्हारा खेती में उपज नहीं, करज कहीं मिल नहीं सकता, एक महीने के लिए भी घर में भोजन नहीं। ऐसी दसा में तुम और कर ही क्या सकते थे? जैजात न बचाते तो रहते कहां? जब आदमी का कोई बस नहीं चलता, तो अपने को तकदीर पर ही छोड़ देता है। न जाने यह धांधली कब तक चलती रहेगी? जिसे पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उसके लिए मरजाद और इज्जत सब ढोंग है। औरों की तरह तुमने भी दूसरों का गला दबाया होता, उनकी जमा मारी होती, तो तुम भी भले आदमी होते। तमने कभी नीति को नहीं छोड़ा, यह उसी का दंड है। तुम्हारी जगह मैं होता, या तो जेहल में होता या फांसी पा गया होता। मुझसे यह कभी बरदास न होता कि मैं कमा-कमाकर सबका घर भरूं और आप अपने बाल-बच्चों के साथ मुंह में जाली लगाए बैठा रहूं।

धनिया बहू को उसके साथ भेजने को राजी न हुई। झुनिया का मन भी अभी कुछ दिन यहां रहने का था। तय हुआ कि गोबर अकेला ही जाय।

दूसरे दिन प्रात:काल गोबर सबसे विदा होकर लखनऊ चला। होरी उसे गांव के बाहर तक पहुंचाने आया। गोबर के प्रति इतना प्रेम उसे कभी न हुआ था। जब गोबर उसके चरणों

पर झुका, तो होरी रो पड़ा, मानो फिर उसे पुत्र के दर्शन न होंगे। उसकी आत्मा में उल्लास था, गर्व था, संकल्प था। पुत्र से यह श्रद्धा और स्नेह पाकर वह तेजवान हो गया है, विशाल हो गया है। कई दिन पहले उस पर जो अवसाद-सा छा गया था, एक अंधकार-सा, जहां वह अपना मार्ग भूला जाता था, वहां अब उत्साह है और प्रकाश है।

रूपा अपनी ससुराल में खुश थी। जिस दशा में उसका बालपन बीता था, उसमें पैसा सबसे कीमती चीज था। मन में कितनी साधें थीं, जो मन ही में घुट-घुटकर रह गई थीं। वह अब उन्हें पूरा कर रही थी और रामसेवक अधेड़ होकर भी जवान हो गया था। रूपा के लिए वह पति था, उसके जवान, अधेड़ या बूढ़े होने से उसकी नारी-भावना में कोई अंतर न आ सकता था। उसकी यह भावना पति के रंग-रूप या उम्र पर आश्रित न थी, उसकी बुनियाद इससे बहुत गहरी थी, शाश्वत परंपराओं की तह में, जो केवल किसी भूकंप से ही हिल सकती थी। उसका यौवन अपने ही में मस्त था, वह अपने ही लिए अपना बनाव-सिंगार करती थी और आप ही खुश होती थी। रामसेवक के लिए उसका दूसरा रूप था। तब वह गृहिणी बन जाती थी, घर के काम-काज में लगी हुई। अपनी जवानी दिखाकर उसे लज्जा या चिंता में न डालना चाहती थी। किसी तरह की अपूर्णता का भाव उसके मन में न आता था। अनाज से भरे हुए बखार और गांव की सिवान तक फैले हुए खेत और द्वार पर ढोरों की कतारें और किसी प्रकार की अपूर्णता को उसके अंदर आने ही न देती थीं।

और उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा थी अपने घर वालों को खुश देखना। उनकी गरीबी कैसे दूर कर दे? उस गाय की याद अभी तक उसके दिल में हरी थी, जो मेहमान की तरह आई थी और सबको रोता छोड़कर चली गई थी। वह स्मृति इतने दिनों के बाद और भी मृदु हो गई थी। अभी उसका निजत्व इस नए घर में न जम पाया था। वही पुराना घर उसका अपना घर था। वहीं के लोग अपने आत्मीय थे, उन्हीं का दुःख उसका दुःख और उन्हीं का सुख उसका सुख था। इस द्वार पर ढोरों का एक रेवड़ देखकर उसे वह हर्ष न हो सकता था, जो अपने द्वार पर एक गाय देखकर होता। उसके दादा की यह लालसा कभी पूरी न हुई थी। जिस दिन वह गाय आई थी, उन्हें कितना उछाह हुआ था। जैसे आकाश से कोई देवी आ गई हो। तब से फिर उन्हें इतनी समाई ही न हुई कि दूसरी गाय लाते, पर वह जानती थी, आज भी वह लालसा होरी के मन में उतनी ही सजग है। अबकी वह जायगी, तो साथ वह धौरी गाय जरूर लेती जायगी। नहीं, अपने आदमी के हाथ क्यों न भेजवा दे। रामसेवक से पूछने की देर थी। मंजूरी हो गई और दूसरे दिन एक अहीर के मारफत रूपा ने गाय भेज दी। अहीर से कहा, दादा से कह देना मंगल के दूध पीने के लिए भेजी है। होरी भी गाय लेने की फिक्र में था। यों अभी उस गाय की कोई जल्दी न थी, मगर मंगल यहीं है और वह बिना दूध के कैसे रह सकता है। रुपये मिलते ही वह सबसे पहले गाय लेगा। मंगल अब केवल उसका पोता नहीं है, केवल गोबर का बेटा नहीं है, मालती देवी का खिलौना भी है। उसका लालन-पालन उसी तरह का होना चाहिए।

मगर रुपये कहां से आएं? संयोग से उसी दिन एक ठीकेदार ने सड़क के लिए गांव के ऊसर में कंकड़ की खुदाई शुरू की। होरी ने सुना तो चट-पट वहां जा पहुंचा, और आठ आने रोज पर खुदाई करने लगा, अगर यह काम दो महीने भी टिक गया, तो गाय भर को रुपये मिल जायंगे। दिन-भर लू और धूप में काम करने के बाद वह घर आता, तो बिल्कुल मरा हुआ, लेकिन अवसाद का नाम नहीं। उसी उत्साह से दूसरे दिन फिर काम करने जाता। रात को भी खाना

खाकर ढिबरी के सामने बैठ जाता और सुतली कातता। कहीं बारह-एक बजे सोने जाता। धनिया भी पगला गई थी, उसे इतनी मेहनत करने से रोकने के बदले खुद उसके साथ बैठी-बैठी सुतली कातती। गाय तो लेनी ही है, रामसेवक के रुपये भी तो अदा करने हैं। गोबर कह गया है। उसे बड़ी चिंता है।

रात के बारह बज गए थे। दोनों बैठे सुतली कात रहे थे। धनिया ने कहा—तुम्हें नींद आती हो तो जाके सो रहो। भोरे फिर तो काम करना है।

होरी ने आसमान की ओर देखा—चला जाऊंगा। अभी तो दस बजे होंगे। तू जा, सो रह।

'मैं तो दोपहर को छन-भर पौढ़ रहती हूं।'

'मैं भी चबेना करके पेड़ के नीचे सो लेता हूं।'

'बड़ी लू लगती होगी।'

'लू क्या लगेगी? अच्छी छांह है।'

'मैं डरती हूं, कहीं तुम बीमार न पड़ जाओ।'

'चल, बीमार वह पड़ते हैं, जिन्हें बीमार पड़ने की फुरसत होती है। यहां तो यह धुन है कि अबकी गोबर आय, तो रामसेवक के आधे रुपये जमा रहें। कुछ वह भी लायगा। बस, इस साल इस रिन से गला छूट जाय, तो दूसरी जिंदगी हो।'

'गोबर की अबकी बड़ी याद आती है, कितना सुशील हो गया है।'

'चलती बेर पैरों पर गिर पड़ा।'

'मंगल वहां से आया तो कितना तैयार था। यहां आकर कितना दुबला हो गया है।'

'वहां दूध, मक्खन, क्या नहीं पाता था? यहां रोटी मिल जाय, वही बहुत है। ठीकेदार से रुपये मिले और गाय लाया।'

'गाय तो कभी आ गई होती, लेकिन तुम जब कहना मानो। अपनी खेती तो संभाले न संभलती थी, पुनिया का भार भी अपने सिर ले लिया।'

'क्या करता, अपना धरम भी तो कुछ है। हीरा ने नालायकी की तो उसके बाल-बच्चों को संभालने वाला तो कोई चाहिए ही था। कौन था मेरे सिवा बता? मैं न मदद करता, तो आज उनकी क्या गति होती, सोच। इतना सब करने पर भी तो मंगरू ने उस पर नालिस कर ही दी।'

'रुपये गाड़कर रखेगी तो क्या नालिस न होगी?'

'क्या बकती है। खेती से पेट चल जाय, यही बहुत है। गाड़कर कोई क्या रखेगा।'

'हीरा तो जैसे संसार से ही चला गया।'

'मेरा मन तो कहता है कि वह आवेगा, कभी न कभी जरूर।'

दोनों सोए। होरी अंधेरे मुंह उठा तो देखता है कि हीरा सामने खड़ा है, बाल बढ़े हुए, कपड़े तार-तार, मुंह सूखा हुआ, देह में रक्त और मांस का नाम नहीं, जैसे कद भी छोटा हो गया है। दौड़कर होरी के कदमों पर गिर पड़ा।

होरी ने उसे छाती से लगाकर कहा—तुम तो बिल्कुल घुल गए हीरा! कब आए? आज तुम्हारी बार-बार याद आ रही थी। बीमार हो क्या?

आज उसकी आंखों में वह हीरा न था, जिसने उसकी जिंदगी तल्ख कर दी थी, बल्कि वह हीरा था, जो बे-मां-बाप का छोटा-सा बालक था। बीच के ये पच्चीस-तीस साल जैसे मिट गए, उनका कोई चिन्ह भी नहीं था।

हीरा ने कुछ जवाब न दिया। खड़ा रो रहा था।

होरी ने उसका हाथ पकड़कर गद्‌गद कंठ से कहा—क्यों रोते हो भैया, आदमी से भूल-चूक होती ही है। कहां रहा इतने दिन?

हीरा कातर स्वर में बोला—कहां बताऊं दादा! बस, यही समझ लो कि तुम्हारे दर्शन बदे थे, बच गया। हत्या सिर पर सवार थी। ऐसा लगता था कि वह गऊ मेरे सामने खड़ी है, हरदम, सोते-जागते, कभी आंखों से ओझल न होती। मैं पागल हो गया और पांच साल पागलखाने में रहा। आज वहां से निकले छः महीने हुए। मांगता-खाता फिरता रहा। यहां आने की हिम्मत ही न पड़ती थी। संसार को कौन मुंह दिखाऊंगा? आखिर जी न माना। कलेजा मजबूत करके चला आया। तुमने बाल-बच्चों को....

होरी ने बात काटी—तुम नाहक भागे। अरे, दारोगा को दस-पांच देकर मामला रफे-दफे करा दिया जाता और होता क्या?

'तुमसे जीते-जी उरिन न हूंगा दादा।'

'मैं कोई गैर थोड़े ही हूं भैया।'

होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएं, मानो उसके चरणों पर लोट रही थीं। कौन कहता है, जीवन-संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएं हैं। उसकी छाती फूल उठी है। मुख पर तेज आ गया है। हीरा की कृतज्ञता में उसके जीवन की सारी सफलता मूर्तिमान हो गई है। उसके बखार में सौ-दो सौ मन अनाज भरा होता, उसकी हांडी में हजार-पांच सौ गड़े होते, पर उससे यह स्वर्ग का सुख क्या मिल सकता था?

हीरा ने उसे सिर पर पांव तक देखकर कहा—तुम भी तो बहुत दुबले हो गए दादा।

होरी ने हंसकर कहा—तो क्या यह मेरे मोटे होने के दिन हैं? मोटे वह होते हैं, जिन्हें न रिन की सोच होती है, न इज्जत की। इस जमाने में मोटा होना बेहयाई है। सौ को दुबला करके तब एक मोटा होता है। ऐसे मोटेपन में क्या सुख? सुख तो जब है कि सभी मोटे हों, सोभा से भेंट हुई।

'उससे तो रात ही भेंट हो गई थी। तुमने तो अपनों को भी पाला, जो तुमसे बैर करते थे, उनको भी पाला और अपना मरजाद बनाए बैठे हो। उसने तो खेती-बारी सब बेच-बाच डाली और अब भगवान् ही जाने, उसका निबाह कैसे होगा?'

आज होरी खुदाई करने चला, तो देह भारी थी। रात की थकन दूर न हो पाई थी, पर उसके कदम तेज थे और चाल में निर्द्वंद्वता की अकड़ थी।

आज दस बजे ही से लू चलने लगी और दोपहर होते-होते तो आग बरस रही थी। होरी कंकड़ के झौवे उठा-उठाकर खदान से सड़क पर लाता था और गाड़ी पर लादता था। जब दोपहर की छुट्टी हुई, तो वह बेदम हो गया था। ऐसी थकन उसे कभी न हुई थी। उसके पांव तक न उठते थे। देह भीतर से झुलसी जा रही थी। उसने न स्नान ही किया न चबेना, उसी थकन में अपना अंगोछा बिछाकर एक पेड़ के नीचे सो रहा, मगर प्यास के मारे कंठ सूखा जाता है। खाली पेट पानी पीना ठीक नहीं। उसने प्यास को रोकने की चेष्टा की, लेकिन प्रतिक्षण भीतर की दाह बढ़ती जाती थी, न रहा गया। एक मजदूर ने बाल्टी भर रखी थी और चबेना कर रहा था। होरी ने उठकर एक लोटा पानी खींचकर पिया और फिर आकर लेट रहा, मगर आध घंटे में उसे

कै हो गई और चेहरे पर मुर्दनी-सी छा गई।

उस मजदूर ने कहा–कैसा जी है होरी भैया?

होरी के सिर में चक्कर आ रहा था। बोला –कुछ नहीं, अच्छा हूं।

यह कहते-कहते उसे फिर कै हुई और हाथ-पांव ठंडे होने लगे। यह सिर में चक्कर क्यों आ रहा है? आंखों के सामने जैसे अंधेरा छाया जाता है। उसकी आंखें बंद हो गई और जीवन की सारी स्मृतियां सजीव हो-होकर हृदय-पट पर आने लगीं, लेकिन बे-क्रम, आगे की पीछे, पीछे की आगे, स्वप्न-चित्रों की भांति बेमेल, विकृत और असंबद्ध, वह सुखद बालपन आया, जब वह गुल्लियां खेलता था और मां की गोद में सोता था। फिर देखा, जैसे गोबर आया है और उसके पैरों पर गिर रहा है। फिर दृश्य बदला, धनिया दुलहिन बनी हुई, लाल चुंदरी पहने उसको भोजन करा रही थी। फिर एक गाय का चित्र सामने आया, बिल्कुल कामधेनु-सी। उसने उसका दूध दुहा और मंगल को पिला रहा था कि गाय एक देवी बन गई और...

उसी मजदूर ने पुकारा–दोपहरी ढल गई होरी, चलो झौवा उठाओ।

होरी कुछ न बोला। उसके प्राण तो न जाने किस-किस लोक में उड़ रहे थे। उसकी देह जल रही थी, हाथ-पांव ठंडे हो रहे थे। लू लग गई थी।

उसके घर आदमी दौड़ाया गया। एक घंटा में धनिया दौड़ी हुई आ पहुंची। सोभा और हीरा पीछे पीछे खटोले की डोली बनाकर ला रहे थे।

धनिया ने होरी की देह छुई, तो उसका कलेजा सन् से हो गया। मुख कांतिहीन हो गया था। कांपती हुई आवाज से बोली–कैसा जी है तुम्हारा?

होरी ने अस्थिर आंखों से देखा और बोला–तुम आ गए गोबर? मैंने मंगल के लिए गाय ले ली है। वह खड़ी है, देखो।

धनिया ने मौत की सूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे दबे पांव आते भी देखा था, आंधी की तरह आते भी देखा था। उसके सामने सास मरी, ससुर मरा, अपने दो बालक मरे, गांव के पचासों आदमी मरे। प्राण में एक धक्का-सा लगा। वह आधार जिस पर जीवन टिका हुआ था, जैसे खिसका जा रहा था, लेकिन नहीं. यह धैर्य का समय है. उसकी शंका निर्मूल है, लू लग गई है, उसी से अचेत हो गए हैं।

उमड़ते हुए आंसुओं को रोककर बोली–मेरी ओर देखो, मैं हूं, क्या मुझे नहीं पहचानते?

होरी की चेतना लौटी। मृत्यु समीप आ गई थी, आग दहकने वाली थी। धुआं शांत हो गया था। धनिया को दीन आंखों से देखा, दोनों कोनों से आंसू की दो बूंदें ढुलक पड़ीं। क्षीण स्वर में बोला–मेरा कहा-सुना माफ करना धनिया! अब जाता हूं। गाय की लालसा मन में ही रह गई। अब तो यहां के रुपये करिया-करम में जायंगे। रो मत धनिया, अब कब तक जिलाएगी? सब दुर्दसा तो हो गई। अब मरने दे।

और उसकी आंखें फिर बंद हो गई। उसी वक्त हीरा और सोभा डोली लेकर पहुंच गए। होरी को उठाकर डोली में लिटाया और गांव की ओर चले।

गांव में यह खबर हवा की तरह फैल गई। सारा गांव जमा हो गया। होरी खाट पर पड़ा शायद सब कुछ देखता था, सब कुछ समझता था, पर जबान बंद हो गई थी। हां, उसकी आंखों से बहते हुए आंसू बतला रहे थे, कि मोह का बंधन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दु:ख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्त्तव्य और निपटाए हुए

कामों का क्या मोह! मोह तो उन अनाथों को छोड़ जाने में है, जिनके साथ हम अपना कर्त्तव्य न निभा सके, उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम पूरा न कर सके।

मगर सब कुछ समझकर भी धनिया आशा की मिटती हुई छाया को पकड़े हुए थी। आंखों से आंसू गिर रहे थे, मगर यंत्र की भांति दौड़-दौड़कर कभी आम भूनकर पना बनाती, कभी होरी की देह में भूसी की मालिश करती। क्या करे, पैसे नहीं हैं, नहीं किसी को भेजकर डाक्टर बुलाती।

हीरा ने रोते हुए कहा—भाभी दिल कड़ा करो। गो-दान करा दो, दादा चले।

धनिया ने उसकी ओर तिरस्कार की आंखों से देखा। अब वह दिल को और कितना कठोर करे? अपने पति के प्रति उसका जो धर्म है, क्या यह उसको बताना पड़ेगा? जो जीवन का संगी था, उसके नाम को रोना ही क्या उसका धर्म है?

और कई आवाजें आईं—हां, गो-दान करा दो, अब यही समय है।

धनिया यंत्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े मातादीन से बोली—महराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गो-दान है।

और पछाड खाकर गिर पड़ी।

•••



मंगलसूत्र

रचनाकाल : 1936

प्रकाशनकाल : फरवरी, 1948



(मंगलसूत्र का मुख पृष्ठ)

एक

बड़े बेटे सन्तकुमार को वकील बनाकर, छोटे बेटे साधुकुमार को बी० ए० की डिग्री दिलाकर और छोटी लड़की पंकजा के विवाह के लिए स्त्री के हाथों में पांच हजार रुपये नकद रखकर देवकुमार ने समझ लिया कि वह जीवन के कर्त्तव्य से मुक्त हो गए और जीवन में जो कुछ शेष रहा है, उसे ईश्वरचिंतन के अर्पण कर सकते हैं। आज चाहे कोई उन पर अपनी जायदाद को भोग-विलास में उड़ा देने का इलजाम लगाए, चाहे साहित्य के अनुष्ठान में, लेकिन इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि उनकी आत्मा विशाल थी। यह असंभव था कि कोई उनसे मदद मांगे और निराश हो। भोग-विलास जवानी का नशा था और जीवन भर वह उस क्षति की पूर्ति करते रहे, लेकिन साहित्य-सेवा के सिवा उन्हें और किसी काम में रुचि न हुई और यहां धन कहां?--हां, यश मिला और उनके आत्मसंतोष के लिए इतना काफी था। संचय में उनका विश्वास भी न था। संभव है, परिस्थिति ने इस विश्वास को दृढ़ किया हो, लेकिन उन्हें कभी संचय न कर सकने का दुःख नहीं हुआ। सम्मान के साथ अपना निबाह होता जाय इससे ज्यादा वह और कुछ न चाहते थे। साहित्य-रसिकों में जो एक अकड़ होती है, चाहे उसे शेखी ही क्यों न कह लो, वह उनमें भी थी। कितने ही रईस और राजे इच्छुक थे कि वह उनके दरबार में आयें, अपनी रचनाएं सुनायें, उनको भेंट करें, लेकिन देवकुमार ने आत्म-सम्मान को कभी हाथ से न जाने दिया। किसी ने बुलाया भी तो धन्यवाद देकर टाल गए। इतना ही नहीं, वह यह भी चाहते थे कि राजे और रईस मेरे द्वार पर आयें, मेरी खुशामद करें, जो अनहोनी बात थी। अपने कई मदबुद्धि सहपाठियों को वकालत या दूसरे सीगों में धन के ढेर लगाते, जायदादें खरीदते, नये-नये मकान बनवाते देखकर कभी-कभी उन्हें अपनी दशा पर खेद होता था, विशेषकर जब उनकी जन्म-संगिनी शैव्या गृहस्थी की चिंताओं से जलकर उन्हें कटु वचन सुनाने लगती थी, पर अपनी रचना-कुटीर में कलम हाथ में लेकर बैठते ही वह सब कुछ भूल साहित्य-स्वर्ग में पहुंच जाते थे। आत्म-गौरव जाग उठता था। सारा अवसाद और विषाद शांत हो जाता था।

मगर इधर कुछ दिनों से साहित्य-रचना में उनका अनुराग कुछ ठंडा होता जाता था। उन्हें कुछ ऐसा जान पड़ने लगा था कि साहित्य-प्रेमियों को उनसे वह पहले की-सी भक्ति नहीं रही। इधर उन्होंने जो दो पुस्तकें बड़े परिश्रम से लिखी थीं और जिनमें उन्होंने अपने

जीवन के सारे अनुभव और कला की सारी प्रौढ़ता भर दी थी उनका कुछ विशेष आदर न हुआ था। इसके पहले उनकी दो रचनाएं निकली थीं। उन्होंने साहित्य-संसार में हलचल मचा दी थी। हर एक पत्र में उन पुस्तकों की विस्तृत आलोचनाएं हुई थीं, साहित्य-संस्थानों ने उन्हें बधाइयां दी थीं, साहित्य-मर्मज्ञों ने गुणग्राहकता से भरे पत्र लिखे थे। यद्यपि उन रचनाओं का देवकुमार की नजर में अब उतना आदर न था, उनके भाव उन्हें भावुकता के दोष से पूर्ण लगते थे, शैली में भी कृत्रिमता और भारीपन था पर जनता की दृष्टि में वही रचनाएं अब भी सर्वप्रिय थीं। इन नयी कृतियों से बिन बुलाये मेहमान का-सा आदर किया गया, मानो साहित्य-संसार संगठित होकर उनका अनादर कर रहा हो। कुछ तो यों भी उनकी इच्छा विश्राम करने की हो रही थी, इस शीतलता ने उस विचार को और भी दृढ़ कर दिया। उनके दो चार सच्चे साहित्यिक मित्रों ने इस तर्क से उनको ढारस देने की चेष्टा की कि बड़ी भूख में मामूली भोजन भी जितना प्रिय लगता है, भूख कम हो जाने पर उससे कहीं रुचिकर पदार्थ भी उतने प्रिय नहीं लगते, पर इससे उन्हें आश्वासन न हुआ। उनके विचार में किसी साहित्यकार की सजीवता का यही प्रमाण था कि उसकी रचनाओं की भूख जनता में बराबर बनी रहे। जब वह भूख न रहे तो उसको क्षेत्र से प्रस्थान कर जाना चाहिए। उन्हें केवल पंकजा के विवाह की चिंता थी और जब उन्हें एक प्रकाशक ने उनकी पिछली दोनों कृतियों के पांच हजार दे दिए तो उन्होंने इसे ईश्वरीय प्रेरणा समझा और लेखनी उठा कर सदैव के लिए रख दी। मगर इन छह महीनों में उन्हें बार-बार अनुभव हुआ कि उन्होंने वानप्रस्थ लेकर भी अपने को बंधनों से न छुड़ा पाया। शैव्या के दुराग्रह की तो उन्हें कुछ ऐसी परवाह न थी। वह उन देवियों में थी जिनका मन संसार से कभी नहीं छूटता। उसे अब भी अपने परिवार पर शासन करने की लालसा बनी हुई थी, और जब तक हाथ में पैसे भी न हों, वह लालसा पूरी न हो सकती थी। जब देवकुमार अपने चालीस वर्ष के विवाहित जीवन में उसकी तृष्णा न मिटा सके तो अब उसका प्रयत्न करना वह पानी पीटने से कम व्यर्थ न समझते थे। दुःख उन्हें होता था सन्तकुमार के विचार और व्यवहार पर जो उनको घर की संपत्ति लुटा देने के लिए इस दशा में भी क्षमा न करना चाहता था। वह संपत्ति जो पचास साल पूर्व दस हजार में फेंक दी गई, आज होती तो उससे दस हजार साल की निकासी हो सकती थी। उनकी जिस आराजी में दिन को सियार लोटते थे वहां अब नगर का सबसे गुलजार बाजार था जिसकी जमीन सौ रुपये वर्ग फुट पर बिक रही थी। सन्तकुमार का महत्त्वाकांक्षी मन रह-रहकर अपने पिता पर कुढ़ता रहता था। पिता और पुत्र के स्वभाव में इतना अंतर कैसे हो गया, यह रहस्य था। देवकुमार के पास जरूरत से हमेशा कम रहा, पर उनके हाथ सदैव खुले रहे। उनका सौंदर्य भावना से जागा हुआ मन कभी कंचन की उपासना को जीवन का लक्ष्य न बना सका। यह नहीं कि वह धन का मूल्य जानते न हों। मगर उनके मन में यह धारणा जम गई थी कि जिस राष्ट्र में तीन-चौथाई प्राणी भूखों मरते हों वहां किसी एक को बहुत सा धन कमाने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है, चाहे इसकी उसमें सामर्थ्य हो। मगर सन्तकुमार की लिप्सा इन नैतिक आदर्शों पर हंसती थी। कभी-कभी तो निस्संकोच होकर वह यहां तक कह जाता था कि जब 'आपको साहित्य से प्रेम था तो आपको गृहस्थ बनने का क्या हक था? आपने अपना जीवन तो चौपट किया ही, हमारा जीवन भी मिट्टी में मिला दिया। और अब आप वानप्रस्थ लेकर बैठे हैं, मानो आपके जीवन के सारे ऋण चुक गए।'

जाड़ों के दिन थे। आठ बज गए थे। सारा घर नाश्ते के लिए जमा हो गया था। पंकजा तख्त पर चाय और संतरे और सूखे मेवे तश्तरियों में रख दोनों भाइयों को उनके कमरों से बुलाने गई और एक क्षण में आकर साधुकुमार बैठ गया। ऊंचे कद का, सुगठित, रूपवान्, गोरा, मीठे वचन बोलने वाला, सौम्य युवक था जिसे केवल खाने और सैर-सपाटे से मतलब था। जो कुछ जुड़ जाय भरपेट खा लेता था और यार-दोस्तों में निकल जाता था।

शैव्या ने पूछा-संतू कहां रह गया? चाय ठंडी हो जायगी तो कहेगा यह तो पानी है। बुला ले तो साधु, इसे जैसे खाने-पीने की भी छुट्टी नहीं मिलती।

साधु सिर झुका कर रह गया। सन्तकुमार से बोलते उनकी जान निकलती थी।

शैव्या ने एक क्षण बाद फिर कहा-उसे भी क्यों नहीं बुला लेता?

साधु ने दबी जबान से कहा-नहीं, बिगड़ जायेंगे सवेरे-सवेरे तो मेरा सारा दिन खराब हो जायेगा।

इतने में सन्तकुमार भी आ गया। शक्ल-सूरत में छोटे भाई से मिलता-जुलता, केवल शरीर का गठन उतना अच्छा न था। हां, मुख पर तेज और गर्व की झलक थी, और मुख पर एक शिकायत-सी बैठी हुई थी, जैसे कोई चीज उसे पसंद न आ रही हो।

तख्त पर बैठकर चाय मुंह से लगाई और नाक सिकोड़ कर बोले-तू क्यों नहीं आती पंकजा? और पुष्पा कहां है? मैं कितनी बार कह चुका कि नाश्ता, खाना-पीना सबका एक साथ होना चाहिए।

शैव्या ने आंखें तरेरकर कहा-तुम लोग खा लो, यह सब पीछे खा लेंगी। कोई पंगत थोड़ी है कि सब एक साथ बैठें।

सन्तकुमार ने एक घूंट चाय पीकर कहा-वही पुराना ढाचरा कितनी बार कह चुका कि उस पुराने लचर संकोच का जमाना नहीं रहा।

शैव्या ने मुंह बनाकर कहा-सब एक साथ तो बैठें लेकिन पकाये कौन और परसे कौन? एक महाराज रक्खो पकाने के लिए, दूसरा परसने के लिए, तब वह ठाट निभेगा।

—तो महात्माजी उसका इंतजाम क्यों नहीं करते या वानप्रस्थ लेना ही जानते हैं।

—उनको जो कुछ करना था कर चुके। अब तुम्हें जो कुछ करना हो तुम करो।

—जब पुरुषार्थ नहीं था तो हम लोगों को पढ़ाया-लिखाया क्यों? किसी देहात में ले जाकर छोड़ देते। हम अपनी खेती करते या मजूरी करते और पड़े रहते। यह खटराग ही क्यों पाला?

—तुम उस वक्त न थे, सलाह किससे पूछते?

सन्तकुमार ने कड़वा मुंह बनाये चाय पी, कुछ मेवे खाए फिर साधुकुमार से बोले-तुम्हारी टीम कब बम्बई जा रही है जी?

साधुकुमार ने गरदन झुकाए त्रस्त स्वर में कहा-परसों।

—तुमने नया सूट बनवाया?

—मेरा पुराना सूट अभी अच्छी तरह काम दे सकता है।

—काम तो सूट के न रहने पर भी चल सकता है। हम लोग तो नंगे पांव, धोती चढ़ाकर खेला करते थे। मगर जब एक आल इण्डिया टीम में खेलने जा रहे हो तो वैसा ठाट भी तो होना चाहिए। फटेहालों जाने से तो कहीं अच्छा है, न जाना। जब वहां लोग जानेंगे कि तुम महात्मा

देवकुमार जी के सुपुत्र हो तो दिल में क्या कहेंगे?

साधुकुमार ने कुछ जवाब न दिया। चुपचाप नाश्ता करके चला गया। वह अपने पिता की माली हालत जानता था और उन्हें संकट में न डालना चाहता था। अगर सन्तकुमार नये सूट की जरूरत समझते हैं तो बनवा क्यों नहीं देते? पिता के ऊपर भार डालने के लिए उसे क्यों मजबूर करते हैं?

साधु चला गया तो शैव्या ने आहत कंठ से कहा—जब उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि अब मेरा घर से कोई वास्ता नहीं और सब कुछ तुम्हारे ऊपर छोड़ दिया तो तुम क्यों उन पर गृहस्ती का भार डालते हो? अपने सामर्थ्य और बुद्धि के अनुसार जैसे हो सका उन्होंने अपनी उम्र काट दी। जो कुछ वह नहीं कर सके या उनसे जो चूकें हुईं उन पर फिकरे कसना तुम्हारे मुंह से अच्छा नहीं लगता। अगर तुमने इस तरह उन्हें सताया तो मुझे डर है वह घर छोड़कर कहीं अंतर्धान न हो जायं। वह धन न कमा सके, पर इतना तो तुम जानते ही हो कि वह जहां भी जायंगे लोग उन्हें सिर और आंखों पर लेंगे।

शैव्या ने अब तक सदैव पति की भर्त्सना ही की थी। इस वक्त उसे उनकी वकालत करते देखकर सन्तकुमार मुस्करा पड़ा।

बोला—अगर उन्होंने ऐसा इरादा किया तो उनसे पहले मैं अंतर्धान हो जाऊंगा। मैं यह भार अपने सिर नहीं ले सकता। उन्हें इसको संभालने में मेरी मदद करनी होगी। उन्हें अपनी कमाई लुटाने का पूरा हक था, लेकिन बाप-दादों की जायदाद को लुटाने का उन्हें कोई अधिकार न था। इसका उन्हें प्रायश्चित करना पड़ेगा। वह जायदाद हमें वापस करना होगी। मैं खुद भी कुछ कानून जानता हूं। वकीलों, मैजिस्ट्रेटों से भी सलाह कर चुका हूं। जायदाद वापस ली जा सकती है। अब मुझे यही देखना है कि इन्हें अपनी संतान प्यारी है या अपना महात्मापन।

यह कहता हुआ सन्तकुमार पंकजा से पान लेकर अपने कमरे में चला गया।

दो

सन्तकुमार की स्त्री पुष्पा बिल्कुल फूल-सी है, सुंदर, नाजुक, हलकी-फुलकी, लजाधुर लेकिन एक नंबर की आत्माभिमानिनी है। एक-एक बात के लिए वह कई कई दिन रूठी रह सकती है। और उसका रूठना भी सर्वथा नई डिजाइन का है। वह किसी से कुछ कहती नहीं, लड़ती नहीं, बिगड़ती नहीं, घर का काम-काज उसी तन्मयता से करती है बल्कि और ज्यादा एकाग्रता से। बस जिससे नाराज होती है उसकी ओर ताकती नहीं। वह जो कुछ कहेगा, वह करेगी, वह जो कुछ पूछेगा, जवाब देगी, वह जो कुछ मांगेगा, उठाकर दे देगी, मगर बिना उसकी ओर ताके हुए। इधर कई दिन से वह सन्तकुमार से नाराज हो गई है और अपनी फिरी हुई आंखों से उसके मारे आघातों का सामना कर रही है।

सन्तकुमार ने स्नेह के साथ कहा—आज शाम को चलना है न?

पुष्पा ने सिर नीचा करके कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा।

–चलोगी न?

– तुम कहते हो तो क्यों न चलूंगी?

–तुम्हारी क्या इच्छा है?

–मेरी कोई इच्छा नहीं है।

–आखिर किस बात पर नाराज हो?

–किसी बात पर नहीं।

--खैर, न बोलो, लेकिन वह समस्या यों चुप्पी साधने से हल न होगी।

पुष्पा के इस निरीह अस्त्र ने सन्तकुमार को बौखला डाला था। वह खूब झगड़ कर उस विवाद को शांत कर देना चाहता था। क्षमा मांगने पर तैयार था, वैसी बात अब फिर मुंह से न निकालेगा, लेकिन उसने जो कुछ कहा था वह उसे चिढ़ाने के लिए नहीं, एक यथार्थ बात को पुष्ट करने के लिए ही कहा था। उसने कहा था जो स्त्री पुरुष पर अवलंबित है, उसे पुरुष की हुकूमत माननी पड़ेगी। वह मानता था कि उस अवसर पर यह बात उसे मुंह से न निकालनी चाहिए थी। अगर कहना आवश्यक भी होता तो मुलायम शब्दों में कहना था, लेकिन जब एक औरत अपने अधिकारों के लिए पुरुष से लड़ती है, उसकी बराबरी का दावा करती है तो उसे कठोर बातें सुनने के लिए तैयार रहना चाहिए। इस वक्त भी वह इसीलिए आया था कि पुष्पा को कायल करे और समझाए कि मुंह फेर लेने से ही किसी बात का निर्णय नहीं हो सकता। वह इस मैदान को जीत कर यहां एक झंडा गाड़ देना चाहता था जिसमें इस विषय पर कभी विवाद न हो सके। तब से कितनी ही नई-नई युक्तियां उसके मन में आ गई थीं, मगर जब शत्रु किले के बाहर निकले ही नहीं तो उस पर हमला कैसे किया जाय।

एक उपाय है। शत्रु को बहला कर, उस पर अपने संधि-प्रेम का विश्वास जमाकर, किले से निकालना होगा।

उसने पुष्पा की ठुड्डी पकड़कर अपनी ओर फेरते हुए कहा–अगर यह बात तुम्हें इतनी लग रही है तो मैं उसे वापस लिए लेता हूं। उसके लिए तुमसे क्षमा मांगता हूं। तुमको ईश्वर ने वह शक्ति दी है कि तुम मुझ से दस-पांच दिन बिना बोले रह सकती हो, लेकिन मुझे तो उसने वह शक्ति नहीं दी। तुम रूठ जाती हो तो जैसे मेरी नाड़ियों में रक्त का प्रवाह बंद हो जाता है। अगर वह शक्ति तुम मुझे भी प्रदान कर सको तो मेरी और तुम्हारी बराबर की लड़ाई होगी और मैं तुम्हें छेड़ने न आऊंगा। लेकिन अगर ऐसा नहीं कर सकतीं तो इस अस्त्र का मुझ पर वार न करो।

पुष्पा मुस्करा पड़ी। उसने अपने अस्त्र से पति को परास्त कर दिया था। जब वह दीन बनकर उससे क्षमा मांग रहा है तो उसका हृदय क्यों न पिघल जाय।

संधि-पत्र पर हस्ताक्षर स्वरूप पान का एक बीड़ा लगाकर सन्तकुमार को देती हुई बोली -अब से कभी वह बात मुंह से न निकालना। अगर मैं तुम्हारी आश्रिता हूं तो तुम भी मेरे आश्रित हो। मैं तुम्हारे घर में जितना काम करती हूं, इतना ही काम दूसरों के घर में करूं तो अपना निबाह कर सकती हूं या नहीं, बोलो ?

सन्तकुमार ने कड़ा जवाब देने की इच्छा को रोककर कहा–बहुत अच्छी तरह।

–तब मैं जो कुछ कमाऊंगी वह मेरा होगा। यहां मैं चाहे प्राण भी दे दूं पर मेरा किसी चीज पर अधिकार नहीं। तुम जब चाहो मुझे घर से निकाल सकते हो।

—कहती जाओ, मगर उसका जवाब सुनने के लिए तैयार रहो।

—तुम्हारे पास कोई जवाब नहीं है, केवल हठ-धर्म है। तुम कहोगे यहां तुम्हारा जो सम्मान है वह वहां न रहेगा, वहां कोई तुम्हारी रक्षा करने वाला न होगा, कोई तुम्हारे दु:ख-दर्द में साथ देने वाला न होगा। इसी तरह की और भी कितनी ही दलीलें तुम दे सकते हो। मगर मैंने मिस बटलर को आजीवन क्वांरी रहकर, सम्मान के साथ जिंदगी काटते देखा है। उनका निजी जीवन कैसा था, यह मैं नहीं जानती। संभव है वह हिंदू गृहिणी के आदर्श के अनुकूल न रहा हो, मगर उनकी इज्जत सभी करते थे, और उन्हें अपनी रक्षा के लिए किसी पुरुष का आश्रय लेने की कभी जरूरत नहीं हुई।

सन्तकुमार मिस बटलर को जानता था। वह नगर की प्रसिद्ध लेडी डाक्टर थी। पुष्पा के घर से उसका घराव-सा हो गया था। पुष्पा के पिता डाक्टर थे और एक पेशे के व्यक्तियों में कुछ घनिष्ठता हो ही जाती है। पुष्पा ने जो समस्या उसके सामने रख दी थी उस पर मीठे और निरीह शब्दों में कुछ कहना उसके लिए कठिन हो रहा था। और चुप रहना उसकी पुरुषता के लिए उससे भी कठिन था।

दुविधा में पड़कर बोला—मगर सभी स्त्रियां मिस बटलर तो नहीं हो सकतीं?

पुष्पा ने आवेश के साथ कहा—क्यों? अगर वह डाक्टरी पढ़कर अपना व्यवसाय कर सकती हैं तो मैं क्यों नहीं कर सकती?

—उनके समाज में और हमारे समाज में बड़ा अंतर है।

—अर्थात् उनके समाज के पुरुष शिष्ट हैं, शीलवान हैं, और हमारे समाज के पुरुष चरित्रहीन हैं, लंपट हैं, विशेषकर जो पढ़े-लिखे हैं।

—यह क्यों नहीं कहतीं कि उस समाज में नारियों में आत्मबल है, अपनी रक्षा करने की शक्ति है और पुरुषों को काबू में रखने की कला है।

—हम भी तो वही आत्मबल और शक्ति और कला प्राप्त करना चाहती हैं लेकिन तुम लोगों के मारे जब कुछ चलने पावे। मर्यादा और आदर्श और जाने किन-किन बहानों से हमें दबाने की और हमारे ऊपर अपनी हुकूमत जमाए रखने की कोशिश करते रहते हो।

सन्तकुमार ने देखा कि बहस फिर उसी मार्ग पर चल पड़ी है जो अंत में पुष्पा को असहयोग धारण करने पर तैयार कर देता है, और इस समय वह उसे नाराज करने नहीं, उसे खुश करने आया था।

बोला—अच्छा साहब, सारा दोष पुरुषों का है, अब राजी हुई। पुरुष भी हुकूमत करते करते थक गया है, और अब कुछ दिन विश्राम करना चाहता है। तुम्हारे अधीन रहकर अगर वह इस संघर्ष से बच जाय तो वह अपना सिंहासन छोड़ने को तैयार है।

पुष्पा ने मुस्कराकर कहा—अच्छा, आज से घर में बैठो।

—बड़े शौक से बैठूंगा, मेरे लिए अच्छे-अच्छे कपड़े, अच्छी-अच्छी सवारियां ला दो। जैसे तुम कहोगी वैसा ही करूंगा। तुम्हारी मरजी के खिलाफ एक शब्द भी न बोलूंगा।

—फिर तो न कहोगे कि स्त्री पुरुष की मुहताज है, इसलिए उसे पुरुष की गुलामी करनी चाहिए?

—कभी नहीं, मगर एक शर्त पर—

—कौन-सी शर्त?

–तुम्हारे प्रेम पर मेरा ही अधिकार रहेगा।

– स्त्रियां तो पुरुषों से ऐसी शर्त कभी न मनवा सकीं?

–यह उनकी दुर्बलता थी। ईश्वर ने तो उन्हें पुरुषों पर शासन करने के लिए सभी अस्त्र दे दिये थे।

संधि हो जाने पर भी पुष्पा का मन आश्वस्त न हुआ। सन्तकुमार का स्वभाव वह जानती थी। स्त्री पर शासन करने का जो संस्कार है वह इतनी जल्द कैसे बदल सकता है। ऊपर की बातों में सन्तकुमार उसे अपने बराबर का स्थान देते थे। लेकिन इसमें एक प्रकार का एहसान छिपा होता था। महत्त्व की बातों में वह लगाम अपने हाथ में रखते थे। ऐसा आदमी यकायक अपना अधिकार त्यागने पर तैयार हो जाय, इसमें कोई रहस्य अवश्य है।

बोली–नारियों ने उन शस्त्रों से अपनी रक्षा नहीं की, पुरुषों ही की रक्षा करती रहीं। यहां तक कि उनमें अपनी रक्षा करने की सामर्थ्य ही नहीं रही।

सन्तकुमार ने मुग्ध भाव से कहा– यही भाव मेरे मन में कई बार आया है पुष्पा, और इसमें कोई संदेह नहीं कि अगर स्त्री ने पुरुष की रक्षा न की होती तो आज दुनिया वीरान हो गई होती। उसका सारा जीवन तप और साधना का जीवन है।

तब उसने उससे अपने मंसूबे कह सुनाये। वह उन महात्माओं से अपनी मौरूसी जायदाद वापस लेना चाहता है, अगर पुष्पा अपने पिता से जिक्र कर और दस हजार रुपये भी दिला दे तो सन्तकुमार को दो लाख की जायदाद मिल सकती है। सिर्फ दस हजार। इतने रुपये के बगैर उसके हाथ से दो लाख की जायदाद निकली जाती है।

पुष्पा ने कहा–मगर वह जायदाद तो बिक चुकी है।

सन्तकुमार ने सिर हिलाया–बिक नहीं चुकी है, लुट चुकी है। जो जमीन लाख-दो लाख में भी सस्ती है, वह दस हजार में कूड़ा हो गई। कोई भी समझदार आदमी ऐसा गच्चा नहीं खा सकता और अगर खा जाय तो वह अपने होश-हवास में नहीं है। दादा गृहस्थी में कुशल नहीं रहे। वह तो कल्पनाओं की दुनिया में रहते थे। बदमाशों ने उन्हें चकमा दिया और जायदाद निकलवा दी। मेरा धर्म है कि मैं वह जायदाद वापस लूं और तुम [illegible] तो सब कुछ हो सकता है। डाक्टर साहब के लिए दस हजार का इन्तजाम कर देना कोई [illegible] न बात नहीं है।

पुष्पा एक मिनट तक विचार में डूबी रही। फिर संदेहभाव से बोली–मुझे तो आशा नहीं कि दादा के पास इतने रुपये फालतू हों।

–जरा कहो तो।

–कहूं कैसे–क्या मैं उनका हाल जानती नहीं? उनकी डाक्टरी अच्छी चलती है, पर उनके खर्च भी तो हैं। बीरू के लिए हर महीने पांच सौ रुपये इंगलैंड भेजने पड़ते हैं। तिलोत्तमा की पढ़ाई का खर्च भी कुछ कम नहीं। संचय करने की उनकी आदत नहीं है। मैं उन्हें संकट में नहीं डालना चाहती।

–मैं उधार मांगता हूं। खैरात नहीं।

–जहां इतना घनिष्ठ संबंध है वहां उधार के माने खैरात के सिवा और कुछ नहीं। तुम रुपये न दे सके तो वह तुम्हारा क्या बना लेंगे? अदालत जा नहीं सकते, दुनिया हंसेगी, पंचायत कर नहीं सकते, लोग ताने देंगे।

सन्तकुमार ने तीखेपन से कहा–तुमने यह कैसे समझ लिया कि मैं रुपये न दे सकूंगा?

पुष्पा मुंह फेरकर बोली—तुम्हारी जीत होना निश्चित नहीं है। और जीत भी हो जाय और तुम्हारे हाथ में रुपये आ भी जायं तो यहां कितने जमींदार ऐसे हैं जो अपने कर्ज चुका सकते हों। रोज ही तो रियासतें कोर्ट ऑफ वार्ड में आया करती हैं। यह भी मान लें कि तुम किफायत से रहोगे और धन जमा कर लोगे, लेकिन आदमी का स्वभाव है कि वह जिस रुपये को हजम कर सकता है उसे हजम कर जाता है। धर्म और नीति को भूल जाना उसकी एक आम कमजोरी है।

सन्त ने पुष्पा को कड़ी आंखों से देखा। पुष्पा के कहने में जो सत्य था वह तीर की तरह निशाने पर जा बैठा। उसके मन में जो चोर छिपा बैठा था उसे पुष्पा ने पकड़कर सामने खड़ा कर दिया था। तिलमिलाकर बोला—आदमी को तुम इतना नीच समझती हो, तुम्हारी इस मनोवृत्ति पर मुझे अचरज भी है और दुख भी। इस गये-गुजरे जमाने में भी समाज पर धर्म और नीति का ही शासन है। जिस दिन संसार से धर्म और नीति का नाश हो जाएगा उसी दिन समाज का अंत हो जाएगा

उसने धर्म और नीति की व्यापकता पर एक लंबा दार्शनिक व्याख्यान दे डाला। कभी किसी घर में कोई चोरी हो जाती है तो कितनी हलचल मच जाती है। क्यों? इसीलिए कि चोरी एक गैर-मामूली बात है। अगर समाज चोरों का होता तो किसी का साह होना उतनी ही हलचल पैदा करता। रोगों की आज बहुत बढ़ती सुनने में आती है, लेकिन गौर से देखो तो सौ में एक आदमी से ज्यादा बीमार न होगा। अगर बीमारी आम बात होती तो तंदुरुस्तों की नुमाइश होती, आदि। पुष्पा विरक्त-सी सुनती रही। उसके पास जवाब न थे, पर वह इस बहस को तूल नहीं देना चाहती थी। उसने तय कर लिया था कि वह अपने पिता से रुपये के लिए न कहेगी और किसी तर्क या प्रमाण का उस पर कोई असर न हो सकता था।

सन्तकुमार ने भाषण समाप्त करके जब उससे कोई जवाब न पाया तो एक क्षण के बाद बोला—क्या सोच रही हो? मैं तुमसे सच कहता हूं, मैं बहुत जल्द रुपये दे दूंगा।

पुष्पा ने निश्चल भाव से कहा—तुम्हें कहना हो जाकर खुद कहो, मैं तो नहीं लिख सकती।

सन्तकुमार ने होंठ चबाकर कहा - जरा-सी बात तुम से नहीं लिखी जाती, उस पर दावा यह है कि घर पर मेरा भी अधिकार है।

पुष्पा ने जोश के साथ कहा—मेरा अधिकार तो उसी क्षण हो गया जब मेरी गांठ तुमसे बंधी।

सन्तकुमार ने गर्व के साथ कहा - ऐसा अधिकार जितनी आसानी से मिल जाता है, उतनी ही आसानी से छिन भी जाता है।

पुष्पा को जैसे किसी ने धक्का देकर उस विचारधारा में डाल दिया जिसमें पांव रखते उसे डर लगता था। उसने यहां आने के एक दो महीने के बाद ही सन्तकुमार का स्वभाव पहचान लिया था। उनके साथ निबाह करने के लिए उसे उनके इशारों की लौंडी बनकर रहना पड़ेगा। उसे अपने व्यक्तित्व को उनके अस्तित्व में मिला देना पड़ेगा। वह वही सोचेगी जो वह सोचेंगे, वही करेगी, जो वह करेंगे। अपनी आत्मा के विकास के लिए यहां कोई अवसर न था। उनके लिए लोक या परलोक में जो कुछ था वह सम्पत्ति थी। यहीं से उनके जीवन को प्रेरणा मिलती थी। सम्पत्ति के मुकाबले में स्त्री या पुत्र की भी उनकी निगाह में कोई

हकीकत न थी। एक चीनी का प्लेट पुष्पा के हाथ से टूट जाने पर उन्होंने उसके कान ऐंठ लिए थे। फर्श पर स्याही गिरा देने की सजा उन्होंने पंकजा से सारा फर्श धुलवाकर दी थी। पुष्पा उनके रखे रुपयों को कभी हाथ तक न लगाती थी। यह ठीक है कि वह धन को महज जमा करने की चीज न समझते थे। धन, भोग करने की वस्तु है, उनका यह सिद्धांत था। फजूलखर्ची या लापरवाही बर्दाश्त न करते थे। उन्हें अपने सिवा किसी पर विश्वास न था। पुष्पा ने कठोर आत्मसमर्पण के साथ इस जीवन के लिए अपने को तैयार कर लिया था। पर बार-बार यह याद दिलाया जाना कि यहां उसका कोई अधिकार नहीं है, यहां वह केवल एक लौंडी की तरह है उसे असह्य था। अभी उस दिन इसी तरह की एक बात सुनकर उसने कई दिन खाना-पीना छोड़ दिया था। और आज तक उसने किसी तरह मन को समझाकर शांत किया था कि यह दूसरा आघात हुआ। इसने उसके रहे-सहे धैर्य का भी गला घोंट दिया। सन्तकुमार तो उसे यह चुनौती देकर चल गए। वह वहीं बैठी सोचने लगी अब उसको क्या करना चाहिए। इस दशा में तो वह अब नहीं रह सकती। वह जानती थी कि पिता के घर में भी उसके लिए शांति नहीं है। डाक्टर साहब भी सन्तकुमार का आदर्श युवक समझते थे और उन्हें इस बात का विश्वास दिलाना कठिन था कि सन्तकुमार की ओर से कोई बेजा हरकत हुई है। पुष्पा का विवाह करके उन्होंने जीवन की एक समस्या हल कर ली थी। उस पर फिर विचार करना उनके लिए असूझ था। उनकी जिंदगी की सबसे बड़ी अभिलाषा थी कि अब कहीं निश्चिंत होकर दुनिया की सैर करें। यह समय अब निकट आता जाता था। ज्योंही लड़का इंगलैंड से लौटा और छोटी लड़की की शादी हुई कि वह दुनिया के बंधन से मुक्त हो जायंगे। पुष्पा फिर उनके सिर पड़कर उनके जीवन के सबसे बड़े अरमान में बाधा न डालना चाहती थी। फिर उसके लिए दूसरा कौन स्थान है? कोई नहीं। तो क्या इस घर में रहकर जीवन-पर्यंत अपमान सहते रहना पड़ेगा?

साधुकुमार आकर बैठ गया। पुष्पा ने चौंककर पूछा -तुम बम्बई कब जा रहे हो?

साधु ने हिचकिचाते हुए कहा - जाना तो था कल लेकिन मेरी जाने की इच्छा नहीं होती। आने - जाने में सैकड़ों का खर्च है। घर में रुपये नहीं हैं, मैं किसी को सताना नहीं चाहता। बम्बई जाने की ऐसी जरूरत ही क्या है। जिस मुल्क में दस में नौ आदमी रोटियों को तरसते हों, वहां दस-बीस आदमियों का क्रिकेट के व्यसन में पड़े रहना मूर्खता है। मैं तो नहीं जाना चाहता।

पुष्पा ने उत्तेजित किया - तुम्हारे भाई साहब तो रुपये दे रहे हैं?

साधु ने मुस्कराकर कहा - भाई साहब रुपये नहीं दे रहे हैं, मुझे दादा का गला दबाने को कह रहे हैं। मैं दादा को कष्ट नहीं देना चाहता। भाई साहब से कहना मत भाभी, तुम्हारे हाथ जोड़ता हूं।

पुष्पा उसकी इस नम्र सरलता पर हंस पड़ी। बाईस साल का गर्वीला युवक जिसने सत्याग्रह-संग्राम में पढ़ना छोड़ दिया, दो बार जेल हो आया, जेलर के कटु वचन सुनकर उसकी छाती पर सवार हो गया और इस उद्दंडता की सजा में तीन महीने काल-कोठरी में रहा, वह अपने भाई से इतना डरता है, मानो वह हौवा हों। बोली - मैं तो कह दूंगी।

--तुम नहीं कह सकतीं। इतनी निर्दय नहीं हो।

पुष्पा प्रसन्न होकर बोली - कैसे जानते हो?

—चेहरे से।

—झूठे हो।

— तो फिर इतना और कहे देता हूं कि आज भाई साहब ने तुम्हें भी कुछ कहा है।

पुष्पा झेंपती हुई बोली—बिल्कुल गलत। वह भला मुझे क्या कहते?

—अच्छा मेरे सिर की कसम खाओ।

—कसम क्यों खाऊं? तुमने मुझे कभी कसम खाते देखा है?

-भैया ने कुछ कहा है जरूर, नहीं तुम्हारा मुंह इतना उतरा हुआ क्यों रहता? भाई साहब से कहने की हिम्मत नहीं पड़ती वरन। समझाता आप क्यों गड़े मुर्दे उखाड़ रहे हैं। जो जायदाद बिक गई उसके लिए अब दादा को कोसना और अदालत करना मुझे तो कुछ नहीं जंचता। गरीब लोग भी तो दुनिया में हैं ही, या सब मालदार ही हैं। मैं तुमसे ईमान से कहता हूं भाभी, मैं जब कभी धनी होने की कल्पना करता हूं तो मुझे शंका होने लगती है कि न जाने मेरा मन क्या हो जाय। इतने गरीबों में धनी होना मुझे तो स्वार्थान्धता-सी लगती है। मुझे तो इस दशा में भी अपने ऊपर लज्जा आती है, जब देखता हूं कि मेरे ही जैसे लोग ठोकरें खा रहे हैं। हम तो दोनों वक्त चुपड़ी हुई रोटियां और दूध और सेब-संतरे उड़ाते हैं। मगर सौ में निन्यानबे आदमी तो ऐसे भी हैं जिन्हें इन पदार्थों के दर्शन भी नहीं होते। आखिर हममें क्या सुर्खाब के पर लग गये हैं?

पुष्पा इन विचारों की न होने पर भी साधु की निष्कपट सच्चाई का आदर करती थी। बोली -तुम इतना पढ़ते तो नहीं ये विचार तुम्हारे दिमाग में कहां से आ जाते हैं?

साधु ने उठकर कहा—शायद उस जन्म में भिखारी था।

पुष्पा ने उसका हाथ पकड़कर बैठाते हुए कहा—मेरी देवरानी बेचारी गहने -कपड़े को तरस जायगी।

--मैं अपना ब्याह ही न करूंगा।

—मन में तो मना रहे होगे कहीं से संदेसा आये।

-नहीं भाभी, तुमसे झूठ नहीं कहता। शादी का तो मुझे ख्याल भी नहीं आता। जिंदगी इसी के लिए है कि किसी के काम आये। जहां सेवकों की इतनी जरूरत है वहां कुछ लोगों को तो क्वांरे रहना ही चाहिए। कभी शादी करूंगा भी तो ऐसी लड़की से जो मेरे साथ गरीबी की जिंदगी बसर करने पर राजी हो और जो मेरे जीवन की सच्ची सहगामिनी बने।

पुष्पा ने इस प्रतिज्ञा को भी हंसी में उड़ा दिया—पहले सभी युवक इसी तरह की कल्पना किया करते हैं। लेकिन शादी में देर हुई तो उपद्रव मचाना शुरू कर देते हैं।

साधुकुमार ने जोश के साथ कहा - मैं उन युवकों में नहीं हूं भाभी ! अगर कभी मन चंचल हुआ तो जहर खा लूंगा।

पुष्पा ने फिर कटाक्ष किया—तुम्हारे मन में तो बीबी (पंकजा) बसी हुई है।

—तुम से कोई बात कहो तो तुम बनाने लगती हो, इसी से मैं तुम्हारे पास नहीं आता।

--अच्छा सच कहना पंकजा जैसी बीवी पाओ तो विवाह करो या नहीं?

साधुकुमार उठकर चला गया। पुष्पा रोकती रही पर वह हाथ छुड़ाकर भाग गया। इस आदर्शवादी, सरल प्रकृति, सुशील, सौम्य युवक से मिलकर पुष्पा का मुरझाया हुआ मन खिल उठता था। वह भीतर से जितनी भारी थी, बाहर से उतनी ही हल्की थी। सन्तकुमार से तो उसे

अपने अधिकारों की प्रतिक्षण रक्षा करनी पड़ती थी, चौकन्ना रहना पड़ता था कि न जाने कब उसका वार हो जाय। शैव्या सदैव उस पर शासन करना चाहती थी, और एक क्षण भी न भूलती थी कि वह घर की स्वामिनी है और हरेक आदमी को उसका यह अधिकार स्वीकार करना चाहिए। देवकुमार ने सारा भार सन्तकुमार पर डालकर वास्तव में शैव्या की गद्दी छीन ली थी। वह यह भूल जाती थी कि देवकुमार के स्वामी रहने पर ही वह घर की स्वामिनी रही। अब वह माने की देवी थी जो केवल अपने आशीर्वादों के बल पर ही पुज सकती है। मन का यह संदेह मिटाने के लिए वह सदैव अपने अधिकारों की परीक्षा लेती रहती थी। यह चोर किसी बीमारी की तरह उसके अंदर जड़ पकड़ चुका था और असली भोजन को न पचा सकने के कारण उसकी प्रकृति चटोरी होती जाती थी। पुष्पा उनसे बोलते डरती थी, उनके पास जाने का साहस न होता था। रही पंकजा, उसे काम करने का रोग था। उसका काम ही उसका विनोद, मनोरंजन सब कुछ था। शिकायत करना उसने सीखा ही न था। बिल्कुल देवकुमार का-सा स्वभाव पाया था। कोई चार बात कह दे, सिर झुकाकर सुन लेगी। मन में किसी तरह का द्वेष या मलाल न आने देगी। सबेरे से दस-ग्यारह बजे रात तक उसे दम मारने की मोहलत न थी। अगर किसी के कुरते के बटन टूट जाते हैं तो पंकजा टांकेगी। किस के कपड़े कहां रखे हैं यह रहस्य पंकजा के सिवा और कोई न जानता था। और इतना काम करने पर भी वह पढ़ने और बेल-बूटे बनाने का समय भी न जाने कैसे निकाल लेती थी। घर में जितने तकिये थे सबों पर पंकजा की कलाप्रियता के चिह्न अंकित थे। मेजों के मेजपोश, कुरसियों के गद्दे, संदूकों के गिलाफ सब उसकी कलाकृतियों से रंजित थे। रेशम और मखमल के तरह-तरह के पक्षियों और फूलों के चित्र बनाकर उसने फ्रेम बना लिये थे जो दीवानखाने की शोभा बढ़ा रहे थे। और उसे गाने बजाने का शौक भी था। सितार बजा लेती थी, और हारमोनियम तो उसके लिए खेल था। हां, किसी के सामने गाते-बजाते शरमाती थी। इसके साथ ही वह स्कूल भी जाती थी और उसका शुमार अच्छी लड़कियों में था। पन्द्रह रुपया महीना उसे वजीफा मिलता था। उसके पास इतनी फुर्सत न थी कि पुष्पा के पास घड़ी-दो-घड़ी के लिए आ बैठे और हंसी-मजाक करे। उसे हंसी-मजाक आता भी न था। न मजाक समझती थी, न उसका जवाब देती थी। पुष्पा को अपने जीवन का भार हल्का करने के लिए साधु ही मिल जाता था। पति ने तो उल्टे उस पर और अपना बोझ ही लाद दिया था।

साधु चला गया तो पुष्पा फिर उसी ख्याल में डूबी—कैसे अपना बोझ उठाए। इसीलिए तो पतिदेव उस पर यह रोब जमाते हैं। जानते हैं कि इसे चाहे जितना सताओ, कहीं जा नहीं सकती, कुछ बोल नहीं सकती। हां, उनका ख्याल ठीक है। उसे विलास वस्तुओं से रुचि है। वह अच्छा खाना चाहती है, आराम से रहना चाहती है। एक बार वह विलास का मोह त्याग दे और त्याग करना सीख ले, फिर उस पर कौन रोब जमा सकेगा, फिर वह क्यों किसी से दबेगी।

शाम हो गई थी। पुष्पा खिड़की के सामने खड़ी बाहर की ओर देख रही थी। उसने देखा बीस--पच्चीस लड़कियों और स्त्रियों का एक दल एक स्वर से एक गीत गाता चला जा रहा था। किसी की देह पर साबित कपड़े तक न थे। सिर और मुंह पर गर्द जमी हुई थी। बाल रूखे हो रहे थे जिनमें शायद महीनों से तेल न पड़ा हो। यह मजूरनी थीं जो दिन भर ईंट और गारा ढोकर घर लौट रही थीं। सारे दिन उन्हें धूप में तपना पड़ा होगा, मालिक की

घुड़कियां खानी पड़ी होंगी। शायद दोपहर को एक-एक मुट्ठी चबेना खाकर रह गई हों। फिर भी कितनी प्रसन्न थीं, कितनी स्वतंत्र। इनकी इस प्रसन्नता का, इस स्वतंत्रता का क्या रहस्य है?

तीन

मि॰ सिन्हा उन आदमियों में हैं जिनका आदर इसलिए होता है कि लोग उनसे डरते हैं। उन्हें देखकर सभी आदमी 'आइए, आइए' करते हैं, लेकिन उनके पीठ फेरते ही कहते हैं- बड़ा ही मूजी आदमी है, इसके काटे का मंत्र नहीं। उनका पेशा है मुकदमे बनाना। जैसे कवि एक कल्पना पर पूरा काव्य लिख डालता है, उसी तरह सिन्हा साहब भी कल्पना पर मुकदमों की सृष्टि कर डालते हैं। न जाने वह कवि क्यों नहीं हुए? मगर कवि होकर वह साहित्य की चाहे जितनी वृद्धि कर सकते, अपना कुछ उपकार न कर सकते। कानून की उपासना करके उन्हें सभी सिद्धियां मिल गई थीं। शानदार बंगले में रहते थे, बड़े-बड़े रईसों और हुक्काम से दोस्ताना था, प्रतिष्ठा भी थी, रोब भी था। कलम में ऐसा जादू था कि मुकदमे में जान डाल देते। ऐसे-ऐसे प्रसंग सोच निकालते, ऐसे-ऐसे चरित्रों की रचना करते कि कल्पना सजीव हो जाती थी। बड़े-बड़े घाघ जज भी उसकी तह तक न पहुंच सकते। सब कुछ इतना स्वाभाविक, इतना संबद्ध होता था कि उस पर मिथ्या का भ्रम तक न हो सकता था। वह सन्तकुमार के साथ के पढ़े हुए थे। दोनों में गहरी दोस्ती थी। सन्तकुमार के मन में एक भावना उठी और सिन्हा ने उसमें रंगरूप भर कर जीता-जागता पुतला खड़ा कर दिया और आज मुकदमा दायर करने का निश्चय किया जा रहा है।

नौ बजे होंगे। वकील और मुवक्किल कचहरी जाने की तैयारी कर रहे हैं। सिन्हा अपने सजे कमरे में मेज पर टांग फैलाए लेट हुए हैं। गोरे-चिट्टे आदमी, ऊंचा कद, एकहरा बदन, बड़े-बड़े बाल पीछे को कंघी से ऐंचे हुए, मूंछें साफ, आंखों पर ऐनक, ओठों पर सिगार चेहरे पर प्रतिभा का प्रकाश, आंखों में अभिमान, ऐसा जान पड़ता है कोई बड़ा रईस है। सन्तकुमार नीची अचकन पहने, फेल्ट कैप लगाए कुछ चिंतित से बैठे हैं।

सिन्हा ने आश्वासन दिया -तुम नाहक डरते हो। मैं कहता हूं हमारी फतेह है। ऐसी सैकड़ों नजीरें मौजूद हैं जिसमें बेटों-पोतों ने बैनामे मंसूख कराये हैं। पक्की शहादत चाहिए और उस जमा करना बाएं हाथ का खेल है।

सन्तकुमार ने दुविधा में पड़कर कहा -लेकिन फादर को भी तो राजी करना होगा। उनकी इच्छा के बिना तो कुछ न हो सकेगा।

—उन्हें सीधा करना तुम्हारा काम है।

—लेकिन उनका सीधा होना मुश्किल है।

—तो उन्हें भी गोली मारो। हम साबित करेंगे कि उनके दिमाग में खलल है।

—यह साबित करना आसान नहीं है। जिसने बड़ी-बड़ी किताबें लिख डालीं, जो सभ्य समाज का नेता समझा जाता है, जिसकी अक्लमंदी को सारा शहर मानता है, उसे दीवाना कैसे

साबित करोगे?

सिन्हा ने विश्वासपूर्ण भाव से कहा—यह सब मैं देख लूंगा। किताब लिखना और बात है, होश-हवास का ठीक रहना और बात। मैं तो कहता हूं, जितने लेखक हैं, सभी सनकी हैं—पूरे पागल, जो महज वाह-वाह के लिए यह पेशा मोल लेते हैं। अगर यह लोग अपने होश में हों तो किताबें न लिखकर दलाली करें, या खोंचे लगायें। यहां कुछ तो मेहनत का मुआवजा मिलेगा। पुस्तकें लिखकर तो बदहजमी, तपेदिक ही हाथ लगता है। रुपये का जुगाड़ तुम करते जाओ, बाकी सारा काम मुझ पर छोड़ दो। और हां आज शाम को क्लब में जरूर आना। अभी से कैम्पेन (मुहामरा) शुरू कर देना चाहिए। तिब्बी पर डोरे डालना शुरू करो। यह समझ लो, वह सब-जज साहब की अकेली लड़की है और उस पर अपना रंग जमा दो तो तुम्हारी गोटी लाल है। सब-जज साहब तिब्बी की बात कभी नहीं टाल सकते। मैं यह मरहला करने में तुमसे ज्यादा कुशल हूं। मगर मैं एक खून के मुआमले में पैरवी कर रहा हूं और सिविल सर्जन मिस्टर कामत की वह पीले मुंह वाली छोकरी आजकल मेरी प्रेमिका है। सिविल सर्जन मेरी इतनी आवभगत करते हैं कि कुछ न पूछो। उस चुड़ैल से शादी करने पर आज तक कोई राजी न हुआ। इतने मोटे ओंठ हैं और सीना तो जैसे झुका हुआ सा...बान हो। फिर भी आपको दावा है कि मुझसे ज्यादा रूपवती संसार में न होगी। औरतों को अपने रूप का घमंड कैसे हो जाता है, यह मैं आज तक न समझ सका। जो रूपवान् है वह घमंड करे तो वाजिब है, लेकिन जिसकी सूरत देखकर कै आए, वह कैसे अपने को अप्सरा समझ लेती है। उसके पीछे पीछे घूमते और आशिकी करते जी तो जलता है, मगर गहरी रकम हाथ लगने वाली है कुछ तपस्या तो करनी ही पड़ेगी। तिब्बी तो सचमुच अप्सरा है और चंचल भी। जरा मुश्किल से काबू में आयेगी। अपनी सारी कला खर्च करनी पड़ेगी।

—यह कला मैं खूब सीख चुका हूं।

—तो आज शाम को आना क्लब में।

- जरूर आऊंगा।

—रुपये का प्रबंध भी करना।

—वह तो करना ही पड़ेगा।

इस तरह सन्तकुमार और सिन्हा दोनों ने मुहासिरा डालना शुरू किया। सन्तकुमार न लंपट था, न रसिक, मगर अभिनय करना जानता था। रूपवान भी था, ज़बान का मीठा भी, दोहरा शरीर, हंसमुख और जहीन चेहरा, गोरा चिट्टा। जब सूट पहनकर छड़ी घुमाता हुआ निकलता तो आंखों में खुब जाता था। टेनिस, ब्रिज आदि फैशनेबल खेलों में निपुण था ही, तिब्बी से राह-रस्म पैदा करने में उसे देर न लगी। तिब्बी यूनिवर्सिटी के पहले साल में थी, बहुत ही तेज, बहुत ही मगरूर, बड़ी हाजिरजवाब। उसे स्वाध्याय का शौक न था, बहुत थोड़ा पढ़ती थी, मगर संसार की गति से वाकिफ थी, और अपनी ऊपरी जानकारी को विद्वत्ता का रूप देना जानती थी। कोई विषय उठाइए, चाहे वह घोर विज्ञान ही क्यों न हो, उस पर भी वह कुछ-न कुछ आलोचना कर सकती थी, कोई मौलिक बात कहने का उसे शौक था और प्रांजल भाषा में। मिजाज में नफासत इतनी थी कि सलीके या तमीज की जरा भी कमी उसे असह्य थी। उसके यहां कोई नौकर या नौकरानी न ठहरने पाती थी। दूसरों पर कड़ी आलोचना करने में उसे आनंद आता था, और उसकी निगाह इतनी तेज थी कि किसी स्त्री या पुरुष में जरा भी कुरुचि या भोंडापन

देखकर वह भौंओं से या ओंठों से अपना मनोभाव प्रकट कर देती थी। महिलाओं के समाज में उसकी निगाह उनके वस्त्राभूषण पर रहती थी और पुरुष-समाज में उनकी मनोवृत्ति की ओर। उसे अपने अद्वितीय रूप-लावण्य का ज्ञान था और वह अच्छे-से पहनावे से उसे और भी चमकाती थी। जेवरों से उसे विशेष रुचि न थी, यद्यपि अपने सिंगारदान में उन्हें चमकते देखकर उसे हर्ष होता था। दिन में कितनी ही बार वह नये-नये रूप धरती थी। कभी बैतालियों का भेष धारण कर लेती थी, कभी गुजरियों का, कभी स्कर्ट और मोजे पहन लेती थी। मगर उसके मन में पुरुषों को आकर्षित करने का जरा भी भाव न था। वह स्वयं अपने रूप में मग्न थी।

मगर इसके साथ ही वह सरल न थी और युवकों के मुख से अनुराग-भरी बातें सुनकर वह वैसी ही ठंडी रहती थी। इस व्यापार में साधारण रूप-प्रशंसा के सिवा उसके लिए और कोई महत्त्व न था। और युवक किसी तरह प्रोत्साहन न पाकर निराश हो जाते थे मगर सन्तकुमार की रसिकता में उसे अंतर्ज्ञान से कुछ रहस्य, कुछ कुशलता का आभास मिला। अन्य युवकों में उसने जो असंयम, जो उग्रता, जो विह्वलता देखी थी उसका यहां नाम भी न था। सन्तकुमार के प्रत्येक व्यवहार में संयम था, विधान था, सचेतता थी। इसलिए वह उनसे सतर्क रहती थी और उनके मनोरहस्यों को पढ़ने की चेष्टा करती थी। सन्तकुमार का संयम और विचारशीलता ही उसे अपनी जटिलता के कारण अपनी ओर खींचती थी। सन्तकुमार ने उसके सामने अपने को अनमेल विवाह के एक शिकार के रूप में पेश किया था और उसे उनसे कुछ हमदर्दी हो गई थी। पुष्पा के रंग-रूप की उन्होंने इतनी प्रशंसा की थी जितनी उनको अपने मतलब के लिए जरूरी मालूम हुई, मगर जिसका तिब्बी से कोई मुकाबला न था। उसने केवल पुष्पा के फूहड़पन, बेवकूफी, असहृदयता और निष्ठुरता की शिकायत की थी, और तिब्बी पर इतना प्रभाव जमा लिया था कि वह पुष्पा को देख पाती तो सन्तकुमार का पक्ष लेकर उससे लड़ती।

एक दिन उसने सन्तकुमार से कहा—तुम उसे छोड़ क्यों नहीं देते?

सन्तकुमार ने हसरत के साथ कहा—छोड़ कैसे दूं मिस त्रिवेणी, समाज में रहकर समाज के कानून तो मानने ही पड़ेंगे। फिर पुष्पा का इसमें क्या कसूर है। उसने तो अपने आपको नहीं बनाया। ईश्वर ने या संस्कारों ने या परिस्थितियों ने जैसा बनाया वैसी बन गई।

—मुझे ऐसे आदमियों से जरा भी सहानुभूति नहीं जो ढोल को इसलिए पीटें कि वह गले पड़ गई है। मैं चाहती हूं वह ढोल को गले से निकालकर किसी खंदक में फेंक दें। मेरा बस चले तो मैं खुद उसे निकाल कर फेंक दूं।

सन्तकुमार ने अपना जादू चलते हुए देखकर मन में प्रसन्न होकर कहा—लेकिन उसकी क्या हालत होगी, यह तो सोचो।

तिब्बी अधीर होकर बोली—तुम्हें यह सोचने की जरूरत ही क्या है? अपने घर चली जायगी, या कोई काम करने लगेगी या अपने स्वभाव के किसी आदमी से विवाह कर लेगी।

सन्तकुमार ने कहकहा मारा—तिब्बी यथार्थ और कल्पना में भेद भी नहीं समझती, कितनी भोली है।

गंभीर उदारता के भाव से बोले—यह बड़ा टेढ़ा सवाल है कुमारी जी। समाज की नीति कहती है कि चाहे पुष्पा को देखकर रोज मेरा खून ही क्यों न जलता रहे और एक दिन मैं इसी शोक में अपना गला क्यों न काट लूं, लेकिन उसे कुछ नहीं हो सकता, छोड़ना तो असंभव है।

केवल एक ही ऐसा आक्षेप है जिस पर मैं उसे छोड़ सकता हूं, यानी उसकी बेवफाई। लेकिन पुष्पा में और चाहे जितने दोष हों यह दोष नहीं है।

संध्या हो गई थी। तिब्बी ने नौकर को बुलाकर बाग में गोल चबूतरे पर कुर्सियां रखने को कहा और बाहर निकल आई। नौकर ने कुर्सियां निकालकर रख दीं, और मानो यह काम समाप्त करके जाने को हुआ।

तिब्बी ने डांटकर कहा– कुर्सियां साफ क्यों नहीं कीं? देखता नहीं उन पर कितनी गर्द पड़ी हुई है? मैं तुझसे कितनी बार कह चुकी, मगर तुझे याद ही नहीं रहती। बिना जुर्माना किए तुझे याद न आयेगी।

नौकर ने कुर्सियां पोंछ-पोंछ कर साफ कर दीं और फिर जाने को हुआ।

तिब्बी ने फिर डांटा–तू बार-बार भागता क्यों है। मेजें रख दीं? टी-टेबल क्यों नहीं लाया? चाय क्या तेरे सिर पर पिएंगे?

उसने बूढ़े नौकर के दोनों कान गर्मा दिये और धक्का देकर बोली–बिल्कुल गावदी है, निरा पोंगा, जैसे दिमाग में गोबर भरा हुआ है।

बूढ़ा नौकर बहुत दिनों का था। स्वामिनी उसे बहुत मानती थीं। उनके देहांत होने के बाद गोकि उसे कोई विशेष प्रलोभन न था, क्योंकि इससे एक-दो रुपया ज्यादा वेतन पर उसे नौकरी मिल सकती थी पर स्वामिनी के प्रति उसे जो श्रद्धा थी वह उसे इस घर से बांधे हुए थी और यहां अनादर और अपमान सब कुछ सहकर भी वह चिपटा हुआ था। सब-जज साहब भी उसे डांटते रहते थे पर उनके डांटने का उसे दुख न होता था। वह उम्र में उसके जोड़ के थे। लेकिन त्रिवेणी को तो उसने गोद खेलाया था। अब वही तिब्बो उसे डांटती थी, और मारती भी थी। इससे उसके शरीर को जितनी चोट लगती थी उससे कहीं ज्यादा उसके आत्माभिमान को लगती थी। उसने केवल दो घरों में नौकरी की थी। दोनों ही घरों में लड़कियां भी थीं बहुएं भी थीं। सब उसका आदर करती थीं। बहुएं तो उससे लजाती थीं। अगर उससे कोई बात बिगड़ भी जाती तो मन में रख लेती थीं। उसकी स्वामिनी तो आदर्श महिला थी। उसे कभी कुछ न कहा। बाबू जी कभी कुछ कहते तो उसका पक्ष लेकर उनसे लड़ती थी। और यह लड़की बड़े-छोटे का जरा भी लिहाज नहीं करती। लोग कहते हैं पढ़ने से अक्ल आती है। यही है वह अक्ल! उसके मन में विद्रोह का भाव उठा–क्यों यह अपमान सहे? जो लड़की उसकी अपनी लड़की से भी छोटी हो, उसके हाथों क्यों अपनी मूंछें नुचवाये? अवस्था में भी अभिमान होता है जो संचित धन के अभिमान से कम नहीं होता। वह सम्मान और प्रतिष्ठा को अपना अधिकार समझता है, और उसकी जगह अपमान पाकर मर्माहत हो जाता है।

घूरे ने टी-टेबल लाकर रख दी, पर आंखों में विद्रोह भरे हुए था।

तिब्बी ने कहा–जाकर बैरा से कह दो, दो प्याले चाय दे जाय।

घूरे चला गया और बैरा को यह हुक्म सुनाकर अपनी एकांत कुटी में जाकर खूब रोया। आज स्वामिनी होती तो उसका अनादर क्यों होता!

बैरा ने चाय मेज पर रख दी। तिब्बी ने प्याली सन्तकुमार को दी और विनोद भाव से बोली–तो अब मालूम हुआ कि औरतें ही पतिव्रता नहीं होतीं, मर्द भी पत्नीव्रत वाले होते हैं।

सन्तकुमार ने एक घूंट पीकर कहा—कम-से-कम इसका स्वांग तो करते ही हैं।

—मैं इसे नैतिक दुर्बलता कहती हूं। जिस प्यारा कहो, दिल से प्यारा कहो, नहीं प्रकट हो जाय। मैं विवाह को प्रेमबंधन के रूप में देख सकती हूं, धर्मबंधन या रिवाज बंधन तो मेरे लिए असह्य हो जाय।

—उस पर भी तो पुरुषों पर आक्षेप किये जाते हैं।

तिब्बी चौंकी। यह जातिगत प्रश्न हुआ जा रहा है।

अब उसे अपनी जाति का पक्ष लेना पड़ेगा—तो क्या आप मुझसे यह मनवाना चाहते हैं कि सभी पुरुष देवता होते हैं? आप भी जो वफादारी कर रहे हैं वह दिल से नहीं, केवल लोकनिंदा के भय से। मैं इसे वफादारी नहीं कहती। बिच्छू के डंक तोड़कर आप उसे बिल्कुल निरीह बना सकते हैं, लेकिन इससे बिच्छुओं का जहरीलापन तो नहीं जाता।

सन्तकुमार ने अपनी हार मानते हुए कहा—अगर मैं भी यही कहूं कि अधिकतर नारियां का पातिव्रत भी लोकनिंदा का भय है तो आप क्या कहेंगी?

तिब्बी ने प्याला मेज पर रखते हुए कहा—मैं इसे कभी न स्वीकार करूंगी।

—क्यों?

—इसलिए कि मर्दों ने स्त्रियों के लिए और कोई आश्रय छोड़ा ही नहीं। पातिव्रत उनके अंदर इतना कूट-कूट कर भरा गया है कि अब अपना व्यक्तित्व रहा ही नहीं। वह केवल पुरुष के आधार पर जी सकती है। उसका स्वतंत्र कोई अस्तित्व ही नहीं। बिन ब्याहा पुरुष चैन से खाता है, विहार करता है और मूंछों पर ताव देता है। बिन ब्याही स्त्री रोती है, कलपती है और अपने को संसार का सबसे अभागा प्राणी समझती है। यह सारा मर्दों का अपराध है। आप भी पुष्पा को नहीं छोड़ रहे हैं इसीलिए न कि आप पुरुष हैं जो कैदी को आजाद नहीं करना चाहता।

सन्तकुमार ने कातर स्वर में कहा—आप मेरे साथ बेइंसाफी करती हैं। मैं पुष्पा को इसलिए नहीं छोड़ रहा हूं कि मैं उसका जीवन नष्ट नहीं करना चाहता। अगर मैं आज उसे छोड़ दूं तो शायद औरों के साथ आप भी मेरा तिरस्कार करेंगी।

तिब्बी मुस्कराई—मेरी तरफ से आप निश्चिंत रहिए। मगर एक ही क्षण के बाद उसने गंभीर होकर कहा—लेकिन मैं आपकी कठिनाइयों का अनुमान कर सकती हूं।

—मुझे आपके मुंह से ये शब्द सुनकर कितना संतोष हुआ। मैं वास्तव में आपकी दया का पात्र हूं और शायद कभी मुझे इसकी जरूरत पड़े।

—आपके ऊपर मुझे सचमुच दया आती है। क्यों न एक दिन उनसे किसी तरह मेरी मुलाकात करा दीजिए। शायद मैं उन्हें रास्ते पर ला सकूं।

सन्तकुमार ने ऐसा लंबा मुंह बनाया जैसे इस प्रस्ताव से उसके मर्म पर चोट लगी है।

—उसका रास्ते पर आना असंभव है मिस त्रिवेणी। वह उलटे आप ही के ऊपर आक्षेप करेगी और आपके विषय में न जाने कैसी दुष्कल्पनाएं कर बैठेगी। और मेरा तो घर में रहना मुश्किल हो जायेगा।

तिब्बी का साहसिक मन गर्म हो उठा—तब तो मैं उससे जरूर मिलूंगी।

—तो शायद आप यहां भी मेरे लिए दरवाजा बंद कर देंगी।

—ऐसा क्यों?

—बहुत मुमकिन है वह आपकी सहानुभूति पा जाय और आप उसकी हिमायत करने लगें।

—तो क्या आप चाहते हैं मैं आपको एकतरफा डिगरी दे दूं?

—मैं केवल आपकी दया और हमदर्दी चाहता हूं। आपसे अपनी मनोव्यथा कहकर दिल का बोझ हल्का करना चाहता हूं। उसे मालूम हो जाय कि मैं आपके यहां आता-जाता हूं तो एक नया किस्सा खड़ा कर दे।

तिब्बी ने सीधे व्यंग्य किया—तो आप उससे इतना डरते क्यों हैं? डरना तो मुझे चाहिए।

सन्तकुमार ने और गहरे में जाकर कहा—मैं आपके लिए ही डरता हूं, अपने लिए नहीं।

तिब्बी निर्भयता से बोली—जी नहीं, आप मेरे लिए न डरिए।

- मेरे जीते जी, मेरे पीछे, आप पर कोई शुबहा हो यह मैं नहीं देख सकता।

—आपको मालूम है मुझे भावुकता पसंद नहीं?

—यह भावुकता नहीं, मन के सच्चे भाव हैं।

—मैंने सच्चे भाववाले युवक बहुत कम देखे।

—दुनिया में सभी तरह के लोग होते हैं।

- अधिकतर शिकारी किस्म के। स्त्रियों में तो वेश्याएं ही शिकारी होती हैं। पुरुषों में तो सिरे से सभी शिकारी होते हैं।

—जी नहीं, उनमें अपवाद भी बहुत है।

- स्त्री रूप नहीं देखती। पुरुष जब गिरेगा रूप पर। इसीलिए उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। मेरे यहां कितने ही रूप के उपासक आते हैं। शायद इस वक्त भी कोई साहब आ रहे हों। मैं रूपवती हूं, इसमें नम्रता का कोई प्रश्न नहीं। मगर मैं नहीं चाहती कोई मुझे केवल रूप के लिए चाहे।

सन्तकुमार ने धड़कते हुए मन से कहा—आप उनमें मेरा तो शुमार नहीं करतीं?

तिब्बी ने तत्परता के साथ कहा—आपको तो मैं अपने चाहने वालों में समझती ही नहीं।

सन्तकुमार ने माथा झुकाकर कहा—यह मेरा दुर्भाग्य है।

- आप दिल से नहीं कह रहे हैं, मुझे कुछ ऐसा लगता है कि आपका मन नहीं पाती। आप उन आदमियों में हैं जो हमेशा रहस्य रहते है।

- यही तो मैं आपके विषय में सोचा करता हूं।

—मैं रहस्य नहीं हूं। मैं तो साफ कहती हूं मैं ऐसे मनुष्य की खोज में हूं, जो मेरे हृदय में सोये हुए प्रेम को जगा दे। हां, वह बहुत नीचे गहराई में है, और उसी को मिलेगा जो गहरे पानी में डूबना जानता हो। आपमें मैंने कभी उसके लिए बैचेनी नहीं पाई। मैंने अब तक जीवन का रोशन पहलू ही देखा है। और उससे ऊब गई हूं। अब जीवन का अंधेरा पहलू देखना चाहती हूं। जहां त्याग है, रुदन है, उत्सर्ग है। संभव है उस जीवन से मुझे बहुत जल्द घृणा हो जाय, लेकिन मेरी आत्मा यह नहीं स्वीकार करना चाहती कि वह किसी ऊंचे ओहदे की गुलामी या कानूनी धोखेधड़ी या व्यापार के नाम से की जाने वाली लूट को अपने जीवन का आधार बनाए। श्रम और त्याग का जीवन ही मुझे तथ्य जान पड़ता है। आज जो समाज और देश की दूषित अवस्था है उससे असहयोग करना मेरे लिए जुनून से कम नहीं है। मैं कभी-कभी अपने ही से घृणा करने लगती हूं। बाबू जी को एक हजार रुपये अपने छोटे-से परिवार के लिए लेने का

क्या हक है और मुझे बे-काम-धंधे इतने आराम से रहने का क्या अधिकार है? मगर यह सब समझकर भी मुझमें कर्म करने की शक्ति नहीं है। इस भोग-विलास के जीवन ने मुझे भी कर्महीन बना डाला है। और मेरे मिजाज में अमीरी कितनी है यह भी आपने देखा होगा। मेरे मुंह से बात निकलते ही अगर पूरी न हो जाय तो मैं बावली हो जाती हूं। बुद्धि का मन पर कोई नियंत्रण नहीं है। जैसे शराबी बार-बार हराम करने पर शराब नहीं छोड़ सकता वही दशा मेरी है। उसी की भांति मेरी इच्छाशक्ति बेजान हो गई है।

तिब्बी के प्रतिभावान मुख-मंडल पर प्राय: चंचलता झलकती रहती थी। उससे दिल की बात कहते संकोच होता, क्योंकि शंका होती थी कि वह सहानुभूति के साथ सुनने के बदले फबतियां कसने लगेगी। पर इस वक्त ऐसा जान पड़ा उसकी आत्मा बोल रही है। उसकी आंखें आर्द्र हो गई थीं। मुख पर एक निश्चिंत नम्रता और कोमलता खिल उठी थी। सन्तकुमार ने देखा उनका संयम फिसलता जा रहा है। जैसे किसी सायल ने बहुत देर के बाद दाता को मनगुर देख पाया हो और अपना मतलब कह सुनाने के लिए अधीर हो गया हो।

बोला—कितनी ही बार। बिल्कुल यही मेरे विचार हैं। मैं आपसे उससे बहुत निकट हूं, जितना समझता था।

तिब्बी प्रसन्न होकर बोली—आपने मुझे कभी बताया नहीं।

—आप भी तो आज ही खुली हैं।

—मैं डरती हूं कि लोग यही कहेंगे आप इतनी शान से रहती हैं, और बातें ऐसी करती हैं। अगर कोई ऐसी तरकीब होती जिससे मेरी यह अमीराना आदतें छूट जातीं तो मैं उसे जरूर काम में लाती। इस विषय की आपके पास कुछ पुस्तकें हों तो मुझे दीजिए। मुझे आप अपनी शिष्या बना लीजिए।

सन्तकुमार ने रसिक भाव से कहा—मैं तो आपका शिष्य होने जा रहा था। और उसकी ओर मर्मभरी आंखों से देखा।

तिब्बी ने आंखें नीची नहीं कीं। उनका हाथ पकड़कर बोली—आप तो दिल्लगी करते हैं। मुझे ऐसा बना दीजिए कि मैं संकटों का सामना कर सकूं। मुझे बार-बार खटकता है अगर मैं स्त्री न होती तो मेरा मन इतना दुर्बल न होता।

और जैसे वह आज सन्तकुमार से कुछ भी छिपाना, कुछ भी बचाना नहीं चाहती। मानो वह जो आश्रय बहुत दिनों से ढूंढ़ रही थी वह यकायक मिल गया है।

सन्तकुमार ने रुखाई भरे स्वर में कहा—स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा दिलेर होती हैं मिस त्रिवेणी !

—अच्छा आपका मन नहीं चाहता कि बस हो तो संसार की सारी व्यवस्था बदल डालें?

इस विशुद्ध मन से निकले हुए प्रश्न का बनावटी जवाब देते हुए सन्तकुमार का हृदय कांप उठा।

—कुछ न पूछो। बस आदमी एक आह खींचकर रह जाता है।

—मैं तो अक्सर रातों को यह प्रश्न सोचते-सोचते सो जाती हूं और वही स्वप्न देखती हूं। देखिए दुनिया वाले कितने खुदगर्ज हैं। जिस व्यवस्था से सारे समाज का उद्धार हो सकता है वह थोड़े से आदमियों के स्वार्थ के कारण दबी पड़ी हुई है।

सन्तकुमार ने उतरे हुए मुख से कहा—उसका समय आ रहा है। और उठ खड़े हुए। यहां

की वायु में उनका जैसे दम घुटने लगा था। उनका कपटी मन इस निष्कपट, सरल वातावरण में अपनी अधमता के ज्ञान से दबा जा रहा था जैसे किसी धर्मनिष्ठ मन में अधर्म विचार घुस तो गया हो पर वह कोई आश्रय न पा रहा हो।

तिब्बी ने आग्रह किया--कुछ देर और बैठिए न?

- आज आज्ञा दीजिए, फिर कभी आऊंगा।

– कब आइएगा?

जल्द ही आऊंगा।

– काश, मैं आपका जीवन सुखी बना सकती।

सन्तकुमार बरामदे से कूदकर नीचे उतरे और तेजी से हाते के बाहर चले गए। तिब्बी बरामदे में खड़ी उन्हें अनुरक्त नेत्रों से देखती रही। वह कठोर थी, चंचल थी, दुर्लभ थी, रूपगर्विता थी, चतुर थी, किसी को कुछ समझती न थी, न कोई उसे प्रेम का स्वांग भरकर ठग सकता था, पर जैसे कितनी ही वेश्याओं में सारी आसक्तियों के बीच में भक्ति-भावना छिपी रहती है, उसी तरह उसके मन में भी सारे अविश्वास के बीच में कोमल, सहमा हुआ विश्वास छिपा बैठा था और उसे स्पर्श करने की कला जिसे आती हो वह उसे बेवकूफ बना सकता था। उस कोमल भाग का स्पर्श होते ही वह सीधी सादी, सरल विश्वासमयी, कातर बालिका बन जाती थी। आज इत्तफाक से सन्तकुमार ने वह आसन पा लिया था और अब वह जिस तरफ चाहे उसे ले जा सकता है, मानो वह मेस्मराइज हो गई थी। सन्तकुमार में उसे कोई दोष नहीं नजर आता। अभागिनी पुष्पा इस सत्यपुरुष का जीवन कैसा नष्ट किए डालती है। इन्हें तो ऐसी संगिनी चाहिए जो इन्हें प्रोत्साहित करे, हमेशा इनके पीछे पीछे रहे। पुष्पा नहीं जानती वह इनके जीवन का राहु बनकर समाज का कितना अनिष्ट कर रही है। और इतने पर भी सन्तकुमार का उसे गले बांध रखना देवत्व से कम नहीं। उनकी वह कौन सी सेवा करे, कैसे उनका जीवन सुखी करे।

चार

सन्तकुमार यहां से चले तो उनका हृदय आकाश में था। इतनी जल्द देवी से उन्हें वरदान मिलेगा इसकी उन्होंने आशा न की थी। कुछ तकदीर ने ही जोर मारा, नहीं तो जो युवती अच्छे अच्छों को उंगलियों पर नचाती है, उन पर क्यों इतनी भक्ति करती। अब उन्हें विलंब न करना चाहिए। कौन जाने कब तिब्बी विरुद्ध हो जाय। और यह दो ही चार मुलाकातों में होने वाला है। तिब्बी उन्हें कार्य क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा करेगी और वह पीछे हटेंगे। वहीं मतभेद हो जाएगा। यहां से वह सीधे मि० सिन्हा के घर पहुंचे। शाम हो गई थी। कुहरा पड़ना शुरू हो गया था। मि० सिन्हा सजे सजाए कहीं जाने को तैयार खड़े थे। इन्हें देखते ही पूछा -

–किधर से?

–वहीं से। आज तो रंग जम गया।

—सच!

—हां जी। उस पर तो जैसे मैंने जादू की लकड़ी फेर दी हो।

—फिर क्या, बाजी मार ली है। अपने फादर से आज ही जिक्र छेड़ो।

—आपको भी मेरे साथ चलना पड़ेगा।

—हां, हां, मैं तो चलूंगा ही। मगर तुम तो बड़े खुशनसीब निकले—यह मिस कामत तो मुझसे सचमुच आशिकी कराना चाहती है। मैं तो स्वांग रचता हूं और वह समझती है, मैं उसका सच्चा प्रेमी हूं। जरा आजकल उसे देखो, मारे गरूर के जमीन पर पांव ही नहीं रखती। मगर एक बात है, औरत समझदार है। उसे बराबर यह चिंता रहती है मैं उसके हाथ से निकल न जाऊं, इसलिए मेरी बड़ी खातिरदारी करती है, और बनाव-सिंगार से कुदरत की कमी जितनी पूरी हो सकती है उतनी करती है। और अगर कोई अच्छी रकम मिल जाय तो शादी कर लेने ही में क्या हरज है।

सन्तकुमार को आश्चर्य हुआ —तुम तो उसकी सूरत से बेजार थे।

—हां, अब भी हूं, लेकिन रुपये की जो शर्त है। डाक्टर साहब बीस पच्चीस हजार मेरी नजर कर दें, शादी कर लूं। शादी कर लेने से मैं उसके हाथ में बिका तो नहीं जाता।

दूसरे दिन दोनों मित्रों ने देवकुमार के सामने सारे मंसूबे रख दिए। देवकुमार को एक क्षण तक तो अपने कानों पर विश्वास न हुआ। उन्होंने स्वच्छंद, निर्भीक, निष्कपट जिंदगी व्यतीत की थी। कलाकारों में एक तरह का जो आत्माभिमान होता है, उसने सदैव उनको ढारस दिया था। उन्होंने तकलीफें उठाई थीं, फाके भी किए थे, अपमान सहे थे लेकिन कभी अपनी आत्मा को कलुषित न किया था। जिंदगी मे कभी अदालत के द्वार तक ही नहीं गए। बोले मुझे खेद होता है कि तुम मुझसे यह प्रस्ताव कैसे कर सके। और इससे ज्यादा दुःख इस बात का है कि ऐसी कुटिल चाल तुम्हारे मन में आई क्योंकर।

सन्तकुमार ने निस्संकोच भाव से कहा— जरूरत सब कुछ सिखा देती है। स्वरक्षा प्रकृति का पहला नियम है। वह जायदाद जो आपने बीस हजार मे दे दी, आज दो लाख से कम की नहीं है।

—वह दो लाख की नहीं, दस लाख की हो। मेरे लिए वह आत्मा को बेचने का प्रश्न है। मैं थोड़े से रुपयों के लिए अपनी आत्मा नहीं बेच सकता।

दोनों मित्रों ने एक-दूसरे की ओर देखा और मुस्कराए। कितनी पुरानी दलील है और कितनी लचर। आत्मा जैसी चीज है कहां? और जब सारा संसार धोखेधड़ी पर चल रहा है तो आत्मा कहां रही? अगर सौ रुपये कर्ज देकर एक हजार वसूल करना अधर्म नहीं है, अगर एक लाख नीमजान, फाकेकश मजदूरों की कमाई पर एक सेठ का चैन करना अधर्म नहीं है तो एक मुसलची कागजी कार्रवाई को रद्द कराने का प्रयत्न क्यों अधर्म हो?

सन्तकुमार ने तीखे स्वर में कहा— अगर आप इसे आत्मा का बेचना कहते हैं तो बेचना पड़ेगा। इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है। और आप इस दृष्टि से इस मामले को देखते ही क्यों हैं? धर्म वह है जिससे समाज का हित हो। अधर्म वह है जिससे समाज का अहित हो। इससे समाज का कौन-सा अहित हो जायगा, यह आप बता सकते हैं?

देवकुमार ने सतर्क होकर कहा—समाज अपनी मर्यादाओं पर टिका हुआ है। उन मर्यादाओं को तोड़ दो और समाज का अंत हो जाएगा।

दोनों तरफ से शास्त्रार्थ होने लगे। देवकुमार मर्यादाओं और सिद्धांतों और धर्म-बंधनों की आड़ ले रहे थे, पर इन दोनों नौजवानों की दलीलों के सामने उनकी एक न चलती थी। वह अपनी सुफेद दाढ़ी पर हाथ फेर-फेरकर और खल्वाट सिर खुजा-खुजा कर जो प्रमाण देते थे उसको यह दोनों युवक चुटकी बजाते तून डालते थे, धुनककर उड़ा देते थे।

सिन्हा ने निर्दयता के साथ कहा- बाबूजी, आप न जाने किस जमाने की बातें कर रहे हैं। कानून से हम जितना फायदा उठा सकें, हमें उठाना चाहिए। उन दफों का मंशा ही यह है कि उनसे फायदा उठाया जाय। अभी आपने देखा जमींदारों की जान महाजनों से बचाने के लिए सरकार ने कानून बना दिया है और कितनी मिल्कियतें जमींदारों को वापस मिल गईं। क्या आप इसे अधर्म कहेंगे? व्यावहारिकता का अर्थ यही है कि हम जिन कानूनी साधनों से अपना काम निकाल सकें, निकालें। मुझे कुछ लेना-देना नहीं, न मेरा कोई स्वार्थ है। सन्तकुमार मेरे मित्र हैं और इसी वास्ते मैं आपसे यह निवेदन कर रहा हूं। मानें या न मानें, आपको अख्तियार है।

देवकुमार ने लाचार होकर कहा–तो आखिर तुम लोग मुझे क्या करने को कहते हो?

–कुछ नहीं, केवल इतना ही कि हम जो कुछ करें आप उसके विरुद्ध कोई कार्रवाई न करें।

–मैं सत्य की हत्या होते नहीं देख सकता।

सन्तकुमार ने आंखें निकाल कर उत्तेजित स्वर में कहा–तो फिर आपको मेरी हत्या देखनी पड़ेगी।

सिन्हा ने सन्तकुमार को डांटा–क्या फजूल की बातें करते हो सन्तकुमार! बाबू जी को दो चार दिन सोचने का मौका दो। तुम अभी किसी बच्चे के बाप नहीं हो। तुम क्या जानो बाप को बेटा कितना प्यारा होता है। वह अभी कितना ही विरोध करें, लेकिन जब नालिश दायर हो जायगी तो देखना वह क्या करते हैं। हमारा दावा यही होगा कि जिस वक्त आपने यह बैनामा लिखा, आपके होश-हवास ठीक न थे और अब भी आपको कभी-कभी जुनून का दौरा हो जाता है। हिन्दुस्तान जैसे गर्म मुल्क में यह मरज बहुतों को होता है, और आपको भी हो गया तो कोई आश्चर्य नहीं। हम सिविल सर्जन से इसकी तसदीक करा देंगे।

देवकुमार ने हिकारत के साथ कहा- मेरे जीते-जी यह धांधली नहीं हो सकती। हरगिज नहीं। मैंने जो कुछ किया सोच-समझकर और परिस्थितियों के दबाव से किया। मुझे उसका बिल्कुल अफसोस नहीं है। अगर तुमने इस तरह का कोई दावा किया तो उसका सबसे बड़ा विरोध मेरी ओर से होगा, मैं कहे देता हूं।

और वह आवेश में आकर कमरे में टहलने लगे।

सन्तकुमार ने भी खड़े होकर धमकाते हुए कहा -तो मेरा भी आपको चेलेंज है। या तो आप अपने धर्म ही की रक्षा करेंगे या मेरी। आप फिर मेरी सूरत न देखेंगे।

–मुझे अपना धर्म, पत्नी और पुत्र सबसे प्यारा है।

सिन्हा ने सन्तकुमार को आदेश किया–तुम आज दर्खास्त दे दो कि आपके होश-हवास में फर्क आ गया और मालूम नहीं आप क्या कर बैठें। आपको हिरासत में ले लिया जाय।

देवकुमार ने मुट्ठी तानकर क्रोध के आवेश में पूछा–मैं पागल हूं?

–जी हां, आप पागल हैं। आपके होश बजा नहीं हैं। ऐसी बातें पागल ही किया करते

हैं। पागल वही नहीं है जो किसी को काटने दौड़े। आम आदमी जो व्यवहार करते हों उसके विरुद्ध व्यवहार करना भी पागलपन है।

—तुम दोनों खुद पागल हो।

—इसका फैसला तो डाक्टर करेगा।

—मैंने बीसों पुस्तकें लिख डालीं, हजारों व्याख्यान दे डाले, यह पागलों का काम है?

—जी हां, यह पक्के सिरफिरों का काम है। कल ही आप इस घर में रस्सियों से बांध लिये जायंगे।

—तुम मेरे घर से निकल जाओ, नहीं तो मैं गोली मार दूंगा।

—बिल्कुल पागलों की-सी धमकी। सन्तकुमार उस दर्खास्त में यह भी लिख देना कि आपकी बंदूक छीन ली जाय, वरना जान का खतरा है।

और दोनों मित्र उठ खड़े हुए। देवकुमार कभी कानून के जाल में न फंसे थे। प्रकाशकों और बुकसेलरों ने उन्हें बारहा धोखे दिए, मगर उन्होंने कभी कानून की शरण न ली। उनके जीवन की नीति थी—आप भला तो जग भला, और उन्होंने हमेशा इस नीति का पालन किया था। मगर वह दब्बू या डरपोक न थे। खासकर सिद्धांत के मुआमले में तो वह समझौता करना जानते ही न थे। वह इस षड्यंत्र में कभी शरीक न होंगे, चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय। मगर क्या यह सब सचमुच उन्हें पागल साबित कर देंगे? जिस दृढ़ता से सिन्हा ने धमकी दी थी वह उपेक्षा के योग्य न थी। उसकी ध्वनि से तो ऐसा मालूम होता था कि वह इस तरह के दांव-पेंच में अभ्यस्त है, और शायद डाक्टरों को मिलाकर सचमुच उन्हें सनकी साबित कर दे। उनका आत्माभिमान गरज उठा—नहीं, वह असत्य की शरण न लेंगे चाहे इसके लिए उन्हें कुछ भी सहना पड़े। डाक्टर भी क्या अंधा है? उनसे कुछ पूछेगा, कुछ बातचीत करेगा या योंही कलम उठाकर उन्हें पागल लिख देगा। मगर कहीं ऐसा तो नहीं है कि उनके होश-हवास में फितूर पड़ गया हो। हुश! वह भी इन छोकरों की बातों में आए जाते हैं। उन्हे अपने व्यवहार में कोई अंतर नहीं दिखाई देता। उनकी बुद्धि सूर्य के प्रकाश की भांति निर्मल है। कभी नहीं। वह इन लौंडों के धौंस में न आयंगे।

लेकिन यह विचार उनके हृदय को मथ रहा था कि सन्तकुमार की यह मनोवृत्ति कैसे हो गई। उन्हें अपने पिता की याद आती थी। वह कितने सौम्य, कितने सत्यनिष्ठ थे। उनके ससुर वकील जरूर थे, पर कितने धर्मात्मा पुरुष थे। अकेले कमाते थे और सारी गृहस्थी का पालन करते थे। पांच भाइयों और उनके बाल-बच्चों का बोझा खुद संभाले हुए थे। क्या मजाल कि अपने बेटे-बेटियों के साथ उन्होंने किसी तरह का पक्षपात किया हो। जब तक बड़े भाई को भोजन न करा लें खुद न खाते थे। ऐसे खानदान में सन्तकुमार जैसा दगाबाज कहां से धंस पड़ा? उन्हें कभी ऐसी कोई बात याद न आती थी जब उन्होंने अपनी नीयत बिगाड़ी हो।

लेकिन यह बदनामी कैसे सही जायगी। वह अपने ही घर में जब जागृति न ला सके तो एक प्रकार से उनका सारा जीवन नष्ट हो गया। जो लोग उनके निकटतम संसर्ग में थे, जब उन्हें वह आदमी न बना सके तो जीवन-पर्यन्त की साहित्य-सेवा से किसका कल्याण हुआ? और जब यह मुकदमा दायर होगा उस वक्त वह किसे मुंह दिखा सकेंगे? उन्होंने धन न कमाया, पर यश तो संचय किया ही। क्या वह भी उनके हाथ से छिन जायगा? उनको अपने संतोष के लिए इतना भी न मिलेगा ऐसी आत्मवेदना उन्हें कभी न हुई थी।

शैव्या से कहकर वह उसे भी क्यों दुखी करें? उसके कोमल हृदय को क्यों चोट पहुंचावें? वह सब कुछ खुद झेल लेंगे। और दुखी होने की बात भी क्यों हो? जीवन तो अनुभूतियों का नाम है। यह भी एक अनुभव होगा। जरा इसकी भी सैर कर लें।

यह भाव आते ही उनका मन हल्का हो गया। घर में जाकर पंकजा से चाय बनाने को कहा।

शैव्या ने पूछा—सन्तकुमार क्या कहता था?

उन्होंने सहज मुस्कान के साथ कहा—कुछ नहीं, वही पुराना खब्त।

—तुमने तो हामी नहीं भरी न?

देवकुमार स्त्री से एकात्मता का अनुभव करके बोले—कभी नहीं।

—न जाने इसके सिर यह भूत कैसे सवार हो गया।

—सामाजिक संस्कार हैं और क्या?

—इसके यह संस्कार क्यों ऐसे हो गए? साधु भी तो है, पंकजा भी तो है, दुनिया में क्या धर्म ही नहीं?

—मगर कसरत ऐसे ही आदमियों की है, यह समझ लो।

उस दिन से देवकुमार ने सैर करने जाना छोड़ दिया। दिन-रात घर में मुंह छिपाए बैठे रहते। जैसे सारा कलंक उनके माथे पर लगा हो। नगर और प्रांत के सभी प्रतिष्ठित, विचारवान आदमियों से उनका दोस्ताना था, सब उनकी सज्जनता का आदर करते थे। मानो वह मुकदमा दायर होने पर भी शायद कुछ न कहेंगे। लेकिन उनके अंतर में जैसे चोर-सा बैठा हुआ था। वह अपने अहंकार में अपने को आत्मीयों की भलाई-बुराई का जिम्मेदार समझते थे। पिछले दिनों जब सूर्यग्रहण के अवसर पर साधुकुमार ने बढ़ी हुई नदी में कूदकर एक डूबते हुए आदमी की जान बचाई थी, उस वक्त उन्हें उससे कहीं ज्यादा खुशी हुई थी जितनी खुद सारा यश पाने से होती। उनकी आंखों में आंसू भर आए थे, ऐसा लगा था मानो उनका मस्तक कुछ ऊंचा हो गया है, मानो मुख पर तेज आ गया है। वही लोग जब सन्तकुमार की चितकबरी आलोचना करेंगे तो वह कैसे सुनेंगे?

इस तरह एक महीना गुजर गया और सन्तकुमार ने मुकदमा दायर किया। उधर सिविल सर्जन को गांठना था, इधर मि॰ मलिक को। शहादतें भी तैयार करनी थीं। इन्हीं तैयारियों में सारा दिन गुजर जाता था। और रुपये का इंतजाम भी करना ही था। देवकुमार सहयोग करते तो यह सबसे बड़ी बाधा हट जाती। पर उनके विरोध ने समस्या को और जटिल कर दिया था। सन्तकुमार कभी-कभी निराश हो जाता। कुछ समझ में न आता क्या करे। दोनों मित्र देवकुमार पर दांत पीस-पीसकर रह जाते।

सन्तकुमार कहता- जी चाहता है इन्हें गोली मार दूं। मैं इन्हें अपना बाप नहीं, शत्रु समझता हूं।

सिन्हा समझाता—मेरे दिल में तो भई, उनकी इज्जत होती है। अपने स्वार्थ के लिए आदमी नीचे से नीचा काम कर बैठता है, पर त्यागियों और सत्यवादियों का आदर तो दिल में होता ही है। न जाने तुम्हें उन पर कैसे गुस्सा आता है। जो व्यक्ति सत्य के लिए बड़े से बड़ा कष्ट सहने को तैयार हो वह पूजने के लायक है।

—ऐसी बातों से मेरा जी न जलाओ सिन्हा। तुम चाहते तो वह हजरत अब तक पागलखाने

में होते। मैं न जानता था तुम इतने भावुक हो।

—उन्हें पागलखाने भेजना इतना आसान नहीं जितना तुम समझते हो। और इसकी कोई जरूरत भी तो नहीं। हम यह साबित करना चाहते हैं कि जिस वक्त बैनामा हुआ वह अपने होश-हवास में न थे। इसके लिए शहादतों की जरूरत है। वह अब भी उसी दशा में हैं इसे साबित करने के लिए डाक्टर चाहिए और मि० कामत भी यह लिखने का साहस नहीं रखते।

पं० देवकुमार को धमकियों से झुकाना तो असंभव था मगर तर्क के सामने उनकी गर्दन आप-ही-आप झुक जाती थी। इन दिनों वह यही सोचते रहते थे कि संसार की कुव्यवस्था क्यों है? कर्म और संस्कार का आश्रय लेकर वह कहीं न पहुंच पाते थे। सर्वात्मवाद से भी उनकी गुत्थी न सुलझती थी। अगर सारा विश्व एकात्म है तो फिर यह भेद क्यों है? क्यों एक आदमी जिंदगी-भर बड़ी-से- बड़ी मेहनत करके भी भूखों मरता है, और दूसरा आदमी हाथ-पांव न हिलाने पर भी फूलों की सेज पर सोता है। यह सर्वात्म है या घोर अनात्म? बुद्धि जवाब देती—यहां सभी स्वाधीन हैं, सभी को अपनी शक्ति और साधना के हिसाब से उन्नति करने का अवसर है। मगर शंका पूछती—सबको समान अवसर कहां है? बाजार लगा हुआ है। जो चाहे वहां से अपनी इच्छा की चीज खरीद सकता है। मगर खरीदेगा तो वही जिसके पास पैसे हैं। और जब सबके पास पैसे नहीं हैं तो सबका बराबर का अधिकार कैसे माना जाय? इस तरह का आत्ममंथन उनके जीवन में कभी न हुआ था। उनकी साहित्यिक बुद्धि ऐसी व्यवस्था से संतुष्ट तो हो ही न सकती थी, पर उनके सामने ऐसी कोई गुत्थी न पड़ी थी जो इस प्रश्न को वैयक्तिक अंत तक ले जाती। इस वक्त उनकी दशा उस आदमी की सी थी जो रोज मार्ग में ईंटें पड़े देखता है और बचकर निकल जाता है। रात को कितने लोगों को ठोकर लगती होगी, कितनों के हाथ-पैर टूटते होंगे, इसका ध्यान उसे नहीं आता। मगर एक दिन जब वह खुद रात को ठोकर खाकर अपने घुटने फोड़ लेता है तो उसकी निवारण शक्ति हठ करने लगती है और वह उस सारे ढेर को मार्ग से हटाने पर तैयार हो जाता है। देवकुमार को वही ठोकर लगी थी। कहां है न्याय? कहां है? एक गरीब आदमी किसी खेत से बालें नोचकर खा लेता है, कानून उसे सजा देता है। दूसरा अमीर आदमी दिन दहाड़े दूसरों को लूटता है और उसे पदवी मिलती है, सम्मान मिलता है। कुछ आदमी तरह तरह के हथियार बांधकर आते हैं और निरीह, दुर्बल मजदूरों पर आतंक जमाकर अपना गुलाम बना लेते हैं। लगान और टैक्स और महसूल और कितने ही नामों से उसे लूटना शुरू करते हैं, और आप लंबा-लंबा वेतन उड़ाते हैं, शिकार खेलते हैं, नाचते हैं, रंगरेलियां मनाते हैं। यही है ईश्वर का रचा हुआ संसार? यही न्याय है?

हां, देवता हमेशा रहेंगे और हमेशा रहे हैं। उन्हें अब भी संसार धर्म और नीति पर चलता हुआ नजर आता है। वे अपने जीवन की आहुति देकर संसार से विदा हो जाते हैं। लेकिन उन्हें देवता क्यों कहो? कायर कहो, स्वार्थी कहो, आत्मसेवी कहो। देवता वह है जो न्याय की रक्षा करे और उसके लिए प्राण दे दे। अगर वह जानकर अनजान बनता है तो धर्म से गिरता है। अगर उसकी आंखों में यह कुव्यवस्था खटकती ही नहीं तो वह अंधा भी है और मूर्ख भी, देवता किसी तरह नहीं। और यहां देवता बनने की जरूरत भी नहीं। देवताओं ने ही भाग्य और ईश्वर और भक्ति की मिथ्याएं फैलाकर इस अनीति को अमर बनाया है। मनुष्य ने अब तक इसका अंत कर दिया होता या समाज का ही अंत कर दिया होता जो इस दशा में जिंदा रहने से कहीं अच्छा

होता। नहीं, मनुष्यों में मनुष्य बनना पड़ेगा। दरिंदों के बीच में उनसे लड़ने के लिए हथियार बांधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं, जड़ता है। आज जो इतने ताल्लुकेदार और राजे हैं वह अपने पूर्वजों की लूट का ही आनंद तो उठा रहे हैं। और क्या उन्होंने यह जायदाद बेच कर पागलपन नहीं किया? पितरों को पिंडा देने के लिए गया जाकर पिंडा देना और यहां आकर हजारों रुपये खर्च करना क्या जरूरी था? और रातों को मित्रों के साथ मुजरे सुनना, और नाटक मंडली खोलकर हजारों रुपये उसमें डुबाना अनिवार्य था? वह अवश्य पागलपन था। उन्हें क्यों अपने बाल-बच्चों की चिन्ता नहीं हुई? अगर उन्हें मुफ्त की संपत्ति मिली और उन्होंने उड़ाया तो उनके लड़के क्यों न मुफ्त की संपत्ति भोगें? अगर वह जवानी की उमंगों को नहीं रोक सके तो उनके लड़के क्या तपस्या करें?

और अंत में उनकी शंकाओं को इस धारणा से तस्कीन हुई कि इस अनीति भरे संसार में धर्म- अधर्म का विचार गलत है, आत्मघात है। और जुआ खेलकर या दूसरों के लोभ और आसक्ति से फायदा उठाकर संपत्ति खड़ी करना उतना ही बुरा या अच्छा है जितना कानूनी दांव-पेंच से। बेशक वह महाजन के बीस हजार के कर्जदार हैं। नीति कहती है कि उस जायदाद को बेचकर उसके बीस हजार दे दिये जायं। बाकी उन्हें मिल जाय। अगर कानून कर्जदारों के साथ इतना न्याय भी नहीं करता तो कर्जदार भी कानून में जितनी खींचतान हो सके करके महाजन से अपनी जायदाद वापस लेने की चेष्टा करने में किसी अधर्म का दोषी नहीं ठहर सकता। इस निष्कर्ष पर उन्होंने शास्त्र और नीति के हरेक पहलू से विचार किया और वह उनके मन में जम गया। अब किसी तरह नहीं हिल सकता। और यद्यपि इससे उनके चिर-संचित संस्कारों को आघात लगता था, पर वह ऐसे प्रसन्न और फूले हुए थे मानो उन्हें कोई नया जीवन मंत्र मिल गया हो।

एक दिन उन्होंने सेठ गिरधर दास के पास जाकर साफ-साफ कह दिया—अगर आप मेरी जायदाद वापस न करेंगे तो मेरे लड़के आपके ऊपर दावा करेंगे।

गिरधर दास नये जमाने के आदमी थे अंग्रेजी में कुशल, कानून में चतुर, राजनीति में भाग लेने वाले, कंपनियों में हिस्से लेते थे, और बाजार अच्छा देखकर बेच देते थे, एक शक्कर का मिल खुद चलाते थे। सारा कारोबार अंग्रेजी ढंग से करते थे। उनके पिता सेठ मक्कूलाल भी यही सब करते थे, पर पूजा- पाठ, दान-दक्षिणा से प्रायश्चित करते रहते थे, गिरधर दास पक्के जड़वादी थे, हरेक काम व्यापार के कायदे से करते थे। कर्मचारियों का वेतन पहली तारीख को देते थे, मगर बीच में किसी को जरूरत पड़े तो सूद पर रुपये देते थे, मक्कूलाल जी साल साल भर वेतन न देते थे, पर कर्मचारियों को बराबर पेशगी देते रहते थे। हिसाब होने पर उनको कुछ देने के बदले कुछ मिल जाता था। मक्कूलाल साल में दो-चार बार अफसरों को सलाम करने जाते थे, डालियां देते थे, जूते उतार कर कमरे में जाते थे और हाथ बांधे खड़े रहते थे। चलते वक्त आदमियों को दो-चार रुपये इनाम दे आते थे। गिरधर दास म्युनिसिपल कमिश्नर थे, सूट-बूट पहन कर अफसरों के पास जाते थे और बराबरी का व्यवहार करते थे, और आदमियों के साथ केवल इतनी रिआयत करते थे कि त्योहारों में त्योहारी दे देते थे, वह भी खूब खुशामद करा के। अपने हकों के लिए लड़ना और आंदोलन करना जानते थे, मगर उन्हें ठगना असंभव था।

देवकुमार का यह कथन सुनकर चकरा गये। उनकी बड़ी इज्जत करते थे। उनकी कई

पुस्तकें पढ़ी थीं, और उनकी रचनाओं का पूरा सेट उनके पुस्तकालय में था। हिंदी भाषा के प्रेमी थे और नागरी-प्रचार सभा को कई बार अच्छी रकमें दान दे चुके थे। पंडा-पुजारियों के नाम से चिढ़ते थे, दूषित दान प्रथा पर एक पैम्फलेट भी छपवाया था। लिबरल विचारों के लिए नगर में उनकी ख्याति थी। मक्कूलाल मारे मोटापे के जगह से हिल न सकते थे, गिरधर दास गठीले आदमी थे और नगर-व्यायामशाला के प्रधान ही न थे, अच्छे शहसवार और निशानेबाज थे।

एक क्षण तो वह देवकुमार के मुंह की ओर देखते रहे। उनका आशय क्या है, यह समझ में ही न आया। फिर ख्याल आया बेचारे आर्थिक संकट में होंगे, इससे बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। बेतुकी बातें कर रहे हैं। देवकुमार के मुख पर विजय का गर्व देखकर उनका यह ख़याल और मजबूत हो गया।

सुनहरी ऐनक उतारकर मेज पर रखकर विनोद भाव से बोले कहिए, घर में तो सब कुशल तो है?

देवकुमार ने विद्रोह के भाव से कहा—जी हां, सब आपकी कृपा है।

—बड़ा लड़का तो वकालत कर रहा है न?

—जी हां।

—मगर चलती न होगी और आपकी पुस्तकें भी आजकल कम बिकती होंगी। यह देश का दुर्भाग्य है कि आप जैसे सरस्वती के पुत्रों का यह अनादर। आप यूरोप में होते तो आज लाखों के स्वामी होते।

—आप जानते हैं, मैं लक्ष्मी के उपासकों में नहीं हूं।

—धन-संकट में तो होंगे ही। मुझ से जो कुछ सेवा आप कहें, उसके लिए तैयार हूं। मुझे तो गर्व है कि आप जैसे प्रतिभाशाली पुरुष से मेरा परिचय है। आपकी कुछ सेवा करना मेरे लिए गौरव की बात होगी।

देवकुमार ऐसे अवसरों पर नम्रता के पुतले बन जाते थे। भक्ति और प्रशंसा देकर कोई उनका सर्वस्व ले सकता था। एक लखपती आदमी और वह भी साहित्य का प्रेमी जब उनका इतना सम्मान करता है तो उससे जायदाद या लेन-देन की बात करना उन्हें लज्जाजनक मालूम हुआ। बोले—आपकी उदारता है जो मुझे इस योग्य समझते हैं।

—मैंने समझा नहीं आप किस जायदाद की बात कह रहे थे।

देवकुमार सकुचाते हुए बोले- अर्जी वही, जो सेठ मक्कूलाल ने मुझसे लिखाई थी।

—अच्छा तो उसके विषय में कोई नयी बात है?

—उसी मामले में लड़के आपके ऊपर कोई दावा करने वाले हैं। मैंने बहुत समझाया, मगर मानते नहीं। आपके पास इसीलिए आया था कि कुछ ले-देकर समझौता कर लीजिए, मामला अदालत में क्यों जाय? नाहक दोनों जेरबार होंगे।

गिरधर दास का जहीन, मुरौवतदार चेहरा कठोर हो गया। जिन महाजनी नखों को उन्होंने भद्रता की नर्म गद्दी में छिपा रखा था, वह यह खटका पाते ही पैने और उग्र होकर बाहर निकल आये।

क्रोध को दबाते हुए बोले—आपको मुझे समझाने के लिए यहां आने की तकलीफ उठाने की कोई जरूरत न थी। उन लड़कों ही को समझाना चाहिए था।

--उन्हें तो मैं समझा चुका।

--तो जाकर शांत बैठिए। मैं अपने हकों के लिए लड़ना जानता हूं। अगर उन लोगों के दिमाग में कानून की गर्मी का असर हो गया है तो उसकी दवा मेरे पास है।

अब देवकुमार की साहित्यिक नम्रता भी अविचलित न रह सकी। जैसे लड़ाई का पैगाम स्वीकार करते हुए बोले--मगर आपको मालूम होना चाहिए वह मिल्कियत आज दो लाख से कम की नहीं है।

--दो लाख नहीं, दस लाख की हो, आपसे सरोकार नहीं।

--आपने मुझे बीस हजार ही तो दिये थे।

--आपको इतना कानून तो मालूम ही होगा, हालांकि कभी आप अदालत में नहीं गए, कि जो चीज बिक जाती है वह कानूनन किसी दाम पर भी वापस नहीं की जाती। अगर इस नये कायदे को मान लिया जाय तो इस शहर में महाजन न नजर आयें।

कुछ देर तक सवाल-जवाब होता रहा और लड़ने वाले कुत्तों की तरह दोनों भले आदमी गुर्राते, दांत निकालते, खौंखियाते रहे। आखिर दोनों लड़ ही गए।

गिरधर दास ने प्रचंड होकर कहा--मुझे आपसे ऐसी आशा नहीं थी।

देवकुमार ने भी छड़ी उठाकर कहा--मुझे भी न मालूम था कि आपके स्वार्थ का पेट इतना [illegible] है।

--आप अपना सर्वनाश करने जा रहे हैं।

--कुछ परवाह नहीं।

देवकुमार वहां से चले तो माघ की उस अंधेरी रात की निर्दय ठंड में भी उन्हें पसीना हो रहा था। विजय का ऐसा गर्व अपने जीवन में उन्हें कभी न हुआ था। उन्होंने तर्क में तो बहुतों पर विजय पाई थी। यह विजय थी जीवन में एक नई प्रेरणा, एक नई शक्ति का उदय।

उसी रात को सिन्हा और सन्तकुमार ने एक बार फिर देवकुमार पर जोर डालने का निश्चय किया। दोनों आकर खड़े ही थे कि देवकुमार ने प्रोत्साहन भरे हुए भाव से कहा--तुम लोगों ने अभी तक मुआमला दायर नहीं किया। नाहक [illegible] देर कर रहे हो।

सन्तकुमार के सूखे हुए निराश मन में उल्लास की आंधी-सी आ गई। क्या सचमुच कहीं ईश्वर है जिस पर उसे कभी विश्वास नहीं हुआ? जरूर कोई दैवी शक्ति है। भीख मांगने आए थे, वरदान मिल गया।

बोला--आप ही की अनुमति का इंतजार था।

--मैं बड़ी खुशी से अनुमति देता हूं। मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

उन्होंने गिरधर दास से जो बातें हुई वह कह सुनाई।

सिन्हा ने नाक फुलाकर कहा--जब आपकी दुआ है तो हमारी फतह है। उन्हें अपने धन का घमंड होगा, मगर यहां भी कच्ची गोलियां नहीं खेली हैं।

सन्तकुमार ऐसा खुश था गोया आधी मंजिल तय हो गई। बोला--आपने खूब उचित जवाब दिया।

सिन्हा ने तनी हुई ढोलकी-सी आवाज में चोट मारी--ऐसे-ऐसे सेठों को उंगलियों पर नचाते हैं यहां।

सन्तकुमार स्वप्न देखने लगे--यहीं हम दोनों के बंगले बनेंगे दोस्त।

–यहां क्यों, सिविल लाइन्स में बनवायेंगे।

–अंदाज से कितने दिन में फैसला हो जायगा?

–छ: महीने के अंदर।

–बाबू जी के नाम से सरस्वती मंदिर बनवायंगे।

मगर समस्या थी, रुपये कहां से आवें। देवकुमार निस्पृह आदमी थे। धन की कभी उपासना नहीं की। कभी इतना ज्यादा मिला ही नहीं कि संचय करते। किसी महीने में पचास जमा होते तो दूसरे महीने में खर्च हो जाते। अपनी सारी पुस्तकों का कॉपीराइट बेचकर उन्हें पांच हजार मिले थे। वह उन्होंने पंकजा के विवाह के लिए रख दिए थे। अब ऐसी कोई सूरत नहीं थी जहां से कोई बड़ी रकम मिलती। उन्होंने समझा था सन्तकुमार घर का खर्च उठा लेगा और वह कुछ दिन आराम से बैठेंगे या घूमेंगे। लेकिन इतना बड़ा मंसूबा बांधकर वह अब शांत कैसे बैठ सकते हैं? उनके भक्तों की काफी तादाद थी। दो- चार राजे भी उनके भक्तों में थे जिनकी यह पुरानी लालसा थी कि देवकुमार जी उनके घर को अपने चरणों से पवित्र करें और वह अपनी श्रद्धा उनके चरणों में अर्पण करें। मगर देवकुमार थे कि कभी किसी दरबार में कदम नहीं रक्खा, अब अपने प्रेमियों और भक्तों से आर्थिक संकट का रोना रो रहे थे और खुले शब्दों में सहायता की याचना कर रहे थे। वह आत्मगौरव जैसे किसी कब्र में सो गया हो।

और शीघ्र ही इसका परिणाम निकला। एक भक्त ने प्रस्ताव किया कि देवकुमार जी की साठवीं सालगिरह धूमधाम से मनाई जाय और उन्हें साहित्य - प्रेमियों की ओर से एक थैली भेंट की जाय। क्या यह लज्जा और दुख की बात नहीं है कि जिस महारथी ने अपने जीवन के चालीस वर्ष साहित्य- सेवा पर अर्पण कर दिए, वह इस वृद्धावस्था में भी आर्थिक- चिंताओं से मुक्त न हो? साहित्य यों नहीं फल- फूल सकता। जब तक हम अपने साहित्य सेवियों का ठोस सत्कार करना न सीखेंगे, साहित्य कभी उन्नति न करेगा, और दूसरे समाचारपत्रों ने मुक्त कंठ से इसका समर्थन किया। अचरज की बात यह थी कि वह महानुभाव भी जिनका देवकुमार से पुराना साहित्यिक वैमनस्य था, वे भी इस अवसर पर उदारता का परिचय देने लगे। बात चल पड़ी। एक कमेटी बन गई। एक राजा साहब उसके प्रधान बन गये। मि॰ सिन्हा ने कभी देवकुमार की कोई पुस्तक न पढ़ी थी पर वह इस आंदोलन में प्रमुख भाग लेते थे। मिस कामत और मिस मलिक की ओर से भी समर्थन हो गया। महिलाओं को पुरुषों से पीछे न रहना चाहिए। जेठ में तिथि निश्चित हुई। नगर के इंटरमीडिएट कॉलेज में इस उत्सव की तैयारियां होने लगीं।

आखिर वह तिथि आ गयी। आज शाम को वह उत्सव होगा। दूर -दूर से साहित्य प्रेमी आए हैं। सोरांव के कुंअर साहब वह थैली भेंट करेंगे। आशा से ज्यादा सज्जन जमा हो गए हैं। व्याख्यान होंगे, गाना होगा, ड्रामा खेला जायगा, प्रीति भोज होगा, कवि सम्मेलन होगा। शहर में दीवारों पर पोस्टर लगे हुए हैं। सभ्य-समाज में अच्छी हलचल है। राजा साहब सभापति हैं।

देवकुमार को तमाशा बनने से नफरत थी। पब्लिक जलसों में भी कम आते - जाते थे। लेकिन आज तो बरात का दूल्हा बनना ही पड़ा। ज्यों- ज्यों सभा में जाने का समय समीप आता था उनके मन पर एक तरह का अवसाद छाया जाता था। जिस वक्त थैली उनको भेंट की

जायगी और वह हाथ बढ़ाकर लेंगे वह दृश्य कैसा लज्जाजनक होगा। जिसने कभी धन के लिए हाथ नहीं फैलाया वह इस आखिरी वक्त में दूसरों का दान ले? यह दान ही है, और कुछ नहीं। एक क्षण के लिए उनका आत्मसम्मान विद्रोही बन गया। इस अवसर पर उनके लिए शोभा यही देता है कि वह थैली पाते ही उसी जगह किसी सार्वजनिक संस्था को दे दें। उनके जीवन के आदर्श के लिए यही अनुकूल होगा, लोग उनसे यही आशा रखते हैं, इसी में उनका गौरव है। वह पंडाल में पहुंचे तो उनके मुख पर उल्लास की झलक न थी। वह कुछ खिसियाये से लगते थे। नेकनामी की लालसा एक ओर खींचती थी, लोभ दूसरी ओर। मन को कैसे समझाएं कि यह दान दान नहीं, उनका हक है। लोग हंसेंगे, आखिर पैसे पर टूट पड़ा। उनका जीवन बौद्धिक था, और बुद्धि जो कुछ करती है नीति पर कसकर करती है। नीति का सहारा मिल जाय तो फिर वह दुनिया की परवाह नहीं करती। वह पहुंचे तो स्वागत हुआ, मंगल-गान हुआ, व्याख्यान होने लगे। जिनमें उनकी कीर्ति गाई गई। मगर उनकी दशा उस आदमी की-सी हो रही थी जिसके सिर में दर्द हो रहा हो। उन्हें इस वक्त इस दर्द की दवा चाहिए। कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। सभी विद्वान् हैं, मगर उनकी आलोचना कितनी उथली, ऊपरी है जैसे कोई उनके संदेशों को समझा ही नहीं, जैसे यह सारी वाह-वाह और सारा यशगान अंध-भक्ति के सिवा और कुछ न था। कोई भी उन्हें नहीं समझा—किस प्रेरणा ने चालीस साल तक उन्हें संभाले रक्खा, वह कौन-सा प्रकाश था जिसकी ज्योति कभी मंद नहीं हुई।

सहसा उन्हें एक आश्रय मिल गया और उनके विचारशील, पीले मुख पर हल्की सी सुर्खी दौड़ गई। यह दान नहीं प्राविडेंट फंड है जो आज तक उनकी आमदनी से कटता जा रहा है। सरकार की नौकरी में लोग पेंशन पाते हैं, क्या वह दान है? उन्होंने जनता की सेवा की है, तन-मन से की है इस धुन से की है जो बड़े-से-बड़े वेतन से भी न आ सकती थी। पेंशन लेने में क्यों लाज आये?

राजा साहब ने जब थैली भेंट की तो देवकुमार के मुंह पर गर्व था, हर्ष था, विजय थी।

• • •

